हमारी जिस विभाग क्रम से ग्रन्थ प्रकाशन की योजना थी, लेखों-निबन्धों को प्राप्त करने के लिये बारम्बार प्रेरित करने पर भी थोडे से लेख आये और वे भी विलम्ब से। उन्हें योजनानुसार क्रमबद्ध प्रकाशित करने में पूर्ति के हेतु हमें हाथोंहाथ लिखकर प्रेस में देना पड़ा। इधर कलकत्ता की विषम परिस्थिति में हड़ताल, मुहर्रम, होली की छुट्टियाँ और चुनाव के चक्कर के साथ साथ मुद्रण यंत्र की हड़ताल खराबी आदि कारणों से हमारी योजनानुसार दिये गये लेख नहीं छप सके और अन्त में वापस लाने पड़े। यद्यपि इस ग्रन्थ में कुछ पूर्वाचार्यों और गत शतक के दिवंगत आचार्यों-मुनियों का परिचय तो हम दे पाये हैं पर खरतर गच्छ की मूलाधार साध्वीमंडल जिसका हमें विशेष गौरव है, उनके कुछ आये हुए लेख भी नहीं दे सके इस बात का हमारे मन में बड़ा भारी खेद है।

इस ग्रन्थ में कुछ ठोस सामग्री जैसे—दीक्षा नन्दी सूची, तीर्थों के विकास में खरतरगच्छ का योगदान, खरतरगच्छाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र, अप्रकाशित प्राचीन ऐतिहासिक काव्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्ध तैयार होने पर भी नहीं दिये जा सके। आशा है पाठकगण हमारी विवशता समझेंगे।

हमने इस ग्रन्थ में एक महत्त्वपूर्ण ठोस सामग्री दी है—खरतरगच्छ साहित्य सूची, जो दूसरे विभाग में है। यह कार्य अपने आपमें एक बहुत बड़ा और गत ४० वर्षों से सम्पन्न श्रमसाध्यशोधपूर्ण कार्य है जिसके निर्माण में हमारे सैकड़ों ज्ञानभण्डार आदि के अवलोकन—नोंध का उपयोग सतर्कता के साथ किया गया है। मुद्रित, अमुद्रित के लिये मु० अ० लिखा है। रचनाओं को विषय वार विभक्त करके रचयिता और उनके गुरु का नाम, रचना समय, निर्देश के साथ-साथ प्राप्तिस्थान के उल्लेख में स्थल संकोच वश कुछ संक्षिप्त संकेत व्यवहृत किये गये हैं, जिनका यहाँ दिशा-सूचन करना समीचीन होगा। जैसे राप्राविप्र=राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, बीकानेर आदि, अभय० या अ० बीकानेर=हमारे अभय जैन ग्रन्थालय, वि० कोटा-महो० विनयसागर संग्रह कोटा, धर्म-आगरा=विजय-धर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरा, सेठिया=अगरचन्दभैरूदान सेठिया को लायब्रेरी बीकानेर, लींबड़ी=लींबड़ी का ज्ञान-भंडार, वृद्धि-जेसलमेर=यतिवृद्धिचन्द्रजी का भंडार, डूंगर=यतिडूंगरसीजी का भंडार, हरि० लोहावट=श्रीजिनहरि-सागरसूरि ज्ञानभंडार लोहावट, क्षमाबीकानेर=उ० क्षमा-कल्याणजी का भंडार तथा बड़े उपाश्रय में स्थित बड़े ज्ञानभंडार में दस विभाग हैं जिनमें महिमा=महिमा-भक्ति, महर=महरचन्दजी, दान=दानसागर भंडार आदि तथा कांतिछाणी=प्रवर्त्तक श्री कान्तिविजयजी का भंडार, छाणी आदि संक्षिप्त निर्देश, शोधकर्त्ताओं को थोड़ा ध्यान देने से समझ में आ जावेंगे।

इस महत्त्वपूर्ण श्लाघनीय कार्य सम्पादन के लिए श्रीविनयसागरजी अनेकश. धन्यवादार्ह है।

अजमेर में श्रीजिनदत्तसूरि अष्टम शताब्दी के अवसर पर हमारी नम्र प्रार्थना से पूज्य गुरुदेव सद्गत श्रीसहजा-नंदघनजी महाराज ने दादासाहब के लोकोत्तर व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला महत्त्वपूर्ण विस्तृत निबन्ध "अनु-भूति की आवाज" लिखा था, जो अब तक उनकी सारी रचनाओं की भाँति ही अप्रकाशित है, हमने इसमें देने के लिए प्रेसकापी भी तय्यार करायी थी पर सीमित समय में अन्यान्य लेखों की भाँति वह भी अप्रकाशित रह गया।

श्रीमानचन्दजी भंडारी ने हमें कापरड़ाजी तीर्थ के कई ब्लाक, घंघाणी तीर्थ के चित्रादि के साथ कापरड़ाजी का इतिहास और भानाजी भंडारी का परिचयात्मक विस्तृत लेख भेजा था पर उपर्युक्त कारणों से चित्रों को प्रकाशित करके भी लेख नहीं दिया जा सका। इसी प्रकार पूज्य मुनि महाराजों, साध्वीजी महाराज व अन्य विद्वानों के लेखों तथा हमारी योजनान्तर्गत उपरि निर्दिष्ट ठोस -

सामग्री के साथ-साथ खरतरगच्छीय प्रतिष्ठा लेख सूची आदि का भी भविष्य में सुअवसर प्राप्त कर उपयोग करने का विचार है। इस प्रकार के महोत्सव सामाजिक संगठन और नवचेतना जागरण के लिए नितान्त आवश्यक हैं। सं० २०३२ में दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी के जन्म को ६०० वर्ष एवं स० २०३७ में दादा श्रीजिनकुशलसूरिजी के जन्म को ७०० वर्ष पूर्ण होते हैं, आशा है भक्तगण प्राप्त सुअवसर का अवश्य लाभ उठावेंगे।

इस ग्रन्थ में दिये गए चित्रो मे कई हमारे सग्रह के ब्लाक, श्रीजिनदत्तसूरि सेवा सघ, जैनभवन, जैन श्वे० पचायती मन्दिर, परमपूज्या प्रवर्तिनीजी श्रीविचक्षणश्रीजी द्वारा श्रीहीरालाल एण्ड कम्पनी मद्रास से प्राप्त महावीर स्वामी के तिरगे ब्लॉकों का उपयोग किया गया है जिसके लिए सम्बन्धित सज्जनों का आभार प्रकट किया जाता है।

इसकी चित्र सामग्री जुटाने में हमे पूरी चेष्टा करनी पडी। गुरुभक्त श्रीलक्ष्मीचन्दजी सेठ का द्वार तो सदा की भाति खुला ही रहता है, साधु-मुनिराजों के व दादावाडियो आदि के चित्र उनसे प्राप्त हुए हैं। श्रीहरिसिंहजी श्रीमाल व श्रीमोतीचन्दजो भूरा ने जीयागज पधार कर वहाँ के दादासाहब सम्बन्धी गणेश मुसव्वर को चित्र-समृद्धि का फोटो लाये, श्रीमानिकचन्दजी चम्पालालजी डागा, चन्द्रपुर से मणिधारीजी का चित्र एव मोतीलाल गोपालजी ने कच्छ-भुज से हमें भद्रेश्वर दादावाडी का चित्र भेजा। जैन जर्नल के विद्वान सम्पादक श्रीगणेशजी ललवानी का सहयोग भी अविस्मरणीय है। गुरुदेव के अनन्य भक्त श्री रामलालजी लूणिया तो प्रेरणा स्रोत हैं, प्रत्यक्ष या परोक्ष आत्मीय जनों की सद्भावना और सहयोग से ही कार्य निष्पन्न हुआ है।

भारत के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीइंद्र दूगड जो स्वयं गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं, हमारे अनुरोध से दिल्लीपति महाराजा मदनपाल के साथ परमपूज्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का एक नयनाभिराम चित्र बनाकर इस शुभ अवसर पर प्रस्तुत किया, जिसके लिए हम किन शब्दों मे उनको प्रशसा करें, वे शब्द मिलते नही। ऋषभदेवप्रभु के जीवन प्रसगों का तिरगा चित्र, कलकत्ता दादावाडी का जिनदत्तसूरि जीवन-प्रसंग चित्र, सद्गुरुदेव श्रीसहजानन्दघनजी महाराज का रेखा चित्र तथा आपके द्वारा लिए हुए महरोली के फोटोग्राफो से हमारे इस ग्रन्थ की शोभा मे बडी अभिवृद्धि हुई है। उनके सुपुत्र सजय दूगड द्वारा अङ्कित मणिधारीजी के स्वर्णिम रेखा चित्र ने जिल्द की शोभा बढाई है।

इस स्मृतिग्रन्थ के त्वरया प्रकाशन में गुरुदेव की असीम कृपा, हमारे पूज्य साधु मुनिराजों व साध्वीमण्डल के आशीर्वाद का ही सुफल है। श्री मणिधारीजी अष्टम शताब्दी समारोह समिति ने गुरुदेव की स्मृति स्वरूप यह उत्तम ग्रन्थ प्रकाशन कर जैन समाज का बडा उपकार किया है। बगाल की विषम परिस्थिति व सीमित समय के कारण विशृंखलता व स्खलनादि हो जाना कोई बडी बात नही है, इसके लिए हम क्षमा चाहते हुए भविष्य के लिए उचित सुझावों की कामना करते है।

सद्गुरु चरणोपासक
अगरचन्द नाहटा,
भँवरलाल नाहटा।

इस ग्रन्थ में :—

प्रथम खण्ड

क्रमांक	लेख	लेखक	पृष्ठ
१	विधिमार्ग प्रकाशक जिनेश्वरसूरि और उनकी विशिष्ट परम्परा	पुरातत्त्वाचार्य मुनिजिनविजय	१
२	श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की श्रेष्ठ रचना "सवेगरगशाला आराधना"	पं० लालचन्द भगवान् गांधी	९
३	नवाङ्गी वृत्तिकार श्रीअभयदेवसूरि	अगरचन्द नाहटा	१७
४	प्रकाण्ड विद्वान और कवि श्रेष्ठ श्रीजिनवल्लभसूरि	अगरचन्द नाहटा	२०
५	योगीन्द्र युगप्रधान दादा श्रीजिनदत्तसूरि	स्व० उ० सुखसागरजी	२१
६	मणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि		२४
७	षटत्रिंशत् वाद-विजेता श्रीजिनपतिसूरि	महो० विनयसागर	२७
८	प्रगटप्रभावी दादा श्रीजिनकुशलसूरि	भँवरलाल नाहटा	२९
९	महान् शासन, प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि	अगरचन्द नाहटा	३३
१०	अनेक ज्ञानभण्डारों के सस्थापक श्रीजिनभद्रसूरि	पुरातत्त्वाचार्य मुनिजिनविजय	३८
११	अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि	भँवरलाल नाहटा	४१
१२	दादा गुरुओं के प्राचीन चित्र	भँवरलाल नाहटा	४९
१३	कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्य	प्रो० सत्यव्रत तृषित	५७
१४	नरमणिमण्डितभालस्थल यु० प्र० श्रीजिनचन्द्रसूरि चरितम्	उ० लब्धिमुनिजी	७५
१५	दादाजी	स्वामी सुरजनदास	८३
१६	महोपाध्याय जयसागर	अगरचन्द नाहटा	८४
१७	श्रीगुणरत्नगणि की तर्कतरङ्गिणी	डा० जितेन्द्र जेटली	८९
१८	जोइसहीर—महत्वपूर्ण खरतरगच्छीय ज्योतिष ग्रन्थ	प० भगवानदास जैन	९५
१९	महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिकतत्त्व	डा० मनोहर शर्मा	९७
२०	गहूली सग्रह (४)	आ० बुद्धिसागरसूरिजी	१०४
२१	महाकवि जिनहर्षः मूल्याङ्कन और सन्देश	डा० ईश्वरानन्दजी	१०५
२२	पूज्य श्रीमद्देवचन्द्रजी के साहित्य मे से सुधाबिन्दु	स्वामी ऋषभदासजी	११३
२३	खरतरगच्छ की क्रान्तिकारी और अध्यात्मिक परम्परा	भँवरलाल नाहटा	११९
२४	उ० क्षमाकल्याणजी और उनका साधुसमुदाय	अगरचन्द नाहटा	१२६
२५	मुनिशिरोमणी गम्भीर सुखसागरजी	अगरचन्द नाहटा	१२८

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
२६	प्रभावक आचार्यदेव श्रीजिनहरिसागर सूरीश्वर	मुनिश्रीकांतिसागरजी	१३०
२७	शासनप्रभावक आचार्य श्रीजिनआनन्दसागरसूरि	मुनिमहोदयसागर	१३५
२८	आचार्य श्रीजिनकवीन्द्रसागरसूरि	श्रीसज्जनश्रीजी 'विशारद'	१३९
२९	महान्प्रतापी श्रीमोहनलालजी महाराज	भँवरलाल नाहटा	१४२
३०	आचार्य प्रवर श्रीजिनयश.सूरिजी	भँवरलाल नाहटा	१४३
३१	प्रभावक आचार्य श्रीजिनऋद्धिसूरि	भँवरलाल नाहटा	१४६
३२	आचार्यरत्न श्रीजिनरत्नसूरि	भँवरलाल नाहटा	१४९
३३	विद्वद्वर्य उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी	भँवरलाल नाहटा	१५३
३४	स्वर्गीय गणिवर्य श्रीबुद्धिमुनिजी	अगरचन्द नाहटा	१५६
३५	श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी और उनका साधुसमुदाय	भँवरलाल नाहटा	१५९
३६	पुरातत्व एव कलामर्मज्ञ प्रतिभामूर्त्ति कान्तिसागरजी को श्रद्धांजलि	अगरचन्द नाहटा	१६३
३७	आचार्य श्रीजिनमणिसागरसूरि	भँवरलाल नाहटा	१६६
३८	खरतरगच्छ के साहित्य सर्जक श्रावकगण	अगरचन्द नाहटा	१६९
३९	अपभ्रंश काव्यत्रयी एक अनुशीलन	डा० देवेन्द्रकुमार शास्त्री	१७४
४०	खरतरगच्छ परम्परा और चित्तौड	रामवल्लभ सोमानी	१७७
४१	खरतरगच्छ की भारतीय सस्कृति को देन	ऋषभदास रांका	१८०
४२	जेसलमेर के महत्वपूर्ण ज्ञानभण्डार	आगमप्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी	१८४
४३	खतरगच्छ की महान् विभूति दानवीर सेठ	श्री चाँदमलजी सीपानी	१८६

द्वितीय खण्ड

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	खरतरगच्छ साहित्य सूची	सकलन कर्त्ता अगरचन्द नाहटा, भँवरलाल नाहटा सम्पादक—महोपाध्याय विनयसागर	१ से ७२

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी-समारोह-समिति, दिल्ली के पदाधिकारी

१ श्रीसितावचन्द फोफलिया, प्रधान
२ श्रीशीतलदासजी राक्यान, उपप्रधान
३ श्रीइंद्रचन्दजी भसाली, उपप्रधान
४ श्रीधनपतसिंहजी भंसाली, संयोजक
५ श्रीदौलतसिंहजी जैन, प्र० मन्त्री
६ श्रीविजयसिंहजी सुराना, ,,
७ श्रीगुलाबचन्दजी जैन ,,
८ श्रीलछमनसिंहजी भंसाली, भण्डार मन्त्री
९ श्री डॉ० के० सी० जैन, प्रचार मन्त्री
१० श्रीउमरावसिंहजी सुराना, खजांची

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी
स्मृति ग्रन्थ
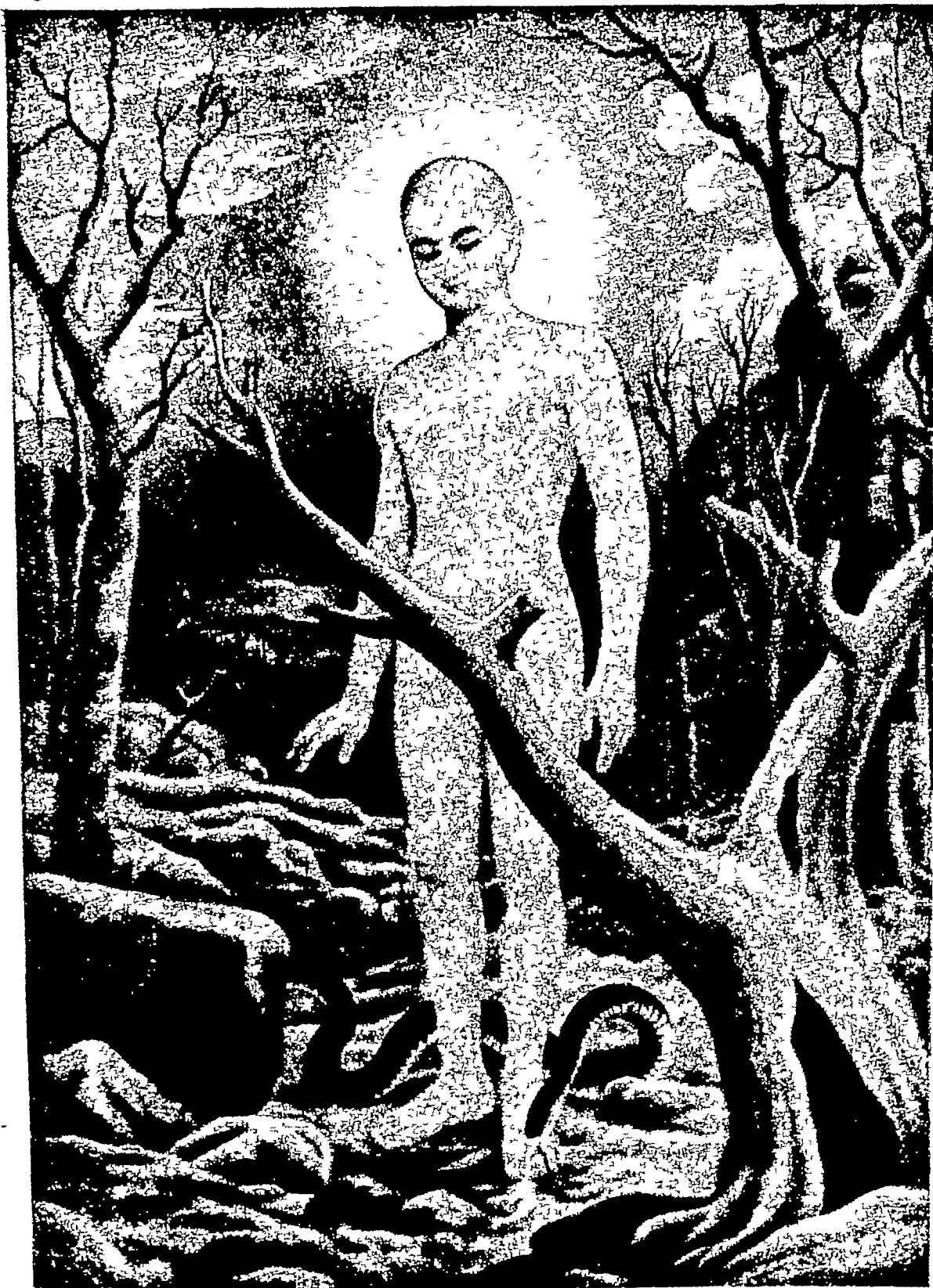
क्षमामूर्ति भगवान महावीर का चण्डकौशिक उपसर्ग

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि और दिल्लीश्वर मदनपाल तोमर (वि० स० १२२३) दिल्ली

श्री इन्द्रदूगड़ द्वारा चित्रित

विधिमार्ग प्रकाशक जिनेश्वरसूरि और उनकी विशिष्ट परम्परा

[पुरातत्त्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी]

श्रीजिनेश्वरसूरि आचार्य श्रीवर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। जिनेश्वरसूरि के प्रगुरु एव श्रीवर्द्धमानसूरि के गरु श्रीउद्योतनसूरि थे, जो चन्द्रकुल के कोटिक गण की वज्री शाखा परिवार के थे।

(इन जिनेश्वरसूरि के विषय मे, जिनदत्तसूरि कृत गणधरसार्द्धशतक की सुमतिगणि कृत बृहद्वृत्ति में, जिन-पालोपाध्याय लिखित खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली मे, प्रभाचन्द्राचार्य रचित और किसी अज्ञात प्राचीन पूर्वाचार्य प्रबन्ध एव अन्यान्य पट्टावलियाँ आदि अनेक ग्रन्थो-प्रबन्धो में कितना ही ऐतिहासिक वृत्तान्त ग्रथित किया हुआ उपलब्ध होता है।)

जिनेश्वरसूरि के समय में जैन यतिजनो की अवस्था

इनके समय में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में उन यति-जनो के समूह का प्राबल्य था जो अधिकतर चैत्यों अर्थात् जिन मन्दिरों मे निवास करते थे। ये यतिजन जैन मन्दिर, जो उस समय चैत्य के नाम से विशेष प्रसिद्ध थे, उन्ही मे अहर्निश रहते, भोजनादि करते, धर्मोपदेश देते, पठन-पठनादि मे प्रवृत्त होते और सोते-बैठने। अर्थात् चैत्य ही उनका मठ या वासस्थान था और इसलिए वे चैत्यवासी के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे। इनके साथ उनके आचार-विचार भी बहुत से ऐसे शिथिल अथवा भिन्न प्रकार के थे जो जैन शास्त्रों मे वर्णित निर्ग्रन्थ जैनमुनि के आचारो से असगत दिखाई देते थे। वे एक तरह के मठपति थे। शास्त्रोक्त आचारों का यथावत् पालन करने वाले यति-मुनि उस समय बहुत कम सख्या मे नजर आते थे।

जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियो के विरुद्ध आन्दोलन

शास्त्रोक्त यतिधर्म के आचार और चैत्यवासी यतिजनों के उक्त व्यवहार में, परस्पर बडा असामजस्य देखकर और श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट श्रमण धर्म की इस प्रकार प्रचलित विप्लव दशा से उद्विग्न होकर जिनेश्वर सूरि ने प्रतिकार के निमित्त अपना एक सुविहित मार्ग प्रचारक नया गण स्थापित किया और चैत्यवासी यतियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन शुरू किया।

यों तो प्रथम, इनके गुरु श्री वर्द्धमानसूरि स्वय ही चैत्यवासी यतिजनो के एक प्रमुख सूरि थे। पर जैन शास्त्रो का विशेष अध्ययन करने पर मन में कुछ विरक्त भाव उदित हो जाने से और तत्कालीन जैन यति सम्प्रदाय की उक्त प्रकार की आचार विषयक परिस्थिति की शिथिलता का अनुभव, कुछ अधिक उद्वेगजनक लगने से, उन्होंने उस अवस्था का त्याग कर, विशिष्ट त्यागमय जीवन का अनुसरण करना स्वीकृत किया था। जिनेश्वर-सूरि ने अपने गुरु के इस स्वीकृत मार्ग पर चलना विशेष रूप से निश्चित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उसे सारे सम्प्रदायव्यापी और देशव्यापी बनाने का भी सकल्प किया और उसके लिए आजीवन प्रबल पुरुषार्थ

किया। इस प्रयत्न के उपयुक्त और आवश्यक ऐसे ज्ञानबल और चारित्रबल दोनों ही उनमें पर्याप्त प्रमाण में विद्यमान थे, इसलिये उनको अपने ध्येय में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई और उसी अणहिलपुर मे, जहां पर चैत्यवासियों का सबसे अधिक प्रभाव और विशिष्ट समूह था, जाकर उन्होंने चैत्यवास के विरुद्ध अपना पक्ष और प्रतिष्ठान स्थापित किया। चौलुक्य नृपति दुर्लभराज की सभा में, चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महा-विद्वान् और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर, उसमें विजय प्राप्त की। इस प्रसंग से जिनेश्वरसूरि की केवल अणहिल्पुर में ही नहीं, अपितु सारे गुजरात में, और उसके आस - पास के मारवाड़, मेवाड़, मालवा, वागड, सिंध और दिल्ली तक के प्रदेशों मे खूब ख्याति और प्रतिष्ठा बढ़ी। जगह-जगह सैकड़ों ही श्रावक उनके भक्त और अनुयायी बन गए। इसके अतिरिक्त सैकड़ों ही अजैन गृहस्थ भी उनके भक्त बनकर नये श्रावक बने। अनेक प्रभावशाली और प्रतिभाशील व्यक्तियों ने उनके पास यति दीक्षा लेकर उनके सुविहित शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त किया। उनकी शिष्य-सतति बहुत बढी और वह अनेक शाखा-प्रशाखाओं मे फैली। उसमे बडे-बड़े विद्वान, क्रियानिष्ठ और गुणगरिष्ठ आचार्य उपाध्यायादि समर्थ साधु पुरुष हुए। नवाग-वृत्तिकार अभयदेवसूरि, संवेगरंग-शालादि ग्रन्थों के प्रणेता जिनचन्द्रसूरि, सुरसुन्दरी चरित के कर्त्ता धनेश्वर अपर नाम जिनभद्रसूरि, आदिनाथ चरितादि के रचयिता वर्धमानसूरि, पार्श्वनाथ चरित एवं महावीर चरित के कर्त्ता गुणचन्द्रगणी अपर नाम देवभद्रसूरि, संघपट्टकादि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता जिनवल्लभसूरि इत्यादि अनेकानेक बड़े बडे धुरन्धर विद्वान और शास्त्रकार, जो उस समय उत्पन्न हुए और जिनकी साहित्यिक उपासना से जैन वाङ्मय-भण्डार बहुत कुछ समृद्ध और सुप्रतिष्ठित बना—इन्हीं जिनेश्वरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में से थे।

विधिपक्ष अथवा खरतरगच्छ का प्रादुर्भाव और गौरव

इन्हीं जिनेश्वरसूरि के एक प्रशिष्य आचार्य श्रीजिन-वल्लभसूरि और उनके पट्टधर श्रीजिनदत्तसूरि (वि० सं० ११६९-१२११) हुए जिन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य, प्रकृष्ट चारित्र और प्रचण्ड व्यक्तित्व के प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, वागड, सिन्ध, दिल्ली मण्डल और गुजरात के प्रदेश मे हजारों अपने नये भक्त श्रावक बनाये—हजारों ही अजैनों को उपदेश देकर नूतन जैन बनाये। स्थान स्थान पर अपने पक्ष के अनेकों नये जिनमन्दिर और जैन उपाश्रय तैयार करवाये। अपने पक्ष का नाम इन्होंने 'विधिपक्ष' ऐसा उद्‌घोषित किया और जितने भी नये जिनमन्दिर इनके उपदेश से, इनके भक्त श्रावकों ने बनवाये उनका नाम विधिचैत्य, ऐसा रखा गया। परन्तु पीछे से चाहे जिस कारण से हो—इनके अनुगामी समुदाय को खरतर पक्ष या खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ और तदनन्तर यह समुदाय इसी नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ जो आज तक अविच्छिन्न रूप से विद्यमान है।

इस खरतरगच्छ में उसके बाद अनेक बड़े बडे प्रभाव-शाली आचार्य, बड़े-बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बडे-बडे प्रतिभाशाली पण्डित मुनि और बड़े-बडे मांत्रिक, तांत्रिक-ज्योतिर्विद्, वैद्यक-विशारद आदि कर्मठ यतिजन हुए जिन्होंने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ा भारी योग दिया। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष की प्रवृत्ति के सिवा, खरतरगच्छा-नुयायी विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव देशीय-भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमे भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरूपण करने वाली छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों ग्रन्थकृतियाँ जैन-भण्डारों में उपलब्ध हो रही हैं। खरतर गच्छीय विद्वानों की की हुई यह साहित्योपासना न केवल

जैनधर्म की ही दृष्टि से महत्त्व वाली हैं, अपितु समुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्ता रखती है।

साहित्योपासना की दृष्टि से खरतरगच्छ के विद्वान् यति-मुनि वडे उदारचेता मालूम देते है। इस विषय में उनकी उपासना का क्षेत्र केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की बाड से बद्ध नही है। वे जैन और जैनेतर वाङ्मय का समान भाव से अध्ययन अध्यापन करते रहे है। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलकार, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक और दर्शनशास्त्र तक के अगणित अजैन ग्रन्थों का उन्होंने बडे आदर से आकलन किया है और इन विषयों के अनेक अजैन ग्रन्थों पर उन्होने अपनी पाण्डित्यपूर्ण टीकायें आदि रच कर तत्तद् ग्रन्थो और विषयों के अध्ययन कार्य मे बडा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है। खरतरगच्छ के गौरव को प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें हम यहा पर बहुत ही सक्षेप मे, केवल सूत्ररूप से, उल्लिखित कर रहे है। विशेष-हम "युगप्रधाचाचार्य गुर्वावलि" नाम से विस्तृत पुरातन पट्टावली प्रकट कर चुके हैं उसमें इन जिनेश्वरसूरि से आरभ कर, श्रीजिनवल्लभसूरि की परम्परा के खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनपद्मसूरि के पट्टाभिषिक्त होने के समय तक का-विक्रम सवत् १४०० के लगभग का बहुत विस्तृत और प्राय विश्वस्त ऐतिहासिक वर्णन दिया हुआ है। उसके अध्ययन से पाठकों को खरतरगच्छ के तत्कालीन गौरव-गाथा का अच्छा परिचय मिल सकेगा।

इस तरह पीछे से बहुत प्रसिद्धिप्राप्त उक्त खरतरगच्छ के अतिरिक्त, जिनेश्वरसूरि की शिष्य-परम्परा में से अन्य भी कई-एक छोटे-वडे गण-गच्छ प्रचलित हुए और उनमे भी कई वडे-वडे प्रसिद्ध विद्वान, ग्रन्थकार, व्याख्यानिक, वादो, तपस्वी, चमत्कारी साधु-यति हुए जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से जैन समाज को समुन्नत करने मे उत्तम योग दिया।

जिनेश्वरसूरि के जीवन का अन्य यतिजनो पर प्रभाव

जिनेश्वरसूरि के प्रबल पाण्डित्य और उत्कृष्ट चरित्र का प्रभाव इस तरह न केवल उनके निजके शिष्य समूह में ही प्रसारित हुआ, अपितु तत्कालीन अन्यान्य गच्छ एव यति समुदाय के भी बडे-बडे व्यक्तित्वशाली यतिजनो पर उसने गहरा असर डाला और उसके कारण उनमें से भी कई समर्थ व्यक्तियों ने, इनके अनुकरण मे क्रियोद्धार, ज्ञानोपासना, आदि की विशिष्ट प्रवृत्ति का बडे उत्साह के साथ उत्तम अनुसरण किया।

(जिनेश्वरसूरि के जीवन सम्बन्धी साहित्य और उनकी रचनाओं का विशेष अध्ययन मुनि जिनविजय ने कथाकोष की विस्तृत प्रस्तावना मे बहुत विस्तार से दिया है, यहा उसके आवश्यक अश ही प्रस्तुत किये गये हैं)

जिनेश्वरसूरि से जैन समाज में नूतन युग का आरभ

इनके प्रादुर्भाव और कार्यकलाप के प्रभाव से जैन समाज मे एक सर्वथा नवीन युग का आरम्भ होना शुरू हुआ। पुरातन प्रचलित भावनाओं मे परिवर्तन होने लगा। त्यागी और गृहस्थ दोनों प्रकार के समूहों में नए सगठन होने शुरू हुए। त्यागी अर्थात् यति वर्ग जो पुरातन परम्परागत गण और कुल के रूप मे विभक्त था, वह अब नये प्रकार के गच्छों के रूप मे सगठित होने लगा। देवपूजा और गुरु-उपासना की जो कितनी पुरानी पद्धतिया प्रचलित थी, उनमे सशोधन और परिवर्तन के वातावरण का सर्वत्र उद्भव होने लगा। इनके पहले यतिवर्ग का जो एक बहुत वडा समूह चैत्य निवासी होकर चैत्यो की सपत्ति और सरक्षा का अधिकारी बना हुआ था और प्राय शिथिलाक्रिय और स्वपूजानिरत हो रहा था, उसमें इनके आचारभ्रमण और भ्रमणशील जीवन के प्रभाव से बडे वेग से और बडे परिमाण मे परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। इनके आदर्शों

को लक्ष्य में रखकर अन्यान्य अनेक समर्थ यतिजन चैत्याधिकार का और शिथिलाचार का त्याग कर सयम की विशुद्धि के निमित्त उचित क्रियोद्धार करने लगे और अच्छे संयमी बनने लगे। सयम और तपश्चरण के साथ-साथ, भिन्न-भिन्न विषयो और शास्त्रो के अध्ययन और ज्ञानसपादन कार्य भी इन यतिजनों में खूब उत्साह के साथ व्यवस्थित रूप से होने लगा। सभी उपादेय विषयों के नये-नये ग्रन्थ निर्माण किये जाने लगे और पुरातन ग्रन्थो पर टीका-टिप्पण आदि रचे जाने लगे। अध्ययन-अध्यापन और ग्रन्थ-निर्माण के कार्य में आवश्यक ऐसे पुरातन जैन-ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्राह्मण और बौद्ध सम्प्रदाय के भी व्याकरण, न्याय, अलकार, काव्य, कोष, छन्द, ज्योतिष आदि विविध विषयों के सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थो की पोथियो के सग्रहवाले बडे-बडे ज्ञानभण्डार भी स्थापित किये जाने लगे।

अब ये यतिजन केवल अपने-अपने स्थानों मे ही बद्ध होकर बैठ रहने के बदले भिन्न-भिन्न प्रदेशों मे घूमने लगे और तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप, धर्मप्रचार का कार्य करने लगे। जगह-जगह अजैन क्षत्रिय और वैश्य कुलों को अपने आचार और ज्ञान से प्रभावित कर, नये-नये जैन-श्रावक बनाए जाने लगे और पुराने जैन गोष्ठी-कुल नवीन जातियों के रूप में सगठित किये जाने लगे। पुराने जैन देव-मन्दिरों का उद्धार और नवीन मन्दिरों का निर्माण-कार्य भी सर्वत्र विशेष रूप से होने लगा। जिन यतिजनोंने चैत्यनिवास छोड दिया था उनके रहने के लिये ऐसे नये-नये वसति-गृह बनने लगे जिनमे उन यतिजनों के अनुयायी श्रावक भी अपनी नित्य-नैमित्तिक धर्मक्रियायें करने की व्यवस्था रखते थे। ये ही वसति-गृह पिछले काल मे उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध हुए। मन्दिरो में पूजा और उत्सवों की प्रणालिकाओ मे भी नये-नये परिवर्तन होने लगे और इसके कारण यतिजनों में परस्पर, कितनेक विवादास्पद विचारों और शब्दार्थों पर भी वाद-विवाद होने लगा, और इसके परिणाम मे कई नये नये गच्छ और उपगच्छ भी स्थापित होने लगे। ऐसे चर्चास्पद विषयों पर स्वतत्र छोटे-बडे ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे और एक-दूसरे सम्प्रदाय की ओर से उनका खण्डन मण्डन भी किया जाने लगा। इस प्रकार इन यतिजनों में पुरातन प्रचलित प्रवाह की दृष्टि से, एक प्रकार का नवीन जीवन-प्रवाह चालू हुआ और उसके द्वारा जैन संघ का नूतन सगठन बनना प्रारम्भ हुआ।

इस तरह तत्कालीन जैन इतिहास का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि विक्रम की ११ वी शताब्दी के प्रारभ मे जैन यतिवर्ग में एक प्रकार से नूतन युग की उषा का आभास होने लगा, जिसका प्रकट प्रादुर्भाव जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमानसूरि के क्षितिज पर उदित होने पर दृष्टिगोचर हुआ। जिनेश्वरसूरि के जीवनकार्य ने इस युग-परिवर्त्तन को सुनिश्चित मूर्त्त स्वरूप दिया। तब से लेकर पिछले प्राय ९०० वर्षों मे, इस पश्चिम भारत मे जैन धर्म के जो साप्रदायिक और सामाजिक स्वरूप का प्रवाह प्रचलित रहा उसके मूल मे जिनेश्वरसूरि का जीवन सबसे अधिक विशिष्ट प्रभाव रखता है और इस दृष्टि से जिनेश्वरसूरि को, जो उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने, युगप्रधान पदसे सबोधित और स्तुतिगोचर किया है वह सर्वथा ही सत्य वस्तुस्थिति का निदर्शक है।

जिनेश्वरसूरि एक बहुत भाग्यशाली साधु पुरुष थे। इनकी यशोरेखा एव भाग्य रेखा बडी उत्कट थी। इससे इनको ऐसे-ऐसे शिष्य और प्रशिष्यरूप महान् सन्ततिरत्न प्राप्त हुए जिनके पाण्डित्य और चारित्र्य ने इनके गौरव को दिगन्तव्यापी और कल्पान्त स्थायी बना दिया। यों तो प्राचीनकाल मे, जैन सप्रदाय मे सैकडो ही ऐसे समर्थ आचार्य हो गए हैं जिनका सयमी जीवन जिनेश्वरसूरि के समान ही महत्वशाली और प्रभावपूर्ण था, परन्तु जिनेश्वरसूरि के जैसा विशाल प्रज्ञ और विशुद्ध सयमवान्, विपुल शिष्य-समुदाय शायद बहुत ही थोडे

आचार्यों को प्राप्त हुआ होगा। जिनेश्वरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में एक-से-एक बढ कर अनेक विद्वान् और संयमी पुरुष हुए और उन्होने अपने महान् गुरु को गुणगाथा का बहुत ही उच्चस्वर से खूब ही गान किया है। सद्भाग्य से इनके ऐसे शिष्य प्रशिष्यों की बनाई हुई बहुत सी ग्रन्थ-कृतिया आज भी उपलब्ध है और उनमे से हमे इनके विषय की यथेष्ट गुरु-प्रशस्तिया पढने को मिलती है।

चैत्यवास के विरुद्ध जिनेश्वरसूरि ने जिन विचारो का प्रतिपादन किया था, उनका सबसे अधिक विस्तार और प्रचार वास्तव में जिनवल्लभसूरि ने किया था। उनके उपदिष्ट मार्ग का इन्होंने बडी प्रखरता के साथ समर्थन किया और उसमें उन्होंने अपने कई नये विचार और नए विधान भी सम्मिलित किये।

जिनवल्लभसूरि

जिनवल्लभसूरि मूल में मारवाड के एक बडे मठाधीश चैत्यवासी गुरु के शिष्य थे परन्तु वे उनसे विरक्त होकर गुजरात में अभयदेवसूरि के पास शास्त्राध्ययन करने के निमित्त उनके अन्तेवासी होकर रहे थे। ये बडे प्रतिभाशाली विद्वान, कवि, साहित्यज्ञ, ग्रन्थकार और ज्योतिष शास्त्र-विशारद थे। इनके प्रखर पाण्डित्य और विशिष्ट वैशारद्य को देखकर अभयदेवसूरि इन पर बड़े प्रसन्न रहते थे और अपने मुख्य दीक्षित शिष्यों की अपेक्षा भी इन पर अधिक अनुराग रखते थे। अभयदेवसूरि चाहते थे कि अपने उत्तराधिकारी पद पर इनकी स्थापना हो, परन्तु ये मूल चैत्यवासी गुरु के दीक्षित शिष्य होने से शायद इनको गच्छनायक के रूप में अन्यान्य शिष्य स्वीकार नही करेंगे ऐसा सोचकर अपने जीवनकाल में वे इस विचार को कार्य मे नहीं ला सके। उनके पट्टधर के रूप मे वर्धमानाचार्य (आदिनाथ चरितादि के कर्ता) की स्थापना हुई, तथापि अंतावस्था में अभयदेवसूरि ने प्रसन्नचन्द्रसूरि को सूचित किया था कि योग्य समय पर जिनवल्लभ को आचार्य पद देकर मेरा पट्टाधिकारी बनाना परन्तु वैसा उचित अवसर आने के पहले ही प्रसन्नचन्द्रसूरिका स्वर्गवास हो गया। उन्होने अभयदेवसूरिजी की उक्त इच्छा को अपने उत्तराधिकारी पट्टधर देवभद्राचार्य के सामने प्रकट किया और सूचित किया कि इस कार्य को तुम संपादित करना।

अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद अणहिलपुर और स्तम्भतीर्थ जैसे गुजरात के प्रसिद्ध स्थानों में जहां अभयदेव के दीक्षित शिष्यो का प्रभाव था, वहा से अपरिचित स्थान मे जाकर अपने विद्याबल के सामर्थ्य द्वारा जिनवल्लभ ने अपने प्रभाव का कार्यक्षेत्र बनाना चाहा। इसके लिए मेवाड की राजधानी चित्तौड को इन्होने पसन्द किया, वहा इनकी यथेष्ट मनोरथ सिद्धि हुई। फिर मारवाड के नागौर आदि स्थानो में भी इनके बहुत से भक्त-उपासक बने। धीरे-धीरे इनका प्रभाव मालवा में भी बढा। मेवाड, मारवाड मे तब बहुत से चैत्यवासी यति समुदाय थे उनके साथ इनकी प्रतिस्पर्धा भी खूब हुई। इन्होंने उनके अधिष्ठित देवमन्दिरों को अनायतन ठहराया और उनमें किये जाने वाले पूजन उत्सवादि को अशास्त्रीय उद्घोषित किया। अपने भक्त उपासको द्वारा अपने पक्ष के लिए जगह-जगह नए मन्दिर बनवाये और उनमे किये जाने वाले पूजादि विधानो के लिए कितनेक नियम निश्चित किये। इस विषय के छोटे बडे कई प्रकरण और ग्रन्थादि की भी इन्होने रचना की।

देवभद्राचार्य ने इनके बढे हुए इस प्रकार के प्रौढ प्रभाव को देखकर और इनके पक्ष मे सैकडों उपासकों का अच्छा समर्थ समूह जानकर इनको आचार्य पद देकर अभयदेवसूरि के पट्टधर रूप मे इन्हें प्रसिद्ध करने का निश्चय किया। जिनेश्वरसूरि के शिष्यसमूह में उस समय शायद देवभद्राचार्य ही सबसे अधिक प्रतिष्ठा-सम्पन्न और सबसे अधिक वयोवृद्ध पुरुष थे। वे इस कार्य के लिए गुजरात से रवाना होकर चित्तौड पहुँचे। यह चित्तौड ही जिनवल्लभसूरि

के प्रभाव का उद्गम एव केन्द्र स्थान था। यहीं पर सबसे पहले जिनवल्लभसूरि के नये उपासक भक्त बने और यहीं पर इनके पक्ष का सबसे पहिला वीर विधि चैत्य नामक विशाल जैन मन्दिर बना। वि० स० ११६७ के आषाढ मास मे इनको इसी मन्दिर में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर देवभद्राचार्य ने अपने गच्छपति गुरु प्रसन्नचन्द्रसूरि के उस अन्तिम आदेश को सफल किया। पर दुर्भाग्य से थे इस पद का दीर्घकाल तक उपभोग नही कर सके। चार ही महीने के अन्दर इनका उसी चित्तौड मे स्वर्गवास हो गया। इस घटना को जानकर देवभद्राचार्य को बडा दुःख हुआ।

जिनदत्तसूरि

जिनवल्लभसूरि ने अपने प्रभाव से मारवाड, मेवाड़, मालवा, वागड आदि देशो मे जो सैकडो ही नये भक्त उपासक बनाये थे और अपने पक्ष के अनेक विधि-चैत्य स्थापित किये थे। उनका नियामक ऐसा कोई समर्थ गच्छ-नायक यदि न रहा तो वह पक्ष छिन्न-भिन्न हो जायगा और इस तरह जिनवल्लभसूरि का किया हुआ कार्य विफल हो जायगा, यह सोच कर देवभद्राचार्य, जिनवल्लभसूरि के पट्ट पर प्रतिष्ठित करने के लिए अपने सारे समुदाय मे से किसी योग्य व्यक्तित्व वाले यतिजन की खोज करने लगे। उनकी दृष्टि धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य पडित सोमचन्द्र पर पड़ी जो इस पद के सर्वथा योग्य एव जिन-वल्लभ के जैसे ही पुरुषार्थी, प्रतिभाशाली, क्रियाशील और निर्भय प्राणवान व्यक्ति थे। देवभद्राचार्य फिर चित्तौड गए और वहां पर जिनवल्लभसूरि के प्रधान-प्रधान उपासको के साथ परामर्श कर उनकी सम्मति से स० ११६९ के वैशाख मास मे सोमचन्द्र गणि को आचार्य पद देकर जिनदत्तसूरि के नाम से जिनवल्लभसूरि के उत्तराधिकारी आचार्य पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। जिनवल्लभसूरि के विशाल उपासक वृन्द का नायकत्व प्राप्त करते ही जिनदत्तसूरि ने अपने पक्ष की विशिष्ट संघटना करनी शुरू की। जिनेश्वरसूरि प्रतिपादित कुछ मौलिक मन्तव्यों का आश्रय लेकर और कुछ जिनवल्लभसूरि के उपदिष्ट विचारो को पल्लवित कर इन्होंने जिनवल्लभ द्वारा स्थापित उक्त विधिपक्ष नामक सघ का बलवान और नियमबद्ध सगठन किया जिसकी परम्परा का प्रवाह आठ सौ वर्ष पूरे हो जाने पर भी अखण्डित रूप से चलता है।

जिनदत्तसूरि ने प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रंश भाषा मे छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थो की रचना की। इनमें एक गणधर-सार्द्धशतक नामक ग्रथ है जिसमें इन्होंने भगवान महावीर के शिष्य गणधर गौतम से लेकर अपने गच्छपति गुरु जिनव-ल्लभसूरि तक के महावीर के शासनमे होने वाले और अपनी संप्रदाय परपरा में माने जाने वाले प्रधान-प्रधान गणधारी आचार्योंकी स्तुति की है। उन्होंने १५० गाथा के प्रकरण में आदि की ६२ गाथाओं तक में तो पूर्वकाल में हो जाने वाले कितने पूर्वाचार्यों की प्रशसा की है। ६३ से लेकर ८४ तक की गाथाओं में वर्द्धमानसूरि और उनके शिष्यसमूह मे होने वाले जिनेश्वर, बुद्धिसागर, जिनचन्द्र, अभयदेव, देवभद्रादि अपने निकट पूर्वज गुरुओं की स्तुति की है। ८५वीं गाथा से लेकर १४७ तक की गाथाओं मे अपने गण के स्थापक गुरु जिनवल्लभ की बहुत ही प्रौढ़ शब्दो मे तरह-तरह से स्तवना की है। जिनेश्वरसूरि के गुणवर्णन मे इन्होंने इस ग्रन्थ मे लिखा है कि वर्द्धमानसूरि के चरणकमलों मे भ्रमर के समान सेवारसिक जिनेश्वरसूरि हुए वे सब प्रकारके भ्रमो से रहित थे अर्थात् अपने विचारो मे निर्भ्रम थे, स्वसमय और परसमय के पदार्थ सार्थ का विस्तार करने मे समर्थ थे। इन्होने अणहिलवाड में दुर्लभराज की सभा मे प्रवेश करके नामधारी आचार्यो के साथ निर्विकार भाव से शास्त्रीय विचार किया और साधुओ के लिये वसति-निवास की स्थापना कर अपने पक्ष का स्थापन किया। जहां पर गुरु-क्रमागत सद्वार्ता का नाम भी नही सुना जाता था, उस

गुजरात देश मे विचरण कर इन्होंने वसतिमार्ग को प्रकट किया।

जिनदत्तसूरि की इसी तरह की एक और छोटी सी (२१ गाथा की) प्राकृत पद्य रचना है जिसका नाम है-सुगुरु पारतन्त्र्य स्तव। इसमे जिनेश्वरसूरि की स्तवना मे वे कहते है कि जिनेश्वर अपने समय के युगप्रवर होकर सर्व सिद्धान्तो के ज्ञाता थे। जैन मत में जो शिथिलाचार रूप चोर समूह का प्रचार हो रहा था उसका उन्होंने निश्चल रूप से निर्दलन किया। अणहिलवाड मे दुर्लभराज की सभा मे द्रव्य लिंगी (वेशधारी) रूप हाथियों का सिंह की तरह विदारण कर डाला। स्वेच्छाचारी सूरियो के मतरूपी अन्धकार का नाश करने मे सूर्य के समान ये जिनेश्वरसूरि प्रकट हुए।

जिनेश्वरसूरि के साक्षात् शिष्य प्रशिष्यों द्वारा किये गये उनके गौरव परिचयात्मक उल्लेखो से हमें यह अच्छी तरह ज्ञात हुआ कि उनका आंतरिक व्यक्तित्व कैसा महान् था। जिनदत्तसूरि के किये गये उपर्युक्त उल्लेखों मे एक ऐतिहासिक घटना का हमे सूचन मिला कि उन्होंने गुजरात के अणहिलवाड के राजा दुर्लभराज की सभा मे नामधारी आचार्यो के साथ वाद-विवाद कर उनको पराजित किया और वहा पर वसतिवास की स्थापना की।

श्री जिनचन्द्रसूरि

जिनेश्वरसूरि के पट्टधर शिष्य जिनचन्द्रसूरि हुए। अपने गुरु के स्वर्गवास के बाद यही उनके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए और गण प्रधान बने। इन्होंने अपने बहुश्रुत एवं विख्यात-कीर्ति ऐसा लघु गुरु-बन्धु अभयदेवाचार्य की अभ्यर्थना के वश होकर सवेगरगशाला नामक एक सवेग भाव के प्रतिपादक शातरस प्रपूर्ण एव बृहद प्रमाण प्राकृत कथा ग्रन्थ की रचना स० ११२५ मे की।

श्री अभयदेवसूरि

जिनेश्वरसूरि के अनुक्रम में शायद तीसरे परन्तु ख्याति और महत्ता की दृष्टि से सर्वप्रथम ऐसे महान् शिष्य श्री अभयदेवसूरि हुए, जिन्होने जैनागम ग्रन्थों मे जो एकादश-अङ्ग सूत्र ग्रन्थ है, इनमें से नौ अग (३ से ११) सूत्रों पर सुविशद सस्कृत टीकाए बनाई। अभयदेवाचार्य अपनी इन व्याख्याओ के कारण जैन साहित्याकाश मे कल्पान्त स्थायी नक्षत्र के समान सदा प्रकाशित और सदा प्रतिष्ठित रूप में उल्लिखित किये जायेंगे। श्वेताम्बर सप्रदाय के पिछले सभी गच्छ और सभी पक्ष वाले विद्वानों ने अभयदेवसूरि को बडी श्रद्धा और सत्यनिष्ठा के साथ एक प्रमाणभूत एव तथ्यवादी आचार्य के रूप मे स्वीकृत किया है और इनके कथनों को पूर्णतया आप्तवाक्य की कोटि मे समझा है। अपने समकालीन विद्वत् समाज में भी इनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी। शायद ये अपने गुरु से भी बहुत अधिक आदर के पात्र और श्रद्धा के भाजन बने थे।

श्री जिनदत्तसूरि

जिनदत्तसूरि, जिनेश्वरसूरि के साक्षात् प्रशिष्यो मे से ही एक थे। इनके दीक्षा-गुरु धर्मदेव उपाध्याय थे जो जिनेश्वरसूरि के स्वहस्त दीक्षित अन्यान्य शिष्यों मे से थे। इनका मूल दीक्षा नाम सोमचन्द्र था, हरिसिंहाचार्य ने इनको सिद्धान्त ग्रन्थ पढाये थे। इनके उत्कट विद्यानुराग पर प्रसन्न होकर देवभद्राचार्य ने अपना वह प्रिय कटाखरण (लेखनी), जिससे उन्होने अपने बडे-बडे चार ग्रन्थो का लेखन किया था, इनको भेंट के स्वरूप मे प्रदान किया था। ये बडे ज्ञानी ध्यानी और उद्यतविहारी थे। जिनवल्लभसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् इनको उनके उत्तराधिकारी पद पर देवभद्राचार्य ने आचार्य के रूप मे स्थापित किया था।

[कथाकोष प्रकरण की प्रस्तावना से]

दादावाड़ी-दिग्दर्शन की प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी लिखते हैं :—

खरतर गच्छ के मुख्य युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि तथा उनके उत्तराधिकारी आचार्य-वर्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनकुशलसूरि एव अकबर-प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरि के स्मारक रूप मे दादावाडी नाम से जितने गुरुपूजा स्थान बने हैं उतने अन्य किसी गच्छ के पूर्वाचार्यों के स्मारक रूप मे ऐसे खास स्मारक स्थान बने ज्ञात नहीं होते।

इन पूर्वाचार्यों मे मुख्य स्थान श्रीजिनदत्तसूरि का है। श्रीजिनदत्तसूरि का स्वर्गगमन राजस्थान के प्राचीन एव प्रधान नगर अजमेर मे वि० स० १२११ मे हुआ। जहाँ पर उनके शरीर का अग्नि-सस्कार हुआ, वहाँ पर भक्तजनों ने सर्वप्रथम उस स्थान पर स्मारक स्वरूप देवकुल बनाया और उसमे स्वर्गीय आचार्यवर्य के चरणचिन्ह स्थापित किये।

श्रीजिनदत्तसूरि एक महान् प्रभावशाली आचार्य थे। ज्ञान और क्रिया के साथ ही उनमे अद्भुत सगठन शक्ति और निर्माण शक्ति थी। उन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य एव ओजःपूर्ण सयम के प्रभाव से हजारो की सख्या मे नये जैन धर्मानुयायी श्रावक कुलों का विशाल सघ निर्माण किया। राजस्थान मे आज जो लाखो ओसवाल जातीय जैन जन हैं उनके पूर्वजों का अधिकांश भाग, इन्ही जिनदत्तसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित और सुसगठित हुआ था। बाद मे उत्तरोत्तर इन आचार्य के जो शिष्य–प्रशिष्य होते गए वे भी महान् गुरु का आदर्श सन्मुख रखते हुए इस संघ-निर्माण का कार्य सुन्दर रूप से चलाते और बढ़ाते रहे। श्रीजिनदत्तसूरि के ये सब शिष्य–प्रशिष्य धर्म प्रचार और सघनिर्माण के उद्देश्य से भारतवर्ष के जिन-जिन स्थानो मे पहुचे, वहा पर देवस्थान के साथ–साथ ही वे युगप्रवर्तक प्रवर गुरु के स्मारक रूप मे छोटे–मोटे गुरुपूजा स्थान भी बनाते रहे और उनमे सूरिजी के चरणचिन्ह अथवा मूर्ति स्थापित करते रहे। ये स्थान आज सब दादावाड़ी के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे है।

श्रीजिनदत्तसूरि महान् विद्वान और चारित्रशील होने के उपरान्त एक विशिष्ट चमत्कारी महात्मा भी माने जाते हैं अतः उनके नाम स्मरण तथा चरण पूजन द्वारा भक्तों की मनोकामनाएँ भी सफल होती रही है। ऐसी श्रद्धा पूर्वकाल से इनके अनुयायी भक्तजनो में प्रचलित रही है अत' इस कारण से भी इनकी पूजा निमित्त इन देवकुलों, छत्रियों, स्तूपो आदि का निर्माण होता रहा है।

श्रीजिनदत्तसूरि के बाद उनकी पट्ट-परम्परा मे होने वाले मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनकुशलसूरिजी तथा अकबर-प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के विषय मे भी चमत्कारी होने की बड़ी श्रद्धा भक्तजनों मे प्रचलित है। इसलिये प्राय इन चारो आचार्यों की भी सम्मिलित चरण पादुकाएं, मूर्त्ति आदि प्रतिष्ठित और पूजित होती रही है।
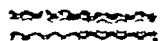
श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की श्रेष्ठ रचना

संवेगरंगशाला आराधना

(संक्षिप्त परिचय)

ले० पं० लालचन्द्र भगवान् गान्धी, बड़ौदा

[सुविहित मार्ग प्रकाशक आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी हुए। उनका विस्तृत परिचय तो प्राप्त नहीं होता। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली मे इतना ही लिखा है कि "जिनेश्वरसूरि ने जिनचन्द्र और अभयदेव को योग्य जानकर सूरिपद से विभूषित किया और वे श्रमण धर्म की विशिष्ट साधना करते हुए क्रमश युगप्रधान पद पर आसीन हुए।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के पश्चात् सूरिश्रेष्ठ जिनचन्द्रसूरि हुए जिनके अष्टादश नाममाला का पाठ और अर्थ साङ्गोपाङ्ग कण्ठाग्र था, सव शास्त्रो के पारगत जिनचन्द्रसूरि ने अठारह हजार श्लोक परिमित सवेगरगशाला की स० ११२५ में रचना की। यह ग्रन्थ भव्य जीवो के लिए मोक्ष रूपी महल के सोपान सदृश है।

जिनचन्द्रसूरि ने जावालिपुर मे जाकर श्रावकों की सभा मे "चीवदण मावस्सय" इत्यादि गाथाओ की व्याख्या करते हुए जो सिद्धान्त सवाद कहे थे उनको उन्ही के शिष्य ने लिखकर ३०० श्लोक परिमित दिनचर्या नामक ग्रन्थ तैयार कर दिया जो श्रावक समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध हुआ। वे जिनचन्द्रसूरि अपने काल मे जिन-धर्म का यथार्थ प्रकाश फैलाकर देवगति को प्राप्त हुए।"

आपके रचित पच परमेष्ठी नमस्कार फल कुलक, क्षपक-शिक्षा प्रकरण, जीव-विभक्ति, आराधना, पार्श्व स्तोत्र आदि भी प्राप्त हैं।

सवेगरंगशाला अपने विषय का अत्यन्त महत्वपूर्ण विशद ग्रन्थ है। जिसका सक्षिप्त परिचय हमारे अनुरोध से जैन साहित्य के विशिष्ट विद्वान प० लालचन्द्र भ० गाधी ने लिख भेजा है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना अति आवश्यक है।—स०]

श्रीजैनशासन के प्रभावक, समर्थ धर्मोपदेशक, ज्योतिर्धर गीतार्थ जैनाचार्यों मे श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का संस्मरणीय स्थान है। मोक्षमार्ग के आराधक, मुमुक्षु-जनों के परम माननीय, सत्कर्त्तव्य-परायण जिस आचार्य ने आज से नौ सौ वर्ष पहिले-विक्रम सवत् ११२५ मे प्राकृत भाषा मे दस हजार, ५३ गाथा प्रमाण सवेगमार्ग-प्रेरक संवेगरंगशाला आराधना की श्रेष्ठ रचना की थी, जो ६००-नौ सौ वर्षों के पीछे-विक्रमसवत् २०२५ मे पूर्णरूप से प्रकाश में आई है, परम आनन्द का विषय है।

वडोदा राज्यकी प्रेरणा से सुयोग्य विद्वान चीमनलाल डा० दलाल एम०ए० ईस्वी सन् १९१६ के अन्तिम चार मास वहीं ठहर कर जेसलमेर किल्ले के प्राचीन ग्रन्थ-भण्डार

का अवलोकन बडी मुश्किल से कर सके। वहाँ की रिपोर्ट कच्ची नोंध व्यवस्थित कर प्रकाशित कराने के पहिले ही वे ईस्वी सन् १९१७ अक्टोबर मास में स्वर्गस्थ हुए।

आज से ५० वर्ष पहिले-ईस्वी सन् १९२० अक्टोबर मे बडौदा-राजकीय सेन्ट्रल लाइब्रेरी (संस्कृत पुस्तकालय) मे 'जैन पंडित' उपनामसे हमारी नियुक्ति हुई, और विधि-वशात् सद्गत चीο डाο दलाल एमο एο के अकाल स्वर्गवास से अप्रकाशित वह कच्ची नोध-आधारित 'जेसलमेर दुर्ग-जैन ग्रन्थभण्डार-सूचीपत्र' सम्पादित-प्रकाशित कराने का हमारा योग आया। दो वर्षो के बाद ईस्वी सन् १९२३ मे उस संस्था द्वारा गायकवाड ओरि-यन्टल सिरीज नο २१ में यह ग्रन्थ बहुत परिश्रम से बम्बई निο साο द्वारा प्रकाशित हुआ है। बहुत ग्रन्थ गवेषणा के बाद उसमे प्रस्तावना और विषयवार अप्रसिद्ध ग्रन्थ, ग्रन्थकृत-परिचय परिशिष्ट आदि संस्कृत भाषा मे मैंने तैयार किया था। उसमें जेसलमेर दुर्ग के बडे भण्डार में नο १८३ मे रही हुई उपर्युक्त संवेगरंगशाला (२८½ × २½ साइज) ३४७ पत्रवाली ताडपत्रीय पोथी का सूचन है। वहाँ अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है —

"इति श्रीजिनचन्द्रसूरिकृता तद्विनेय श्रीप्रसन्नचन्द्रा-चार्यसमभ्यर्थित-गुणचन्द्रगणि प्रतिर्यत्क्(संस्कृ)ता जिन-वल्लभगणिना संशोधिता संवेगरंगशालाभिधानाराधना समाप्ता।

संवत् १२०७ वर्षे ज्येष्ठसुदि १० गुरौ अद्य ह श्रीवट-पद्रके दंडο श्रीवोसरि प्रतिपत्तौ संवेगरंगशाला पुस्तक लिखितमिति।"

—स्वο दलाल ने इसकी पीछे की २७ पद्योंवाली लिखानेवाले की प्रशस्ति का सूचन किया है, अवकाशा-भाव से वहाँ लिखो नही थी।

जेο भाο सूचीपत्र मे 'अप्रसिद्ध ग्रन्थ-ग्रन्थकृत्परिचय' कराने के समय मैंने 'जैनोपदेशग्रन्था.' इस विभाग मे पृο ३८-३९ मे 'संवेगरंगशाला' के सम्बन्ध में अन्वेषण पूर्वक संक्षिप्त परिचय सूचित किया था। उसकी रचना सο११२५ में हुई थी। लिο प्रति संο १२०७ की थी। रचना का आधार नीचे टिप्पणी में मैंने मूलग्रन्थ की अर्वाचीन संο लाο की हο लिο प्रति से अवतरण द्वारा दर्शाया था—

विक्कमनिवकालाओ समइक्कतेसु वरिसाण।
एक्कारससु सएसु पणवीस समहिएसु ॥
निप्पत्ति संपत्ता एसाराहण त्ति फुडपायडपयत्था।"

भावार्थ—विक्रमनृपकाल से ११२५ वर्ष बीतने के बाद स्फुट प्रगट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई।

इसके पीछे मैंने बृहट्टिप्पणिका का भी संवाद दर्शाया था—"संवेगरङ्गशाला ११२५ वर्षे नवाङ्गाभय-देववृद्ध भ्रातृजिनचन्द्रीया १००५३"

मैंने वहाँ संस्कृत मे संक्षेप मे परिचय कराया था कि 'आराधनेत्यपराह्वेय नवाङ्गवृत्तिकाराभयदेवसूरेरभ्यर्थनया विरचिता। विरचयिता चायं जिनेश्वरसूरेर्मुख्य शिष्योऽ-भयदेवसूरेश्च वृद्धसतीर्थ्य।"

अभयदेवसूरि पर टिप्पणी मे मैंने उसी संवेगरंगशाला की सं० लाο की हο लिο प्रति मे पाठ का अवतरण वहां दर्शाया था —

"सिरिअभयदेवसूरि त्ति पत्तकित्ती पर भवणे ॥[१००४१]
जो य कुबोह महारिउ विहम्ममाणस्स नरवइस्सेव।
सुयधम्मस्स दढत्त, निव्वत्तियमगवित्तीहिं ॥ [१००४२]
तस्सब्भत्थणवसओ सिरिजिणचंदमुनिवरेण इमाण।
स लागारेण व उच्चिणिऊण वरवयणकुसुमाइ ॥ [१००४३]
सूरसुय-काणणाओ, गुथित्ता निययमइगुणेण दढं।
विविहत्थ—मोरभभरा, निम्मवियाराहणामाला ॥[१००४४]'

भावार्थ —भवन में श्रेष्ठ कीर्ति पानेवाले श्री अभय-देवसूरि हुए। जिसने कुबोध रूप महारिपु द्वारा विनष्ट किये जाते नरपति जैसे श्रुतधर्म का दृढ़त्व अंगो की वृत्तियो द्वारा किया। उनकी अभ्यर्थना के वश से

श्री जिनचन्द्र मुनिवर ने मालाकार की तरह, **मूलश्रुत** रूप उद्यान से श्रेष्ठ वचन-कुसुमों का उच्चुटन कर, अपने मतिगुण से दृढ गुथन करके विविध अर्थ-सौरभ-भरपूर यह **आराधनामाला रची है।**

इसके पीछे मैंने वहाँ सूचन किया है कि "पाश्चात्यैरनेकैर्ग्रन्थकारैरस्य कृते सस्मरणमकारि।" इसका भावार्थ यह है कि—इस सवेगरगशाला कृति का सस्मरण, पीछे होनेवाले अनेक ग्रन्थकारों ने किया है। इसका समर्थन करने के लिए मैंने वहां (१) गुणचन्द्रगणि का महावीरचरित, (२) जिनदत्तसूरि का गणधरसार्धशतक, (३) जिनपतिसूरि का पचलिंगीविवरण (४) सुमतिगणि की गणधरसार्धशतक वृत्ति, (५) सघपुर मन्दिर-शिलालेख, (६) चन्द्रतिलक उपाध्याय का अभयकुमार चरित तथा (७) भुवनहित उपाध्याय के राजगृह-शिलालेख मे से-अवतरण टिप्पणी में दर्शाये थे, वे इस प्रकार है—

श्रीगुणचन्द्र गणिने विक्रम सवत् ११३९ मे रचित प्राकृत महावीरचरित मे प्रशसा की है कि—

सवेगरगसाला न केवल कव्वविरयणा जेण।
भव्वजणविम्हयकरी विहिया सजम-पवित्ती वि ॥"

भावार्थ —जिसने (श्रीजिनचन्द्रसूरि ने) सिर्फ सवेगरगशाला काव्य-रचना ही नहीं की, भव्यजनों को विस्मय करानेवाली सयमप्रवृत्ति भी की थी।

[२]

श्रीजिनदत्तसूरिजी ने विक्रम की बारहवी शताब्दी-उत्तरार्ध में रचित प्रा० गणधरसार्धशतक मे प्रशंसा की है कि—

संवेगरंगसाला विमालसालोवमा कया जेण।
रागाइवेरिभयभीय - भव्वजणरक्खण निमित्त ॥"

भावार्थ—जिसने (श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने) रागादि वैरियों से भयभीत भव्यजनों के रक्षण-निमित्त विशाल किला जैसी सवेगरगशाला की।

[३]

श्रीजिनपतिसूरिजी द्वारा विक्रम की तेरहवी शताब्दी मे रचित पंचलिंगी-विवरण स० मे प्रशसा की है कि—

"नर्तयितु सवेग पुनर्नृणां लुप्तनृत्यमिव कलिना।
सवेगरङ्गशाला येन विशाला व्यरचि रुचिरा ॥"

भावार्थ—जिसने (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने), कलिकाल से जिसका नृत्य लुप्त हो गया था, वैसे मानो मनुष्यों के सवेग को नृत्य कराने के लिए विशाल मनोहर सवेगरगशाला रची।

[४]

विक्रम सवत् १२९५ में सुमतिगणि ने गणधरसार्धशतक की स० बृहद्वृत्ति मे उल्लेख किया है कि—

"पश्चाज्जिनचन्द्रसूरिवर आसीद् यस्याष्टादशनाममाला सूत्रतोऽर्थतश्च मनस्यासन् सर्वशास्त्रविदः। येनाष्टा(?) दशसहस्रप्रमाणा **संवेगरङ्गशाला** मोक्षप्रासादपदवी भव्यजन्तूना कृता। येन जावालिपुरे दू(ग)तेन श्रावकाणामग्रे व्याख्यान 'चीवदणमावस्सय' इत्यादि गाथाया कुर्वता सिद्धान्तसवादा कथितास्ते सर्वे सुशिष्येण लिखिता शतत्रय-प्रमाणो दिनचर्याग्रन्थ श्राद्धानामुपकारी जातः।"

[—यह पाठ मैंने वडोदा-जैनज्ञानमन्दिर-स्थित श्रीहसविजयजी मुनिराज के सग्रह की अर्वाचीन ह० लि० प्रति से उद्धृत कर दर्शाया था]

भावार्थ—पीछे (श्रीजिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के अनन्तर) श्रीजिनचन्द्र सूरिवर हुए। सर्वशास्त्रविद् जिसके मन मे १८ नाममालाएँ सूत्र से और अर्थ से उपस्थित थी। जिसने दस हजार गाथा प्रमाण **सवेगरंगशाला** भव्यजीवों के लिए मोक्ष प्रासाद-पदवी की। जावालिपुर मे गए हुए जिसने श्रावकों के आगे 'चीवदणमावस्सय' इत्यादि गाथा का व्याख्यान करते हुए सिद्धान्त के सवाद कहे थे, उन सबको सुशिष्य ने लिख लिए, तीन सौ श्लोक-प्रमाण 'दिनचर्या' नामक ग्रन्थ श्रावकों के लिए उपकारी हो गया।

[५]

रिक्त संघपुर-जैन मन्दिर की भित्ति में लगे हुए प्राय: स० १३२६ (?) के अपूर्ण शिलालेख की नकल स्व० बुद्धि-सागरसूरिजी की प्रेरणा से 'बीजापुर-वृत्तान्त' के लिए मैंने ५४ वर्ष पहिले उद्धृत की थी, उसमें यह पद्य है—

"**संवेगरङ्गशाला** सुरभि सुरविटपि-कुसुममालेव ।
शुचिसरसाऽमरसरिदिव यस्य कृतिर्जयति कीर्तिरिव ॥

भावार्थ.—जिसकी (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की) कृति संवेगरंगशाला सुगन्धि कल्पवृक्ष की कुसुममाला जैसी और पवित्र सरस गंगानदी जैसी, और उनकी कीर्ति जैसी जयवती है।

[६]

उनकी परम्परा के चन्द्रतिलक उपाध्याय ने वि० सं० १३१२ मे रचे हुए सं० अभयकुमार चरित काव्य मे दो पद्य हैं कि—

"तस्याभूतां शिष्यौ, तत्प्रथम: सूरिराज **जिनचन्द्र:** ।
संवेगरङ्गशालां, व्यधित कथा यो रसविशालाम् ॥
बृहन्नमस्कारफल, श्रोतृलोकसुधाप्रपाम् ।
चक्रे **क्षपकशिक्षां** च, य: संवेगविवृद्धये ॥"

भावार्थ —उनके (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के) दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम सूरिराज जिनचन्द्र हुए, जिसने रस-विशाल श्रोता लोगों के लिये अमृत-परब जैसी संवेगरंगशाला कथा की, और जिसने **बृहन्नमस्कारफल** तथा संवेग की विवृद्धि के लिये **क्षपकशिक्षा** की थी।

राजगृह में विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी का जो शिलालेख उपलब्ध है, उसमे उनके अनुयायी भुवनहित उपाध्याय ने संस्कृत प्रशस्ति मे श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की संवेगरंगशाला का संस्मरण इस प्रकार किया है—

"तत **श्रीजिनचन्द्राख्यो** बभूव मुनिपुंगव ।
संवेगरङ्गशालां यश्चकार च बभार च ॥"

भावार्थ:—उसके बाद (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पीछे) **श्रीजिनचन्द्र** नामके श्रेष्ठ सूरि हुए, जिसने **संवेगरंगशाला** की, और धारण-पोषण की।

—उत्तमोत्तम यह संवेगरंगशाला ग्रन्थ कई वर्षों के पहिले श्रीजिनदत्तसूरि-ज्ञानभंडार, सूरत से तीन हजार पद्य-प्रमाण अपूर्ण प्रकाशित हुआ था। दस हजार, तिरेपन गाथा प्रमाण परिपूर्ण ग्रन्थ आचार्यदेवविजयमनोहरसूरि शिष्याणु मुनि परम-तपस्वी **श्री हेमेन्द्रविजयजी** और **पं० बाबूभाई** सवचन्द के शुभ प्रयत्न से संशोधित संपादित होकर, विक्रम संवत् २०२५ मे अणहिलपुर पत्तनवासी झवेरी कान्तिलाल मणिलाल द्वारा मोहमयी मुम्बापुरी से पत्राकार प्रकाशित हुआ है। मूल्य साढ़े बारह रुपया है। गत सप्ताह में ही संपादक मुनिराज ने कृपया उसकी १ प्रति हमे भेंट भेजी है।

इस ग्रन्थ के टाइटल के ऊपर तथा समाप्ति के पीछे कर्ता श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का विशेषण तपागच्छीय छपा है, घट नही सकता। 'तपागच्छ' नामकी प्रसिद्धि सं० १२८५ से श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी से है, और इस ग्रन्थ की रचना वि० संवत् ११२५ मे अर्थात् उससे करीब डेढ सौ वर्ष पहिले हुई थी। और वहाँ गुजराती प्रस्तावना में इस ग्रन्थकार श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को समर्थ तार्किक महावादी श्री सिद्ध-सेन दिवाकर सूरिजी कृत समतितर्क ग्रन्थ पर असाधारण टीका लिखनेवाले पू० आचार्यदेव श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के वडील गुरुबन्धु सूचित किया, वह उचित नही है। इस संवेगरंगशाला की प्रान्त प्रशस्ति मे स्पष्ट सूचन है कि **वे अंगों की वृत्ति रचनेवाले श्रीअभयदेव सूरिजी के वडील गुरुबन्धु थे**, उनकी अभ्यर्थना से इस ग्रन्थ की रचना सूचित की है।

अभयदेवसूरिजी ने अङ्गों (आगम) पर वृत्तियाँ विक्रम संवत् ११२० से ११२८ तक में रची थी, प्रसिद्ध है।

इस सवेगरंगशाला के कर्त्ता ने अन्त मे १००२६ गाथा से अपनी परम्परा का वशवृक्ष सूचित किया है। उसमे चौवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के अनन्तर सुधर्मा स्वामी, जवूस्वामी, प्रभवस्वामी, शय्यभव स्वामी की परम्परारूप अपूर्व वंशवृक्ष की, वज्रस्वामी की शाखा में हुए **श्रीवर्धमानसूरिजी** का वर्णन १००३४,३५ गाथा मे किया है। उनके दो शिष्य (१) जिनेश्वरसूरि और (२) बुद्धिसागरसूरि का परिचय १००३६ से १००३९ गाथाओं मे कराया है—

"**तस्साहाए** निम्मलजसधवलो सिद्धिकामलोयाण।
सविसेसवंदणिज्जो य, रायणा थो(थे) रप्पवग्गोव्व ॥
१००३४॥
कालेण संभूओ, भयव सिरिवद्धमाण मुणिवसमो।
निप्पडिम पसमलच्छी-विच्छड्डाखड-भडारो ॥ १००३५ ॥
ववहार-निच्छयनय व्व, दव्व-भावत्थय व्व धम्मस्स।
परमुन्नइजणगा ,तस्स, दोण्णि, सीसा समुप्पण्णा ॥
॥ १००३६॥
पढमो सिरिसूरिजिणेसरो त्ति, सूरो व्व जम्मि उइयम्मि।
होत्था पहाऽवहारो, दूरत-तेयस्सि चक्कस्स ॥ १००३७ ॥
अज्ज वि य जस्स हरहास-हसगोर गुणाण पब्भार।
सुमरता भव्वा उव्वहति रोमचमगेसु॥ १००३८ ॥
बीओ पुण विरइय-निउण-पवर **वागरण**-पमुह-बहुसत्थो।
नामेण **बुद्धिसागर**-सूरित्ति अहेसि जयपयडो ॥१००३९॥
तेसिं पय-पकउच्छग-सग-सपत्त-परम-माहप्पो।
सिस्सो **पढमोजिणचंदसूरि** नामो समुप्पन्नो ॥१००४०॥
अन्नो य पुन्निमाससहरो व्व, निव्वविय-भव्व-कुमुयवणो ॥"
[गाथा १००४१ से १००४४ तक पहिले दर्शाया है]

भावार्थ —उन **(वज्रस्वामी)** की शाखा में काल-क्रम मे निर्मल उज्ज्वल यशवाले, सिद्धि चाहने वाले लोगो के लिए राजा द्वारा स्थविर आत्मवर्ग की तरह (?) विशेष वदनीय, अप्रतिम प्रशमलक्ष्मीवैभव के अखड भण्डार, भगवान् श्रेष्ठ श्रीवर्धमानसूरिजी हुए। उनके व्यवहारनय और निश्चयनय जैसे अथवा द्रव्यस्तव और भावस्तव जैसे धर्म की परम उन्नति करने वाले दो शिष्य हुए। उनमे प्रथम **श्रीजिनेश्वरसूरि** सूर्य जैसे हुए। **जिसके उदय पाने पर अन्य तेजस्वि-मंडल की प्रभाका अपहरण हुआ था।** जिसके हर-हास और हस जैसे उज्ज्वल गुणों के समूह को स्मरण करते हुए भव्यजन आज भी अंगों पर रोमांच को धारण करते है।

और दूसरे, निपुण श्रेष्ठ **व्याकरण** प्रमुख वहु शास्त्रकी रचना करने वाले **बुद्धिसागरसूरि** नाम से जगत् में प्रख्यात हुए।

उनके (दोनों के) पद-पकज और उत्सग-सग से परम माहात्म्य पानेवाला **प्रथम शिष्य जिनचन्द्रसूरि** नामवाला उत्पन्न हुआ। और दूसरा शिष्य **अभयदेवसूरि** पूर्णिमा के चन्द्र जैसा, भव्यजनरूप कुमुदवन को विकस्वर करनेवाला हुआ। [—इसके पीछे का १००४१ से १००४४ तक गाथा का सम्वन्ध उपर आ गया है]

१००४५ गाथा में ग्रन्थकार ने सूचित किया है कि— श्रमण मधुकरों के हृदय हरनेवाली इस **आराधनामाला** (सवेगरगशाला) को भव्यजन अपने सुख (शुभ) निमित विलासी जनोंकी तरह सर्व आदर से अत्यन्त सेवन करें। १००४६ से १००५४ गाथाओं में कृतज्ञताका और रचना स्थलका सूचन किया है कि—"सुगुण मुनिजनों के पद-प्रणाम से जिसका भाल पवित्र हुआ है, ऐसे सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी गोवर्धन के सुत विख्यात जज्जनाग के पुत्र जो सुप्रशस्त **तीर्थयात्रा** करने से प्रख्यात हुए, असाधारण गुणों से जिन्होंने उज्ज्वल विशाल कीर्ति उपार्जित की है। **जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा कराना, श्रुतलेखन** वगैरह धर्मकृत्यों द्वारा आत्मोन्नति करनेवाले, अन्य जनों के चित्त को चमत्कार करनेवाले, जिनमत-भावित बुद्धिवाले **सिद्ध** और **वीर** नामवाले श्रेष्ठियो के परम साहाय्य और आदर से यह

रचना की है। इस आराधना की रचना से हमने जो कुछ कुशल (पुण्य) उपार्जन किया, उससे भव्यजन, **जिन-वचन की परम आराधना को प्राप्त करें**। छत्रा-वल्लिपुरी मे जेज्जयके पुत्र पासनाग के भुवन मे **विक्रमनृप के काल से ११२५ वर्ष** व्यतीत होने पर स्फुट प्रकट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई है। इस रचनाको, विनय-नय-प्रधान, समस्त गुणोंके स्थान, **जिनदत्त गणि** नामक शिष्य ने प्रथम पुस्तक मे लिखी। समोह को दूर करने के लिए गिनती से निश्चय करके इस ग्रन्थ मे **तिरेपन गाथा से अधिक दस हजार गाथाएँ स्थापित की हैं**।

अन्त मे सस्कृत के गद्य में उल्लेख है कि, श्रीजिनचन्द्र सूरि कृत, उनके शिष्य प्रसन्नचन्द्राचार्य-समभ्यर्थित, गुणचन्द्र गणि-प्रतिसस्कृत, और जिनवल्लभगणि द्वारा सशोधित सवेगरगशाला नामकी आराधना समाप्त हुई।

अन्तमें प्रति-पुस्तक लिखने का समय सवत् १२०७ (स० १२०३ नही) और स्थान वटपद्रक में (अर्थात् इस **वड़ौदा** मे समझना चाहिये।) [प्रकाशित आवृत्ति में दडश्री**वासरे** प्रतिपत्तौ छपा है, वहाँ **दडश्रीवोसरि-**प्रतिपत्तौ होना चाहिए, मैंने अन्यत्र दर्शाया है। [देखे, जे० भा० सूचीपत्र (गा० ओ० सि० न० २१ पृ० २१, 'वटपद्र (वडौदा) का ऐतिहासिक उल्लेखो' हमारा 'ऐतिहासिक लेख सग्रह' सयाजी साहित्यमाला क्र० ३३५ वगैरह)

ग्रन्थ निर्दिष्ट नाम—वर्धमानसूरिजी की सवत् १०५५ मे रचित उपदेशपद-वृत्ति, जिनेश्वरसूरिजी की जावालिपुरमें स० १०८० मे रचित अष्टकप्रकरणवृत्ति, प्रमालक्ष्म आदि, तथा बुद्धिसागरसूरिजी का स० १०८० में रचित व्याकरण (पचग्रन्थी), और अभयदेवसूरिजी की स० ११२० से ११२८ मे रचित **स्थानांग** वगैरह अगोकी वृत्तियों की प्राचीन प्रतियों का निर्देश हमने 'जेसलमेर-भण्डार-ग्रन्थसूची' (गा० ओ० सि० न० २१) में किया है, जिज्ञासुओं को अवलोकन करना चाहिए।

पाठको को स्मरण रहे कि, इस सवेगरंगशाला आराधना रचनेवाले श्रीजिनचद्रसूरिजी के गुरुवर्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने गुजरात मे अणहिलवाड पत्तन (पाटण) मे **दुर्लभराज** राजा की सभा में चैत्यवासियों को वाद में परास्त किया था, 'साधुओ को चैत्य मे वास नही करना चाहिये, किन्तु गृहस्थो के निर्दोष स्थान (वसति) में वास करना चाहिए'-ऐसा स्थापित किया था। उपर्युक्त निर्णय के अनुसार जिनेश्वरसूरिजी के प्रथम शिष्य जिनचन्द्रसूरिजी ने इस ग्रन्थ की रचना पूर्वोक्त गृहस्थ के भवन मे ठहर कर की थी। उपर्युक्त घटना का उल्लेख जिनदत्तसूरिजी के प्रा० गणधरसार्धशतक में, तथा उनके अनेक अनुयायियो ने अन्यत्र प्रसिद्ध किया है, जो जेसलमेर भण्डार की ग्रन्थसूची (गा० ओ० सि० न० २१), तथा अपभ्रशकाव्यत्रयी (गा० ओ० सि० न० ३७) के परिशिष्ट आदि के अवलोकन से ज्ञात होगा। खरतरगच्छ वालो की मान्यता यह है कि, उस वाद मे विजय पाने से महाराजा ने विजेता जिनेश्वरसूरिजीको 'खरतर' शब्द कहा या विरुद दिया। इसके बाद उनके अनुयायी खरतरगच्छ वाले पहचाने जाते है। **दुर्लभराज** का राज्य समय वि० स० १०६५ से १०७८ तक प्रसिद्ध है, तो भी खरतरगच्छ की स्थापना का समय स० १०८० माना जाता है।

सवेगरगशालाकार इस जिनचन्द्रसूरिजी की प्रभावकताके कारण खरतरगच्छ की पट्ट-परम्परा मे उनसे चौथे पट्टधर का नाम 'जिनचन्द्रसूरि' रखने की प्रथा है।

आराधना-शास्त्रकी संकलना

प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यो से प्रशसित इस सवेगरंगशाला आराधना ग्रन्थ-अथवा आराधना शास्त्र की सकलना श्रेष्ठ कवि श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने परम्परा-प्रस्थापित सरल सुबोध **प्राकृत भाषा मे** की, उचित किया है। प्रारम्भ मे शिष्टाचार-परिपालन करने के लिए विस्तार से मगल, अभिधेय, सम्बन्ध, प्रयोजनादि दर्शाया है। ऋषभादि सर्व तीर्थाधिप

महावीर, सिद्धों, गौतमादि गणधरो, आचार्यो, उपाध्यायो और मुनियों को प्रणाम करके **सर्वज्ञकी महावाणी** को भी नमन किया है। **प्रवचन** की प्रशसा करके, निर्यामक गुरुओ और मुनियों को भी नमस्कार किया है। मुगति-गमन की मूलपदवी **चार स्कन्धरूप** यह **आराधना** जिन्होंने प्राप्त की, उन मुनियों को वन्दन किया और गृहस्थो को अभिनन्दन दिया (गा० १४), मजवूत नाव जैसी यह **आराधना भगवती** जगत् मे जयवती रहो, जिस पर आरूढ होकर भव्य भविजन रौद्र भव-समुद्र को तरते है। वह **श्रुतदेवी** जयवती है कि, जिसके प्रसाद से मन्दमति जन भी अपने इच्छित अर्थ निस्तारणमें **समर्थ कवि** होते है। जिन के पद-प्रभावसे मैं सकल जन-श्लाघनीय पदवीको पाया हूं, विवुध जनों द्वारा प्रणत उन **अपने गुरुओको मैं प्रणिपात करता हूं।** इस प्रकार समस्त स्तुति करने योग्य शास्त्र विषयक प्रस्तुत स्तुतिरूप गजघटाद्वारा सुभटकी तरह जिमने प्रत्यूह (विघ्न)-प्रतिपक्ष विनष्ट किया है, ऐसा मैं स्वय **मन्दमति** होने पर भी वडे गुण-गणसे गुरु ऐसे मुगुरुओं के चरण-प्रसादसे **भव्यजनोके हितके लिए** कुछ कहता हूं। (१६)

भयकर भवाटवीमे दुर्लभ मनुष्यत्व, और सुकुलादि पाकर, भावि भद्रपनसे, भयके शेषपनसे, अत्यन्त दुर्जय दर्शन-मोहनीय के अवलपनसे, सुगरुके उपदेशसे अथवा स्वय कर्म-ग्रन्थिके भेदसे, भारी पर्वत-नदीसे हरण किये जाते लोगोंको नदी-तटका प्रालव (प्रकृष्ट अवलम्वन) मिल जाय, अथवा रकजनोंको निधान प्राप्त हो जाय, अथवा विविध व्याधि-पीडित जनोको सुवैद्य मिल जाय, अथवा कुएँके भीतर गिरे हुए को समर्थ हस्तावलव मिल जाय; इसी तरह सविशेष पुण्यप्रकर्पसे पाने योग्य, चिन्तामणि रत्न और कल्पवृक्षको जीतने वाले, निष्कलक परम (श्रेष्ठ) **सर्वज्ञ-धर्म** को पाकर, अपने हितकी ही गवेषणा करनी चाहिए। वह हित ऐसा हो कि, जो अहितसे नियमसे (निश्चयसे) कहीं भी, किससे भी, और कभी भी वाधित न हो। वैसा अनुपम अत्यन्त एकान्तिक परम हित (सुख) मोक्षमे होता है, और मोक्ष कर्मोंके क्षयसे होता है. और कर्मक्षय, विशुद्ध **आराधना** आराधित करनेसे होता है। इसलिए हितार्थी जनोको **आराधनामें** सदा यत्न करना चाहिए, क्योंकि, उपायके विरहसे उपेय (प्राप्त करने योग्य साध्य) प्राप्त नहीं हो सकता।

आराधना करनेके मनवालो को उस अर्थ को प्रकट करने वाले शास्त्रों का ज्ञान चाहिए। इसलिए 'गृहस्थों और साधओ दोनो विषयक इस आराधना शास्त्रको मैं तुच्छ वुद्धि वाला होने पर भी कहूँगा। आराधना चाहने वाले को चाहिए कि वह मन, वचन, काया इस त्रिकरण का रोध करे।'

इस आराधना शास्त्रमे (१) **परिकर्म-विधान** (२) **परगण-संक्रमण** (३) **ममत्वव्यच्छेद** और (४) **समाधि-लाभ** नामवालेचार स्कन्ध (विभाग) है।

पहिले (१) **परिकर्म-विधानमें** (१) अर्ह (२) लिङ्ग, (३) शिक्षा, (४) विनय, (५) समाधि, (६) मनोऽनुशास्ति, (७) अनियत विहार, (८) राजा (९) परिणाम **साधारण द्रव्यके १० विनियोग स्थानों**, (१०) त्याग, (११) मरण-विभक्ति-१७ प्रकारके मरणों पर विचार, (१२) अविकृत मरण, (१३) सीति (श्रेणी), (१४) भावना और (१५) सलेखना इस प्रकारके १५ द्वारों को विविध बोधक दृष्टान्तोसे स्पष्ट रूपमे समझाया है।

दूसरे (२) **परगण संक्रमण** स्कन्ध (विभाग) मे (१) दिशा, (२) क्षामणा, (३) अनुशास्ति, (४) सुस्थित गवेपणा, (५) उपसपदा, (६) परीक्षा, (७) प्रतिलेखना, (८) पृच्छा, (९) प्रतीक्षा, (१०)

इस प्रकार दस द्वारोंको विविध दृष्टान्तोंसे स्पष्टरूपमे समझाया है।

तीसरे (३) **ममत्वव्युच्छेद** स्कन्ध (विभाग) में (१)

आलोचनाविधान, (२) शय्या, (३) संस्तारक, (४) निर्या-मक, (५) दर्शन, (६) हानि, (७) प्रत्याख्यान, (८) खामणा– क्षमापना, (९) क्षमा इस तरह नौ द्वारों को विविध दृष्टान्तोंसे स्पष्ट समझाया है।

चोथे (४) **समाधि-लाभ** नामक स्कन्ध (विभाग) में (१) अनुशास्ति, (२) प्रतिपत्ति, (३) सा(स्मा)रणा, (४) कवच, (५) समता, (६) ध्यान, (७) लेश्या, (८) आरा-धना-फल और (९) विजहना द्वारमे अनेक ज्ञातव्य विषय समझाये गये है।

—इसके (१) अनुशास्ति द्वारमे त्याग करने योग्य १८ अठारह पापस्थानकों के विषयमें, (२) त्याग करने योग्य ८ आठ प्रकारके मदस्थानोके विषयमे, (३) त्याग करने योग्य क्रोधादि कषायोंके विषयमे, ४) त्याग करने योग्य ५ पांच प्रकारके प्रमाद के विषयमें, (५) प्रतिबन्ध-त्याग विषयमें, (६) सम्यक्त्व-स्थिरता के विषयमें, (७) अर्हन् आदि छ की भक्तिमत्ता के विषयमें, (८) पचनमस्कारतत्परता के विषयमे, (९) सम्यग् ज्ञानोपयोग के विषयमे, १०) पत्र महाव्रत-विषयमें, (११) चतु शरण-गमन, (१२) दुष्कृत-गर्हा, (१३) सुकृतों की अनुमोदना, (१४ अनित्य आदि १२ बारह भावना, (१५) शील-पालन, (१६) इन्द्रिय-दमन, (१७) तपमें उद्यम और १८) नि.शल्यता-नियाण-निदान, माया, मिथ्यात्व-शल्य-त्याग इस प्रकार १८ द्वारों को अन्वय-व्यतिरेकसे विविध दृष्टान्तो द्वारा विवेचन करके अच्छी तरहसे समझाया गया है।

इसके प्रथम स्कन्धके परिणाम द्वार मे श्रावकोंकी ११ प्रतिमाओंके अनन्तर **साधारण द्रव्यके १० विनियोग स्थान** दर्शाये है, विचारने समझने योग्य है, अन्य **७ क्षेत्रों में द्रव्यवपन** करनेका उपदेश है। आजसे २९ वर्ष पहिले मैंने १ लेख 'सुशील जैन महिलाओना सस्मरणो' मुबई और मागरोल जैन सभाके सुवर्णमहोत्सव अकके लिए गुजरातीमें लिखा था, वह सवत् १९९८ मे प्रकाशित हुआ था। और 'सयाजी साहित्यमाला' पुष्प ३३५ मे हमारे 'ऐतिहासिक लेखसग्रह में [क्र० १०, ३३१ से ३४७ में] सवत् २०१९ मे प्राच्यविद्यामन्दिर द्वारा महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वडौदासे प्रकाशित है। उसमे मैंने इस **संवेगरंगशाला** में से **श्रमणी** और श्रावक, **श्राविका** स्थानोंके लिए द्रव्य-विनियोग वक्तव्य दर्शाया था। साथमे कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यके स्वोपज्ञ विवरण वाले सस्कृत योगशास्त्रसे भी परामर्श सूचित किया था। इस सवेगरंगशालाकी रचना विक्रमसंवत् ११२५ में, और श्रीहेमचन्द्राचार्यका जन्म विक्रमसंवत् ११४५ में (बीस वर्ष पीछे) हुआ था, प्रसिद्ध है।

संवेगरंगशालामें परिणामद्वारमें आयुष्यपरिज्ञानके जो ११ द्वारों (१) देवता, (२) शकुन, (३) उपश्रुति, (४) छाया, (५) नाडी, (६) निमित्त, (७) ज्योतिष, (८) स्वप्न, (९) अरिष्ट, (१०) यन्त्र-प्रयोग और (११) विद्या-द्वार दर्शाये हैं। इसी तरह श्रीहेमचन्द्राचार्यने अपने संस्कृत **योगशास्त्रमें** (पांचवें प्रकाशमें) **काल-ज्ञानका** विचार विस्तारसे दर्शाया है। तुलनात्मक दृष्टिसे अभ्यास करने योग्य है।

पाटण और जैसलमेर आदिके जैन ग्रन्थभंडारों में आराधना-विषयक छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ है, सूचीपत्रमें दर्शाये है। इन सबका प्राचीन आधार यह सवेगरंगशाला आराधनाशास्त्र मालूम होता है। वर्तमानमें, अन्तिम आराधना करानेके लिए सुनाया जाता आराधना प्रकीर्णक, चउसरणपयन्ना और उ० विनयविजयजी म० का पुण्य-प्रकाश स्तवन इत्यादि इन संवेगरंगशाला ग्रन्थका 'ममत्व-व्युच्छेद' 'समाधि-लाभ' विभागका सक्षेप है—ऐसा अवलो-कनसे प्रतीत होगा।

दस हजारसे अधिक ५३ प्राकृत गाथाओंका सार इस सक्षिप्त लेखमे दिग्दर्शन रूप सूचित किया है। परम उप-कारक इस ग्रन्थका पठन-पाठन, व्याख्यान, श्रवण, अनुवाद आदिसे प्रसारण करना अत्यन्त आवश्यक है, परमहितकारक स्वपरोपकारक है।

आशा है, चतुर्विध श्रीसघ इस आराधना शास्त्रके प्रचारमें सब प्रकारसे प्रयत्न करके महसेन राजाकी तरह आत्महितके साथ परोपकार साधेंगे। मुमुक्षु जन आराधना रसायनसे उनसे अजरामर बने—यही शुभेच्छा।

संवत् २०२७ पोषवदि ३ गुरु
(मकर-सक्रान्ति)
वडी वाडी, रावपुरा,
वडौदा (गुजरात)
लालचन्द्र भगवान् गांधी
[निवृत्त 'जैनपण्डित' वड़ौदा राज्य]

नवाङ्गी-वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि

[अगरचंद नाहटा]

सुविहित मार्ग प्रकाशक श्री जिनेश्वरसूरिजी के दो प्रधान शिष्य थे, एक सवेगशाला प्रकरणकर्त्ता श्री जिनचन्द्र-सूरि और दूसरे नवाङ्गी वृत्तिकर्त्ता श्री अभयदेनसूरि। श्री जिनेश्वरसूरिजी के पट्ट पर श्रीजिनचन्द्रसूरि और उनके पट्ट पर श्री अभयदेवसूरिजी प्रतिष्ठित हुए। आपके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में प्रभावक चरित्र मे लिखा है कि आचार्य जिनेश्वरसूरि स० १०८० के पश्चात् जावालिपुर (जालोर) से विहार करते हुए मालव प्रदेश की राजधानी धारानगरी में पधारे। वहां आपका प्रवचन निरन्तर होता था। इसी नगरी मे श्रेष्ठी महीधर नामक विचक्षण व्यापारी रहता था। उनकी पत्नी धनदेवी थी। अभयकुमार उनका सौभाग्य-शाली पुत्र था। आचार्य जिनेश्वरसूरि का व्याख्यान सुनने के लिए महीधर का पुत्र अभयकुमार भी आया करता था। आचार्यश्री के वैराग्यपोषक शात रसवर्द्धक उपदेश से अभयकुमार प्रभावित हुआ और माता-पिता से अनुमति प्राप्त कर श्रीजिनेश्वरसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। उनका दीक्षा नाम अभयदेवमुनि रखा गया।

श्रीजिनेश्वरसूरि के पास ही स्व-पर शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन अभयदेव ने किया। ज्ञानार्जन के साथ-साथ वे उग्र तपश्चर्या भी करने लगे। आपकी योग्यता और प्रतिभा को देखकर जिनेश्वरसूरि ने आपको सवत् १०८८ मे आचार्य पद प्रदान किया।

उस समय के प्रमुख-प्रमुख आचार्य सैद्धान्तिक आगमों का अध्ययन छोडकर आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, सामुद्रिक, नाट्य शास्त्रादि विषयों मे पारगत होते जा रहे थे। मंत्र, यत्र और तत्र विद्या के चमत्कारों से राजाओं व जनता पर भी उनका अच्छा प्रभाव जमता जाता था। आगमों के अभ्यास की परम्परा शिथिल हो जाने से बहुत से गुरु आम्नाय लुप्त हो गए और मूल पाठ भी त्रुटित और अशुद्ध होते जा रहे थे। ऐसी परिस्थिति को देख कर अभयदेवसूरि ने अपनी बहुश्रुतता का उपयोग उन आगमो पर टीकाएँ बनाने के रूप मे किया। स० ११२० से ११२८ तक यह कार्य निरन्तर चलता रहा। पाटण में आगमों की प्रतिया और चैत्यवासी आगम विज्ञ आचार्य का सहयोग सुलभ था। मध्य वर्ती समय मे स० ११२४ मे आपने धवलका मे रहते हुए बकुल और नदिक सेठ के घर मे पचाशक टीका बनाई।

ठाणाग सूत्र से लेकर विपाक सूत्र तक नवाङ्गों की जो आपने टीका बनाई, उसका सशोधन उदारभाव से चैत्यवासी गीतार्थ द्रोणाचार्य से कराया जिससे वे सर्वमान्य हो गई।

अभयदेवसूरिजी के जीवन की दूसरी घटना स्तंभन पार्श्व-नाथ प्रतिमा को प्रकट करना है। कहा गया है कि टीकाए रचने के समय अधिक परिश्रम और चिरकाल आयबिल तप के कारण आपका शरीर व्याधिग्रस्त और जर्जरित हो गया। अनशन करने का विचार करने पर शासनदेवी ने कहा कि सेढी नदी के पार्श्ववर्ती खोखरा पलाश के नीचे भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। आपकी स्तवना से वह प्रतिमा प्रकट होगी। उस प्रतिमा के स्नात्रजल से आपकी सारी व्याधि मिट जायगी। शासनदेवीके निर्देशानुसार उन्होंने "जयतिहु-अण" स्तोत्र द्वारा भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट की। आज भी यह स्तोत्र प्रतिदिन खरतरगच्छ मे प्रतिक्रमण में बोला जाता है।

सुमतिगणि रचित गणधर सार्धशतक बृहद् वृत्ति जिनपालोपाध्याय कृत युगप्रधानाचार्य गुर्वावली, जिन-प्रभसूरि कृत विविध तीर्थकल्प एव सोमधर्म रचित ८८देश-

सप्तति के अनुसार पार्श्वनाथ प्रतिमा का प्रकटीकरण होने के पश्चात् नवाङ्गी टीका रची गई थी और प्रभावक चरित्र, प्रबंधचिन्तामणि व पुरातन प्रबन्ध संग्रह के अनुसार नवाङ्गी टीका पूरी होने के बाद प्रतिमा का प्रकटन हुआ।

आचारांग और सूयगडांग दो आगमों पर शीलांकाचार्य की टीकाएं हैं, बाकी नवांग सूत्रों पर आपने टीका लिखकर जैन शासन की महान् सेवा की है। टीकाएं बहुत ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ग्रन्थ पंचाशक वृत्ति, व कई ग्रन्थों के भाष्य बनाये थे। आपके रचित कई स्तोत्र, प्रकरणादि भी प्राप्त है।

अभयदेवसूरिजी ने अनेक विद्वान तैयार किये, जिनमें से वर्द्धमानसूरि रचित आदिनाथचरित, मनोरमा आदि प्राकृत भाषा के महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे है। श्रीजिनवल्लभ गणि को आपने आगमादि का अभ्यास करवाके बहुत ही योग्य विद्वान और कवि बना दिया। इन जिनवल्लभसूरि की प्राप्त समस्त रचनाओं का संग्रह और उनका आलोचनात्मक अध्ययन महोपाध्याय विनयसागरजी ने किया है। उनके इस शोधकार्य पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें महोपाध्याय पद से विभूषित किया है।

आचार्य अभयदेवसूरि सर्वगच्छमान्य थे। उनका चरित्र खरतरगच्छ की गुर्वावलि-पट्टावलियों के अतिरिक्त अन्य गच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभावक-चरित्र मे एक स्वतंत्र प्रबन्ध के रूप मे ग्रथित किया है। इसी तरह तपागच्छीय सोमधर्म ने उपदेश-सप्तति में भी उनका प्रबन्ध लिखा है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में भी एक उनका प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। इन तीनों प्रकाशित प्रबन्धों के अतिरिक्त मेरुतुंगसूरि रचित स्तंभ पार्श्वनाथ चरित्र के अन्तिम प्रबन्ध में भी अभयदेवसूरि की कथा दी है। अप्रकाशित होने से उस कथा को नीचे दिया जा रहा है।

"प्रभावकपरम्परायां श्रीचन्द्रगच्छे श्रीसुविहित-शिरोवतंस वर्द्धमानसूरिनामा वढवाणनगरे विहार कुर्वन्नाययौ। लब्धसोमेश्वरस्वप्नं सोमेश्वरनामा द्विजाति, प्रभाते वर्द्धमानसूरिरूप ईश्वरोऽय साक्षादेष भगवानाचार्य। इति स्वप्नादेशप्रमाणेन प्रतिपद्यतस्यां यात्रासम्पूर्णो मन्यमान आचार्यान्तिके शिष्यो जात, पादाभिषिक्तः काले जातो जिनेश्वरसूरिनामा। तस्य शिष्य श्रीमदभयदेवसूरिर्नवाङ्गवृत्तिकार। सोऽपि कर्मोदयेन कुष्ठी जात। श्रुतदेवतादेशात् दक्षिणदिग्विभागात् धवलक्के समागत्य संघयात्रया श्रीस्तम्भ नायक प्रणतु स सूरिरागत। ११३१ वर्षे श्री स्तम्भनायक प्रकटीकृत.। ग्रामभट्टेन वोहात्रेन सहीयड एष पूज्यमानः। प्रतिदिनं ग्रामभट्टकपिलया गवा निजोधस्यक्षरत् पयोधारया संजायमानस्नपनस्वरूपोऽभूत्। तदा च श्रीमदभयदेवसूरिणा जयतिहुअण द्वात्रिंशतिका सर्वजिनशासन भक्त दैवतगण प्रौढप्रतापोदयात् गुप्तमहामन्त्राक्षरा पेठे षोडशे च काव्ये स सूरिरशोकबालकुन्तल समपुद्गल श्री जिनस्वामी च पलाशवृक्षमूलात् आविरास। तत शासनप्रभावको जातः। १३६८ वर्षे इद च बिम्ब श्री स्तम्भ तीर्थे समायातो भविकानुग्रहणाय। इत्थ कालापेक्षया नानाभक्त्यै नाना नामग्राह नानाभक्त्या पूजितोऽयं परमेश्वर। सर्वार्थसिद्धिदाता जातस्तेषां द्वात्रिंशता प्रबन्धैर्बद्ध श्रीस्तम्भनाथ चरितमिद। श्री पत्र द्विरोडशोऽभूत् बन्धोऽभयदेवसूरिकथा ॥ ३२ ॥

इति अमन्द जगदानन्द दायिनि आचार्य श्री मेरुतुंगविरचिते देवाधिदेव माहात्म्य शास्त्रे श्री स्तम्भनाथ चरिते द्वात्रिंशत्प्रबन्धबन्धुरे द्वात्रिंशत्तम प्रबन्ध समर्थित। समाप्त चेद श्रीस्तम्भनाथचरितम्।

सं० १४१३ के उपर्युक्त प्रबन्ध में स्तम्भन पार्श्वनाथ के प्रकटीकरण का समय सं० ११३१ दिया है इससे नवांगवृत्ति रचना के बाद ही यह घटना हुई—सिद्ध होता है। अभयदेवसूरिजी का स्वर्गवास सं० ११३५ या सं०११३९ में कपड़वंज मे हुआ। खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार आप

चतुर्थ देवलोक में है और तीसरे भव में मोक्षगामी होंगे यथा —

"भणिय तित्थयरेहिं महाविदेहे भवमि तइयम्मि ।
तुम्हाण चेव गुरुणो सिग्घ मुत्ति गमिस्सति ॥१॥
कर्प्पटवाणिज्ये नगरे श्रीअभयदेवादिवम्
गता. चतुर्थ देवलोके विजयिन सन्ति।"

आचार्य श्रीअभयदेवसूरिजी की निम्नोक्त रचनाएँ प्राप्त हैं

१ स्थानांग वृत्ति (सं० ११२० पाटण)	१४२५०
२ समवायाङ्ग वृत्ति (स० ११२० पाटण)	३५७५
३ भगवती वृत्ति (स० ११२८ ,,)	१८६१६
४ ज्ञाता सूत्र वृत्ति (स० १-२० विजया-दशमी, पाटण)	३८००
५ उपाशक दशा सूत्र वृत्ति	८१२
६ अतकृद्दशा सूत्र वृत्ति	८९९
७ अनुत्तरोपपातिक सूत्र वृत्ति	१९२
८ प्रश्नव्याकरण सूत्र वृत्ति	४६००
९ विपाक सूत्र वृत्ति	९००
१० उववाइ सूत्र वृत्ति	३१२५
११ प्रज्ञापना तृतीय पद सग्रहणी	१३३
१२ पञ्चाशक सूत्र वृत्ति (सं० ११२४ धोलका)	७४८०
१३ सप्ततिका भाष्य	१९२
१४ वृहद् वन्दनक भाष्य	३३
१५ नवपद प्रकरण भाष्य	१५१
१६ पच निग्रन्थी	
१७ आगम अष्टोत्तरी	
१८ निगोद षट्त्रिशिका	
१९ पुद्गल षट्त्रिशिका	
२० आराधना प्रकरण	गा० ८५
२१ आलोयणा विधि प्रकरण	गा० २५
२२ स्वधर्मी वात्सल्य कुलक	
२३ जयतिहुअण स्तोत्र	गा० ३०
२४ पार्श्ववस्तु स्तव [देवदुत्थिय]	गा० १६
२५ स्तभन पार्श्व स्तव	गा० ८
२६ पार्श्व विज्ञप्तिका (सुरनर किन्नर०)	गा०
२७ विज्ञप्तिका (जेसलमेर भण्डार)	प० २६
२८ षट् स्थान भाष्य	गा० १७३
२९ वीर स्तोत्र	गा० २२
३० षोडशक टीका	पत्र ३१
३१ महादण्डक	
३२ तिथि पयन्ना	
३३ महावीर चरित (अपभ्रंश)	गा० १०८
३४ उपधानविधि पचाशक प्रकरण	गा० ५०

आचार्य अभयदेवसूरि के महत्त्व को व्यक्त करते हुए द्रोणाचार्य कहते हैं —

आचार्या प्रतिसद्म सन्ति महिमा येषामपि प्राकृते,
मातुं नाऽध्यवसीयते सुचरितैस्तेषा पवित्र जगत् ।
एकेनाऽपि गुणेन किन्तु जगति प्रज्ञाधना साम्प्रत,
यो धत्तेऽभयदेवसूरिसमता सोऽस्माकमावेद्यताम् ॥

[युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृ० ७]

प्रकाण्ड विद्वान और कवि-श्रेष्ठ श्रीजिनवल्लभसूरि

नवाङ्गवृत्तिकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि के पट्टधर श्री जिनवल्लभसूरि जैन-शासन के महान् ज्योतिर्धर थे। उन्होने चैत्यवास का परित्याग कर अभयदेवसूरिजी से उपसम्पदा ग्रहण की। ये एक क्रान्तिकारी आचार्य और विशिष्ट विद्वान थे, जिन्होंने विधिमार्ग के प्रचार मे प्रवल पुरुषार्थ किया और अनेको महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण कर जैन साहित्य का गौरव वढाया। कूर्चपुरीय चैत्यवासी आचार्य श्री जिनेश्वर के आप शिष्य थे। व्याकरणादि समस्त साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् जैनागमादि साहित्य मे निष्णात होने के लिए वाचनाचार्य पद देकर इनके गुरु जिनेश्वराचार्य ने अभयदेवसूरिजी के पास भेजा। अभयदेवसूरि ने इनकी विनयशीलता, असाधारण प्रतिभा को देख कर वडे आत्मीय भाव से आगमादि का अध्ययन करवाया। इतना ही नही, अभयदेवसूरि के एक भक्त दैवज्ञ ने इन्हें ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करवा कर उस विषय मे भी निष्णात वना दिया।

अभयदेवसूरि के पास अध्ययन समाप्त कर जब ये अपने गुरु के पास जाने लगे तो उन्होंने कहा कि सिद्धान्तों के अध्ययन का यही सार है कि तदनुसार आचार का पालन किया जाय। विद्यागुरु की इस हित-शिक्षा को उन्होंने गांठ वाँध ली और अपने गुरु जिनेश्वर से मिलकर चैत्यवास त्याग की आज्ञा प्राप्त कर पाटण — लौट आये और अभयदेवसूरिजी से उपसम्पदा ग्रहण कर ली। इसके वाद चित्तौड आये और चैत्यवासियों को निरस्त कर पार्श्वनाथ और महावीर चैत्यों की स्थापना की। तदनन्तर नागपुर और नरवर मे भी विधि-चैत्य स्थापित किये। मेवाड, मालव, मारवाड और वागड आदि प्रदेशो मे इन्होंने सुविहित मार्ग का खूब प्रचार किया। इनके ज्योतिष-ज्ञान और विद्वता की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई। धारा-नरेश नरवर्म ने एक विद्वान की दी हुई समस्यापूर्त्ति अपने सभा-पण्डितों से न होते देख, दूरवर्त्ती श्री जिनवल्लभसूरि को वह समस्या पद भेजा, जिसकी सम्यक् पूर्त्ति से नृपति बहुत प्रभावित हुए और उनके भक्त हो गए।

जिनवल्लभगणि को स० ११६७ मिती आषाढ शुक्ला ६ को चित्तौड के वीर विधि-चैत्य में कथाकोष आदि के निर्माता देवभद्रसूरि ने आचार्य पद देकर अभयदेवसूरि का पट्टधर घोषित किया। पर चार मास ही पूरे नही हो पाये और मिती कार्तिक कृष्ण १२ को इनका स्वर्गवास हो गया।

जिनवल्लभसूरि को परवर्त्ती विद्वानों ने कालिदास के सदृश कवि बतलाया है। प्राकृत, सस्कृतादि भाषाओं मे इनकी पचासो रचनायें प्राप्त हैं, इनमें से कई सैद्धान्तिक रचनाओ का तो अन्यगच्छीय विद्वान आचार्यों ने टीकाएं रच कर इनकी महत्ता को स्वीकार किया है।

चैत्यवास के प्रभाव से जैन मन्दिरो में जो अविधि का प्रवर्त्तन हो गया था उसका निषेध करते हुए विधिचैत्यो के नियमो को इन्होने शिलोत्कीर्ण करवाया। सवेगरगशाला के सशोधन में भी इनका योग रहा। आपके शिष्यों में रामदेव, जिनशेखरादि कई विद्वान थे। आचार्य देवभद्रसूरि ने सोमचन्द्र गणि को इनके पट्ट पर स्थापित कर जिनदत्तसूरि नाम से प्रसिद्ध किया।

जिनवल्लभसूरिजी की जीवनी और उनके ग्रन्थों के सम्बन्ध मे महो० विनयसागरजी लिखित अध्ययन पूर्ण शोध-प्रबन्ध प्रकाशनाधीन है।

—अगरचंद नाहटा

योगीन्द्र युगप्रधान दादा श्रीजिनदत्तसूरि

[स्वर्गीय उपाध्याय मुनि श्री सुखसागरजी महाराज]

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति है उस देश की सन्तपरम्परा, जिसमें उसकी आत्मा साकार दीखती है। इसलिए सत को हम इस देश की परम्परा का जीवित प्रतीक मान लें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक सत जीवन का अन्तःपरीक्षण या विहंगावलोकन उस समय के सम्पूर्ण मानवीय विकासात्मक परम्पराओं के तलस्पर्शी अनुशीलन पर निर्भर है। आचार्य श्री जिनदत्तसूरि उपर्युक्त परम्परा के एक ऐसे ही उदारचेता व्यक्तित्व-संपन्न महापुरुष हैं। आचार्य श्री बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के महापुरुष थे। तत्कालिक सतों मे साहित्यिकों एव तत्व-विदो मे इनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है।

क्रान्ति उनके जीवन का मूलमन्त्र था। जिनदत्त-सूरिजी एक ऐसी विद्रोहात्मक परम्परा के उद्घोषक थे जिन्होंने क्रान्ति के जयघोष द्वारा अतीत मे प्रेरणा लेकर भविष्य की शुद्ध परम्परा की नीव डाली। यह उनके प्रखर व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि तात्कालिक विकृति-मूलक परम्पराओं का परिष्कार एव सास्कृतिक सूत्रमे आवद्ध कर जैनधर्म एव मुनि समाज पर आयी हुई विपत्तियों का कुशलतापूर्वक सामना किया। जैन-सस्कृति के नवयुग प्रवर्त्तकों में ऐसे महापुरुष की गणना होती है। श्री जिनदत्तसूरिजी सत्याश्रित-खरतरगच्छीय परम्परा के एक ऐसे सुदृढ स्तभ थे, जिन्होने अपने व्यक्तित्व, साधना और प्रकाण्ड पाण्डित्य के वल पर समाज मे जो श्रद्धा का स्थान प्राप्त किया है, वह आज भी अमर है।

इनका जन्म गुजरात प्रान्तीय धवलकपुर (धोलका) नामक ऐतिहासिक नगर मे हुँवड़ जातीय श्रेष्ठिवर्य वाछिग की धर्मपत्नी वाहडदेवी की रत्नकुक्षि से स० ११३२ में हुआ था। सुविहित मार्ग प्रकाशक श्रीजिनेश्वरसूरिजी के विद्वान शिष्य धर्मदेव उपाध्याय की आज्ञानुवर्तिनी आर्याओ का वहाँ पर आगमन हुआ। शुभ लक्षण युक्त तेजस्वी बालक को देख पुलकित मन से माता को विशेष रूप से धर्मोपदेश देकर शासन-सेवा के प्रति उसमे वातावरण को तैयार हुआ जानकर सूचित पुत्र को गुरु महाराज की सेवा में समर्पित करने की याचना की। जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के रूपमें जीवन व्यतीत करना है वहाँ स्वार्थ पनपता है। जहाँ व्यक्ति समष्टि के लिए जीवनोत्सर्ग करता है वहाँ वह अमर हो जाता है। वाहडदेवी को अपने पुत्र को गुरु समर्पित करते हुए तनिक भी दु ख नहीं हुआ अपितु हर्ष हुआ। उसने सोचा कि एक पुत्र यदि सस्कृति की विकासात्मक परम्परा को वल देता है और सारे समाजकी सास्कृतिक गौरव गरिमा की रक्षा व वृद्धि के लिए कठोरतम साधना स्वीकार करता है तो इस वात से वढकर और सौभाग्य की बात हो ही क्या सकती है ? कालान्तर से धर्मदेवोपाध्याय धवलकपुर पधारे और इसे दीक्षित कर सोमचन्द्र नाम से अभिषिक्त किया। विकास के लक्षण बाल्यकाल से हो अकुरित होने लगते हैं। विद्याध्ययन के क्षेत्र मे इनकी प्रतिभा का लोहा अध्यापक वर्ग भी मानते थे। इनकी वडी दीक्षा अशोक-चन्द्राचार्य के करकमलो द्वारा सम्पन्न हुई जो कि जिनेश्वरसूरि के शिष्य सहदेवगणि के शिष्य थे। हरिसिंहाचार्य के श्रीचरणों में बैठकर आपने सैद्धान्तिक वाचना प्राप्त कर कई मत्रादि पुस्तको के साथ ऐसा ऐतिहासिक प्रतीक प्राप्त किया जो आचार्यवर्य के विद्याध्ययन मे काम आता था।

श्रीजिनवल्लभसूरिजी के स्वर्गवास के बाद उनके पदपर देवभद्राचार्य ने सोमचन्द्र गणि को स० ११६९ वैसाख कृष्ण ६ शनिवार को चितौड के वीरचैत्य मे प्रतिष्ठित किया और उनको श्री जिनदत्तसूरि नाम से अभिषिक्त किया।

श्रीजिनदत्तसूरि मे श्रीजिनवल्लभसूरिजी के कुछ गुणो का अच्छा विकास पाया जाता है। वे अनागमिक किसी भी परम्परा के विरुद्ध शिर ऊँचा करने में सकुचित नही होते थे। आयतन अनायतन जैसे विषयो का स्पष्टीकरण इन तथ्यो को स्पष्ट कर देता है।

आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के मन मे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही एक बात की चिन्ता उन्हें लगी कि अब शासन का विशिष्ट प्रभाव फैलाने के लिए मुझे किस ओर जाना चाहिए। आचार्य के हृदय मे यदि विराट और प्रशस्त भावना न जगे तो उसमें विश्वकल्याण को छोडकर स्वकल्याण की कल्पना भी असम्भव है। आचार्यवर राजस्थान की ओर प्रस्थित हुए। आप क्रमश अजमेर पधारे। यहा के राजा अर्णोराज ने आपको उचित सम्मान दिया। श्रावको की विशेष प्रेरणा व महाराज के सदुपदेश से उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण दिशा की ओर पर्वत के निकट देवमन्दिर वनवाने की भूमि प्रदान की। अर्णोराज आपको वहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। अम्बडश्रावक की आराधना द्वारा अम्बिकादेवीने आपको युगप्रधान महापुरुष घोषित किया था।

युगप्रवर के अद्भुत कार्य

यों तो आपने अपने कर्मक्षेत्र में अधिकतर मनुष्यों को सत्पथ पर लाने का सुयश प्राप्त किया, पर आपका सुकुमार हृदय अनुकम्पा से ओत-प्रोत होने के कारण एक लाख तीस हजार से भी अधिक व्यक्तियों को अपनी तेजोमयी औपदेशिक वाणी से हिंसात्मक वृत्तियों का परित्याग करवा जैन धर्म मे दीक्षित किया। ये मनुष्य विभिन्न जातियों के थे, कर्ममूलक संस्कारोंमें विश्वास करने वाली जैन परम्परा के लिए जातिवाद का प्रश्न ही उपस्थित नही होना चाहिए। क्योंकि वर्णव्यवस्था के विरोध में ही सम्पूर्ण श्रमणपरम्परा का शताब्दियों से वल लग रहा है।

जिनदत्तसूरिजी जैसे युगपुरुष के प्रखर व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि चैत्यवासियो का प्रचण्ड विरोध होते हुए भी नूतन चैत्य-निर्माण की पुरातन परम्परा को सभाले रखा। आचार्यश्री ने इतने विराट समुदाय को न केवल शातिमार्ग का उपासक ही बनाया अपितु उनके लिए समुचित सामाजिक व्यवस्था का भी निर्देश किया।

उनका चारित्र्य या सयम इतना उज्ज्वल था कि उनके तात्कालिक विचार का विरोधी भी लोहा मानते थे। परिणाम स्वरूप चैत्यवासी जयदेवाचार्यादि विद्वानों ने आचारमूलक शैथिल्य का परित्याग कर सुविहित-मार्ग स्वीकार किया।

आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के बहुमुखी व्यक्तित्व पर दृष्टि केन्द्रित करने पर विदित होता है कि वे न केवल उच्च कोटि के नेतृत्वसम्पन्न व्यक्ति थे, अपितु सयमशील साधक होने के साथ-साथ शुद्ध साहित्यकार भी थे। आचार्यवर्य की अधिकतर कृतियां मानव जीवन को उच्चस्तर पर प्रतिष्ठापित करने से सम्बद्ध हैं। एव उस समय के चरित्रहीन धर्मगुरुओं के प्रति विद्रोह की चिनगारी है। तथापि सामाजिक इतिहास की सामग्री कम नहीं है।

आचार्यश्री की साहित्यिक कृतियाँ सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में मिलती है जिनका न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्त्व है अपितु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी अध्ययन के तथ्य प्रस्तुत करते हैं। आचार्यवर्यश्री के साहित्य को अध्ययन की विशेष सुविधाओं के लिए स्तुतिपरक व उपदेशिक इस तरह दो भागो मे विभक्त कर सकते है। प्रथम भागमे उन कृतियो का समावेश है जो स्तुति, स्तोत्र साहित्य से सबद्ध है। इन कृतियो से परिलक्षित होता है कि आचार्यवर्य एक भावुक कलाकार थे। पूर्वजो के प्रति विश्वस्त

भावनाओं को लिये हुए थे, महान पुरुषों के प्रति उनके हृदय में अपार आदर और श्रद्धाभाव था। स्वय उच्च-कोटि के विद्वान साहित्यशील एव युगप्रवर्त्तक होते हुए भी इनकी विनम्रता स्तुति साहित्य मे भलीभाँति परिलक्षित होती है। यों तो सर्वाधिष्ठायी स्तोत्र, सुगुरु पारतन्त्र्य स्तोत्र, विघ्न-विनाशी स्तोत्र, श्रुतस्तव, अजितशांति स्तोत्र, पार्श्वनाथ मत्र गर्भित स्तोत्र, महाप्रभावक स्तोत्र, चक्रेश्वरी स्तोत्र, सर्वजिन स्तुति आदि रचनाए उपलब्ध है। उन सब मे गणधर-सार्धशतक का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान महावीर से लेकर तत्काल तक के महान आचार्यों का गुणानुवाद इस कृतिमें कर स्वय भी कालान्तर से उस कोटि मे आ गये है। यद्यपि आचार्यवर्य की यह कृति बहुत बडी नही है पर उपयोगगिता और इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व की है।

साधक की वाणी ही मत्र है। आचार्य श्रीजिनदत्त-सूरिजी रुद्रपल्ली जाते हुए एक गाँव में ठहरे। वहाँ एक अनुयायी गृहस्थको व्यन्तर देव के द्वारा उत्पीडित किया जाता था। गणधर-सप्ततिका एक टिप्पणी के रूप मे लिखकर श्रावक को दी गई उससे न केवल वह पीडा से ही मुक्त हुआ, अपितु परिस्थितिजन्य आचार्यवर्य का यह ग्रन्थ भावी मानव समाज के लिए एक अवलबन बन गया।

आचार्य श्री के सम्मुख एक समस्या तो वीतराग के मौलिक औपदेशिक परम्पराओं की सुरक्षा की थी तो दूसरी ओर विरोधियों द्वारा अज्ञानमूलक उपदेश के परिहार की भी। गुरुदेव के औपदेशिक साहित्य में तत्कालीन सघर्षों के बीज मिलते है।

सन्देहदोलावली प्राकृत की १५० गाथाओ मे गुम्फित है। सम्यक्त्व प्राप्ति, सुगुरु व जैन दर्शन की उन्नति के लिए यह कृति उत्कर्ष मार्ग का प्रदर्शन करती है एव तात्कालिक गृहस्थो को सुगुरुजनो के प्रति किस प्रकार व्यवहार करें, एव पासत्थों के प्रति किस प्रकार रहें आदि बातें बड़े विस्तार के साथ कही गई हैं। इसका अपर नाम सशयपद प्रश्नोत्तर भी है। कहा जाता है कि भटिण्डा की एक श्राविका के सम्यक्त्व मूलक कुछ प्रश्न थे जिसके उत्तर मे सूरिजी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। इससे पता चलता है कि उनकी अनुयायिनी श्राविकाएँ कितनी उच्चतम उत्तरो की अधिकारिणी थी।

चैत्यवदनकुलक तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए विशेष पठनीय है। जिसमें श्रावको के दैनिक कर्त्तव्य, साधुओ के प्रति भक्ति, आयतन आदि का विवेचन खाद्य-अखाद्यादि विषयों का सकेतात्मक उल्लेख है।

आचार्यवर्य के उपदेश धर्मरसायन, कालस्वरूपकुलक और चर्चरी ये तीनों ग्रन्थ अपभ्रश मे रचे हुए है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन योग्य हैं ही। इन ग्रन्थों मे उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य शास्त्रीय अवगाहन व गभीर चिन्तन परिलक्षित होता है।

उत्सूत्र पदोद्‌घाटनकुलक, उपदेशकुलक साधक और श्रावकों के आचारमूलक जीवन पर सुन्दर प्रकाश डालते है। इनके अतिरिक्त अवस्थाकुलक, विंशिका पद व्यवस्था, वाडीकुलक, शातिपर्व विधि, आरात्रिकवृत्तानि और अध्यात्मगीतानि आदि कृतियाँ उपलब्ध हैं।

आचार्यवर्य भ्रमण करते हुए भारत विख्यात ऐतिहासिक नगर अजमेर पधारे। यही पर वि० स० १२११ मे आपका अवसान हुआ। अजमेर से वैसे भी आपका सबन्ध काफी रहा है क्योंकि आपके पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी की दीक्षा भी स० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ३ को अजमेर मे ही हुई थी।

जैन समाज के समस्त प्रभावशाली आचार्यों में इनका स्थान इतना उच्च रहा है एव इतने स्तुति-स्तोत्र द्वारा श्रद्धालु व्यक्तियों ने इनके चरणो पर श्रद्धाजलि समर्पित की है जो सम्मान किसी भी महापुरुष को प्राप्त नही है। ये जैन समाज के हृदय सिंहासन पर इतने प्रतिष्ठित है कि इनके चरण व दादावाडी हजारों की सख्या मे पायी जाती है।

(अभिभाषण से सकलित)

मणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी के पट्टालंकार मणिधारी श्रीजिनचद्रसूरिजी ने अपने असाधारण व्यक्तित्व एवं लोकोत्तर प्रभाव के कारण अल्पायु मे ही जो प्रसिद्धि प्राप्त की वह सर्वविदित है। ये महान् प्रतिभाशाली एव तत्त्ववेत्ता विद्वान आचार्य थे।

इनका जन्म सवत् ११९१ भाद्रपद शुक्ल ८ के दिन जेसलमेर के निकट विक्रमपुर नगर में हुआ। इनके पिता साह रासलजी एव माता देल्हणदेवी थी। जन्म से ही ये अधिक सुन्दर थे, जिसके कारण सहज ही सर्वसाधारण के प्रिय हो गये।

सयोगवश विक्रमपुर में युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास की अवधि मे सूरिजी के अमृतमय उपदेशों को सुनने के लिये जहाँ नगरवासी भारी सख्या में जाते थे, वहाँ देल्हणदेवी भी प्रतिदिन प्रवचनामृत का पान करती हुई अपने जीवन को धन्य मानती थी। देल्हणदेवी के साथ उसके पुत्र (हमारे चरित्रनायक) भी रहते थे। एक दिन देल्हणदेवी के इस बालक के अन्तर्हित शुभ लक्षणों को देखकर आचार्य देव ने अपने ज्ञानबल से यह जान लिया कि "यह प्रतिभासम्पन्न बालक सर्वथा मेरे पट्ट के योग्य है। निस्सन्देह इसका प्रभाव लोकोत्तर होगा एव निकट भविष्य में ही गच्छनायक का महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करेगा।" बालक संस्कारवान तो था ही, उसका मन इतनी कम आयु के होते हुए भी विरक्ति की ओर अग्रसर होने लगा। अन्तत विक्रमपुर से विहार करने के पश्चात् अजमेर मे स० १२०३ फाल्गुन शुक्ल नवमी के दिन श्री पार्श्वनाथ विधिचैत्य मे प्रतिभासम्पन्न इस बालक को आचार्यजी ने दीक्षित किया। दीक्षा के समय इस बालक की आयु मात्र ६ वर्ष की थी।

दीक्षित होने के पश्चात् दो वर्ष की अवधि में ही किये गये विद्याध्ययन से आपकी प्रतिभा चमक उठी। फलत आपकी असाधारण मेधा, प्रभावशाली मुद्रा एव आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर दीक्षित होने के दो वर्ष पश्चात् ही सवत् १२०५ में वैशाख शुक्ल ६ के दिन विक्रमपुर के श्री महावीर जिनालय में युगप्रधान आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी ने आपको आचार्य पद प्रदान कर श्री जिनचन्द्रसूरि जी के नाम से प्रसिद्ध किया। आचार्य पद का यह महामहोत्सव इनके पिता साह रासलजी ने ही भव्य समारोह के साथ किया था।

युगप्रधान गुरुदेव दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अपने विनयी शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरि को शास्त्रज्ञान आदि के साथ ही गच्छ सचालन आदि की भी कई शिक्षाऐं दी। आपने इनको विशेष रूप मे यह भी कहा था कि "योगिनीपुर दिल्ली मे कभी मत जाना।" क्योंकि आचार्यदेव यह जानते थे कि वहां जाने पर श्रीजिनचन्द्रसूरि को अल्पायु योग है।

सवत् १२११ मे आषाढ शुक्ल ११ को अजमेर में श्री जिनदत्तसूरिजी का स्वर्गवास हो गया तब अल्पायु मे ही सारे गच्छ का भार आप के ऊपर आ गया एवं अपने गुरुदेव के समान आप भी कुशलतापूर्वक सफलता के साथ इस गुरुतर भार को वहन करने में लग गये।

गच्छ-भार को वहन करते हुए आपने विविध ग्रामों एव नगरों में विहार कर धर्म प्रचार करना प्रारभ किया। फलस्वरूप आप के उपदेशों से प्रभावित होकर कई श्रावकों एव श्राविकाओ ने दीक्षाएँ ग्रहण कीं।

आचार्यदेव धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र

भावी पट्टधर सम्बन्धी श्री जिनदत्तसूरिजी से पृच्छा

माता देल्हणदेवी और गर्भस्थ मणिधारीजी को वंदनार्थ रामदेव का
विक्रमपुर आगमन (सं० ११९७)

रासल श्रेष्ठी द्वारा मणिधारीजी को श्री जिनदत्तसूरि के चरणो मे समर्पण
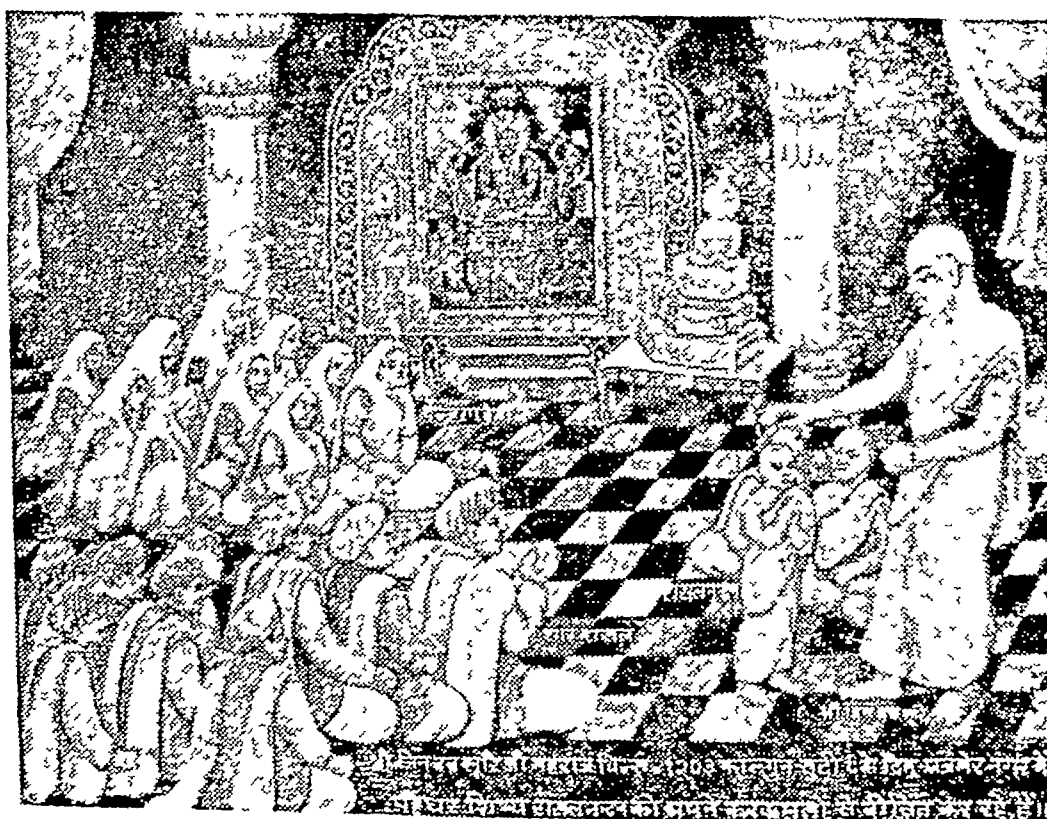
सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ९ के दिन अजमेर मे श्री जिनदत्तसूरिजी द्वारा मणिधारी जी को दीक्षित करना
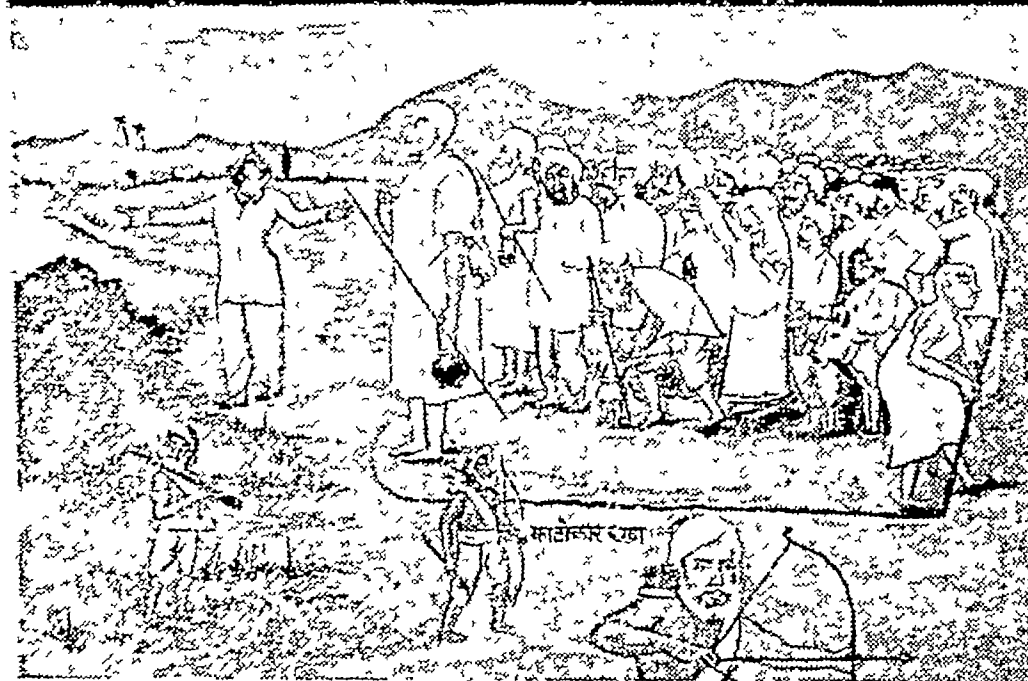
चोरसिदान के मार्ग मे मणिधारीजी द्वारा मलेच्छों से संघ की रक्षा

निर्याण विमान मे मणिधारी जी का अन्तिम दर्शन
दिल्ली मे स्वर्गवास स० १२२३ द्वितीय भाद्र कृष्ण १४

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के अन्तिम दर्शन
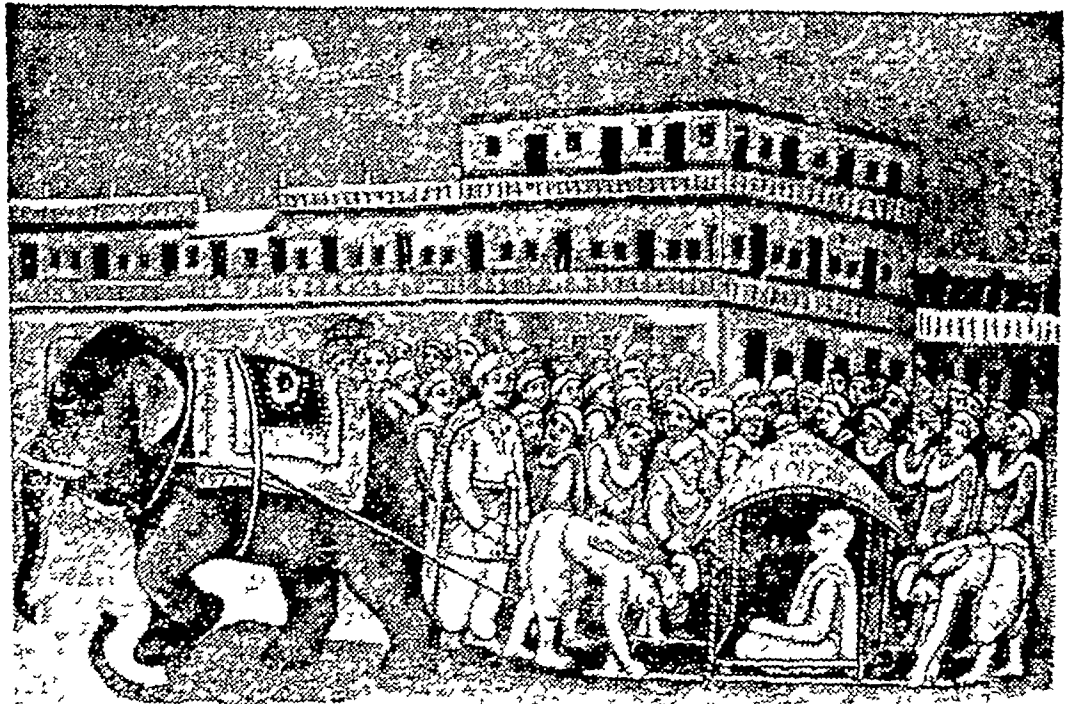
मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि की अन्तिम आराधना व शिक्षा

के भी पारंगत विद्वान थे। इसके साथ ही आपने कई चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ भी प्राप्त की थी।

एक बार सघ के साथ विहार कर जब दिल्ली की ओर पधार रहे थे तो मार्ग में चोरसिदान ग्राम के समीप सघ ने अपना पडाव डाला। उसी समय सघ को यह मालूम हुआ कि कुछ लुटेरे उपद्रव करते हुए इधर ही आ रहे हैं। इस समाचार से सभी भयभीत हो घबराने लगे। इस प्रकार सघ को भयातुर देखकर सूरिजी ने कारण पूछा कि आप भयभीत क्यों हैं? किस कारण से घबरा रहे है? जब आचार्यदेव को यह ज्ञात हुआ कि ये म्लेच्छोपद्रव से व्याकुल हैं, तो उन्होंने तत्काल ही कहा—"आप सब निश्चिन्त रहें, किसी का कुछ भी अहित होने वाला नही है। प्रभु श्री जिनदत्तसूरिजी सब की रक्षा करेंगे।"

इसके पश्चात् आपने मन्त्रध्यान कर अपने दण्ड से सघ के चारों ओर कोट के आकार की रेखा खीच दी। इसका प्रभाव यह हुआ कि सघ के पास से जाते हुए उन म्लेच्छों (लुटेरों) को सघ ने भली प्रकार देखा, किन्तु उनकी दृष्टि संघ पर तनिक भी न पडी। इस प्रकार मार्ग मे म्लेच्छोपद्रव के भय से सघ मुक्त होकर आचार्य श्री के साथ विहार करता हुआ क्रमश दिल्ली के समीप पहुँच गया।

आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी के दिल्ली पधारने की सूचना पाकर जब सुन्दर वेशभूषा मे सुसज्जित होकर नगरवासी एव सौभाग्यवती स्त्रियाँ मगलगान गाती हुई आचार्य जी के दर्शनार्थ जाने लगीं तो उन्हें जाते देखकर राजप्रासाद मे बैठे हुए महाराज मदनपाल ने अपने अधिकारियों से पूछा कि नगर के ये विशिष्ट जन कहा जा रहे हैं? उन्होंने कहा—"राजन्! ये लोग अपने गुरुदेव के स्वागतार्थ जा रहे हैं। आज उनका हमारे नगर के निकट ही पदार्पण हुआ है। गुरुदेव अल्पवयस्क होते हुए भी धर्म के प्रकाण्ड वेत्ता, प्रभावशाली तथा सुन्दर आकृति वाले है।" यह सुनकर महाराज के मन में भी गुरुदेव के दर्शन की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई एव वे सदलबल श्रावक-श्राविकाओ से पूर्व ही आचार्य देव के दर्शनार्थ पहुच गये और नगर मे पधारने की विनति की।

आचार्यश्री अपने गुरुदेव युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के दिये हुये उपदेश को स्मरण करते हुए दिल्ली नगर मे प्रवेश न करने की दृष्टि से मौन रहे। उन्हें मौन देख कर पुन महाराज ने विशेष अनुरोध किया तो अन्त में आपने नगर में पदार्पण कर महाराज मदनपाल की मनोकामना पूरी की। यद्यपि आचार्यश्री को अपने गुरुदेव की दिल्ली न जाने की आज्ञा का उलघन करते हुए मानसिक पीडा का अनुभव हो रहा था, तथापि भवितव्यता के कारण आपको दिल्ली नगर मे पदार्पण करना ही पडा। वहां कुछ समय तक आपने अपने उपदेशों से भव्य जीवों का कल्याण करते हुए आयुशेष निकट जान कर स० १२२३ भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी को चतुर्विध सघ से क्षमायाचना की एव अनशन आराधना के पश्चात् आप स्वर्ग सिधार गये।

अन्तिम समय मे आपने श्रावकों के समक्ष यह भविष्यवाणी की कि— "नगर से जितनी दूर मेरा सस्कार किया जावेगा, नगर की बसावट बसती उतनी ही दूर तक बढती जायगी।"

इस सम्बन्ध मे यह भी कहा जाता है कि आचार्य श्री ने अपने स्वर्गवास के पूर्व ही सघ को बुलाकर यह आदेश दिया था कि "मेरे विमान (रथी) को मध्य मे कही विश्राम मत देना एवं सीधे नगर से बाहर उसी स्थान पर ले जाकर विश्राम देना, जहाँ दाहसंस्कार करना है।" शोकाकुल सघने इस आदेश को भूलकर मध्य मे ही पूर्व प्रथानुसार विश्राम दे दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि तनिक विश्राम देने के पश्चात् जब विमान को उठाने लगे तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह उस स्थान से लेशमात्र भी नही सरका। राजा मदनपाल को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने हाथी के द्वारा विमान को उठवाने की व्यवस्था करवाई, किन्तु उसमे भी सफलता नही मिली।

अन्त में गुरुदेव का ही चमत्कार समझ कर महाराजा ने उसी स्थान पर अग्निसस्कार करने का राजकीय आदेश प्रदान किया।

इसके पश्चात् इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण घटना के कारण गुरुदेव का अग्निसस्कार उसी स्थान पर किया गया।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने इस प्रकार अपना मगलमय ऐहिक जीवनयापन कर अपने समय मे जिनशासन की उन्नति के साथ-साथ कई अलौकिक कार्य किये।

विशेषत: अपने चैत्यवासी पद्मचन्द्राचार्य जैसे वयोवृद्ध एव ज्ञानवृद्ध आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त कर तथा दिल्लीश्वर महाराजा मदनपाल को चमत्कृत करते हुए जो अभूतपूर्व कार्य किये निस्सन्देह वे आपकी उत्कृष्ट साधना के परिचायक ही हैं। इसके अतिरिक्त आपने महत्तियाण (मन्त्रिदलीय) जाति की स्थापना कर महान् उपकार किया। आपके द्वारा सस्थापित इस जाति की परम्परा के कई व्यक्तियो ने पूर्वदेश के तीर्थो का उद्धार कर शासन की महान् सेवायें की।

आचार्यदेव श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के ललाट में मणि थी, जिसके कारण ही 'मणिधारीजी' के नाम से आपकी प्रसिद्धि हुई। इस मणि के विषय मे पट्टावली मे यह उल्लेख मिलता है कि आपने अपने अन्त समय में श्रावकों से कह दिया था कि अग्निसस्कार के समय मेरे शरीर के निकट दूध का पात्र रखना जिससे वह मणि निकल कर उसमे आ जायगी, किन्तु गुरुवियोग की व्याकुलता से श्रावकगण ऐसा करना भूल गए एव भवितव्यतावश वह मणि किसी अन्य योगी के हाथ लग गई। कहा जाता है कि श्री जिनपतिसूरिजी ने उस योगी की स्तम्भित प्रतिमा प्रतिष्ठित कर उससे वह मणि प्राप्त कर ली थी।

वस्तुत मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी महान् प्रतिभाशाली एव चमत्कारी आचार्य थे, इसमे सदेह नहीं। केवल ६ वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण कर ८ वर्ष की अल्पायु में आचार्यपद प्राप्त कर लेना कम विस्मयकारक नही है। ऐसे युगप्रधान मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के प्रति हृदय से जितनी भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाय, थोडी है।

[श्रीजिनदत्तसूरि सेवासघ प्रकाशित दादागुरु चरित्र से]

[मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के महान् व्यक्तित्व का ज्ञान यु० प्र० श्री जिनदत्तसूरिजी को उनके माता के गर्भ मे आने से पूर्व ही हो गया था। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली मे जिनपालोपाध्याय ने लिखा है—"स्वज्ञानबल दृष्ट निज पट्टोद्धारकारि रासलाङ्गरुहाणा भास्करवद्विवोधित भुवन मण्डल भव्याम्भोरुहाणा" इस सकेतात्मक रहस्य का उद्घाटन करते हुए सतरहवी शताब्दी की गुर्वावली मे यह उल्लेख किया है कि एक बार सेठ रामदेव ने श्री जिनदत्तसूरिजी से पूछा कि आपकी वृद्धावस्था आ गई, आपके पट्ट योग्य शिष्य कौन है ? सूरिजी ने कहा— अभी तो वैसा कोई दिखाई नही देता। रामदेव ने पूछा—अभी नहीं है तो क्या कोई स्वर्ग से आवेंगे ? पूज्यश्री ने कहा—ऐसा ही होगा। रामदेव ने कहा—कैसे? आपने कहा—अमुक दिन देवलोक मे च्यव कर विक्रमपुर के श्रेष्ठी रासल की लघु धर्मपत्नी की कुक्षि में मेरे पट्टयोग्य जीव अवतीर्ण होगा। यह सुनकर कुछ दिन बाद रामदेव साढ पर चढ कर विक्रमपुर रासल श्रेष्ठीके घर पहुँचे। सेठ ने कुशलवार्त्तापूछने के पश्चात् आगमन का कारण पूछा। रामदेव ने कहा—आपकी लघुभार्या को बुलाइये। उसके आने पर रामदेव ने पट्ट पर बैठाकर देल्हणदेवी के कण्ठ में हार पहनाते हुए नमस्कार किया। रासल श्रेष्ठी के इसका कारण पूछने पर रामदेव ने जिनदत्तसूरि द्वारा ज्ञात, इनकी कुक्षिमें उनके पट्टयोग्य पुण्यवान् जीव के अवतीर्ण होने का हर्ष सवाद कह सुनाया। इस प्रकार श्री जिनदत्तसूरिजी ने इनकी विशिष्ट योग्यता गर्भ मे आने से पूर्व ही अपने ज्ञानबल से जान ली थी।

आपकी जीवनी के सम्बन्ध में हमारी "मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि" पुस्तक द्वितीयावृत्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है उसमें आपकी रचनाए 'व्यवस्थाशिक्षाकुलक" व स्तोत्रादि भी प्रकाशित हैं। —सम्पादक]

षट्त्रिंशत् वाद-विजेता श्रीजिनपतिसूरि

[महोपाध्याय विनयसागर]

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के पट्टधर षट्त्रिंशत् वाद विजेता श्रीजिनपतिसूरि का जन्म वि० स० १२१० विक्रमपुर में मालू गोत्रीय यशोवर्द्धन की धर्मपत्नी सूहवदेवी की रत्न-कुक्षि से हुआ था। स० १२१७ फाल्गुन शुक्ल १० को जिनचन्द्रसूरि के कर कमलों से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम नरपति था। स० १२२३ कार्तिक शुक्ल १३ को बडे महोत्सव के साथ युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्य पद प्रदान कर जिनचद्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित किया। आचार्य पद के समय नाम जिनपतिसूरि प्रदान किया। वह महोत्सव जिनपतिसूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

स० १२२८ मे विहार करते आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेशोत्सव में सम्मिलित हुए थे। आशिका स्थित महा प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान को शास्त्रार्थ मे पराजित किया था।

स० १२३९ कार्तिक शुक्ल ७ के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता मे फलवर्द्धिका नगरी निवासी उपकेश गच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य मे महामत्री मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड, विद्यापति आदि प्रमुख विद्वान उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभिमानी एव अनर्गल प्रलापी होने से शास्त्रार्थ मे शीघ्र ही पराजित हो गया। जिनपतिसूरिकी प्रतिभा एव सर्वशास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य देखकर पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के होदे पर रखकर बडे आडम्बर के साथ उपाश्रय में आकर आचार्य श्री को प्रदान किया।

स० १२४४ मे उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थो की यात्रार्थ सघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहा पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्य श्री अकलङ्कदेवसूरि पांच आचार्य एव १५ साधुओं के साथ सघ दर्शनार्थ आये। आचार्य श्री के साथ अकलङ्कदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एव सघ के साथ साधु-साध्वियो को जाना चाहिये या नहीं, इन प्रश्नो पर शास्त्रचर्चा हुई और आचार्य अकलक इस चर्चा में निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार कासहृद मे पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'सघपति' तथा 'वाक्यशुद्धि पर चर्चा हुई जिसमें जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थो की यात्रा करके वापिस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहा वादिदेवाचार्य परम्परीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमे प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का "प्रबोधोदय वादस्थल" ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिलपुर पाटण पधारे। यहा पर अपने गच्छ के ४० आचार्यो को अपनी मण्डली मे मिलाकर वस्त्रप्रदान पूर्वक सम्मानित किया।

स० १२५१ में लवणखेटक मे राणक केल्हण के आग्रह से 'दक्षिणावर्त्त आरात्रिकावतरणोत्सव बडी धूम-धाम से मनाया।

सं० १२७३ में बृहद्द्वार मे नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वी चन्द्र की सभा मे काश्मीरी पडित मनोदानन्द के साथ

आचार्य श्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ का विषय था "जैन दर्शन ग्राह्य है।" इस शास्त्रार्थ में प० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुआ। राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनोपालोपाध्याय को प्रदान किया।

स० १२७७ आषाढ शुक्ल १० को आचार्यश्री ने गच्छ-सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभ गणि को गणनायक बनाने का सकेत कर अनशनपूर्वक स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आचार्य जिनपतिसूरि कृत प्रतिष्ठायें, ध्वजदण्ड स्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्म-कृत्यों का तथा आचार्य श्रीके व्यक्तित्व का अध्ययन एवं शिष्य प्रशिष्यो की विशिष्ट प्रतिभा का अकन करने के लिये द्रष्टव्य है-जिनोपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छ वृहद् गुर्वावली'

इस महत्वपूर्ण गुर्वावली के सम्बन्ध में मुनि जिनविजय जी ने इस प्रकार लिखा है :—

"इस ग्रन्थ मे विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी के प्रारभ मे होने वाले आचार्य वर्द्धमानसूरि से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अत में होनेवाले जिनपद्मसूरि तक के खरतर गच्छ मुख्य के आचार्यो का विस्तृत चरित वर्णन है। गुर्वावली अर्थात् गुरु परम्परा का इतना विस्तृत और विश्वस्त चरित वर्णन करनेवाला ऐसा और कोई ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्राय चार हजार श्लोक परिमाण यह ग्रन्थ है और इसमे प्रत्येक आचार्य का जीवन-चरित इतने विस्तार के साथ दिया गया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थ में किसी भी आचार्य का नही मिलता। पिछले कई आचार्यो का चरित तो प्राय वर्षवार के क्रम से दिया गया है और उनके विहार क्रम का तथा वर्षा-निवास का क्रमवद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा दी, कब आचार्य पदवी प्राप्त की, किस-किस प्रदेश मे विहार किया, कहां-कहां चातुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-प्रशिष्याएँ आदि दीक्षित किये, कहा पर किस विद्वान के साथ शास्त्रार्थ या वाद-विवाद किया, किस राजा की सभा मे कैसा सम्मानादि प्राप्त किया—इत्यादि बहुत ही ज्ञातव्य और तथ्यपूर्ण बातों का इस ग्रन्थ में बड़ी विशद रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड, मारवाड, सिन्ध, वागड़, पजाब और विहार आदि अनेक देशो के अनेक गाँवों में रहने वाले सैकड़ों ही धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओ के कुटुंबों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख इसमे मिलता है और उन्होंने कहाँपर, कैसे पूजा-प्रतिष्ठा एव संघोत्सव आदि धर्मकार्य किये, इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढग की एक अनोखी कृति जैसा है। इस ग्रन्थ के आविष्कारक बीकानेर निवासी साहित्योपासक श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा है और इन्होंने ही हमे इस ग्रन्थ के सपादन की सादर प्रेरणा दी है। नाहटाजी ने इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व क्या है और सार्वजनिक दृष्टि से भी किन-किन ऐतिहासिक बातों का ज्ञातव्य इसमें प्राप्त होता है यह सक्षेप में बताने का प्रयत्न किया है।

[भारतीय विद्या पुस्तक १ अक ४ पृ० २१९]

आचार्य श्री की रचनाओं में सघपट्टक बृहद् वृत्ति, पचलिङ्गी प्रकरण टीका, प्रबोधोदय वादस्थल, खरतरगच्छ समाचारी, तीर्थमाला आदि के अतिरिक्त कतिपय स्तुति स्तोत्रादि भी पाये जाते हैं।

आपके पट्टपर सुप्रसिद्ध विद्वान नेमिचन्द्र भाण्डागारिक के पुत्र वीरप्रभ गणि को स० १२७७ माघ शुक्ल ६ को जावालिपुर (जालौर) के महावीर चैत्य में श्री सर्वदेवसूरि ने आचार्य पद देकर जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के नाम से प्रसिद्ध किया।

प्रगटप्रभावी दादा श्रीजिनकुशलसूरि

[भँवरलाल नाहटा]

प्रगटप्रभावी, भक्तवत्सल तीसरे दादा साहब श्री जिनकुशलसूरि अत्यन्त उदार और अपने समय के युगप्रधान महापुरुष थे। आप मारवाड-सामियाणा के छाजहड गोत्रीय मंत्रि देवराज के पुत्र जेसल या जिल्हागर के पुत्र थे और आपका जन्मनाम कर्मण था। सं० १३३७ मिती मार्गशीर्ष कृष्ण ३ सोमवार के दिन पुनर्वसु नक्षत्र मे आपका जन्म हुआ। आपके खानदान में धार्मिक सस्कार अत्यन्त श्लाघनीय थे। खरतरगच्छ नायक, चार राजाओं को प्रतिबोध करने वाले कलिकाल-केवली श्री जिनचन्द्रसूरि के पास आपने वैराग्यवासित होकर सं० १३४७ फाल्गुन शुक्ला ८ के दिन दीक्षा ली। गुरुमहाराज ससारपक्ष मे आपके चाचा होते थे। आपका दीक्षानाम कुशलकीर्ति रखा गया। उस समय उपाध्याय विवेकसमुद्र, गच्छ में गीतार्थ और वयोवृद्ध थे जिनके पास बडे-बड़े विद्वान आचार्यों ने व्याकरण, न्याय, तर्क, अलकार, ज्योतिष आदि का अध्ययन किया था। कुशलकीर्तिजी का विद्याध्ययन भी आपके पास हुआ और सर्वत्र विचरते हुए शासन प्रभावना करने लगे। स० १३७५ माघसुदि १२ को आप गुरुमहाराज द्वारा वाचनाचार्य पद से विभूषित हुए।

सम्राट कुतुबुद्दीन से निर्विरोध तीर्थयात्रा का फरमान प्राप्त महतियाण अचलसिंह के साथ श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज हस्तिनापुर एव मथुरा की यात्रा कर खडासराय पधारे। वहाँ कम्परोग उत्पन्न होने पर अपना आयु-शेष निकट ज्ञात कर अपने पट्ट पर वा० कुशलकीर्ति गणि को अभिषिक्त करने का निर्देश-पत्र राजेन्द्रचन्द्राचार्य के नाम से विजयसिंह को सौंपा। सूरिजी राणा मालदेव चौहान की विनति से मेड़ता पधारे। वहा २४ दिन रहकर कोशवाणा पधारे और वहीं स० १३७६ मिती आषाढ शुक्ल ९ को अनशनपूर्वक स्वर्गवासी हुए।

उस समय गुजरात की राजधानी पाटण में खरतरगच्छ का प्रभुत्व बढा-चढा था। गच्छ के कर्णधारो ने यही पर आचार्य पद-महोत्सव करने का निर्णय किया। बड़े-बडे आचार्य व श्रमणों सहित गुजरात, सिंध, राजस्थान और दिल्ली प्रदेश आदि के सघ को निमन्त्रित कर बुलाया गया। स० १३७७ मिती जेष्ठ कृष्ण ११ कुभ लग्न मे आचार्य पद का अभिषेक हुआ। उस समय राजेन्द्रचन्द्राचार्यजी के साथ उपाध्याय, वाचनाचार्यादि ३३ साधु और २३ साध्वियाँ थीं। सुश्रावक जाल्हण के पुत्र तेजपाल, रुद्रपाल, जो मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र बच्छावत के पूर्वज थे, ने प्रचुर द्रव्यव्यय कर महोत्सव मनाया। उन्होने उस समय १०० आचार्य, ७०० साधु और २४०० साध्वियों को अपने घर बुलाकर प्रतिलाभ कर वस्त्र पहिराये। भीमपल्ली, पाटण, खभात, बीजापुर आदि के सघ ने भी उत्सव मे उल्लेखनीय योगदान किया था। वा० कुशलकीर्ति का नाम श्रीजिनकुशलसूरि प्रसिद्ध किया गया।

सूरिजी स० १३७८ का चातुर्मास भीमपल्ली करके दीक्षा, मालारोपण, पदवी दान आदि अनेक धर्मप्रभावक कार्य करके अपने ज्ञानबल से विद्या-गुरु उपाध्यायश्री विवेकसमुद्रजी का आयुशेष निकट ज्ञातकर पाटण पधारे और ज्येष्ठ कृष्ण १४ के दिन उन्हें अनशन करवा दिया। उपाध्यायजी पंच-परमेष्ठी ध्यान पूर्वक ज्येष्ठ शुक्ल २ को स्वर्गवासी हुए। सूरिजी ने मिती आषाढ शुक्ल १३ के दिन उनके स्तूप की प्रतिष्ठा की और वहीं चातुर्मास किया।

सं० १३७९ में मार्गशीर्ष कृष्ण ५ को अनेक नगरों के महर्द्धिक श्रावको की उपस्थिति में सेठ तेजपाल ने शांतिनाथ विधिचैत्य में जलयात्रा सहित प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया। इसी दिन शत्रुजय महातीर्थ पर खरतरवसही मे मानतुगप्रासाद की नीव डाली गयी। श्रीजिनकुशलसूरिजी ने शिला, रत्न और धातुमय १५० प्रतिमाएँ स्वकीय मूल समवशरणद्वय, जिनचन्द्रसूरि, जिनरत्नसूरि आदि के साथ नाना अधिष्ठायक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। इस महोत्सव मे भीमपल्ली और आशापल्ली आदि के श्रावको ने भी काफी सहयोग दिया था। प्रतिष्ठा के अनन्तर सूरि महाराज बीजापुर सघ की प्रार्थना से वहा पधारे और वासुपूज्य प्रभु के महातीर्थ की वदना की। फिर त्रिशृङ्गम पधारे और सघ सहित तारगाजी एवं आरासण तीर्थों की यात्रा की। मन्त्रीदलीय जगतसिंह ने स्वधर्मी वात्सल्य, ध्वजारोपादि कई उत्सव किये। सूरिजी ने यात्रा से लौटकर पाटण चातुर्मास किया।

स० १३८० मे सेठ तेजपाल रुद्रपाल के मानतुगविहार जिनालय के योग्य मूलनायक युगादीश्वर भगवान की २७ अगुल की कर्पूर-धवल प्रतिमा, जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, कपर्दी यक्ष, क्षेत्रपाल, अबिकादि एव ध्वजदण्डादि के साथ अन्य श्रावकों की निर्मापित बहुत सी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवायी। मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को मालारोपण व्रतग्रहण, नन्दी महोत्सवादि विस्तार से उत्सव हुए।

दिल्ली निवासी सेठ रयपति ने सम्राट गयासुद्दीन तुगलक से तीर्थयात्रा के लिए फरमान प्राप्त कर श्रीजिनकुशलसूरिजी से अनुमति मगाई, फिर विशाल सघ के साथ वै० कृ० ७ को प्रयाण करके कन्यानयन, नरभट, फलौदी पार्श्वनाथ की यात्रा कर देश-विदेश के सघ सहित मार्गवर्ती तीर्थस्थान करते हुए पाटण पहुँचे। श्रीजिनकुशलसूरिजी को भी अत्यन्त आग्रहपूर्वक सघ के साथ पधारने की विनती की। सूरिजी १७ साधु और १९ साध्वियों के साथ सघ में सम्मिलित हो संखेश्वर तीर्थादि की यात्रा करते हुए आषाढ कृष्ण ६ के दिन शत्रुंजय पहुँचे। वहाँ उसी दिन दो दीक्षाएँ हुई। दूसरे दिन समवसरण, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा के साथ पाटण मे पूर्व प्रतिष्ठित युगादिदेव भगवान को स्थापित किया। आषाढ कृष्ण ९ के दिन व्रतग्रहण, नन्दी महोत्सवादि के साथ-साथ सुखकीर्ति गणि को वाचनाचार्य पद दिया। उस यात्रीसघ के द्वारा तीर्थ के भण्डार में ५००००) रुपये की आमदनी हुई।

यह विशाल यात्री सघ सूरिजी के साथ आषाढ सुदि १४ को गिरनार पहुँचा, यहाँ भी सघ के द्वारा विविध उत्सवादि हुए। तीर्थ के भडार में ४००००) रुपये की आमदनी हुई। आनन्द के साथ यात्रा सम्पन्न कर श्रावण शुक्ल १३ को पाटण पधारे। १५ दिन तक नगर के बाहर उद्यान मे ठहर कर भाद्रपद कृष्ण ११ को समारोह पूर्वक नगर-प्रवेश हुआ, तदनन्तर सघ ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

सवत् १३८१ मिती वैशाख कृष्ण ५ को पाटण के शातिनाथ विधिचैत्य में सूरिजी के करकमलों से विराट प्रतिष्ठा-महोत्सव सपन्न हुआ। इनमे जालोर, देरावर तथा शत्रुजय (वूल्हावसही और अष्टापद प्रासाद के लिए २४ बिंब), उच्चानगर के लिए अगणित जिन प्रतिमाए तथा पाटण के लिए जिनप्रबोधसूरि, देरावर के लिए जिनचन्द्रसूरि, अबिका आदि अधिष्ठायक व स्वभडार योग्य समवसरण की भी प्रतिष्ठा की। वैशाख कृष्ण ६ के दिन दो बडी दीक्षाएँ, पाच साधु-साध्वियों की दीक्षा, जयधर्म गणि को उपाध्यय पद तथा अन्य व्रत ग्रहणादि विस्तार से हुए।

सूरिमहाराज को वीरदेव आदि ने पाटण से अत्यन्त आग्रह पूर्वक भीमपल्ली बुलाया। सघ ने सम्राट गयासुद्दीन से तीर्थयात्राके हेतु फरमान प्राप्त कर ज्येष्ठ कृष्ण ५को भीमपल्ली से प्रयाण किया। सूरिजी के साथ १२ साधु और कई साध्विया

भी थीं । संघ वायड, सैरिसा, सरखेज, आशापल्ली होते हुए खंभात पहुँचा । जिस प्रकार जिनेश्वरसूरिजी के पधारने पर स० १२८६ मे महामत्री वस्तुपाल ने एव स० १३६४-६७ मे सेठ जेसल ने श्री जिनचन्द्रसूरिजी का प्रवेशोत्सव किया था उसी प्रकार सूरिजी का इस समय धूमधाम से प्रवेशोत्सव हुआ । आठ दिन तक नाना उत्सवादि सपन्न कर आनन्दपूर्वक यात्रा करते हुए शत्रुंजय की ओर चले । वांघूका में मन्त्रीदलीय ठ० उदयकरण ने सघ की बहुत भक्ति की । शत्रुंजय पहुँच कर सूरिजी ने दूसरी वार यात्रा की । तीर्थ के भडार मे १५००० की आमदनी हुई । आदिनाथ प्रभु के विधि-चैत्य मे नवनिर्मित चतुर्विंशति जिनालय, देवकुलिकाओं पर कलश व ध्वजादि का आरोपण हुआ । सघ सहित सूरिमहाराज तलहटी में आये । लौटते समय सैरिसा, सखेश्वर, पाडल होते हुए श्रावण शुक्ला ११ को भीमपल्ली पधारे ।

स० १३८२ वैशाख शुक्ला ५ को विनयप्रभ, मतिप्रभ, हरिप्रभ, सोमप्रभ साधु एव कमलश्री, ललितश्री को समारोहपूर्वक दीक्षा दी । पत्तन, पालनपुर, बीजापुर, आशापल्ली आदि का सघ भी उपस्थित था । तीन दिन अमारि उद्घोषणा के साथ वडे उत्सव हुए । फिर सूरिजी साचौर पधारे । मासकल्प करके लाटहृद पधारे । सघ के आग्रह से बाडमेर मे चौमासा करके श्री जिनदत्तसूरि रचित चैत्यवदनकुलक पर विस्तृत वृत्ति की रचना की । स० १३८३ पौष शुक्ला १५ को जेसलमेर, लाटहृद, साचौर, पालनपुरीय संघ के समक्ष अमारि घोषणापूर्वक वडी दीक्षा आदि अनेक उत्सव हुए । तदनन्तर जालोर सघ की विनती से विहार करके लवणखेटक पधारे । यहाँ सूरिजी के पूर्वज उद्धरण वाहित्रिक कारित शातिनाथ-जिनालय था एव गुरु जिनचन्द्रसूरिजी का जन्म एव दीक्षा यहीं हुई थी । यहाँ से समियाणा (जन्मभूमि) होते हुए जालोर पधारे । यहां उच्चपुर, देवराजपुर, पाटण, जेसलमेर, सिवाणा, श्रीमाल, साचौर, गुढहा आदि के संघ के समक्ष पंद्रह दिन तक दीक्षार्थियों के सत्कार सहित फाल्गुन कृष्ण ६ को दीक्षा, प्रतिष्ठा, व्रतोच्चारणादि विविध उत्सव हुए । राजगृह तीर्थ के वैभारगिरि स्थित चतुर्विशति जिनालय के मूलनायक महावीर स्वामी आदि अनेक पाषाण और धातुमय विम्ब गुरुमूर्तिया आदि की प्रतिष्ठा एव न्यायकीर्त्ति ललितकीर्त्ति, सोमकीर्त्ति अमरकीर्त्ति, ज्ञानकीर्त्ति, देवकीर्त्ति-६ साधुओं को दीक्षित दिया ।

जालोर से चैत्र कृष्ण मे विहार कर समियाणा, खेड नगर होते हुए जेसलमेर महादुर्ग पधारे । सिन्ध देश के श्रावक अपने उधर पधारने के लिए वार-वार वीनति कर रहे थे अतः पद्रह दिन रहकर सिंध देश के देरावर नगर मे पधारे । वहां स्वप्रतिष्ठित आदिनाथ प्रभु का वन्दन किया । फिर उच्चनगर पधारकर हिन्दु-मुसलमान सबको धर्मोपदेशो से आनन्दित किया । एक मास रहकर वापिस देरावर पधारे । स० १३८४ माघ शु० ५ को उच्च, देरावर, क्यासपुर बहरामपुर मलिकपुर के श्रावकों और अधिकारियों के अनुरोध से प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण आदि वडे विस्तार से सम्पन्न किये । राणुककोट, क्यासपुर के लिए दो आदिनाथ मूलनायकविंव व धातु-पाषाण की अनेक प्रतिमाए प्रतिष्ठित की । भावमूर्त्ति, मोदमूर्त्ति, उदयमूर्त्ति, विजयमूर्त्ति, हेममूर्त्ति, भद्रमूर्त्ति, मेघमूर्त्ति, पद्ममूर्त्ति, हर्षमूर्त्ति आदि नौ साधु, कुलधर्मा, विनयधर्मा और शीलधर्मा नामक तीन साध्वियों की दीक्षा हुई ।

स० १३८५ फाल्गुन शु० ४ के दिन उच्चापुर, वहिरामपुर, क्यासपुर के खरतर गच्छीय सघ की विद्यमानता में नवदीक्षितों की उपस्थापना, अनेकों व्रतग्रहण व कमलाकर गणि को वाचनाचार्य पद दिया । स० १३८६ मे वहिरामपुर पधारे । वहां धर्मप्रभावना कर क्यासपुर के हिन्दु-मुसलमान सबको आनन्दित किया । ६ दिन उत्सवादि के पश्चात् खोजावाहन पधारकर क्यासपुर पधारे । मुसल-

मान नवाव और सभीलोगो द्वारा सूरिजी का ऐसा प्रवेशोत्सव किया गया जो स० १२३८ मे अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज द्वारा किये अजमेर के उत्सव की याद दिलाता था। तदनन्तर देरावर पधार कर सं० १३८६ का चतुर्मास वही किया। वारह साधुओं के साथ उच्चानगर जाकर मासकल्प किया। फिर अनेक ग्राम नगरो में विचरते हुए परशुरोरकोट गए। वहां से वहिरामपुर होते हुए उग्रविहारी श्री जिनकुशलसूरिजी देरावर पधारे और सं० १३८७ का वहीं चातुर्मास वही किया।

स० १३८८ मे उच्चापुर, वहिरामपुर, क्यामपुर, सिलारवाहण आदि सभी स्थानों के श्रावकों की उपस्थिति मे मार्गशीर्ष शु० १० को व्रतग्रहणादि नन्दीमहोत्सवपूर्वक विद्वत् शिरोमणि तरुणकीर्त्ति को आचार्य पद देकर तरुणप्रभाचार्य नाम से प्रसिद्ध किया। प० लब्धिनिधान को उपाध्याय पद दिया, जयप्रिय, पुण्यप्रिय एव जयश्री, धर्मश्री, को दीक्षित किया। स० १३८९ का चातुर्मास देरावर मे किया और तरुणप्रभाचार्य व लब्धिनिधानोपाध्याय को स्याद्वादरत्नाकर, महातर्क रत्नाकर आदि सिद्धान्तों का परिशीलन करवाया। माघ शुक्ल मे तीव्रज्वर व श्वास की व्याधि होने पर अपना आयुशेष निकट ज्ञातकर श्री तरुणप्रभाचार्य व लब्धिनिधानोपाध्याय को अपने पद पर पद्ममूर्त्ति को गच्छनायक वनाने की आज्ञा देकर अनशन करके मति फाल्गुन कृष्ण ५ की रात्रि के पिछले पहर मे स्वर्ग सिधारे। विद्युतगति से समाचार फैलते ही सिन्धु देश के गाँवो के लोग देरावर आ पहुचे। फा० कृ० ६ को ७५ मडपिकाओं से मडित निर्यान विमान में विराजमान कर वडे महोत्सवपूर्वक शोकाकुल सघ ने नगर के राजमार्गों से होते हुए सूरिजी के पावन शरीर को स्मशान मे ले जाकर अग्निसस्कार किया।

सूरिजी के अग्नि-सस्कार स्थान मे सुन्दरस्तूप निर्माण किया गया जो आगे चलकर तीर्थ रूप हो गया। मिती ज्येष्ठ शुक्ल ९ को हरिपाल कारित आदिनाथ प्रतिमा, देरावर स्तूप, जेसलमेर और क्यासपुर के लिये श्रीजिनकुशलसूरिजी की तीन मूर्तियों का प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। आपके पट्टधर श्रीजिनपद्मसूरि का पदस्थापना महोत्सव वडे धूम-धाम से हुआ। श्रीजिनपद्मसूरिजी ने दो उपाध्याय १२ साधुओं के साथ जेसलमेर पधारकर चातुर्मास किया। इनके अतिरिक्त आपका शिष्य परिवार वहुत वडा था। उ० विनयप्रभ, सोमप्रभ इत्यादि की परम्परा मे वहुत से वडे-वडे विद्वान और ग्रन्थकार हुए है। विनयप्रभोपाध्याय का गौतमरास जैन समाज में वहुप्रचलित रचना है आपका संस्कृत मे नरवर्मचरित्र एव कई स्तोत्रादि उपलब्ध हैं।

श्रीजिनकुशलसूरि जी ने अपने जीवन में शासन की वड़ी प्रभावना की उन्होंने पचास हजार नये जैन वनाकर परम्परा-मिशन को अक्षुण्ण रखा। आप उच्चकोटि के विद्वान और प्रभावशाली व्यक्ति थे। दादाश्रीजिनदत्तसूरि जी कृत चैत्यवदन कुलक नामक २७ गाथा की लघु कृति पर ४००० श्लोक परिमित टीका रचकर अपनी अप्रतिम प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसमे २४ धर्म कथाएँ है जिनमें श्रेणिक महाराज कथा तो ९४५ श्लोक परिमित है। इस ग्रन्थ में अनेक सिद्धान्तों के प्रमाण भी उद्धृत है। आपकी दूसरी कृति श्रीजिनचन्द्रसूरि चतुःसप्ततिका प्राकृत की ७४ गाथाओं में है। इसके अतिरिक्त कई स्तोत्रादि भी संस्कृत मे अनेक रचे थे, जिनमे ९ स्तोत्र उपलब्ध है।

आप अपने जीवितकाल में जिस प्रकार जैन सघ के महान् उपकारी थे स्वर्गवास के पश्चात् भी भक्तो के मनोवांछित पूर्ण करने मे कल्पवृक्ष के सदृश है। आपने अनेकों को दर्शन दिए है और स्मरण करने वालों के लिए हाजरा हजूर है। यही कारण है कि आज ६३७ वर्ष वीत जाने पर भी आप प्रत्यक्ष है। आप भुवनपति-महर्द्धिक कर्मेन्द्र नामक देव हैं। जीवितकाल में भी धरणेन्द्र आपका भक्त था और स्वर्ग में भी धरणेन्द्र-पद्मावती इन्द्र-इन्द्राणी से अभिन्न मैत्री है। आज सारे भारतवर्ष मे आपके जितने चरण व मूर्तियाँ-दादावाडियाँ है, अन्य किसी के नहीं। यहा एक गुरुदेव के महत्व का साक्षात् उदाहरण हैं। ९-१० वर्ष वाद आपके जन्म को सात सौ वर्ष पूरे होते है आशा है भक्त गण अष्टम जन्म शताब्दी वडे समारोह से मनाकर समाज में नवचेतना जाग्रत करेंगे।
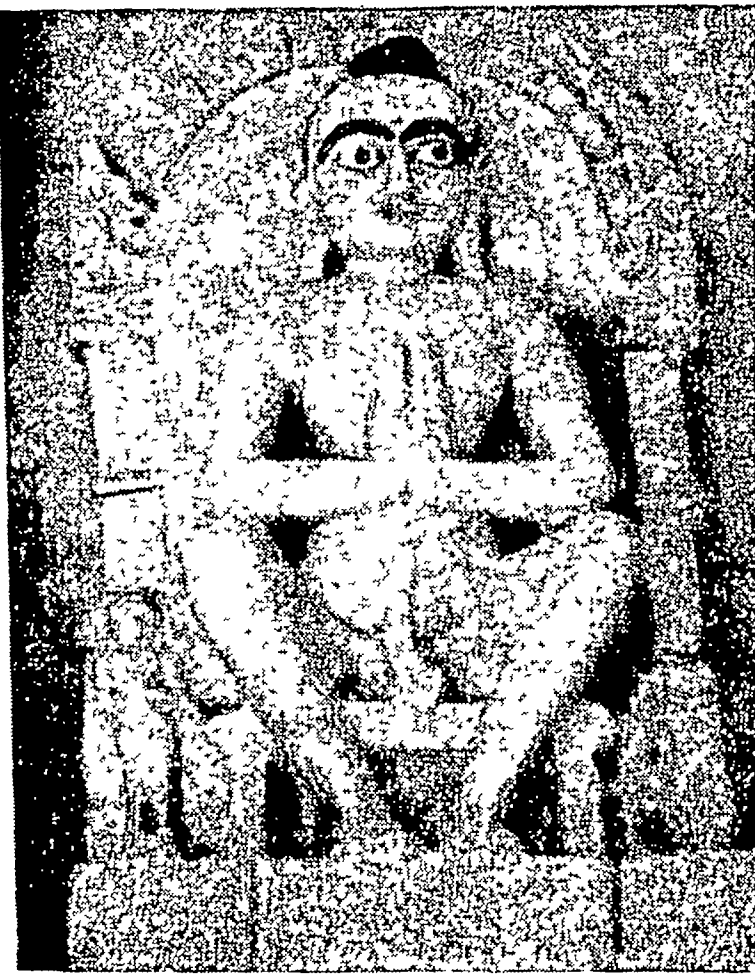
प्रकटप्रभावीदादा श्रीजिनकुशलसूरि मूर्ति बड़ेदादाजी, (महरौली)

श्रीजिनप्रभसूरि मूर्ति (खरतरवसही, शत्रुञ्जय)

युगप्रधानश्रीजिनचन्द्रसूरि (चतुर्थ दादा)
ऋषभदेव जिनालय (बीकानेर)

श्रीपूज्यश्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी महाराज

सं० ६३७ मे श्री उद्योतनसूरि प्रतिष्ठित
आदिनाथ प्रतिमा गागाणीतीर्थ
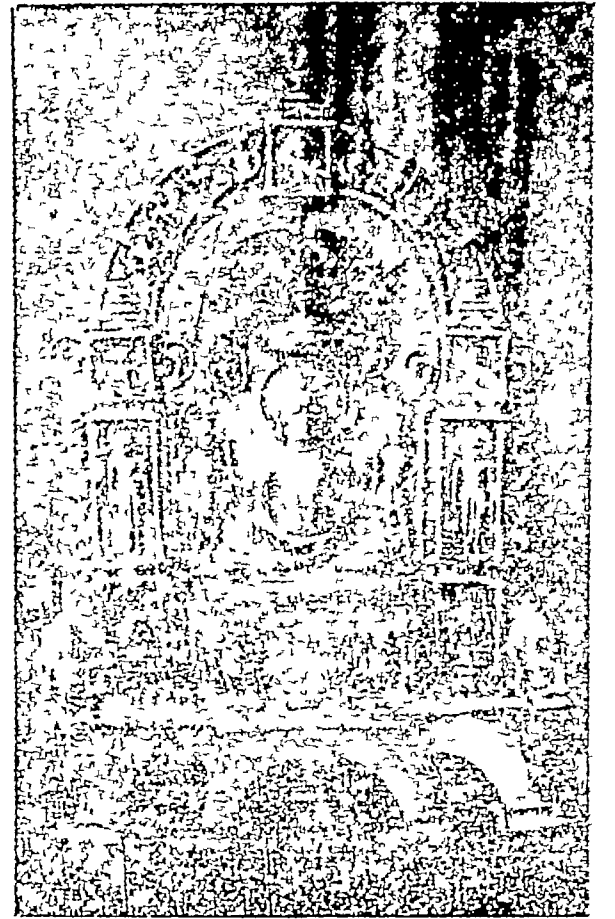
स० १०८३ प्र० आदिनाथ पचतीर्थी
जैन श्वे० पचायती मदिर, कलकत्ता

जैनाचार्य श्रीजिनकवीन्द्रसागरसूरिजी
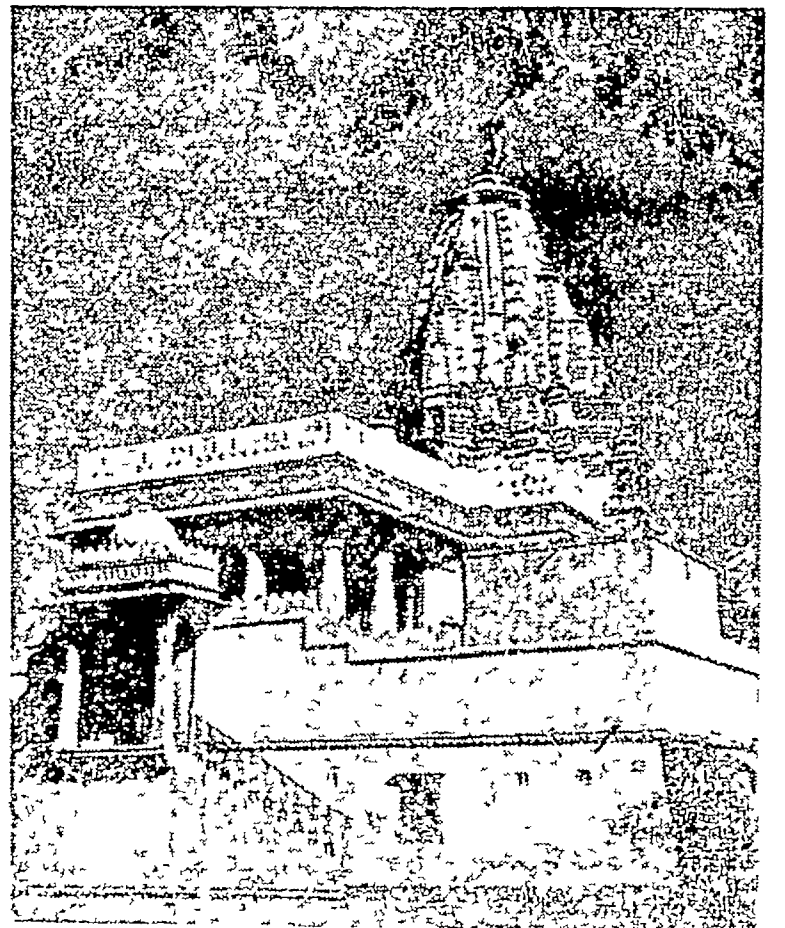
श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर गागाणी तीर्थ

महान् शासन-प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि

[अगरचन्द नाहटा]

जैन ग्रन्थों में जैन शासन की समय-समय पर महान् प्रभावना करने वाले आठ प्रकार के प्रभावक-पुरुषो का उल्लेख मिलता है। ऐसे प्रभावक पुरुषों के सम्बन्ध मे प्रभावक चरित्रादि महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे गये हैं। आठ प्रकार के प्रभावक इस प्रकार माने गए हैं—प्रावचनिक धर्मकथी, वादी, नैमित्तिक, तपस्वी, विद्यावान्, सिद्ध और कवि। इन प्रभावक पुरुषो ने अपने असाधारण प्रभाव से आपत्ति के समय जैन शासन की रक्षा की, राजा-महाराजा एव जनता को जैन धर्म के प्रतिबोध द्वारा शासन की उन्नति की एव शोभा बढाई। आर्यरक्षित अभयदेवसूरि को प्रावचनिक, पादलिप्तसूरि को कवि, विद्यावली और सिद्ध, विजयदेवसूरि व जीवदेवसूरि को सिद्ध, मल्लवादी वृद्धवादी, और देवसूरि को वादी, वप्पभट्टिसूरि, मानतुगसूरि को कवि, सिद्धर्षि को धर्मकथी महेन्द्रसूरि को नैमित्तिक, आचार्य हेमचन्द्र को प्रावचनिक, धर्मकथी औरक वि प्रभावक, प्रभावक चरित्र की मुनि कल्याणविजयजी की महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना मे बतलाया गया है।

खरतरगच्छ मे भी जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, मणिधारी-जिनचन्द्रसूरि और जिनपतिसूरि ने विविध प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की है। जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि के दो महान् पट्टधर हुए—जिनप्रबोधसूरि तो ओसवाल और जिनसिंहसूरि श्रीमाल सघ मे विशेष धर्म-प्रचार करते रहे। इसलिए इन दो आचार्यों से खरतरगच्छ की दो शाखाएं अलग हो गईं। जिनसिंहसूरि की शाखा का नाम खरतर आचार्य प्रसिद्ध हो गया, उनके शिष्य एव पट्टधर जिनप्रभसूरि बहुत बडे शासन-प्रभावक हो गए है जिनके सम्बन्ध में साधारणतया लोगों को बहुत ही कम जानकारी है। इसलिए यहां उनका आवश्यक परिचय दिया जा रहा है।

वृद्धाचार्य प्रबन्धावली के जिनप्रभसूरि प्रबन्ध में प्राकृत भाषा मे जिनप्रभसूरि का अच्छा विवरण दिया गया है, उनके अनुसार ये मोहिलवाडी लाडनू के श्रीमाल ताम्बी गोत्रीय श्रावक महाधर के पुत्र रत्नपाल की धर्मपत्नी खेतलदेवी के कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। इनका नाम सुभटपाल था। सात-आठ वर्ष की बाल्यावस्था में ही पद्मावती देवी के विशेष संकेत द्वारा श्री जिनसिंहसूरि ने उनके निवास स्थान मे जाकर सुभटपाल को दीक्षित किया। सूरिजी ने अपनी आयु अल्प ज्ञात कर स० १३४१ किढवाणानगर मे इन्हें आचार्य पद देकर अपने पट्टपर स्थापित कर दिया। उपदेशसप्ततिका मे जिनप्रभसूरि स० १३३२ मे हुए लिखा है, यह सम्भवत: जन्म समय होगा। थोडे ही समय मे जिनसिंहसूरिजी ने जो पद्मावती आराधना की थी वह उनके शिष्य-जिनप्रभसूरिजी को फलवती हो गई और आप व्याकरण, कोश, छद, लक्षण, साहित्य, न्याय, पट्दर्शन, मत्र-तत्र और जैन दर्शन के महान् विद्वान बन गए। आपके रचित विशाल और महत्त्वपूर्ण विविध विषयक साहित्य से यह भलो-भाति स्पष्ट है। अन्य गच्छीय और खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा के विद्वानो को आपने अध्ययन कराया एव उनके ग्रन्थो का सशोधन किया।

असाधारण विद्वत्ता के साथ-साथ पद्मावतीदेवी के सान्निध्य द्वारा आपने बहुत से चमत्कार दिखाये है जिनका वर्णन खरतरगच्छ पट्टावलियों से भी अधिक तपागच्छीय

ग्रन्थों मे मिलता है और यह वात विशेष उल्लेख योग्य है। स० १५०३ में सोमधर्म ने उपदेश-सप्ततिका नामक अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ के तृतीय गुरुत्वाधिकार के पचम उपदेश में जिनप्रभसूरि के बादशाह को प्रतिबोध एव कई चमत्कारो का विवरण दिया है। प्रारम्भ में लिखा है कि इस कलियुग मे कई आचार्य जिन शासन रूपी घर मे दीपक के सामान हुए। इस सम्बन्ध मे म्लेच्छपति को प्रतिबोध को देने वाले श्रीजिनप्रभसूरि का उदाहरण जानने लायक है। अत मे निम्न श्लोक द्वारा उनकी स्तुति की गई है:—

स श्री जिनप्रभःसूरि-र्दुरिताशेषतामस·
भद्रं करोतु सघाय, शासनस्य प्रभावक: ॥ १ ॥

इसी प्रकार सवत् १५२१ मे तपागच्छीय शुभशील गणि ने प्रवन्ध पचशती नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया जिसके प्रारम्भ में ही श्री जिनप्रभसूरिजी के चमत्कारिक १६ प्रवन्ध देते हुए अत मे लिखा है—

'इति कियन्तो जिनप्रभसूरी अवदातसम्बन्धा:"

इस ग्रन्थ मे जिनप्रभसूरि सम्वन्धी और भी कई ज्ञातव्य प्रवन्ध है। उपरोक्त १६ के अतिरिक्त न०२०,३०६,३१४ तथा अन्य भी कई प्रवन्ध आपके सम्वन्धित है। पुरातन प्रवन्ध सग्रह में मुनि जिनविजयजी के प्रकाशित जिनप्रभसूरि उत्पत्ति प्रवन्ध व अन्य एक रविवर्द्धन लिखित विस्तृत प्रवन्ध है। खरतरगच्छ वृहद्-गुर्वावली-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अत मे जो वृद्धाचार्य प्रवन्धावली नामक प्राकृतकी रचना प्रकाशित हुई है। उसमे जिनसिंहसूरि और जिनप्रभसूरि के प्रवन्ध, खरतरगच्छीय विद्वान के लिखे हुए हैं एवं खरतरगच्छ की पट्टावली आदि मे भी कुछ विवरण मिलता है पर सबसे महत्वपूर्ण घटना या कार्यविशेष का समकालीन विवरण विविध तीर्थकल्प के कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प और उसके कल्प परिशेप में प्राप्त है। उसके अनुसार जिनप्रभसूरिजी ने यह मुहम्मद तुगलक से बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त किया था। उन्होंने कन्नाणा की महावीर प्रतिमा सुलतान से प्राप्तकर दिल्ली के जैन मंदिर मे स्थापित करायी थी। पीछे से मुहम्मद तुगलक ने जिनप्रभसूरि के शिष्य 'जिनदेवसूरि को सुरत्तान सराइ दी थी जिनमें चार सौ श्रावको के घर, पौषधशाला व मन्दिर बनाया उसी में उक्त महावीर स्वामी को विराजमान किया गया। इनकी पूजा व भक्ति श्वेताम्वर समाज ही नहीं, दिगम्वर और अन्य मतावलम्बी भी करते रहे है।

कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प के लिखनेवाले 'जिनसिंहसूरि-शिष्य' वतलाये गये हैं अत· जिनप्रभसूरि या उनके किसी गुरुभ्राता ने इस कल्प की रचना की है। इसमें स्पष्ट लिखा है कि हमारे पूर्वाचार्य श्री जिनपतिसूरि जी ने स० १२३३ के आषाढ शुक्ल १० गुरुवार को इस प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी और इसका निर्माण जिनपति सूरि के चाचा मानदेव ने करवाया था। अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज के निधन के बाद तुर्कों के भय से सेठ रामदेव के सूचनानुसार इस प्रतिमा को कयवास स्थल की विपुल बालू मे छिपा दिया गया था। स० १३११ के दारुण दुर्भिक्ष में जोज्जग नामक सूत्रधार को स्वप्न देकर यह प्रतिमा प्रगट हुई और श्रावकों ने मन्दिर बनवाकर विराजमान की। स० १३८५ मे हांसी के सिकदार ने श्रावको को वन्दी बनाया और इस महावीर विम्ब को दिल्ली लाकर तुगलकावाद के शाही खजाने मे रख दिया।

जनपद विहार करते हुए जिनप्रभसूरि दिल्ली पधारे और राजसभा में पण्डितों की गोष्ठी द्वारा सम्राट को प्रभावित कर इस प्रभु-प्रतिमा को प्राप्त किया। मुहम्मद तुगलक ने अर्द्धरात्रि तक सूरिजी के साथ गोष्ठी की और उन्हें वहीं रखा। प्रत काल सतुष्ट सुलतान ने १००० गायें, बहुत सा द्रव्य, वस्त्र-कवल, चंदन, कर्पूरादि सुगधित पदार्थ सूरिजी को भेंट किया। पर गुरुश्री ने कहा ये सब साधुओं को लेना अकल्प्य है। सुलतान के विशेष अनुरोध से कुछ

वस्त्र-कम्बल उन्होंने 'राजाभियोग' से स्वीकार किया और मुहम्मद तुगलक ने वडे महोत्सव के साथ जिनप्रभसूरि और जिनदेवसूरि को हाथियों पर आरूढ कर पौषधशाला पहुँचाया। समय-समय पर सूरिजी एव उनके शिष्य जिनदेव-सूरि की विद्वत्तादि से चमत्कृत होकर सुलतान ने शत्रुजय, गिरनार, फलौदी आदि तीर्थों की रक्षा के लिए फरमान दिए। कल्प के रचयिता ने अन्त मे लिखा है कि मुहम्मद शाह को प्रभावित करके जिनप्रभसूरिजी ने वडी शासन प्रभावना एव उन्नति की। इस प्रकार पचम काल मे चतुर्थ आरे का भास कराया।

उपर्युक्त कन्नाणय महावीर कल्प का परिशेष रूप अन्य कल्प सिंहतिलकसूरि के आदेश से विद्यातिलकमुनि ने लिखा है जिसमें जिनप्रभसूरि और जिनदेवसूरि की शासन प्रभावना व मुहम्मद तुगलक को सविशेष प्रभावित करने का विवरण है। ये दोनों ही कल्प जिनप्रभसूरिजी की विद्य-मानता में रचे गए थे। इसी प्रकार उन्ही के समकालीन रचित जिनप्रभसूरि गीत तथा जिनदेवसूरि गीत हमें प्राप्त हुए जिन्हें हमने स० १९९४ में प्रकाशित अपने ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह मे प्रकाशित कर दिया है। उनमे स्पष्ट लिखा है सं० १३८५ के पौष शुक्ल ८ शनिवार को दिल्ली मे मुहम्मद साह से श्रीजिनप्रभसूरि मिले। सुलतान ने उन्हे अपने पास बैठाकर आदर दिया। सूरिजीने नवीन काव्यो द्वारा उसे प्रसन्न किया। सुलतान ने इन्हें धन-कनक आदि बहुत सी चीजें दी और जो चाहिए, मागने को कहा पर निरीह सूरिजी ने उन अकल्प्य वस्तुओं को ग्रहण नही किया। इससे विशेष प्रभावित होकर उन्हें नई वस्ती आदि का फरमान दिया और वस्त्रादि द्वारा स्वहस्त से इनकी पूजा की।

स० १९८६ में प० लालचन्द भ० गाधी का जिनप्रभ-सूरि और सुलतान मुहम्मद सम्बन्धी एक ऐतिहासिक निवन्ध 'जैन' के रौप्य महोत्सव अक मे प्रकाशित हुआ। जिसे श्री हरिसागरसूरिजी महाराज की प्रेरणा से परिवर्द्धित कर पडितजी ने ग्रन्थ रूप मे तैयार कर दिया, जिसे स० १९९५ में श्रीजिनहरिसागरसूरि ज्ञान भण्डार, लोहावट से देवनागरी लिपि व गुजराती भाषा मे प्रकाशित किया गया।

प्रतिभासम्पन्न महान् विद्वान जिनप्रभसूरि जी की दो प्रधान रचनाएँ विविधतीर्थकल्प और विधिमार्ग-प्रपा मुनि जिनविजयजी ने सम्पादित की है, उनमे से विधि-प्रपा मे हमने जिनप्रभसूरि सम्बन्धी निवन्ध लिखा था। इसके बाद हमारा कई वर्षो से यह प्रयत्न रहा कि सूरि-महाराज सम्बन्धी एक अध्ययनपूर्ण स्वतन्त्र बृहद्ग्रन्थ प्रका-शित किया जाय और महो० विनयसागरजी को यह काम सौंपा गया। उन्होंने वह ग्रन्थ तैयार भी कर दिया है, साथ ही सूरिजी के रचित स्तोत्रों का सग्रह भी सपादित कर रखा है। हम शीघ्र ही उस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशन करने मे प्रयत्नशील हैं।

सूरिजी सम्बन्धी प्रबन्धों की एक सतरहवी शती की लिखित सग्रह प्रति हमारे सग्रह मे है, पर वह अपूर्ण ही प्राप्त हुई है। हम उपदेशसप्तति प्रबन्ध-पचशती एव प्रबन्ध संग्रहादि प्रकाशित प्रबन्धों को देखने का पाठकों को अनुरोध करते हैं जिससे उनके चामत्कारिक प्रभाव और महान् व्यक्तित्व का कुछ परिचय मिल जायगा। जिनप्रभ-सूरिजी का एक महत्वपूर्ण मत्र-तत्र सम्बन्धी ग्रन्थ रहस्य-कल्पद्रुम भी अभी पूर्ण रूप से प्राप्त नही हुआ, उसकी खोज जारी है। सोलहवी शताब्दी की प्रति का प्राप्त अन्तिम पत्र यहां प्रकाशित किया जा रहा है।

'रहस्यकल्पद्रुम'

' त सघ प्रत्यनीकाना भयकरादेशा'। करीय जय'। स्वदेशे जयः परदेशे अपराजितत्व। तीर्थादिप्रत्यनीकमध्ये एतत्त्रयमस्य महापीठस्य स्मरणेन भवति। ॐ ह्रां महा-मातंगे शुचि चडालो अमुक दह २ पच २ मथ २ उच्चाटय २ हु फुट् स्वाहा॥ कृष्ण खडी खंड १०८ होमयेत्

उच्चाटन विशेषत । सपत्नी विषये । ॐ रक्त चामुडे नर शिर तुड मुड मालिनी अमुकीं आकर्षय २ ह्रीं नमः। आकृष्टि मत्र। सहस्रत्रयजापात् सिद्धि सिद्धि पश्चात् १०८ आकर्पयति । ॐ ह्रीं प्रत्यगिरे महाविद्ये येन केनचित् पाप कृत कारित अनुमत वा नश्यतु तत्पाप तत्रैव गच्छतु ”

ॐ ह्रीं प्रत्यगिरे महाविद्ये स्वाहा वार २१ लवणडली जप्त्वा आतुरस्योपरि भ्रामयित्वा कांजिके क्षिप्त्वा। आतुरे ढालयते कार्मण भद्रो भवति ।

उभयलिंगी वीज ७ साठी चोखा ६ पली १ गोदूध। ऋतुस्नाताया पान देय स्निग्धमधुरभोजन। ऋतुगर्भोत्पत्तिप्रधानसूकडिहुवारन् वात् एकवर्णगोदुग्धेन पीयते गर्भाधानाद्दिन ७५ अनतर दिन ३ गर्भव्यत्यय ॥छ॥

सवत् १५४६ वर्षे श्रावण सुदि १३ त्रयोदशी दिने गुरौ **श्रीमडपमहादुर्गे श्री खरतरगच्छे श्रीजिनभद्रसूरि** पट्टालकार श्री **श्रीजिनचन्द्रसूरि** पट्टोदया चलचूला सहस्रकरावतार श्री सप्रतिविजयमान **श्रीजिनसमुद्रसूरि** विजयराज्ये श्री वादीन्द्र चक्रचूडामणि श्रीतपोरत्न महोपाध्याय विनेय वाचनाचार्य वर्य श्री साधुराज गणिवराणामादेशेन शिष्यलेश ...... लेखि श्री रहस्य कल्पद्रुममहाम्नाय. ॥छ॥छ॥ श्रेयोस्तु। प० भक्तिवल्लभ गणिसान्निध्येन ॥

[पत्र ११ वां प्राप्त किनारे त्रुटित]

उपर्युक्त ग्रन्थ का उल्लेख जिनप्रभसूरिजी ने व उनके समकालीन रुद्रपल्लीय सोमतिलकसूरि रचित लघुस्तव टीकादि मे प्राप्त है। यह टीका स० १३९७ में रची गई और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित है ।

बीकानेर के वृहद् ज्ञानभडार मे हमें बहुत वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ का कुछ अश प्राप्त हुआ था जिसे जैन सिद्धान्तभास्कर एवं जैन सत्यप्रकाश में प्रकाशित किया। उसके वाद उपर्युक्त १६वीं शती की प्रति का अन्तिम पत्र प्राप्त हुआ। इस प्राप्त अंश की नकल उपर दी है। इस ग्रन्थ की पूरी प्रति का पता लगाना आवश्यक है। किसी भी सज्जन को इसकी पूरी प्रति की जानकारी मिले तो हमे सूचित करने का अनुरोध करते है ।

श्री जिनप्रभसूरिजी और उनके विविध तीर्थकल्प के सम्वन्ध में मुनि जिनविजयजी ने लिखा है—"ग्रन्थकार (जिनप्रभसूरि) अपने समय के एक वड़े भारी विद्वान और प्रभावशाली थे। जिनप्रभसूरि ने जिस तरह विक्रम की सतरह्वी शताब्दी में मुगल व सम्राट अकवर वादशाह के दरवार मे जैन जगद्गुरु हीरविजयसूरि (और युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि) ने शाही सम्मान प्राप्त किया था उसी तरह जिनप्रभसूरि ने भी चौदहवीं शताव्दी मे तुगलक सुल्तान मुहम्मद शाह के दरवार मे वडा गौरव प्राप्त किया। भारत के मुसलमान वादशाहो के दरवार में जैनधर्म का महत्व वतलाने वाले और उसका गौरव वढाने वाले शायद सवसे पहले ये ही आचार्य हुए।

विविधतीर्थकल्प नामक ग्रन्थ जैन साहित्य की एक विशिष्ट वस्तु है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनो प्रकार के विषयो की दृष्टि से इस ग्रन्थ का बहुत कुछ महत्त्व है। जैन साहित्य ही मे नही, **समग्र भारतीय साहित्य में भी इस प्रकार का कोई दूसरा ग्रंथ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।** यह ग्रन्थ विक्रम की चौदहवीं शताव्दी मे जैनधर्म के जितने पुरातन और विद्यमान तीर्थस्थान थे उनके सम्वन्ध मे प्राय. एक प्रकार की "गाइड बुक" है इसमें वर्णित उन तीर्थों का सक्षिप्त रूप से स्थान वर्णन भी है और यथाज्ञात इतिहास भी है ।

प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थलभ्रमण से रचयिता को वड़ा प्रेम था। इन्होंने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागों मे परिभ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्य-

प्रदेश, वराड़, दक्षिण, कर्णाटक, तेलग, विहार, कौशल, अवघ, युक्तप्रान्त और पंजाव आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थलों की इन्होंने यात्रा की थी। इस यात्रा के समय उस स्थान के वारे मे जो जो साहित्यगत और परम्परा-श्रुत वातें उन्हें ज्ञात हुई उनको उन्होंने सक्षप मे लिपिवद्ध कर लिया। इस तरह उस स्थान या तीर्थ का एक कल्प वना दिया और साथ ही ग्रन्थकार को संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में, गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार से ग्रन्थ रचना करने का एक सा अभ्यास होने के कारण कभी कोई कल्प उन्होंने सस्कृत भाषा मे लिख दिया तो कोई प्राकृत में। इसी तरह कभी किसी कल्प की रचना गद्य में कर ली तो किसी की पद्य मे।

जिनप्रभसूरि का विधिप्रपाग्रन्थ भी विधि-विधानों का वहुत वड़ा और महत्वपूर्ण सग्रह है। जैन स्तोत्र आपने सात सौ वनाये कहे जाते है, पर अभी करीव सौ के लग-भग उपलब्ध हैं। इतने अधिक विविध प्रकार के और विशिष्ट स्तोत्र अन्य किसी के भी प्राप्त नही हैं। कल्पसूत्र की "सन्देहविषौषधि" टीका स० १३६४ मे सवसे पहले आपने वनाई। स० १३५६ मे रचित द्व्याश्रय महाकाव्य आपकी विशिष्ट काव्य प्रतिभा का परिचायक है। स० १३५२ से १३९० तक की आपकी पचासों रचनायें स्तोत्रों के अतिरिक्त भी प्राप्त हैं। सूरि मन्त्रकल्प एव चूलिका ह्रींकार कल्प, वर्द्धमान विद्या और रहस्यकल्पद्रुम आपकी विद्याओं व मत्र-तत्र सम्वन्धी उल्लेखनीय रचनाए हैं। अजितशाति, उवसग्गहर, भयहर, अनुयोगचतुष्टय, महावीर-स्तव, षडावश्यक, साधु प्रतिक्रमण, विदग्धमुखमडन आदि अनेक ग्रन्थों की महत्त्वपूर्ण टीकाएं आपने वनाई। कातन्त्र-विभ्रमवृत्ति, हेम अनेकार्थ शेषवृत्ति, रुचादिगण वृत्ति आदि आपकी व्याकरण विषयक रचनाए है। कई प्रकरण और उनके विवरण भी आपने रचे है, उन सब का यहा विवरण देना सभव नहीं।

जिनप्रभसूरिजी की एक उल्लेखनीय प्रतिमा महातीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही में विराजमान है जिसकी प्रतिकृति इस ग्रन्थ मे दी गई है। जिनप्रभसूरि शाखा सतरहवी शताब्दी तक तो वरावर चलती रही जिसमें चारित्रवर्द्धन आदि वहुत वडे-वडे विद्वान इस परम्परा में हुए हैं।

जिनप्रभसूरि का श्रेणिक द्व्याश्रय काव्य पालीताना से अपूर्ण प्रकाशित हुआ था उसे सुसम्पादित रूप से प्रकाशन करना आवश्यक है।

हमारी राय मे श्री जिनप्रभसूरिजी को यही गौरवपूर्ण स्थान मिलना चाहिए जो अन्य चारों दादा-गुरुओ का है। इनके इतिहास प्रकाशन द्वारा भारतीय इतिहास का एक नया अध्याय जुडेगा। सुलतान मुहम्मद तुगलक को इतिहास कारों ने अद्यावधि जिस दृष्टिकोण से देखा है वस्तुत वह एकाङ्गी है। जिनप्रभसूरि सम्वन्धी समकालीन प्राप्त उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि वह एक विद्याप्रेमी और गुणग्राही शासक था।

ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह में प्रकाशित श्रीजिनप्रभ-सूरि के एक गीत से श्रीजिनप्रभसूरिजी ने अश्वपति कुतुबुद्दीन को भी रजित व प्रभावित किया था—

आगमु सिद्धतुपुराण वखाणीइए पडिबोहइ सव्वलोइए
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दीसइ कोइ ए॥
आठाही आठामिहि चउथि तेडावइ सुरिताणु ए।
पुहसितु मुखु जिनप्रभसूरि चलियउ जिमि ससि इदु विमाणि ए॥
असपति कुतुबदीनु मनिरजिउ, दीठेलि जिनप्रभसूरि ए
एकतिहि मन सासउ पूछइ, राय मणोरह पूरि ए॥

तपागच्छीय जिनप्रभसूरि प्रवन्धों में पीरोजसाह को प्रतिवोध देने का उल्लेख मिलता है पर वे प्रबन्ध, सवासौ वर्ष बाद के होने से स्मृति दोष से यह नाम लिखा जाना सभव है।

अनेक ज्ञानभण्डारों के संस्थापक श्रीजिनभद्रसूरि

[पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय]

[श्री जिनराजसूरिजी के पट्टधर पन्द्रहवी शताब्दी के महान् ग्रन्थ संरक्षक आचार्य श्री जिनभद्रसूरिजी का जन्म स० १४४९ चैत्र वदि (सुदि) ६ आर्द्रा नक्षत्र मे छाजहड शाह धीणिग की भार्या खेतलदे की कुक्षि से हुआ था। स० १४६१ में इनकी दीक्षा हुई। वा० शीलचन्द्रगणि के पास इन्होंने अध्ययन कर श्रुत रहस्य को प्राप्त किया। २५ वर्ष की आयु में स० १४७५ के माघ सुदि १५ बुधवार को भाणसोली ग्राम मे श्री सागरचन्द्राचार्य ने इन्हें गच्छनायक पद पर प्रतिष्ठित किया। सा० नाल्हा ने बहुत बड़े महोत्सव पूर्वक पदस्थापना करवायी, इन्होंने अनेक साधु-साध्वियो को दीक्षित किया। भावप्रभाचार्य, कीर्त्तिरत्नाचार्य और जयसागरोपाध्याय को आचार्य, उपाध्याय आदि पदों पर प्रतिष्ठित किया। गिरनार, आबू और जैसलमेर में उपदेश देकर जिनमन्दिर प्रतिष्ठित किये। स० १५१४ मिगसर वदि ९ को कुंभलमेर में आप स्वर्गवासी हुए। इनके पट्ट पर श्री जिनचन्द्रसूरि को स० १५१५ के जेठ बदि २ को पाटण में साह समरसिंह कारित नदीद्वारा श्री कीर्त्तिरत्नाचार्य ने स्थापित किया।

आपकी जीवनी के सम्बन्ध में श्री जिनभद्रसूरि रास व कई गीत हमारे सग्रह में हैं। उक्त रास का सार हमने जैन सत्यप्रकाश मे प्रकाशित कर दिया है। जैसलमेर का सुप्रसिद्ध ज्ञानभडार आपके नाम से ही प्रसिद्ध है।

महान् श्रुतरक्षक श्री जिनभद्रसूरिजी की परम्परा में अनेक आचार्य उपाध्याय और विद्वान हुए। खरतरगच्छ मे जिनभद्रसूरि परम्परा ही सर्वाधिक प्रभावशाली रही है। बीकानेर और जयपुर की भट्टारकीय, आचार्यीय, आद्य-पक्षीय, भावहर्षीय, जिनरंगसूरि शाखा, इन्हीं की परम्परा में हुई है। जिनभद्रसूरिजी की प्राचीन मूर्त्तिया, चरण पादुकाएं अनेक स्थानों मे प्रतिष्ठित दादावाड़ियों व मदिरों में पूज्यमान है। चारों दादासाहब के साथ इनकेचरण भी कई स्थानो में एक साथ प्रतिष्ठित है। स० १४८४ में जयसागरोपाध्याय ने नगरकोट कागडा की यात्रा के विवरण वाला महत्वपूर्ण विज्ञप्तिपत्र आपको भेजा था। मुनिजिनविजयजी ने विज्ञप्ति-त्रिवेणी की प्रस्तावना मे श्रीजिनभद्रसूरि का परिचय इस प्रकार दिया है।

—सम्पादक]

जिनभद्रसूरि

आचार्य श्री जिनभद्रसूरि बहुत अच्छे विद्वान और प्रतिष्ठित हो गए हैं। उन्होने अपने जीवन-काल मे उपदेश द्वारा अनेक धर्मकार्य करवाये, कई राजा-महाराजाओं को अपने भक्त बनाए। विविध देशो मे विचर कर जैन-धर्म की समुन्नति करने का विशेष प्रयत्न किया। जैसल-मेर के सभवनाथ मन्दिर में सं० १४९७ का एक बडा शिलालेख है जिसमे इनके उपदेश से उपर्युक्त मन्दिर बनने व प्रतिष्ठित होने का वृत्तान्त है। इस लेख में इनके गुणों तथा इनके करवाये हुए धर्म-कार्यों का सक्षिप्त उल्लेख करने वाला एक गुरु वर्णनाष्टक है। इस अष्टक के अवलोकन से इनके जीवन का अच्छा परिचय मिलता है। उक्त संस्कृत अष्टक का तात्पर्य यह है कि ये बडे प्रभावक, प्रतिष्ठावान और प्रतिभाशाली आचार्य थे। सिद्धान्तो के

जानने वाले वडे-वडे पण्डित इनके आश्रित-सेवा में रहते थे। इनके उत्कृष्ट व्रह्मचर्य और सत्य-व्रत को देखकर लोक इन्हें स्थूलिभद्र की उपमा देते थे। इनके वचन को सब कोई आप्त वचन की तरह स्वीकारते थे। इन्होंने अपने सौभाग्य से शासन को अच्छी तरह दीपाया—शोभाया था। गिरनार चित्रकूट (चित्तौडगढ), माडव्यपुर (मडोवर) आदि स्थानों मे इनके उपदेश से श्रावको ने वडे-वडे जिन भुवन वनाये थे। अणहिल्लपुर पाटण आदि स्थानो मे विशाल पुस्तक भडार स्थापन करवाये थे। मडपदुर्ग, प्रल्हादनपुर (पालनपुर), तलपाटक आदि नगरो में अनेक जिनविम्वों की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा की थी। इन्होंने अपनी वुद्धि से अनेकान्त जयपताका जैसे प्रखर तर्क ग्रन्थ और विशेषावश्यक भाष्य जैसे सिद्धान्तग्रन्थ अनेक मुनियों को पढाए थे। ये कर्मप्रकृति और कर्मग्रन्थ जैसे गहन ग्रन्थों के रहस्यों का विवेचन ऐसा सुन्दर और सरल करते थे कि जिसे सुनकर भिन्नगच्छ के साधु भी चमत्कृत होते थे और इनके ज्ञान की प्रशसा करते थे। राउल श्री वैरिसिंह और त्र्यवकदास जैसे नृपति इनके चरणों में भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया करते थे। इस प्रकार ये अचार्य वडे शान्त, दान्त, सयमी, विद्वान और पूरे योग्य गच्छपति थे।

इनके उपदेश से जेसलमेर के श्रावक सा० शिवा, महिष, लोला और लाखण नाम के चार भ्राताओं ने सवत् १४६४ में वड़ा भव्य जिनमन्दिर वनवाया जिसकी प्रतिष्ठा इन्होंने सवत् १४६७ मे की थी और सभवनाथ प्रभृति तीन सौ जिनविम्व प्रतिष्ठित किये थे। इस प्रतिष्ठा मे उक्त चार भाइयों ने अगणित द्रव्य खर्च किया था।

और भी अनेक स्थानों मे वडे-वडे जिनमन्दिर वनवाये, प्रतिष्ठामहोतव करवाये और हजारों जिनविम्व प्रतिष्ठित किये थे।

जिनभद्रसूरि और पुस्तक भाण्डागार

जिनभद्रसूरि ने अपने जीवन में सवसे अधिक महत्वका और विशिष्टता वाला जो कार्य किया है वह भिन्न-भिन्न स्थानों में विशाल पुस्तकालय स्थापित कराने का है।

इन्होंने जैसे और जितने शास्त्र भण्डार स्थापित किये-कराये, वैसे शायद ही अन्य आचार्य ने किये-करवाये हों। इस ग्रन्थोद्धार कार्य के प्राचुर्य में इनके और सुकृत मानो गौण हो गए थे।

अष्टलक्षी के प्रशस्ति पद्य से जैसलमेर, जावालपुर, देवगिरि (दौलतावाद) अहिपुर और पाटण इन पाच स्थानों के भडारों का मण्डप दुर्ग (माडवगढ), आशापल्ली या कर्णावती और खम्भायत—इन तीन और अन्य भंडारों का उल्लेख मिलता है।

जैसलमेर खरतरगच्छ का प्रधान स्थान था। जिन-भद्रसूरि इस गच्छ के नेता थे। इन्होंने जैसलमेर के शास्त्र सग्रह के उद्धार का सकल्प किया। अनेक अच्छे-अच्छे लेखक इस काम के लिए रोके गये और उनके द्वारा ताड-पत्र और कागजों पर नकलें करायी जाने लगीं। जिन-भद्रसूरि स्वय भिन्न-भिन्न प्रदेशों में फिरकर श्रावकों को शास्त्रोद्धार का सतत उपदेश देने लगे। इस प्रकार स० १४७५ से १५१५ तक के ४० वर्षों मे हजारों वल्कि लाखों ग्रन्थ लिखवाये और उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों में रखकर अनेक नये पुस्तक भडार कायम किये।

पाटण और आशापल्ली के भडार एक ही श्रावक के लिखाये हुए नही थे किन्तु कई गृहस्थों ने अपनी इच्छा-नुसार एक, दो अथवा दस, वीस पुस्तकें लिखवा कर इनमे रख दी थीं। परन्तु खभायत का भण्डार एक ही श्रावक धरणाक ने तैयार करवाया था यह परीक्ष गोत्रीय सा० गूजर का पुत्र और स० साइया का पिता था।

मण्डपदुर्ग के श्रीमाली सोनिगिरा वशीय मत्रीश्रीमडन और धनदराज वडे अच्छे विद्वान थे। मण्डन का वश और कुटुम्व खरतरगच्छ का अनुयायी था। इन भ्राताओ ने जो उच्चकोटि का शिक्षण प्राप्त किया था वह इसी

गच्छ के साधुओं की कृपा का फल था। इस समय इस गच्छ के नेता जिनभद्रसूरि थे, इसलिए उनपर इनका अनुराग और सद्भाव स्वभावत ही अधिक था। इन दोनों भाइयो ने अपने-अपने ग्रन्थो में इन आचार्य की भूरि-भूरि प्रशसा की है।

इन भ्राताओं ने जिनभद्रसूरि के उपदेश से एक विशाल सिद्धान्तकोश लिखवाया था। यह सिद्धान्तकोश आज विद्यमान नही। पाटण के भण्डार मे भगवतीसूत्र की प्रति मडन के सिद्धान्तकोश की है! इस प्रति के अन्त में मण्डन की प्रशस्ति है।

जिनभद्रसूरि ने विद्वत्ता के प्रमाण में ग्रन्थो की रचना की है ऐसा प्रतीत नहीं होता। इनका बनाया हुआ एक ग्रन्थ मेरे दृष्टिगोचर हुआ है, इसका नाम 'जिनसत्तरी प्रकरण' है। यह प्राकृत मे गाथाबध है। इसकी कुल गाथाएँ २२० है। इसमे २४ तीर्थंकरों के पूर्वभव-संख्या, द्वीपक्षेत्र, विजय, नगर, नाम और आयु आदि ७० बातो की सूची है।

जिनभद्रसूरि का शिष्य समुदाय बड़ा और प्रभावशाली था।

जिनभद्रसूरि की एक पाषाणमय मूर्त्ति जोधपुर राज्य के खेडगढ़ के पास जो नगर गाव है, वहां के भूमिगृह मे स्थापित है। यह मूर्त्ति उकेश वश के कायस्थकुल वाले किसी श्रावक ने संवत् १५१२ मे बनवायी थी।

जिनभद्रसूरि बहुत भाग्यवान और तेजस्वी थे।

मुनि श्री चतुरविजयजी ने जैन स्तोत्र सदोह भाग २ की प्रस्तावना में जिनभद्रसूरिजी की अन्य रचनाओं, पादुकाओं, शिष्यों आदि का अच्छा विवरण दिया है।

आचार्य प्रवर श्रीजिनभद्रसूरि जी के हाथ की लिखी हुई सुन्दर अक्षरों वाली एक प्रति कलकत्ता के श्री पूरण नाहर के संग्रह मे हमारे अवलोकन मे आई जो स० १५११ आषाढ वदि १४ बुधवार की लिखी हुई है। योग विधि पद स्थापना विधि की यह प्रति वा० साधुतिलक गणि को प्रसादी कृत है। इसके अन्तिम पत्र की प्रति कृति नीचे दी जा रही है। जिससे पाठकों को सूरिजी की अक्षर-देह के दर्शन हो जायेंगे।

कलकत्ता दादावाडी का भीतरी दृश्य

मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत
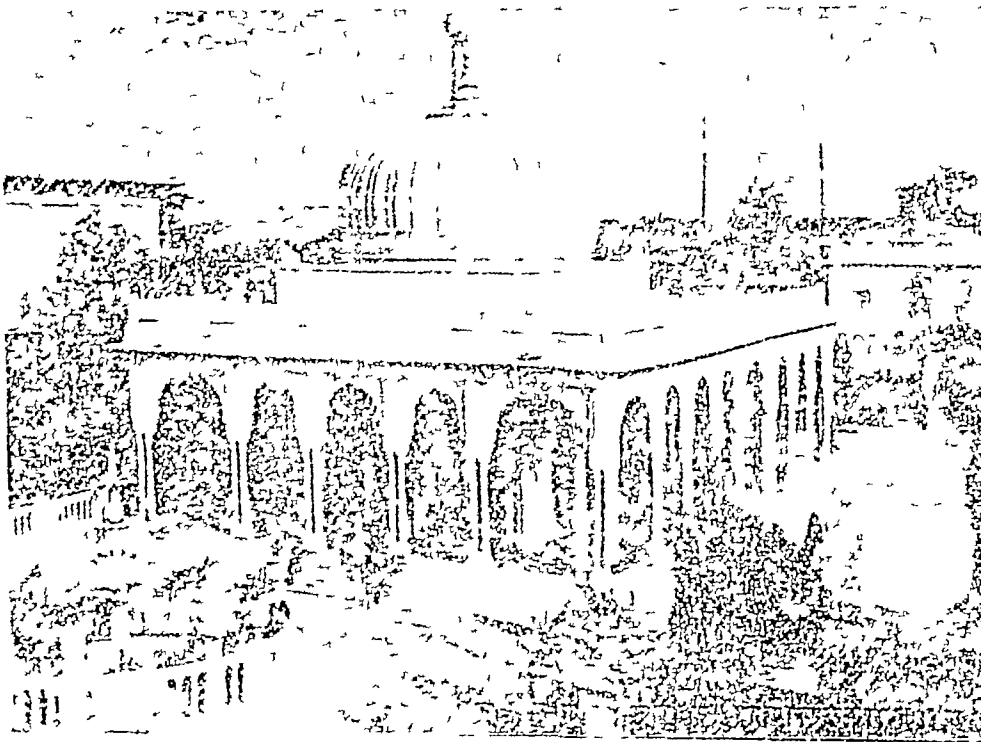
कलकत्ता दादावाडी, फोटो महेन्द्र सिंघी

नररत्न मोतीशाह नाहटा, बम्बई

जैनाचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी

जैनाचार्य श्रीजिनमणिसागरसूरिजी

शत्रुंजय-सम्मेलन मे जैनाचार्य श्रीजिनानंदसागरसूरिजी उ० सुखसागरजी उ० कवीन्द्रसागरजी गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी, गणिवर्य हेमेन्द्रसागरजी आदि साधुसमुदाय

अकबर-प्रतिबोधक युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि

[भँवरलाल नाहटा]

मणिधारीजी के स्वर्गवास के पचीस वर्ष पश्चात् आर्यावर्त्त अपनी स्वाधीनता खोकर यवन-शासन की दुर्दान्त चक्की मे बुरी तरह से पिसा जाने लगा। उसके सहस्राब्दियों से सचित धर्म, सस्कृति, साहित्य और कला को अपार क्षति पहुँची। यदि समय-समय पर महापुरुषों ने जन्म लेकर अपने लोकोत्तर प्रभाव से जनता का मनोवल व चारित्रवल ऊचा न उठाया होता तो जिस रूप मे समाज विद्यमान है, कभी नही रहता। महापुरुषो का योगवल ससार की कल्याण-सिद्धि करता है।

वसतिमार्ग प्रकाशक श्री जिनेश्वरसूरिजी के पश्चात् क्रमश उनकी पट्ट-परम्परा मे जो भी महापुरुष हुए, वे क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्यादि प्रजा को प्रतिवोध देकर धार्मिक समाज का निर्माण करते गए, जिससे जैन समाज का गौरव बढा। न केवल त्यागी वर्ग में ही उच्च चारित्र का प्रतिष्ठापन हुआ बल्कि जैन श्रावको में भी अनेको श्रेष्ठी, मत्री, सेनापति आदि प्रभावशाली, धर्मप्राण और परोपकारी व्यक्ति हुए जिन्होंने देश और समाज की सेवा मे अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया। राज्य-शासन मे समय-समय पर जैनाचार्यों व जैन गृहस्थों—श्रावकों का भी बडा भारी वर्चस्व रहा है। अपनी उदारता और प्रभाव के कारण जैनेतर समाज से जैन समाज की क्षति कम हुई और तीर्थ व धर्मरक्षा में शासको से बडा भारी सहयोग भी मिलता रहा। चौदहवी शताब्दी मे तीसरे दादा श्री जिनकुशलसूरिजी और शासन-प्रभावक श्री जिनप्रभसूरिजी का जैन शासन पर बडा उपकार हुआ। उसी परम्परा मे चतुर्थ दादा साहव श्री जिनचन्द्रसूरिजी हुए जो युगप्रधान महापुरुष थे। उन्होने हजारों मुमुक्षुओ को शुद्ध चारित्र मार्ग के पथिक बनाये। धर्म-क्रान्ति करके जैन धर्म में आयी हुई विकृतियों का परिष्कार किया। अकबर, जहांगीर एव हिन्दू राजा-महाराजाओ को अपने चारित्रवल से प्रभावित—प्रतिवोधित कर जैन शासन की महान् प्रभावना की। उन्ही का सक्षिप्त परिचय यहा देना अभीष्ट है।

वीरप्रसू मारवाड के खेतसर गाँव में रीहड गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठी श्रीवन्तशाह को धर्मपत्नी श्रिया देवी की कुक्षि से स० १५९५ चैत्र कृष्ण १२ के दिन आपने जन्म लिया। माता-पिता ने आपका गुणनिष्पन्न नाम 'सुलतान-कुमार' रखा जो आगे चलकर जैन समाज के सुलतान सम्राट हुए। वाल्यकाल मे ही अनेक कलाओं के पारगामी हो गए विशेषत पूर्व जन्म सस्कारवश धर्म की ओर आपका झुकाव अत्यधिक था।

स० १६०४ में खरतरगच्छ नायक श्रीजिनमाणिक्यसूरि जी महाराज के पधारने पर उनके उपदेशो का आप पर वडा असर हुआ और आपकी वैराग्य-भावना से माता-पिता को दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करने को विवश होना पडा। ९ वर्ष की आयु वाले सूलतान कुमार ने वडे ही उल्लासपूर्वक सयम-मार्ग स्वीकार किया। गुरु महाराज ने आपका नाम 'सुमतिधीर' रखा। प्रतिभा-सम्पन्न और विलक्षण वुद्धि-शाली होने से आपने अल्पकाल मे ही ग्यारह अग आदि सकल शास्त्र पढ डाले तथा वाद-विवाद, व्याख्यान, कलादि में पारगामी होकर गुरु महाराज के साथ देश-विदेश मे विचरण करने लगे।

उस समय जैन साधुओ में थोड़ा आचार-शैथिल्य का

प्रवेश हो चुका था जिसे परिहार कर क्रियोद्धार करने की भावना सभी गच्छनायकों मे उत्पन्न हुई। श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी महाराज ने भी दादासाहब श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के स्वर्गवास से पवित्र तीर्थरूप देरावर की यात्रा करके गच्छ में फैले हुए शिथिलाचार को समूल नष्ट करने का सकल्प किया परन्तु भवितव्यता वश वे अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत न कर सके और वहां से जेसलमेर आते हुए मार्ग में पिपासा परिषह उत्पन्न हो जाने से अनशन स्वीकार कर लिया। सन्ध्या के पश्चात् किसी पथिकादि के पास पानी की योगवाई भी मिली पर सूरिमहाराज अपने चिरकाल के चौविहार व्रत को भग करने के लिए राजी नहीं हुए। उनका स्वर्गवास होने पर जब २४ शिष्य जेसलमेर पधारे तो गुरुभक्त रावल मालदेव ने स्वयं आचार्य-पदोत्सव की तैयारियाँ कीं और तत्र विराजित खरतरगच्छ के वेगड शाखा के प्रभावक आचार्य श्रीगुणप्रभसूरिजी महाराज से बडे समारोह के साथ मिती भाद्रपद शुक्ल ९ गुरुवार के दिन सतरह वर्ष की आयु वाले श्री सुमतिधीरजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करवाया। गच्छ मर्यादानुसार आपका नाम श्री जिनचन्द्रसूरि प्रसिद्ध हुआ। उसी रात्रि मे गुरु महाराज श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी ने दर्शन देकर समवशरण पुस्तिका स्थित साम्नाय सूरि-मन्त्रविधि निर्देश पत्र की ओर सकेत किया।

चातुर्मास पूर्ण कर आपश्री बीकानेर पधारे। मत्री सग्रामसिंह बच्छावत की प्रबल प्रार्थना थी, अतः सघ के आग्रह से जहाँ तीन सौ यतिगण विद्यमान थे, चातुर्मास न कर सूरिजी मंत्रीश्वर की अश्वशाला मे ही रहे। उनका सुदृढ हृदय वैराग्यरस से ओत-प्रोत था। उन्होंने महान चिन्तन-मनन के पश्चात् क्रान्ति का मूल-मत्र क्रिया-उद्धार की भावना को कार्यान्वित करना निश्चित किया।

मत्री सग्रामसिंह का इस कार्य में पूर्ण सहयोग रहा, सूरि महाराज ने यतिजनों को आज्ञा दी कि जिन्हें शुद्ध साधु-मार्ग से प्रयोजन हो, वे हमारे साथ रहें और जो लोग असमर्थ हो, वे वेश त्यागकर गृहस्थ बन जावें। क्योंकि साधुवेश में अनाचार अक्षम्य है। सूरिजी के प्रबल पुरुषार्थ से ३०० यतियों में से सोलह व्यक्ति चन्द्रमा की सोलह कला रूप जिनचन्द्रसूरिजी के साथ हो गए। सयम पालन में असमर्थ अवशिष्ट लोगो को मस्तक पर पगडी धारण कराके 'मत्थेरण' गृहस्थ बनाया गया, जो महात्मा कहलाने लगे और अध्यापन, लेखन व चित्रकलादि का काम करके अपनी आजीविका चलाने लगे।

सूरिजी की क्रान्ति सफल हुई। यह क्रियोद्धार स० १६१४ चैत्र कृष्ण ७ को हुआ। बीकानेर चातुर्मास के अनन्तर स० १६१५ का चातुर्मास महेवानगर मे किया और नाकोडा पार्श्वनाथ प्रभु के सान्निध्य मे छम्मासी तपाराधन किया। तप जप के प्रभाव से आपकी योगशक्तिया विकसित होने लगी। चातुर्मास के पश्चात् आप गुजरात की राजधानी पाटण पधारे। स० १६१६ माघ सुदि ११ को बीकानेर से निकले हुए यात्री सघ ने, शत्रुञ्जय यात्रा से लौटते हुए पाटण में जगमतीर्थ-सूरिमहाराज की चरण वन्दना की।

उन दिनो गुजरात में खरतरगच्छ का प्रभाव सर्वत्र विस्तृत था, पाटण तो खरतर विरुद प्राप्ति का और वसतिवास प्रकाश का आद्य-दुर्ग था। सूरि महाराज वहां चातुर्मास मे विराजमान थे, उन्होने पौषध विधिप्रकरण पर ३५५४ श्लोक परिमित विद्वत्तापूर्ण टीका रची, जिसे महोपाध्याय पुण्यसागर और वा० साधुकीर्ति गणि जैसे विद्वान गीतार्थो ने सशोधित की।

उस जमाने मे तपागच्छ मे धर्मसागर उपाध्याय एक कलहप्रिय और विद्वत्ताभिमानी व्यक्ति हुए, जिन्होंने जैन समाज मे पारस्परिक द्वेष भाव वृद्धि करने वाले कतिपय ग्रन्थों की रचना करके शान्ति के समुद्र सदृश जैन समाज में द्वेष-वडवाग्नि उत्पन्न की। उन्होंने सभी गच्छों के प्रति

विषवमन किया और सुविहित शिरोमणि नवाङ्ग वृतिकर्त्ता अभयदेवसूरि खरतरगच्छ में नहीं हुए, खरतरगच्छ की उत्पत्ति बाद मे हुई, यह गलत प्ररूपणा की, क्योंकि अभयदेवसूरि जी सर्वगच्छ मान्य महापुरुष थे और उन्हे खरतरगच्छ मे हुए अमान्य करके ही वे अपनी चित्त-कालुष्यवृत्ति—खण्डनात्मक दुष्प्रवृत्ति की पूर्ति कर सकते थे।

जब उनकी यह दुष्प्रवृत्ति प्रकाश मे आई तो श्रीजिन-चन्द्रसूरिजी ने उसका प्रबल विरोध किया और धर्मसागर उपाध्याय को समस्त गच्छाचार्यों की उपस्थिति मे कार्तिक सुदि ४ के दिन शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। पर वे पचासरापाडा की पोशाल में छिप बैठे। दूसरी बार कार्तिक सुदि ७ को फिर धर्मसागर को बुलाया पर उनके न आने पर चोरासी गच्छचर्चोका-गीतार्थों के समक्ष अभय-देवसूरि के खरतरगच्छ मे होने के विविध प्रमाणों सहित 'मतपत्र' लिखा गया और उसमे समस्त गच्छाचार्यो की सही कराके उत्सूत्रभाषी धर्मसागर को निह्नव प्रमाणित कर जैन सघ से बहिष्कृत कर दिया गया।

इस प्रकार पाटण मे पुन शास्त्रार्थ विजय की सुविहित पताका फहरा कर सूरिजी खभात पधारे। स० १६१८ का चातुर्मास करके स० १६१९ मे राजनगर-अहमदावाद पधारे। यहां मत्रीश्वर सारगवर सत्यवादी के लाये हुए विद्वत्ताभिमानी भट्ट की समस्यापूर्ति कर उसे परास्त किया। स० १६२० का चातुर्मास बीसलनगर और स० १६२१ का चातुर्मास बीकानेर में किया। स० १६२२ वै० शु० ३ को प्रतिष्ठा कराके चातुर्मास जेसलमेर किया। बीकानेर के मंत्री सग्रामसिंह ने नागौर के हसनकुलीखान पर सन्धि-विग्रह में जय प्राप्त कर सूरि महाराज का प्रवेशोत्सव कराया। स० १६२२-२३ के चातुर्मास जेसलमेर मे बिताकर खेतासर के चोपड़ा चापसी-चांपलदे के पुत्र मानसिंह को मार्गशीर्ष कृ० ५ को दीक्षित किया। इनका नाम 'महिमराज' रखा, जो आगे चलकर सूरि महाराज के पट्टधर श्रीजिनसिंहसूरि नाम से प्रसिद्ध हुए।

सं० १६२४ का चौमासा नाडोलाई किया, मुगल सेना के भय से सभी नागरिक इतस्ततः नगर छोडकर भागने लगे। सूरि महाराज उपाश्रय मे निश्चल ध्यान मे बैठे रहे, जिसके प्रभाव से मुगल सेना मार्ग भूलकर अन्यत्र चली गई। लोगों ने लौटकर सूरिजी के प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर भक्ति भाव से उनकी स्तवना की।

स० १६२५ बापेऊ, १६२६ बीकानेर, सं० १६२७ का चातुर्मास महिम करके आगरा पधारे और सौरीपुर, चन्द्रवाड, हस्तिनापुरादि तीर्थों की यात्रा की। स० १६२८ का चातुर्मास आगरा कर १६२९ का रोहतक किया।

सं० १६३० के बीकानेर चातुर्मास मे प्रतिष्ठा व व्रतो-च्चारण आदि धर्म कृत्य हुए। स० १६३१-३२ का चातुर्मास भी बीकानेर हुआ। स० १६३३ मे फलौधी पार्श्वनाथ तीर्थ के तालों को हाथ स्पर्श से खोल कर तीर्थ दर्शन किया। फिर जेसलमेर चातुर्मास कर गेली श्राविकादिको व्रतोच्चारण कर-वाये। तदनन्तर देरावर पधारे और कुशल गुरु के स्वर्गस्थान की यात्रा कर वही चातुर्मास किया। १६३५ जेसलमेर, स० १६३६ बीकानेर, स० १६३७ सेरुणा, स० १६३८ बीकानेर स० १६३९ जेसलमेर, स० १६४० आसनीकोट मे चातुर्मास करके जेसलमेर पधारे। माघ सुदी ५ को अपने शिष्य महिमराज जी को वाचक पद से अलकृत किया। स०१६४१ का चातुर्मास करके पाटण पधारे। स० १६४२ का चातुर्मास कर शास्त्रार्थ मे विजय प्राप्त की। स० १६४३ का चौमासा अहमदाबाद कर के धर्मसागर के उत्सूत्रात्मक ग्रन्थो का उच्छेद किया। स० १६४४ मे खभात चातुर्मासकर अहमदाबाद पधारे सघपति सोमजी साह के सघ सहित शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा की। स० १६४५ सूरत, स० १६४६ अहमदाबाद पधारे और विजयादशमी के दिन हाजापटेल की पोल स्थि। शिवा सोमजी के शांतिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा बडी धूम-धाम से की। मन्दिर में ३१ पक्तियो का शिलालेख लगा हुआ है एव एक देहरी मे सखवाल गोत्रीय श्रावको

का लेख है। १६४७ में पाटण चौमासा किया श्राविका कोडां को व्रतोच्चारण करवाया। फिर अहमदावाद होते हुए खभात पधारे।

आपके त्याग-तपोमय जीवन और विद्वत्ता की सौरभ अकवर के दरवार तक जा पहुँची। अकवर ने मत्री कर्मचन्द्र को आदेश देकर एवं सूरि महाराज को शीघ्र लाहौर पधारने के लिये फरमान भिजवाये। सूरिजी खभात से अहमदावाद पधारे। आषाढ सुदि १३ को लाहौर के लिए प्रस्थान कर महेशाणा, सिद्धपुर, पालनपुर होते हुए सीरोही के सुरतान देवडा की विनति से सीरोही पधारे। पर्यूषण के ८ दिन सीरोही मे विताये। राव सुरतान ने पूर्णिमा के दिन जीवहिंसा निषिद्ध घोषित की। वहां से जालोर पधारे। वादशाह का फरमान आया कि आप चौमासे वाद शीघ्र पधारें पर शिष्यों को पहले ही लाहोर भेज दें। सूरजी ने महिमराज वाचक को ठा० ७ से लाहौर भेजा। सूरिजी चौमासा उतरने पर देछर, सराणा, भमराणी खांडप, द्रुणाडा, रोहीठ पधारे। इन सव नगरों मे वड़े २ नगरों का सघ वदनार्थ आया था। गुरुदेव पाली, सोजत, वीलाड़ा, जयतारण होते हुए मेड़ता पधारे। मत्रीश्वर कर्मचन्द्र के पुत्र भाग्यचन्द, लक्ष्मीचन्द्रने प्रवेशोत्सवादि किये। नागौर, वापेऊ, पडिहारा, राजलदसेर, मालासर, रिणी, सरसा, कसूर होते हुए हापाणा पधारे। मत्रीश्वर ने सूरिजी के लाहौर प्रवेश की वडी तैयारियाँ कीं। स० १६४८ फा० शु० १२ के दिन ३१ साधुओं के परिवार सहित लाहौर जाकर वादशाह को धर्मोपदेश दिया। सम्राट, गुरु महाराज के प्रवचन से वडा प्रभावित हुआ और प्रतिदिन ड्योढी-महल में बुलाकर उपदेश श्रवण प्रारभ किया। एकवार सम्राट ने गुरु महाराज के समक्ष एकसौ स्वर्ण मुद्राएं भेंट रखी जिसे अस्वीकार करने पर उनकी निस्पृहता से वह बड़ा प्रभावित हुआ।

एकवार शाहजादा सलीम के मूल नक्षत्र में पुत्री उत्पन्न हुई तो ज्योतिषी लोगों ने उस पुत्री का जन्मयोग पिता के लिए अनिष्टकारी वतला कर नदी में प्रवाहित करने का फलादेश दिया। वादशाह ने इस हिंसामय कार्य को अनुचित जानकर जैनविधि से ग्रहशांति अनुष्ठान करने का मंत्री कर्मचन्द्र को आदेश दिया।

मत्रीश्वर ने चैत्र सुदि १५ के दिन सोने चांदी के घडो से एक लाख के सद्व्यय से वाचक महिमराजजी के द्वारा सुपार्श्वनाथजी मन्दिर मे शाति-स्नात्र करवाया। मंगलदीप और आरती के समय सम्राट और शाहजादा सलीम ने उपस्थित होकर दस हजार रुपये प्रभुभक्ति में भेंट किये। प्रभु का स्नात्रजल को अपने नेत्रों मे लगाया तथा अन्तःपुर मे भी भेजा। सम्राट अकवर सूरिमहाराज को "वड़े गुरु" नाम से पुकारता था, इससे उनकी इसी नाम से सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई।

एकवार नौरंगखान द्वारा द्वारिका के जैन मन्दिरों के विनाश की वार्त्ता सुनी तो सूरिजी ने सम्राट को तीर्थ-माहात्म्य वतलाते हुए उनकी रक्षा का उपदेश दिया। सम्राट ने तत्काल फरमान पत्र लिखवाकर अपनी मुद्रा लगाके मंत्रीश्वर को समर्पित कर दिया, जिसमे लिखा था कि आज से समस्त जैन तीर्थ मन्त्री कर्मचन्द्र के अधीन है। गुजरात के सूवेदार आजमखान को तीर्थरक्षा के लिए सख्त हुक्म भेजा, जिससे शत्रुजय तीर्थ पर म्लेच्छोपद्रव का निवारण हुआ।

एकवार काश्मीर विजय के निमित्त जाते हुए सम्राट ने सूरि महाराज को वुलाकर आशीर्वाद प्राप्त किया और आषाढ शुक्ला ९ से पूर्णिमा तक वारह सूवो मे जीवों को अभयदान देने के लिए १२ फरमान लिख भेजे। इसके अनुकरण मे अन्य सभी राजाओं ने भी अपने-अपने राज्यों मे १० दिन, १५ दिन, २० दिन, महीना, दो महीना तक जीवों के अभयदान की उद्घोषणा कराई।

सम्राट ने अपने कश्मीर प्रवास में धर्मगोष्ठी व जीव-दया प्रचार के लिए वाचक महिमराज को भेजने की प्रार्थना की। मत्रीश्वर और श्रावक वर्ग साथ मे थे ही अतः सूरिजी ने

लाभ जानकर मुनि हर्षविशाल और पचानन महात्मा आदि के साथ वाचकजी को भी भेजा। मिती श्रावण शुक्ल १३ को प्रथम प्रयाण राजा रामदास की वाडी मे हुआ। उस समय सम्राट, सलीम तथा राजा, महाराजा और विद्वानों की एक विशाल सभा एकत्र हुई जिसमे सूरिजी को भी अपनी शिष्य-मण्डली सहित निमन्त्रित किया। इस सभा मे समयसुन्दरजी ने 'राजानो ददते सौख्य' वाक्य के १०२२४०७ अर्थ वाला अष्टलक्षी ग्रन्थ पढकर सुनाया। सम्राट ने उसे अपने हाथ में लेकर रचयिता को समर्पित करके प्रमाणीभूत घोषित किया।

कश्मीर जाते हुए रोहतासपुर मे मंत्रीश्वर को शाही अन्त पुर की रक्षा के लिए रुकना पडा। वाचकजी सम्राट के साथ मे थे। उनके उपदेश से मार्गवर्ती तालावों के जलचर जीवों का मारना निषिद्ध हुआ। कश्मीर के कठिन व पथरीले मार्ग मे शीतादि परिषह सहते हुए पैदल चलने वाले वाचकजी की साधुचर्या का सम्राट के हृदय मे गहरा प्रभाव पडा। विजय प्राप्त कर श्रीनगर आने पर वाचक जी के उपदेश से सम्राट ने आठ दिन तक अमारि उद्-घोषणा करवाई।

सं० १६४९ के माघ मे लाहोर लौटने पर सूरिजी ने साधुमंडली सहित जाकर सम्राट को आशीर्वाद दिया। सम्राट ने वाचक जी को कश्मीर प्रवास मे निकट से देखा था अतः उनके गुणों की प्रशसा करते हुए इन्हें आचार्य पद से विभूषित करने के लिए सूरिजी से निवेदन किया।

सूरिजी की सम्मति पाकर सम्राट ने मंत्री कर्मचन्द्र से कहा—वाचकजी सिंह के सदृश चारित्र-धर्म में दृढ है अतः उनका नाम 'सिंहसूरि' रखा जाय और वडे गुरु महाराज के लिए ऐसा कौन सा सर्वोच्च पद है जो तुम्हारे धर्मानुसार उन्हें दिया जाय। कर्मचन्द्र ने जिनदत्तसूरि जी का जीवनवृत्त वताया और उनके देवता प्रदत्त युगप्रधान पद से प्रभावित होकर अकवर ने सूरिजी को 'युगप्रधान' घोषित करते हुए जैन धर्म की विधि के अनुसार उत्सव करने की आज्ञा दी। कर्म-चन्द्रने राजा रायसिंहजी की अनुमति पाकर सघ को एकत्र किया और सघ-आज्ञा प्राप्त कर फाल्गुण कृष्ण १० से अष्टाह्निका महोत्सव प्रारम्भ किया और फाल्गुन शुक्ल २ के दिन मध्याह्न मे श्री जिनसिंहसूरि का आचार्य पद, वा० जयसोम और रत्ननिधान को उपाध्याय पद एव प० गुण-विनय व समयसुन्दर को वाचनाचार्य पद से अलकृत किया गया। यह उत्सव सखवाल साधुदेव के बनाये हुए खरतर गच्छोपाश्रय मे हुआ। मन्त्रीश्वर ने दिल खोलकर अपार धन राशि व्यय की। सम्राट ने लाहोर मे तो अमारि उद्घो-षणा की ही पर सूरिजी के उपदेश से खभात के समुद्र के असख्य जलचर जीवों को भी वर्षावधि अभयदान देने का फरमान जारी किया। "युगप्रधान" गुरु के नाम पर मत्रीश्वर ने सवा करोड का दान किया। सम्राट के सन्मुख भी दस हजार रुपये, १० हाथी, १२ घोडे और २७ तुक्रम भेंट रखे जिसमे से सम्राट ने मंगल के निमित्त केवल १ रुपया स्वीकार किया। सूरिमहाराज ने बोहित्थ सतति को पाक्षिक, चातुर्मासिक, व सावत्सरिक पर्वो में जयतिहुअण बोलने का व श्रीमालों को प्रतिक्रमण में स्तुति बोलने का आदेश दिया। राजा रायसिंहजी ने कितने ही आगमादि ग्रन्थ सूरिमहाराज को समर्पण किये जिन्हें बीकानेर ज्ञान-भण्डार में रखा गया।

सूरिजी लाहोर मे धर्म-प्रभावना कर हापाणा पधारे और स० १६५० का चातुर्मास किया। एक दिन रात्रि के समय चोर उपाश्रय मे आये पर साधुओं के पास क्या रखा था ? बीकानेर ज्ञानभण्डार के लिए प्राप्त ग्रन्थादि चुरा कर चोर जाने लगे तो सूरिजी के तपोबल से वे अन्धे हो गये और पुस्तकें वापस आ गई। सम्राट के पास लाहोर मे जयसोमोपाध्यायादि चातुर्मास स्थित थे ही, सूरि महाराज ने लाहोर आकर स० १६५१ का चातुर्मास किया जिससे अकवर को निरन्तर धर्मोपदेश मिलता रहा। अनेक

शिलालेखादि से प्रमाणित है कि सूरि महाराज के उपदेश से सम्राट ने सब मिलाकर वर्ष मे छ महीने अपने राज्य में जीवहिंसा निषिद्ध की तथा सर्वत्र गोवध बद कर गोरक्षा की और शत्रुञ्जय तीर्थ को करमुक्त किया।

जहागीर की आत्मजीवनी, डा० विन्सेण्ट ए० स्मिथ, पुर्तगाली पादरी पिनहेरो व प्रो० ईश्वरीप्रसाद आदि के उल्लेखो से स्पष्ट है कि सूरिजी आदि के सम्पर्क में आकर अकवर बड़ा दयालु हो गया था। सम्राट के दरबारी व्यक्ति अबुलफजल, आजमखान, खानखाना इत्यादि पर भी सूरिजी का बडा प्रभाव था। धर्मसागर उपाध्याय के ग्रन्थ, जो कई बार अप्रमाणित ठहराये जा चुके थे, फिर प्रवचन-परीक्षा ग्रन्थ का विवाद छिड़ा जिसे अबुलफजल की सही से निकाले हुए शाही फरमान से निराकृत किया जाना प्रमाणित है।

सम्राट ने सूरिजी से पचनदी के पाच पीरो—देवो को वश में करने का आग्रह किया क्योंकि जिनदत्तसूरि के कथा प्रसंग से वह प्रभावित था। सूरिजी स० १६५२ का चातुर्मास हापाणा करके मुलतान पधारे और चन्द्रवेलि पत्तन जाकर पचनदी के सगम स्थान मे आयंबिल व अष्टमतप पूर्वक पहुँचे।

सूरिजी के ध्यान मे निश्चल होते ही नौका भी निश्चल हो गई। उनके सूरि-मत्रजाप और सद्गुणो से आकृष्ट होकर पांचनदी के पांच पीर, मणिभद्र यक्ष, खोडिया क्षेत्रपालादि सेवा मे उपस्थित हो गये और उन्हें धर्मोन्नति-शासन प्रभावना में सहाय्य करने का वचन दिया।

सूरिजी प्रात काल चन्द्रवेलि पत्तन पधारे। घोरवाड साह नानिग के पुत्र राजपाल ने उत्सव किया। वहां से उच्चनगर होते हुए देरावर पधारे और दादा साहब श्री जिनकुशलसूरिजी के स्वर्ग-स्थान की चरण-वदना की। तदनंतर श्री जिनमाणिक्यसूरिजी के निर्वाण-स्तूप और नवहर पुर पार्श्वनाथ की यात्रा कर जेसलमेर मे सं० १६५३ का चातुर्मास किया, फिर अहमदाबाद आकर माघसुदि १० को धनासुतार की पोल मे, शामला की पोल में और टेमला की पोल मे बडे समारोह से प्रतिष्ठा करवायी। स० १६५४ में शत्रुजय पधार कर मिती जेठ सु० ११ को मोटी-टूंक-विमल-वसही के सभा मण्डप मे दादा श्री जिनदत्तसूरिजी एव श्री जिनकुशलसूरि जी की चरणपादुकाएं प्रतिष्ठित की। वहां से आकर, अहमदाबाद में चातुर्मास किया। स० १६५५ का चोमासा खभात किया। सम्राट अकबर ने बुर्हानपुर में सूरिजी को स्मरण किया। फिर ईडर इत्यादि विचरते हुए अहमदाबाद आये। यहां मन्त्री कर्मचन्द का देहान्त हुआ। संवत् १६५७ पाटण चातुर्मास कर सीरोही पधारे, वहां माघ सुदि १० को प्रतिष्ठा की। सं० १६५८ खभात, १६५९ अहमदाबाद, स० १६६० पाटण, सं० १६६१ मे महेवा चातुर्मास किया। मिती मि०कृ ५ को कांकरिया कम्मा के द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। सं० १६६२ में बीकानेर पधारे। चैत्र कृष्ण ७ के दिन नाहटों की गवाड स्थित शत्रुञ्जयावतार आदिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा करवायी। स० १६६३ का चातुर्मास बीकानेर में हुआ। स० १६६४ वैशाख सुदि ७ को फिर बीकानेर में प्रतिष्ठा हुई। सभवत यह प्रतिष्ठा महावीर स्वामी के मन्दिर की हुई थी।

स १६६४ का चातुर्मास लवेरा मे हुआ। जोधपुर से राजा सूरसिंह वन्दनार्थ आये। अपने राज्य मे सर्वत्र सूरिजी का वाजित्रो मे प्रवेश हो, इसके लिए परवाना जाहिर किया। स० १६६५ मे मेड़ता चातुर्मास बिताकर अहमदाबाद पधारे। स १६६६ का चातुर्मास खभात किया। स १६६७ का चातुर्मास अहमदाबाद मे करके स १६६८ का चातुर्मास पाटण मे किया।

इस समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सूरिजी को वृद्धावस्था मे भी सत्वर विहार करके आगरा आना पडा। बात यह थी कि जहांगीर का शासन था, उसने किसी यति के अनाचार से क्षुब्ध होकर सभी यति-साधुओ को आदेश दिया

कि वे गृहस्थ बन जांय अन्यथा उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाय। इस आज्ञा से सर्वत्र खलबली मच गई। कोई देश देशान्तर गये और कई भूमिगृहों में छिप गए। इस समय जैन शासन मे आपके सिवा कोई ऐसा प्रभावशाली नही था जो सम्राट के पास जाकर उसकी आज्ञा रद्द करवाये। आगरा सघ ने आपको पधार कर यह संकट दूर करने की प्रार्थना की। सूरिजी पाटण मे आगरा आकर बादशाह से मिले और उसका हुक्म रद्द करवाके साधुओ का विहार खुला करवाया। स० १६६९ का चौमासा आगरा किया। इस चोमासे मे बादशाह से सूरिजी का अच्छा सपर्क रहा और शाही दरबार मे भट्ट को शास्त्रार्थ में परास्तकर "सवाई युगप्रधान भट्टारक" नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की।

चातुर्मास के पश्चात् सूरिजी मेडता पधारे। बीलाडा के सघ की विनती से आपने विलाडा चातुर्मास किया। आपके साथ सुमतिकल्लोल, पुण्यप्रधान, मुनिवल्लभ, अमीपाल आदि साधु थे। पर्यूषण के बाद ज्ञानोपयोग से अपना आयु शेष जान कर शिष्यों को हित-शिक्षा देकर अनशन कर लिया। चार प्रहर अनशन पाल कर आश्विन बदि २ के दिन स्वर्गधाम पधारे। आपकी अंत्येष्टि बाणगगा के तट पर बडे धूम धाम से की गई। अग्नि प्रज्वलित हुई और देखते-देखते आपकी पावन तपपूत देह राख हो गई पर आपकी मुखवस्त्रिका नही जली। इस प्रकट चमत्कार को देख कर लोग चकित हो गए सूरिजी के अग्निसस्कार स्थान में स्तूप बना कर चरण प्रतिष्ठा की गई। आपके पट्ट पर आचार्य श्रीजिनसिंहसूरि बैठे।

महान् प्रभावक होने से आप जैन समाज में चौथे दादाजी नाम से प्रसिद्ध हुए। आपके चरणपादुका, मूर्त्तिया जेसलमेर बीकानेर, मुलतान, खभात, शत्रुजय आदि अनेक स्थानो मे प्रतिष्ठित हुई। सूरत, पाटण, अहमदाबाद भरौंच, भाइखला आदि गुजरात मे अनेक जगह आपकी स्वर्ग-तिथि 'दादा दूज' कहलाती है और दादावाडियों में मेला भरता है।

सूरिजी के विशाल साधु-साध्वी समुदाय था। उन्होंने ४४ नदि में दीक्षा दी थी, जिससे २००० साधुओ के समुदाय का अनुमान किया जा सकता है। इनके स्वय के शिष्य ९५ थे। प्रशिष्य समयसुदरजी जैसों के ४४ शिष्य थे। और इनके आज्ञानुवर्त्ती साधु सारे भारत में विचरते थे। आपने स्वय राजस्थान मे २९, गूजरात में २०, पजाब मे ५ और दिल्ली आगराके प्रदेश में ५ चातुर्मास किये थे।

उस समय खरतर गच्छ की और भी कई शाखाएं थीं जिनके आचार्य व साधु समुदाय सर्वत्र विचरता था। साध्वियों की सख्या साधुओं से अधिक होती है अत समूचे खरतरगच्छ के साधुओ की सख्या उस समय पांच हजार से कम नही होगी।

आप स्वय विद्वान थे और आपके साधु समुदाय ने जो महान् साहित्य सेवा की है इसका कुछ विवरण हमने "युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि" ग्रन्थ में स्वतत्र प्रकरण में दिया है तथा आपके शिष्य-प्रशिष्य व आज्ञानुवर्त्ती साधुओं का भी यथाज्ञात विवरण दिया गया है। आपका भक्त श्रावक समुदाय भी बहुत ही उल्लेखयोग्य रहा है जिन्होने मदिर-मूर्त्ति निर्माण, सघयात्रा, ग्रन्थलेखन और शासन-प्रभावना मे अपने न्यायोपर्जित द्रव्य का दिल खोल के उपयोग किया।

आपके भक्त श्रावकों मे मत्रीश्वर कर्मचन्द्र उस समय के बहुत बडे राजनीतिज्ञ, महान् दानी, धर्म-प्रिय एव गुरु-भक्त थे, जिन्होंने जिनसिंहसूरि के पदोत्सव मे सवा करोड का दान देकर एक अद्वितीय उदाहरण उपस्थित किया। उनके सम्बन्ध मे जयसोम ने 'कर्मचन्द्र मत्रिवश प्रबन्ध' एव उनके शिष्य गुणविनय ने उसपर वृत्ति तथा भाषा में रास की रचना कर अच्छा प्रकाश डाला है।

इसी प्रकार पोरवाड जातीय अहमदाबाद के सघपति सोमजी भी बडे धर्म निष्ट थे। उन्होने अहमदाबाद के कई पोलो मे जैनमदिरो के निर्माण के साथ साथ शत्रुञ्जय का बडा सघ निकाला एवव हा खरतर-वसही मे विशाल चौमुख जिनालय का निर्माण कराया, जिसकी प्रतिष्ठा उनके पुत्ररूपजी

ने श्रीजिनराजसूरिजी के करकमलो से बडे धूमधाम से करवायी। स० सोमजी की स्वधर्मी-भक्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके व इनके रूपजी के सम्बन्ध मे श्रीवल्लभ उपाध्याय ने एक प्रशस्ति काव्य की सस्कृत में रचना की है। खेद है कि वह पूर्ण रूप से उपलब्ध नही हो सका, प्राप्त अश राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हुआ है। कविवर समयसुन्दर ने भी भावपूर्ण स० सोमजी वेलि की रचना की है।

सूरिजी के अन्य भक्त श्रावको ने भी जिनशासन के उत्कर्ष मे बडा योगदान दिया। बीकानेर के लिगा गोत्रीय सतीदास ने शत्रुजय पर विमलवसही में 'खरतर-जय-प्रासाद'-जिनालय निर्माण कराया एव भत्ता तलहटी के सामने सतीवाव भी उन्हीं की बनवायी हुई है।

गिरनारजी पर दादा साहब की देहरी बनाकर गुरुदेवों के चरण विराजमान करनेवाले ब्रोथरा परिवार व अन्य अनेक श्रावकों में लोद्रवा तीर्थोद्धारक थाहरूसाह, महेंवा में जिनालय निर्माता काकरिया कमा, जूठा कटारिया, मेडता के चौपडा आसकरण तथा बीकानेर, अहमदावाद आदि के अनेक धर्मप्रेमी श्रावकों का उल्लेख यहां सीमित स्थान में संभव नही।

यु० जिनचन्द्रसूरिजी को सम्राट अकबर जो अष्टाह्निका के अमारि का फरमान दिया था उसकी प्रतिकृति सामने दी जा रही है। इस फरमान का सारांश यह है कि—"शुभचिन्तक तपस्वी जिनचन्द्रसूरि खरतर हमारे पास रहते थे। जब उनकी भगवद्भक्ति प्रकट हुई तो हमने उनको बडी बादशाही की महरबानियों में मिला लिया और अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ शुक्ल ९ से १५ तक कोई जीव न मारा जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है—जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भांति-भांति के पदार्थ उपजाये है तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे।"

"बडे-बडे हाकिम जागीरदार और मुसद्दी जान लें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यों और जीव-जन्तुओ को सुख मिले जिससे सब लोग अमन चैन से रह कर परमात्मा की आराधना में लगे रहें।"

युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि

अष्टाह्निकामादि शाही फरमान नं० १
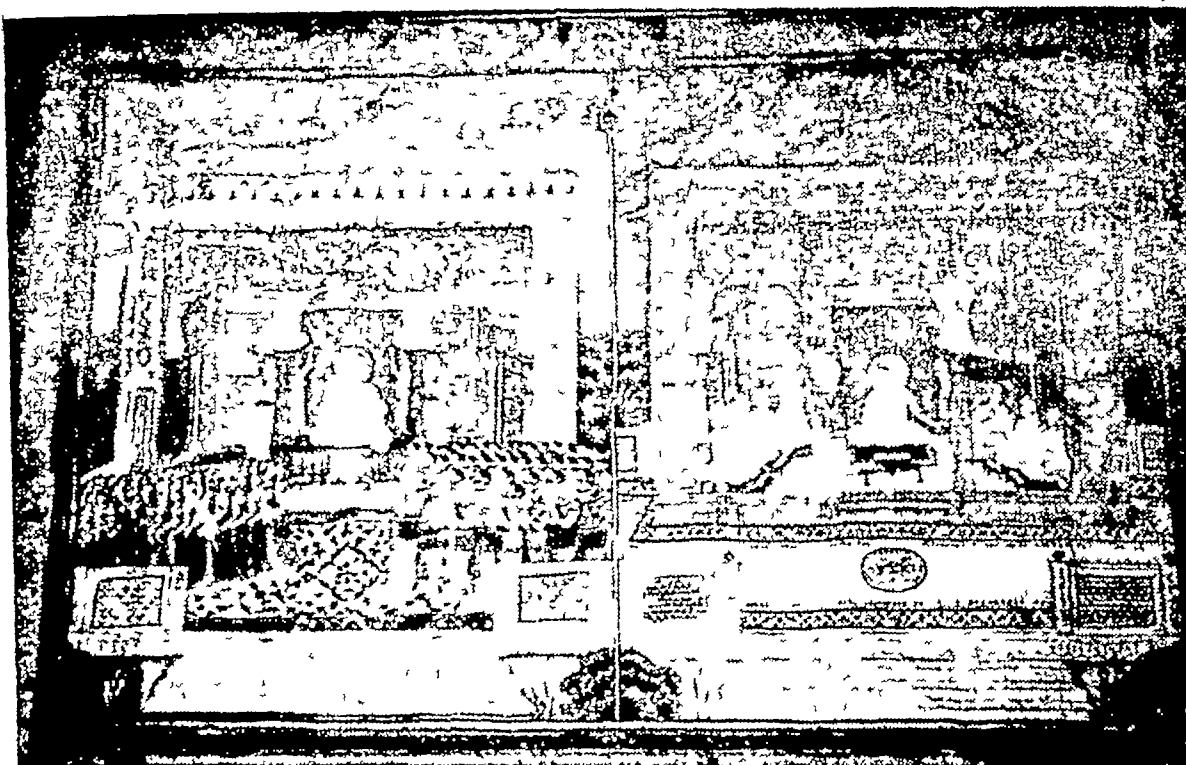
दादा श्रीजिनदत्तसूरि १ बावन वीर चौसठ योगिनी प्रतिबोध
२ अजमेर में प्रतिक्रमण के समय कड़कती विजली को पात्र के नीचे दवाना
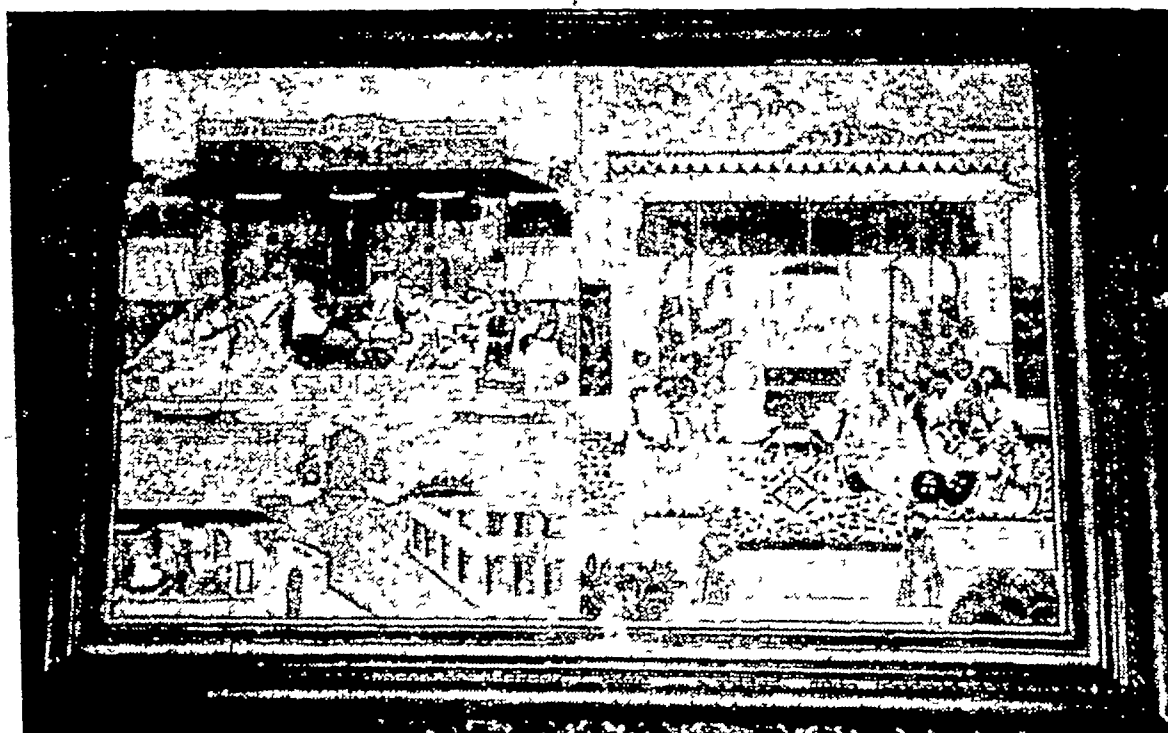
दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि १ काजी की टोपी उतारी अकवर के दरवार मे
२ अम्मावस का चन्द्रोदय अकवर दरवार

श्रीजिनदत्तसूरि १ उज्जैन में स्तभ में से मंत्र पुस्तिका निकालना
२ सिन्धु मुलतान में पंच नदी साधन
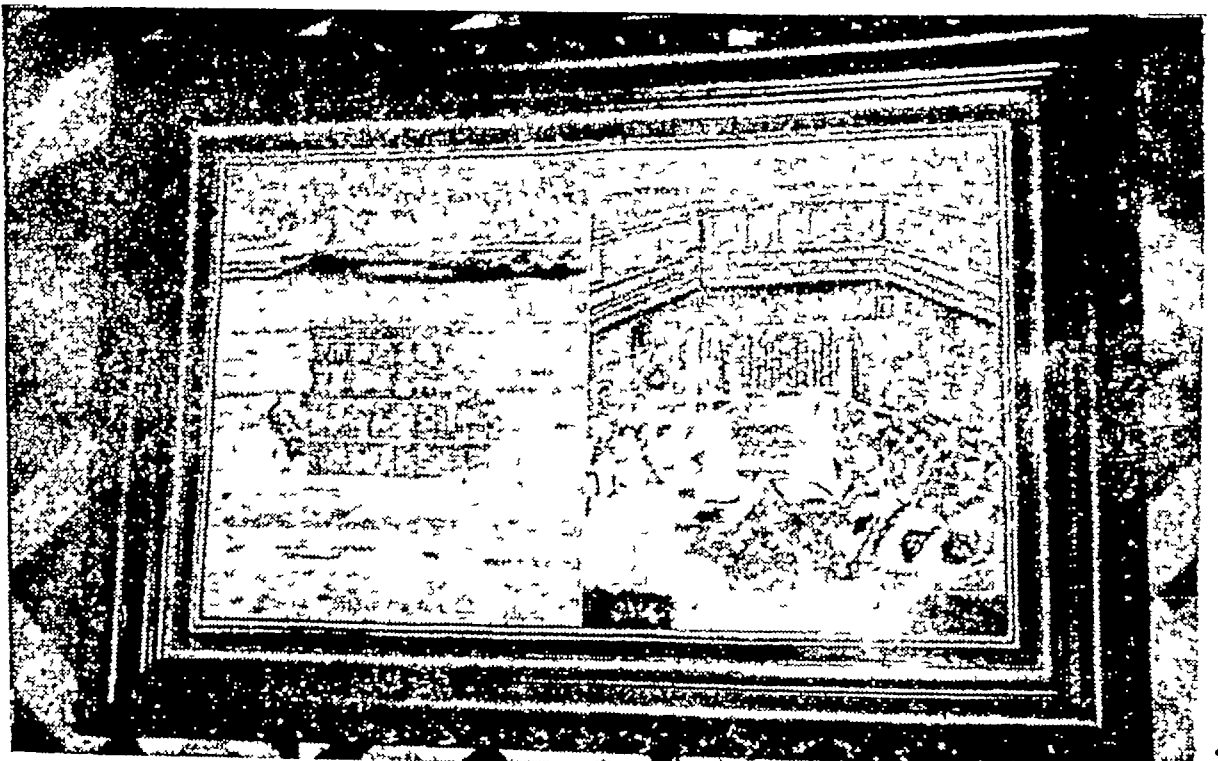
श्रीजिनकुशलसूरि १ समुद्र मे जगत सेठ के डूबते जहाज को तिराया
२ बादशाह के समक्ष भैंसे के मुख से बात कराई

जीयागंज के विमलनाथ जिनालय की दादावाड़ी मे जयपुर के सुप्रसिद्ध गणेश मुसव्वर के चित्र देखें पृष्ठ ५२

दादा गुरुओं के प्राचीन चित्र

[भँवरलाल नाहटा]

आर्य संस्कृति मे गुरु का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। परमात्मा का परिचय कराने वाले तथा आत्मदर्शन कराने वाले गुरु ही होते हैं। यों तो गुरु कई प्रकार के होते है पर जैनदर्शन मे उन्हीं सद्गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है जो आत्मद्रष्टा हैं। जिसने मार्ग देखा है वही मार्ग दिखा सकता है क्योंकि दीपक से दीपक प्रकट होता है। हजारो बुझे हुए दीपक कोई कामके नही, जागती ज्योति एक ही विश्व को आलोकित कर सकती है। भगवान महावीर के पश्चात् अनेक सद्गुरुओं ने जैन-शासन का उद्योत किया है व धर्म को बचाकर अक्षुण्ण रखा है। पचमकाल मे ऐसे २००४ युगप्रधान क्षायिक द्रष्टा पुरुष होंगे ऐसा शास्त्रो में वर्णन है। खरतरगच्छ मे कई युगप्रधान सद्गुरु हुए हैं जिनमे चारों दादा-गुरुओं का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है, उनकी हजारों दादावाडिया और मूर्त्ति, चरण-पादुके आदि आज भी पूज्यमान हैं।

आत्मदर्शन प्राप्ति के लिए सद्गुरु की पूजा-भक्ति अनिवार्य है। अतः भक्त लोग आत्मकल्याण के उद्देश्य से गुरु भक्ति में सल्ग्न रहने से निष्काम सेवाफल अवश्य प्राप्त करते है। जैसे धान्य के लिए खेती करने वाले को घास तो अनायास ही उपलब्ध हो जाती है, उसी प्रकार पुण्य-प्राग्भार से इहलौकिक कामनाएँ भी पूर्ण हो ही जाती है। पूजन-आराधन के लिए जिस प्रकार प्रतिमा-पादुकादि आवश्यक है उसी प्रकार चित्र-प्रतिकृति भी दर्शन के लिए व वासक्षेप पूजादि के लिए आवश्यक है। तीर्थंकर चित्रावली के साथ गुरु-मूर्त्ति पादुकाओं को रखने की प्रथा प्राचीन काल से चली आती है। आज भी मन्दिरो में, लोगों के घरों मे दादासाहब के चित्र हजारों की सख्या मे हाथ के बने हुए पाये जाते हैं और अब यंत्र युग मे तो एक-एक प्रकार के हजारो हो जांय, यह स्वाभाविक है। इस लेख में हमे दादा साहब के जीवनवृत्त से सम्बन्धित चित्रो का सक्षिप्त परिचय कराना अभीष्ट है जिससे हमारे इस कलात्मक और ऐतिहासिक अवदान पर पाठको का विहगावलोकन हो जाय।

जो तत्त्व व्याख्यान द्वारा या लेखन द्वारा सौ पृष्ठों में नहीं समझाया जा सकता उसे एक ही चित्रफलक को देख कर या दिखाकर आत्मसात् किया व कराया जा सकता है। चित्र-विधाओं मे भित्तिचित्रो का स्थान सर्वप्रथम है। प्रागैतिहासिक कालीन गुफाओ के आडे टेढे अंकन से लेकर अजन्ता, इलोरा, सित्तनवासल आदि विकसित कलाधामो और राजमहलो, सेठो-रईसों के घरों व मन्दिर—दादावाडियों के भित्ति-चित्र भी अपनी कला-सम्पत्ति को चिरकाल से सजोये हुए चले आरहे हैं। दादासाहब के जीवनवृत्त सवन्धी चित्र अधिकाश मन्दिरो तथा दादावाडियो में ही पाये जाते है। जीर्णोद्धार आदि के समय प्राचीन चित्रों का तिरोभाव होना अनिवार्य है। पर इस परम्परा का विकास होता गया और आज भी मन्दिरो, दादावाडियो में जीवनवृत्त के विभिन्न भावो वाले चित्रों का निर्माण होना चालू है। बीकानेर, रायपुर, भद्रावती, उदरामसर, भद्रेश्वर आदि अनेक स्थानों के भित्तिचित्र सुन्दर व दर्शनीय है।

दादासाहब के चित्रो मे दूसरी विधा काष्ठफलकों की है जिनका प्रारम्भ श्री जिनवल्लभसूरिजी, श्री जिनदत्त-

सूरिजी के चित्रो से होता है। इसके बाद कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य कुमारपाल एव वादिदेवसूरि-कुमुदचन्द्र के शास्त्रार्थ के भाव वाले काष्ठफलक पाये जाते हैं। दादासाहब के चित्रित-काष्ठफलको का परिचय श्री जैन श्वेताम्बर पचायती मन्दिर, कलकत्ता के सार्द्धशताब्दी स्मृति-ग्रन्थ मे मैंने प्रकाशित किया है पर एक महत्त्वपूर्ण काष्ठफलक जिसपर श्रीजिनदत्तसूरिजी और त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल का चित्र है और जो जेसलमेर के वडे भण्डार मे था पर अव श्री थाहरूशाह के भण्डार मे वर्त्तमान है, अव तक प्राप्त कर प्रकाशित न कर सकने का हमे खेद है।

पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी के 'भारतीय-विद्या' के सिंघीजी के सस्मरणाक मे एव हमारे युगप्रधान जिनदत्तसूरि ग्रन्थ में प्रकाशित चित्र भी उस समय के आचार्य व श्रमण-श्रमणी वर्ग के नामोल्लेख युक्त होने से महत्त्वपूर्ण है। हमारे अभय जैन ग्रन्थालय - शकरदान नाहटा कलाभवन का चित्र इन सब चित्रो मे प्राचीन है जो दादासाहब के आचार्य पद प्राप्ति ११६९ से पूर्व अर्थात् स० ११५० के आस-पास का है। पुरातन चित्रकला की दृष्टि से ये उपादान अत्यन्त मूल्यवान हैं।

काष्ठफलको के पश्चात् ग्रन्थो मे चित्रित पूर्वाचार्यों के चित्रों में हेमचन्द्राचार्य-कुमारपाल के चित्रों के पश्चात् खभात भण्डार स्थित श्रीजिनेश्वरसूरि (द्वितीय) का चित्र अत्यन्त महत्त्व का है जो हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह मे मुद्रित है। तत्पश्चात् कल्पसूत्र, शालिभद्र चौपाई आदि ग्रन्थों मे श्री जिनराजसूरि, श्री जिनरगसूरि आदि के चित्र उपलब्ध है। सिंघीजी के सग्रह के शाही चित्रकार शाहिवाहन चित्रित शालिभद्र चौपाई के ऐतिहासिक चित्र काल्पनिक न होकर असली है। अठारहवी-उन्नीसवीं शती के विज्ञप्ति-पत्रों मे जैनाचार्यों के सख्याबद्ध चित्र सप्राप्त हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मत्र, यंत्र आम्नाय गर्भित अनेक प्रकार के वस्त्र-पट चित्र पाये जाते हैं। तीर्थपट्ट, सूरिमन्त्र पट्ट व वर्द्धमानविद्या पट्ट में भी गुरुओ के चित्र हैं। हमारे सग्रह का श्री चिन्तामणिपार्श्वनाथ पट्ट जो सवत् १४०० के आसपास का है, चित्रित है। उसमें श्रीतरुणप्रभसूरिजी महाराज और उनके शिष्य का महत्वपूर्ण चित्र अकित है।

गत दो ढाई सौ वर्षों मे दादासाहब के स्वतत्र चित्र बने हुए मिलते है जो मन्दिरों, दादावाडियों, उपाश्रयों, लोगों के मकानों और राजमहलों तक मे टगे हुए पाये जाते हैं। उन चित्रो मे दादासाहब के जीवन चरित की महत्त्वपूर्ण घटनाएं चित्रित है। बीकानेर दुर्ग-स्थित महाराजा गजसिंहजी के महल गजमन्दिर में श्रीजिनचन्द्रसूरि (चतुर्थदादा) और अकबर बादशाह के मिलन का चित्र लगा हुआ है। इसके अतिरिक्त यति जयचन्दजी के सग्रह मे, श्रीजिनचारित्रसूरिजी के पास, बद्रीदासजी के मन्दिर कलकत्ता मे, पूरणचन्द्रजी नाहर के सग्रह मे पचनदी साधन के एव लखनऊ, जीयागज आदि अनेक स्थानों मे प्राचीन चित्र पाये जाते हैं। इन्ही के अनुकरण में तपागच्छीय श्रीमान् हीरविजयसूरिजी महाराज और अकबर मिलन के चित्र भी पिछले पचास वर्षों में बनने प्रारम्भ हुए है। प्रसिद्ध वक्ता व लेखक मुनिवर्य श्री विद्याविजयजी महाराज ने अपने लखनऊ चातुर्मास में सर्वप्रथम हीरविजयसूरिजी और अकबर का चित्र निर्माण कराया था।

खरतरगच्छ में चारो दादासाहब एवं जिनप्रभसूरिजी और सुलतान मुहम्मद बादशाह के मिलन सम्बन्धी जितने चित्र पाये जाते है उनमे लोकप्रवाद और स्मृति दोष से एक का जीवनवृत्त दूसरे से सम्बन्धित समझकर घटना विपर्यय अकित हो गया है पर हमे यहाँ उसके ऐतिहासिक विश्लेषण में न जाकर लोकमान्यता और श्रद्धा-भक्ति द्वारा निर्मित चित्रों का परिचय देना ही अभीष्ट है।

सौ वर्ष पूर्व जयपुर के रामनारायणजी तहबीलदार

के रास्ते में रहने वाले गणेश मुसव्वर (चित्रकार) को बगाल मे बुलाया गया और उसने बालूचर व कलकत्ता में लगभग पन्द्रह वर्ष रहकर सैकड़ों जैनचित्रो का निर्माण किया। वे चित्र कलासमृद्धि मे अपूर्व और मूल्यवान हैं। यदि उन समस्त चित्रों का सांगोपाग वर्णन लिखा जाय तो सैकड़ों पेज हो सकते हैं पर हम यहा केवल दादासाहब आदि के चित्रों का ही सक्षिप्त परिचय दे रहे है।

१ श्री **अभयदेवसूरिजी**—यह चित्र ७३×१७ इच का है। इस चित्र में दाहिनी ओर नगर का दृश्य है जिसके तीनो ओर परकोटा और दो दरवाजे दृष्टिगोचर होते है। नगर के तीन स्वर्णमय शिखर वाले जिनालयो पर ध्वजादण्ड सुशोभित है। सामने पौषधशाला मे श्री अभयदेवसूरिजी महाराज विराजमान हैं जिनके समक्ष श्यामवर्णवाली शासनदेवी उपस्थित है जिसके सुनहरे जरी के वस्त्र व मुकुट अलकारादि पहने हुए है। शासन देवी नौ कोकडी सुलझाने के लिए आचार्यश्री को दे रही है। बाहर अभयदेवसूरिजी महाराज अपने दश शिष्यो के साथ विहार करके जा रहे हैं। साथ मे आठ श्रावक तथा दो बालक भी चल रहे हैं। सूरि महाराज एक पलाश वृक्ष के नीचे जयतिहुअण स्तोत्र द्वारा प्रभु की स्तवना करते हैं। पास मे ६ साधु बैठे है और सात श्रावक खडे हैं। जगल मे जहा गाय का दूध झरता था, स्तभन पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा प्रकट होती है। एक श्रावक के हाथ में प्रतिमा है। फिर सिंहासन पर विराजमान करके श्रावक लोग स्वर्णकलशों से अभिषेक करते हैं। दो श्रावक प्रभुको न्हवण कराते हैं, चार श्रावक कलश लिये खडे हैं। एक श्रावक फिर प्रभु का न्हवण जल लाकर सूरिजी के ऊपर छीटता है जिससे रोग निवारण हो जाता है। पृष्ठभूमि में खजूर, ताड, आम्र, अशोकादि के वृक्ष विद्यमान है। मैदान और टीलों पर कहीं-कहीं हरियाली छाई हुई है। चित्र परिचय मे निम्नोक्त वाक्य लिखे हुए हैं:—

(१) १ शासन देवताने कोकडी ६ दीनी (२) श्री अभयदेवसूरि (३) पोशाल (२) अभयदेवसूरि (३) १ जयतिहुअण स्तवना करी श्री थभणा पार्श्वनाथजी प्रगट भया जमीन से, णवण कराया ४ पखाल छींटता रोग गया रक्तपित्तीका।

(२) श्री जिनदत्तसूरि, श्री जिनकुशलसूरि—यह चित्र ७५×१७ इच का है जिसमें दोनों दादा गुरुओं के चित्रों मे विभिन्न भाव हैं। चित्र के वाम पार्श्व मे श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज विराजमान हैं जिनके समक्ष ५२ वीर [१८] एवं पृष्ठ भाग में ६४ योगिनी (२४) अवस्थित हैं। गुरुदेवके आगे स्थापनाजी एव हाथ मे मुखवस्त्रिका है। दूसरा पचनदी का भाव है जिनके तटपर पाँच मन्दिर बने हुए है। पाँचो पीर गुरुदेव के समक्ष करबद्ध खडे हैं। तीसरा अजमेर के उपाश्रय का है जिसमें गुरुदेव अपने ६ शिष्यों के साथ प्रतिक्रमण कर रहें हैं और कडकती हुई बिजली को पात्र के नीचे दबा देते हैं। चौथा भाव गुरुदेव के नगर प्रवेश का है, घोडे के नीचे दबकर मरे हुए मुगलपुत्र को तीन मुसलमान उठाकर लाते हैं। वृक्ष के नीचे बैठे हुए गुरुदेव उसे मत्रशक्ति से जिला देते है। पाँच मुसलमान करबद्ध खडे हैं। गुरुदेव के पृष्ठ भागमें पाँच शिष्य बैठे हैं गुरुदेव के विहार मे पीछे छत्रधारी व्यक्ति व नौ शिष्य दिखाये हैं, सामने १६ श्रावक चल रहे है जिनकी पगडी पर शिरपेच बँधे है, लम्बे श्वेत जामे पहिन कर कमरबद व उत्तरासन लगाया हुआ है।

पाँचवाँ भाव श्रीजिनकुशलसूरिजी से सम्बन्धित मालूम देता है। नगर के मध्य मे गुरुदेव उपाश्रय में प्रवचन कर रहे हैं। पाँच साधु सामने खडे है, सात श्रावक बैठे हुए व्याख्यान सुन रहे हैं, भक्त की दुखभरी पुकार सुन कर डूबती हुई नौका को किनारे के दृश्य में हाथ के सहारे से तिरा देते हैं। चित्रकार ने चित्र-परिचय रूप कुछ भी नही लिखा है।

३ श्री जिनचन्द्रसूरि (अकबर प्रतिबोधक)— यह चित्र ७४॥ × १६॥ इन्च लम्बा है। इसमे नगर के चार दरवाजे है जिनमें दो दोनो ओर व दो पास-पास ही दिखाये है। नगर के कुछ मकान व गुंवजदार मस्जिद है तथा उपाश्रय का भाव भी दिखाया है। नगर के मध्य मे शाही दुर्ग—राजप्रासाद है जिसके बाहर दो सतरी पहरा दे रहे हैं। महल के बाँयें कक्ष मे चौकी पर श्री जिनचंद्रसूरिजी व उनके पृष्ठ भाग मे ७ शिष्य बैठे है। सामने सिंहासन पर वादशाह बैठा है जिसके पीछे चारव्यक्ति पंखा, किरणिया-आदि राजचिन्हधारी तथा दो उमराव बैठे है। सूरिजी के पास एक काली बकरी और दो श्वेतरग के बच्चे खडे है। महल के दूसरे कक्ष मे भी इसी भाव का चित्र है पर सूरिजी और सम्राट को आसमान की ओर देखते दिखाये है जिससे मालूम होता है कि काजी की टोपी वाला भाव चित्रित करना चित्रकार भूल गया है। उपाश्रय कक्ष में शासनदेवी सूरिजी को थाल अर्पित करती है जिसे आसमान मे स्थित चन्द्रोदय देख कर सब लोक विस्मित हो जाते है। उपाश्रय में चार साधु व एक श्रावक भी विद्यमान है। खडे हुए तीन श्रावकों में एक व्यक्ति हाथ ऊँचा करके अमावस्या का चन्द्रोदय बता रहा है। नगर के बाहर अश्वारोही व ऊंट सवार दोनों ओर दौडते हुए जा रहे है।

जीयागज के श्री विमलनाथजी के मन्दिर स्थित दादा जी के मन्दिर मे काठगोला से आये हुए निम्नोक्त महत्व-पूर्ण चित्र लगे हुए है। ये चित्र भी यशस्वी चित्रकार गणेश के बनाये हुए है। परिचय इस प्रकार लिखा है :

(१) कलम गणेश चतेरा की साकीन जयपुर ठि० चांदपोल दरवाजा खेजड़ा के रस्ते रामनारायणजी तवील-दार के पास "बावन वीर चोसठ जोगनी" दादा श्रीजिनदत्त-सूरिजी। साइज १८×२२।

(२) अजमेर में बिजली पात्र के नीचे।

(३) दादा श्री जिनप्रभसूरिजी काजी की टोपी अकबर (?) के दरबार में।

श्री जिनप्रभसूरि मुगल की टोपी उतारी आसमान सुं बेधा सु भाव।

(४) दादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी थाली आकाश मे अकबर के दरबार में। शासन देवी द्वारा थाली का प्रदान। श्री जिन मणीघाला चन्द्रसूरिजी चन्द्रमा उगायो थाल चढाकर, सो भाव।

(५) श्री जिनदत्तसूरिजी उज्जैन नगरी थाभ फाड पोथी निकाली। सामेला करके उज्जैन नगरी मे पधारते है।

(६) श्री जिनदत्तसूरिजी मुल्तान मे पाच नदी पांच पीर वश किया।

(७, श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज दरियाव मे जगत सेठ को जहाज तिरायो।

(८) श्री जिनदत्तसूरिजी बादशाह सु भैंसा के मुख सुं बात कराई सो भाव।

जीयागज के श्री सभवनाथ जिनालय मे २७ × १५ साइज के दो चित्र लगे हुए है जिनमे एक श्री जिनदत्त-सूरिजी और दूसरा श्री जिनकुशलसूरिजी के जीवनवृत्त से सवन्धित है। श्री जिनदत्तसूरिजी के चित्र मे बावन वीर, चौसठ योगिनी, पचनदी-पंचपीर, बिजली वश कीधी, उच्चनगर, वडनगर, अंबड हाथे अक्षर आदि के ७ भाव हैं। श्री जिनकुशलसूरिजी के चित्र में 'जीहाजतारी' के भाव के अतिरिक्त एक में युद्ध चित्र, एक मे नगर के उपाश्रय मे विराजमान गुरुदेव व बाह्य दृश्य भी है पर चित्र परिचय नहीं दिया है।

कलकत्ता के श्री महावीर स्वामी के मंदिर मे भी चार-पांच चित्र है। जिनमें एक छोटा चित्र मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी और सामने बादशाह (राजा मदनपाल) अपने मुसाहिबों के साथ है। चाँदा-चन्द्रपुर के जिनालयस्थ दादा देहरी में मणिधारीजी [illegible] का चित्र लगा हुआ है। यों छोटे-

मोटे बहुत से दादा साहब के प्राचीन चित्र पाए जाते है। लखनऊ में भी दादा साहब के चित्र देखे स्मरण है।

प्राचीन चित्रकला के चित्रो का परिचय देने के पश्चात् उसीके अनुकरण मे वर्त्तमान के यशस्वी और भारत-विश्रुत चित्रकार श्री इन्द्रदूगड का बनाया हुआ विशाल और कला-पूर्ण चित्र कलकत्ता-दादावाडी मे लगा हुआ है जिसमे वडे दादासाहब के जीवनवृत्त से सम्बन्धित कई भाव चित्रित है। व्याख्यान वाचस्पति मुनि श्री कान्तिसागरजी ने पहले भादकजी में भित्ति-चित्र बनवाये थे और तत्पश्चात् 'श्री जिन-गुरु-गुण-सचित्र पुष्पमाला' पुस्तक मे इकरंगे और तिरंगे चित्रो का भी प्रकाशन करवाया है जिसमें चारों दादा साहब के २४ तिरगे एव २ काष्टफलक चित्र प्रकाशित हुए है।

गणिवर्य हेमेन्द्रसागरजी के पत्रानुसार सूरत मे श्री जिन-दत्तसूरि ज्ञानभण्डार मे कतिपय चित्र लगे है जिनमे १७ × १७ इंच के (१) क्षमाकल्याणोपाध्याय व मुन्नालाल जौहरी व (२) जिनलाभसूरिजी का चित्र दो ढाई सौ वर्ष प्राचीन है। एक वडे चित्र मे बीच मे जिनचन्द्रसूरिजी, दाहिनी ओर अभयदेवसूरिजी, बाई तरफ जिनवल्लभसूरिजी है। दूसरे मे वर्द्धमानसूरिजी (मध्य मे), जिनेश्वरसूरिजी (दाहिने) और बुद्धिसागरसूरिजी (वायें) हैं। एक चित्र मणिधारीजी का है जिसमें बादशाह सामने खडा दिखाया गया है। चौथे दादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी के चित्र मे अकवर मिलन का भाव चित्रित है। ये चित्र ५५-६० वर्ष पुराने हैं और श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के उपदेश से बने हुए हैं।

और भी दादासाहब व दूसरे खरतरगच्छाचार्यो के चित्र उपाश्रयो आदि में पर्याप्त पाये जाते है जिन्हे शोधपूर्वक प्रकाश में लाना चहिए।

मुनि जिनविजयजी के प्रकाशित जिनदत्तसूरिजी के चित्रमय काष्ठफलकके तीन ब्लॉक 'भारतीय विद्या'-निबन्ध सग्रह मे प्रकाशित हुए हैं। इनमे से जिनदत्तसूरि सम्बन्धी दो ब्लॉक यहां प्रकाशित कर रहे है। इनका विवरण मुनिजी ने इस प्रकार दिया है :—

इस पट्टिका के बांये और दाहिने भाग मे चित्रित दृश्यो के दो खड है। इन दोनो खण्डो मे जिनदत्तसूरिजी की व्याख्यान-सभा का आलेखन है। इसके ऊपर वाले चित्र-खण्ड मे मध्यमे श्रीजिनदत्तसूरि विराजमान है और उनके सन्मुख प० जिनरक्षित बैठे हैं। जिनरक्षित के पीछे दो श्रावक हैं एव श्रीजिनदत्तसूरिजी के पृष्ठ भाग मे एक श्रावक और दो श्राविकाए बैठी है। नीचे वाले चित्र-खण्ड मे मध्यमें श्रीजिनदत्तसूरि और उनके सम्मुख श्रीगुण-समुद्राचार्य और उनके पीछे एक मुनि और एक श्रावक बैठा है। जिनदत्तसूरि के पृष्ठ भागमे दो श्रावक बैठे है। सूरिजी के सामने स्थापनाचार्य रखे हैं, जिनपर 'महावीर' अक्षर लिखे हुए हैं।

इस चित्रावली से विदित होता है कि यह सचित्र काष्ठपट्टिका श्रीजिनदत्तसूरिजी के निजी सग्रह की किसी ताडपत्रीय पुस्तक की है। किसी भक्त श्रावक ने उन्हें किसी बडे और महत्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखाकर भेंट किया था, जिसके ऊपर की यह एक सुन्दर चित्रालकृत पटडी है। सभव है कि इसमें आलेखित स्त्रीपुरुष इस ग्रन्थ को भेंट करने वाले श्रावक परिवार के ही मुख्य व्यक्ति हों।

मारवाड के विक्रमपुर के श्रेष्ठी देवधर निर्मापित जिनालय मे सूरिजी ने एक भव्य महावीर प्रभु-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। सभव है कि इस चित्रपट्टिका मे इसी प्रतिष्ठा-प्रसगका आलेखन हो। क्योंकि सूरिजी के समक्ष स्थित स्थापनाचार्य पर "महावीर" नाम लिखा हुआ है। कदाचित् इसी देवधर ने इस पट्टिका के साथ वाले ग्रन्थ को लिखा कर सूरिजी को समर्पित किया हो और इस पट्टिका मे उक्त प्रसगके स्मारक-स्वरूप चित्राङ्कन किया गया हो। जैन सम्प्रदाय में ऐसे प्रसगो के निमित्त पुस्तकादि लेखन व चित्रपट्टिकादि के आलेखन की प्रवृत्ति अति प्राचीन काल से चली आ रही है।

हम इसे विक्रम की बारहवीं शती के अतिम और तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के चित्रालेखन की प्रतीक, निश्चित रूपसे मान सकते है, इतनी प्राचीन अन्य कोई सुन्दर चित्राकृति अद्यापि हमे उपलब्ध नहीं है।
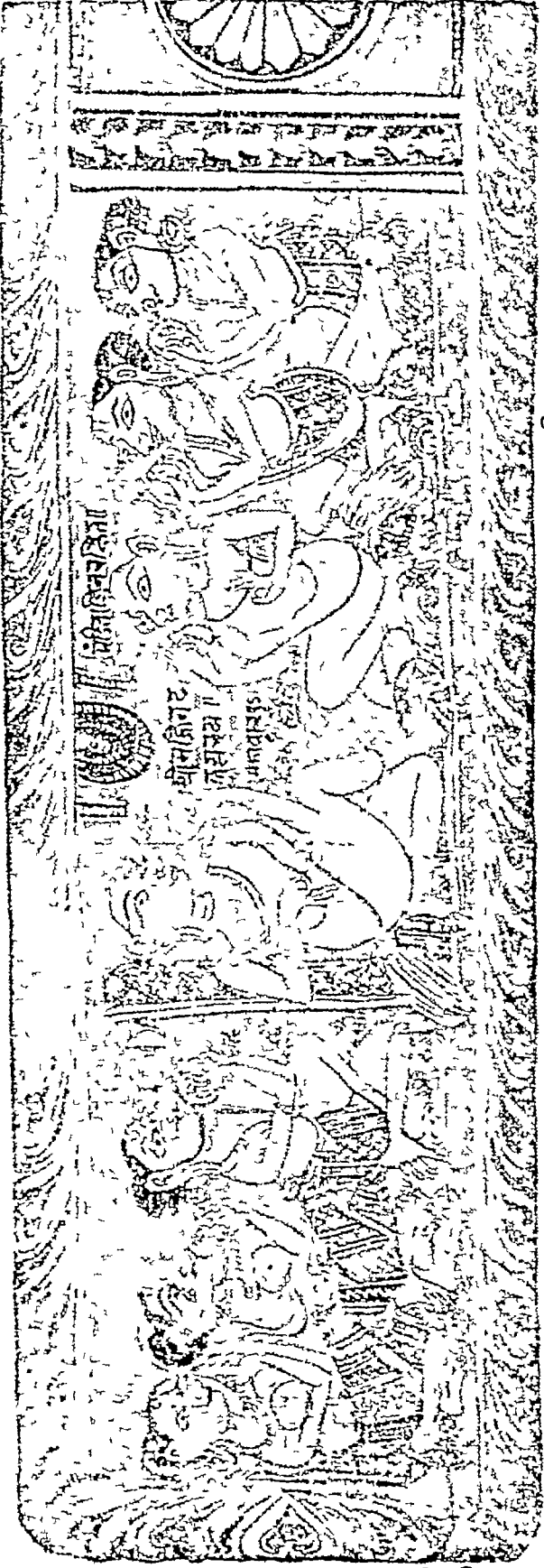
श्री जिनदत्तसूरि और पंडित जिनरक्षित

श्री जिनदत्तसूरि और गुणसमुद्राचार्य

[श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ के सौजन्य से]

श्री जिनदत्तसूरिजी के चित्रों मे प्राचीनतम अथवा दूसरे शब्दों मे कहा जाय तो इस शैली की प्राचीन काष्ठ-पट्टिका का चित्र जो यहां प्रकाशित किया जा रहा है, श्री जिनदत्तसूरि के आचार्य पद प्राप्ति के पूर्व का है। यह फलक चित्र हमारे "सेठ शंकरदान नाहटा कलाभवन" में सुरक्षित है।

यह काष्ठपट्टिका ३×११¾ इंच की है। इसके चारों ओर बोर्डर है। इस चित्र के तीन खंड है। प्रथम खंड मे आचार्य श्रीगुणसमुद्र और सामने ही आसन पर सोम-चन्द्रगणि (श्रीजिनदत्तसूरि) बैठे हुए हैं। आचार्यश्री के पृष्ठ भाग मे पीठ-फलक है और श्री सोमचन्द्रगणि के नही है इससे उनका दीक्षापर्याय में बडा होना प्रमाणित है। दोनो के मध्य मे स्थापनाचार्यजी है, दोनो के पास रजोहरण है, दोनों एक गोडा ऊंचा और एक गोडा नीचा किये हुए प्रवचनमुद्रा मे आमने-सामने बैठे हैं। दोनो के श्वेत वस्त्र हैं।

आचार्य श्री के पीछे एक श्रावक बैठा है जिसकी धोती जांघिये की भांति है। कंधे पर उत्तरीय वस्त्र के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं है जो उस समय के अल्पवस्त्र-परिधान को सूचित करता है। श्रावक के गले में स्वर्णहार है और एक गोडा ऊंचा करके करबद्ध बैठा है, उसके पृष्ठ भाग में दो श्राविकाए भी इसी मुद्रा मे है, जिनके गले में हार व हाथों मे चूडियाँ और कानो मे बडे-बडे कर्णफूल है। वस्त्र सबके रंगीन और छींटकी भाँति है, केशपाश का जूडा बाधा हुआ है। श्रावक के मरोडी हुई पतली मूंछ और ठोडी के भाग को छोडकर अल्प दाढी है। श्रावक के खुले मस्तक पर घने बालो का गिर्दा है।

सोमचन्द्रगणि के पृष्ठ भाग मे दो व्यक्ति बैठे है जिनकी वेषभूषा भी उपर्युक्त श्रावकों के सदृश ही है। चित्र शैली में तत्कालीन प्रथानुसार नेत्र की तीखी रेखाए और दोनों आँखें इसलिए दिखायी है कि चित्र मे एकाक्षीपन का दोष न आवे। चित्र के मध्य खंड में दोनों ओर बोर्ड तथा मध्य मे फूल बनाया है जिसके बीच मे छिद्र है जो ताडपत्रीय ग्रंथ को डोरी पिरोकर बांधने में काम आता था।

चित्र के दूसरे खण्ड मे साध्वियो का उपाश्रय है। पट्ट पर प्रवर्त्तिनी विमलमति बैठी हुई है जिनके पृष्ठ भाग में भी पीठफलक सुशोभित है। सामने दो साध्वियाँ बैठी हुई हैं जिनके नाम 'नयश्री साध्वी' और 'नयमतिम्' लिखा हुआ है। तीनो के बीच में स्थापनाचार्यजी रखे हुए हैं, साध्वीजी के पीछे एक श्राविका आसन पर बैठी हुई है जिसपर उसका नाम नदीसीर (राविका) लिखा हुआ है। चित्रफलक का किनारा टूट जाने से जोडा हुआ है।

इस सचित्र काष्ठपट्टिका का समय—इसमें श्रीजिनदत्त-सूरिजी के दीक्षानाम लिखा हुआ होने से सं० ११६९ के पूर्व का तो है ही। इसमें आये हुए साधु-सावियों के नाम "गणधरसार्द्धशतक वृहद्वृत्ति" में नहीं मिलते अतः आचार्य पद प्राप्ति से पूर्व श्रीजिनदत्तसूरि जी के आज्ञानुवर्त्तिनी जो साध्वियाँ थी, उनका नाम प्राप्त होना ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। हमारी राय मे इस काष्ठपट्टिका का समय सं० ११५० के आस-पास का है।

अप्रकाशित महत्वपूर्ण काष्ठफलक

जेसलमेर के श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभंडार मे जो श्रीजिन-दत्तसूरि जी और नरपति कुमारपाल की महत्वपूर्ण सचित्र काष्ठपट्टिका थी, वह अभी थाहरूसाह के भंडार में रखी हुई है। उसे देखकर हमने जो संक्षिप्त विवरण नोट किया था उसे यहाँ दिया जा रहा है—

इस चित्र पट्टिका पर '९ नरपति कुमारपाल भक्ति-रस्तु" लिखा हुआ है। इस फलक के मध्य मे नवफणा पार्श्वनाथ का जिनालय है जिसकी सपरिकर प्रतिमा के उभयपक्ष में गजारूढ इन्द्र और दोनो ओर चामरधारी अवस्थित हैं। दाहिनी ओर दो शस्त्रधारी पुरुष खड़े हैं। भगवान् के बाँयें कक्ष में पुष्प-चंगेरी लिए हुए भक्त खड़े हैं,

जिसके पीछे दो व्यक्ति नृत्य करते हुए एवं दो व्यक्ति वाद्य-यंत्र लिए खडे है। जिनालय के दाहिनी ओर श्रीजिनदत्त-सूरि जी की व्याख्यान सभा है। आचार्यश्री के पीछे दो भक्त श्रावक एव एक शिष्य नरपति राजा कुमारपाल बैठा हुआ है। राजा के साथ रानी व दो परिचारक विद्यमान है। आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी का परिचय चित्रकार ने "श्रीयुगप्रधानागम श्रीमज्जिनदत्त सूरयः ॥९॥ लिखा है।

जिनालय के बाँयें तरफ श्रीगुणसमुद्राचार्य विद्यमान है जिनके सामने स्थापनाचार्यजी व चतुर्विध संघ है। चित्र स्थित साधु का नाम पं० ब्रह्मचन्द्र है। पृष्ठ भाग में दो राजपुरुष है जिनका नाम चित्र के उपरिभाग में "सहणप (ा)ल" व अनंग लिखा है। साध्वीजी के सामने भी स्थापनाचार्य और उनके समक्ष दो श्राविकाएँ हाथ जोड़े खड़ी है। गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति के अनुसार पार्श्वनाथ के नवफणो की प्रथा श्रीजिनदत्तसूरिजी से ही प्रचलित हुई थी। नरभट मे नवफणा पार्श्वनाथ प्रतिमा की प्रतिष्ठा सूरिजी ने की थी। वह जिनालय आगे चलकर महातीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

सोमचन्द्रगणि (श्रीजिनदत्तसूरि) और गुणसमुद्राचार्य

[शंकरदान नाहटा कलाभवन, बीकानेर से]
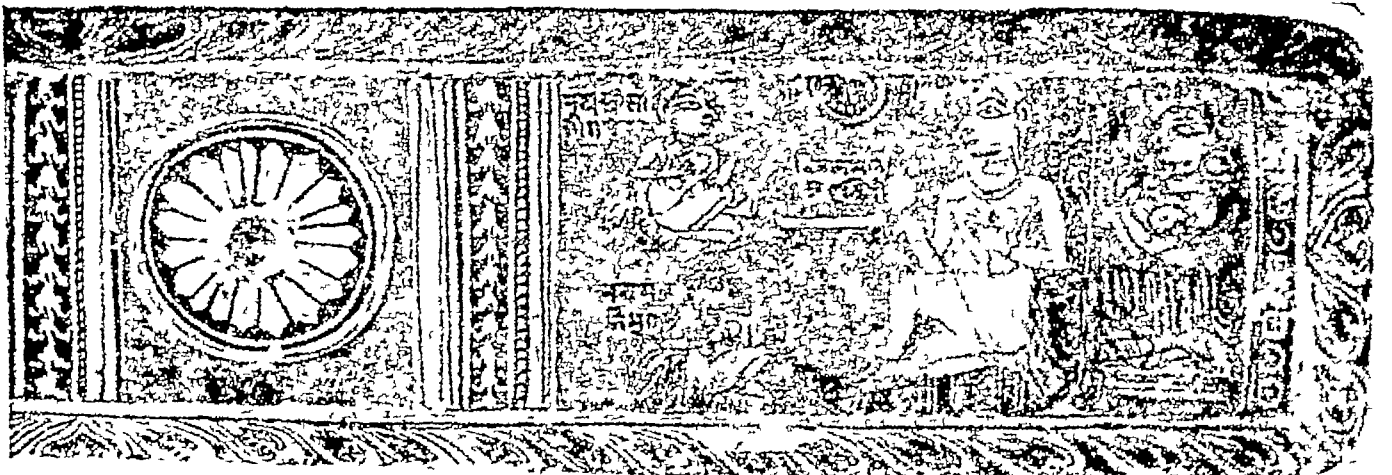
आज्ञानुवर्त्तिनी साध्वी नयश्री और नयमती

श्री कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्य

[प्रो० सत्यव्रत 'तृषित']

[खरतरगच्छ के महान् आचार्यों ने सघ-व्यवस्था वडी सूझ-बूझ से की। मुख्य पट्टधर-युगप्रधान आचार्य के साथ-साथ सामान्य आचार्य के रूप मे उपयुक्त व्यक्तियों को आचार्य पद दिया जाता रहा है जिससे पट्टधर के स्वर्गवास हो जाने के बाद कोई अव्यवस्था नही होने पावे। भावी पट्टधर स्वर्गवासी आचार्य के अन्तिम समय में समीप न होने पर यथासमय उस पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए सामान्य आचार्य को भोलावण दे दी जाती थी और वे उन युगप्रधानाचार्य के सकेतानुसार योग्य स्थान और शुभमुहूर्त्त मे पूर्ववर्त्ती आचार्य की सूरि मन्त्राम्नाय परपरा को देते हुए वडे महोत्सव के साथ नये गच्छनायक का पट्टाभिषेक करवा देते थे।

आचार्य वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि को आचार्य पद दिया, इनमें से जिनेश्वरसूरि पट्टधर वने और बुद्धिसागरसूरि उनके सहयोगी रहे। इसके वाद जिनचद्रसूरि सवेगरगशालाकर्त्ता और अभयदेव सूरि को आचार्य पद दिया गया इनमें से जिनचन्द्रसूरि पट्टधर वने और उनके स्वर्गवास के वाद अभयदेवसूरि गच्छनायक वने। यों अभयदेवसूरि के वर्द्धमानसूरि आदि कई विद्वान शिष्य थे पर जिनवल्लभगणि मे विशेष योग्यता का अनुभव कर उन्होंने प्रसन्नचद्रसूरि को यथासमय जिनवल्लभगणि को अपने पट्ट पर स्थापित करने की आज्ञा दी थी। उसकी पूर्त्ति न कर सकने के कारण देवभद्राचार्य ने काफी समय के वाद अभयदेवसूरि के पट्ट पर जिनवल्लभसूरि को प्रतिष्ठित किया। अल्पकाल में ही उनका स्वर्गवास हो जाने पर इन्ही देवभद्रसूरिजी ने सोमचन्द्र गणि को जिनवल्लभसूरि के पट्ट पर अभिषिक्त किया। इसी तरह मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने अपने अन्तिम समय मे निकटवर्त्ती गुणचन्द्रगणि को अपने पट्टधर का जो सकेत दिया था तदनुसार चौदह वर्ष की आयु वाले जिनपतिसूरिजी को उनके पट्ट पर स्थापित किया गया।

इस परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी के आचार्य जिनभद्रसूरिजी ने उ० कीर्त्तिराज को आचार्य पद देकर कीर्तिरत्नसूरि के नाम से प्रसिद्ध किया। उन्होने ही जिनभद्रसूरिजी के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरिजी को स्थापित किया था। आचार्य कीर्त्तिरत्नसूरि अपने समय के बहुत वड़े विद्वान और प्रभावक व्यक्ति थे। उनके सम्बन्ध में सं० १९९४ में प्रकाशित हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह में आवश्यक जानकारी दी गई थी। उनके ५१ शिष्य हुए, जिनमें गुणरत्नसूरि, कल्याणचन्द्र आदि उल्लेखनीय रहे है। कीर्त्तिरत्नसूरिजी की प्राचीनतम मूर्त्ति नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ मे पूजित है। इनकी शिष्य-सन्तति का वहुत विस्तार हुआ। कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा आजतक चली आ रही है जिसमें पचासों कवि, विद्वान हुए है, उसी में आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी जैसे गीतार्थ आचार्य-शिरोमणि हुए हैं। कीर्त्तिरत्नसूरिजी की शिष्य-परम्परा ने अनेक स्थानों में उनके स्तूप-पादुकादि स्थापित करवाये और बहुत से स्तवन-गीतादि निर्माण किये। उन्हीं महापुरुष के एक महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन गवर्नमैण्ट कालेज श्रीगगानगर के सस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो० सत्यव्रत प्रस्तुत कर रहे हैं।

—सपादक]

जैन संस्कृत महाकाव्यों में कविचक्रवर्ती कीर्त्तिराज उपाध्यायकृत नेमिनाथ महाकाव्य को गौरवमय पद प्राप्त है। इसमें जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के प्रेरक चरित्र के कतिपय प्रसंगों को, महाकाव्योचित विस्तार के साथ, बारह सर्गों के व्यापक कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। कीर्त्तिराज कालिदासोत्तर उन इने-गिने कवियों मे है, जिन्होने माघ एव हर्ष की कृत्रिम तथा अलङ्कृतिप्रधान शैली के एकच्छत्र शासन से मुक्त होकर अपने लिये अभिनव सुरुचिपूर्ण मार्ग की उद्भावना की है। नेमिनाथ काव्य मे भावपक्ष तथा कलापक्ष का जो मजुल समन्वय विद्यमान है, वह ह्रासकालीन कवियों की रचनाओं में अतीव दुर्लभ है। पाण्डित्य प्रदर्शन तथा बौद्धिक विलास के उस युग में नेमिनाथ महाकाव्य जैसी प्रसादपूर्ण कृति की रचना करने मे सफल होना कीर्त्तिराज की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

नेमिनाथ महाकाव्य का महाकाव्यत्व

प्राचीन भारतीय आलङ्कारिकों ने महाकाव्य के जो मानदण्ड निश्चित किये हैं, उनकी कसौटी पर नेमिनाथ-काव्य एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। शास्त्रीय विधान के अनुरूप यह सर्गबद्ध रचना है तथा इसमे, महाकाव्य के लिये आवश्यक, अष्टाधिक बारह सर्ग विद्यमान हैं। धीरोदात्त गुणों से युक्त क्षत्रियकुल-प्रसूत देवतुल्य नेमिनाथ इसके नायक हैं। नेमिनाथ महाकाव्य में शृङ्गार रस की प्रधानता है। करुण, वीर तथा रौद्र रस का आनुषंगिक रूप में परिपाक हुआ है। महाकाव्य के कथानक का इतिहास प्रख्यात अथवा सदाश्रित होना आवश्यक माना गया है। नेमिनाथकाव्य का कथानक लोकविश्रुत नेमिनाथ के चरित से सम्बद्ध है। चतुर्वर्ग मे से धर्म तथा मोक्ष की प्राप्ति इसका लक्ष्य है। धर्म का अभिप्राय यहाँ नैतिक उत्थान तथा मोक्ष का तात्पर्य आमुष्मिक अभ्युदय है। विषयों तथा अन्य सांसारिक आकर्षणों का परित्याग कर परम-पद प्राप्त करने की ध्वनि, काव्य में सर्वत्र सुनाई पड़ती है।

महाकाव्य की रूढ परम्परा के अनुसार नेमिनाथ-महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक मंगलाचरण से हुआ है, जिसमें स्वय काव्यनायक नेमिनाथ की चरणवन्दना की गयी है :—

> वन्दे तन्नेमिनाथस्य पदद्वन्द्वं श्रियाम्पदम्।
> नाथैरसेवि देवानां यद्भृङ्गैरिव पङ्कजम् ॥ १।१॥

आलंकारिकों के विधान का पालन करते हुए काव्य के आरम्भ मे सज्जन-प्रशंसा तथा खलनिन्दा भी की गयी है। यदुपति समुद्रविजय की राजधानी के मनोरम वर्णन मे कवि ने सन्नगरीवर्णन की रूढि का निर्वाह किया है। काव्य का शीर्षक चरितनायक के नाम पर आधारित है, तथा प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसमे वर्णित विषय के अनुरूप किया गया है, जिससे विश्वनाथ के महाकाव्यीय विधान की पूर्ति होती है। अन्तिम सर्ग के एक अंश मे चित्रकाव्य की योजना करके जैन कवि ने हेमचन्द्र, वाग्भट आदि जैनाचार्यो के विधान का पालन किया है। छन्द प्रयोग सम्बन्धी परम्परागत नियमो का प्रस्तुत काव्य मे आंशिक रूप से निर्वाह हुआ है। काव्य के पांच सर्गों में तो प्रत्येक सर्ग में एक छन्द की प्रमुखता है तथा सर्गान्त में छन्द बदल जाता है। यह साहित्याचार्यो के विधान के सर्वथा अनुरूप है। किन्तु शेष सात सर्गों में नाना वृत्तो का प्रयोग शास्त्रीय नियमो का स्पष्ट उल्लंघन है क्योंकि महाकाव्य मे छन्दवैविध्य एक-दो सर्गों मे ही काम्य माना गया है। महाकाव्यों की मान्य परिपाटी के अनुसार नेमिनाथकाव्य में नगर, पर्वत, प्रभात, वन, दूतप्रेषण (प्रतीकात्मक), युद्ध, सैन्य-प्रयाण, पुत्रजन्म, जन्मोत्सव, षड् ऋतु आदि वर्ण्यविषयों के विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं। वस्तुतः काव्य मे इन्ही वस्तुव्यापार वर्णनों का प्राधान्य है।

परम्परागत नियमों के अनुसार महाकाव्य में पांच नाट्यसन्धियों की योजना आवश्यक मानी गयी है। नेमिनाथ महाकाव्य का कथानक यद्यपि अतीव सक्षिप्त है,

तथापि इसमे पांचों सन्धियाँ खोजी जा सकती है। प्रथम सर्ग मे शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर के अवतरित होने में मुखसन्धि है। इसमें कथानक के फलागम का बीज निहित है तथा उसके प्रति पाठक की उत्सुकता जाग्रत होती है। द्वितीय सर्ग मे स्वप्नदर्शन से लेकर तृतीय सर्ग मे पुत्रजन्म तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है, क्योंकि मुखसन्धि में जिस कथाबीज का वपन हुआ था, वह यहाँ कुछ अलक्ष्य रहकर पुत्रजन्म से लक्ष्य हो जाता है। चतुर्थ सर्ग से अष्टम सर्ग तक गर्भसन्धि की योजना मानी जा सकती है। सूतिकर्म, स्नात्रोत्सव तथा जन्मोत्सव मे फलागम काव्य के गर्भ मे गुप्त रहता है। नवें से ग्यारहवें सर्ग तक एक ओर नेमिनाथ द्वारा वैवाहिक प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से मुख्यफल की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु दूसरी ओर वधूगृह में वध्य पशुओं का करुणक्रन्दन सुनकर उनके निर्वेदग्रस्त होने तथा दीक्षा ग्रहण करने से फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। अत यहाँ विमर्श सधि का सफल निर्वाह हुआ है। ग्यारहवें सर्ग के अन्त मे केवलज्ञान तथा बारहवें सर्ग में परम पद प्राप्त करने के वर्णन में निर्वहण सन्धि विद्यमान है। इन शास्त्रीय लक्षणों के अतिरिक्त नेमिनाथ महाकाव्य मे महाकाव्योचित रस-व्यजना, भव्य भावो की अभिव्यक्ति, शैली की मनोरमता तथा भाषा को उदात्तता विद्यमान हैं।

नेमिनाथमहाकाव्य की शास्त्रीयता

नेमिनाथकाव्य पौराणिक महाकाव्य है अथवा इसकी गणना शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों में की जानी चाहिये, इसका निश्चयात्मक उत्तर देना कठिन है। इसमे एक ओर पौराणिक महाकाव्यो के तत्त्व वर्तमान है, तो दूसरी ओर यह शास्त्रीय महाकाव्यों की विशेषताओं से भूषित है। पौराणिक महाकाव्यो की भाँति इसमे शिवादेवी के गर्भ मे जिनेश्वर का अवतरण होता है जिसके फलस्वरूप उसे चौदह स्वप्न दिखाई देते हैं। दिक्कुमारियाँ नवजात शिशु का सूतिकर्म करने के लिये आती है। उसका स्नात्रोत्सव इन्द्रद्वारा सम्पन्न होता है। दीक्षा से पूर्व भी वह भगवान् का अभिषेक करता है। पौराणिक शैली के अनुरूप इसमे दो स्वतन्त्र स्तोत्रों का समावेश किया गया है। कतिपय अन्य पद्यों में भी जिनेश्वर का प्रशस्तिगान हुआ है। जिनेश्वर के जन्मोत्सव मे देवागनाएँ नृत्य करती हैं तथा देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पौराणिक महाकाव्यों की परिपाटी के अनुसार इसमे नारी को जीवन-पथ की बाधा माना गया है। काव्यनायक दीक्षा लेकर केवलज्ञान तथा अन्तत परमपद प्राप्त करते है। उनकी देशना का समावेश भी काव्य मे हुआ है।

इन समूचे पौराणिक तत्त्वों के विद्यमान होने पर भी नेमिनाथ काव्य को पौराणिक महाकाव्य मानना न्यायोचित नही है। इसमे शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षण इतने पुष्ट तथा प्रचुर है कि इसकी यत्किंचित पौराणिकता उनके सिन्धु प्रवाह मे पूर्णतया मज्जित हो जाती है। ह्रासकालीन शास्त्रीय महाकाव्यकी प्रमुख विशेषता—वर्ण्यविषय तथा अभिव्यजना शैली में वैषम्य—इसमे भरपूर मात्रा में वर्तमान है। शास्त्रीय महाकाव्यो की भाँति नेमिनाथमहाकाव्य मे वस्तुव्यापारों की विस्तृत योजना हुई है। इसकी भाषा मे अद्भुत उदात्तता तथा शैली मे महाकाव्योचित प्रौढता एव गरिमा है। चित्रकाव्य की योजना के द्वारा काव्य में चमत्कृति उत्पन्न करने तथा अपना रचनाकौशल प्रदर्शित करने का प्रयास भी कवि ने किया है। अलकारों का भावपूर्ण विधान, रस, व्यजना, प्रकृति तथा मानव-सौन्दर्य का हृदयग्राही चित्रण, सुमधुर छन्दो का प्रयोग आदि शास्त्रीय काव्यों की ऐसी विशेषताएँ इस काव्य में हैं कि इसको शास्त्रीयता मे तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। वस्तुत नेमिनाथ-महाकाव्य की समग्र प्रकृति तथा वातावरण शास्त्रीय शैली के महाकाव्य के अनुसार है। अत, इसे शास्त्रीय महाकाव्यों की कोटि मे स्थान देना सर्वथा उपयुक्त है।

कविपरिचय तथा रचनाकाल

अन्य अधिकांश जैन काव्यों की भाँति कीर्त्तिराज के नेमिनाथमहाकाव्य में कवि प्रशस्ति नहीं है। अत काव्य से उनके जीवन तथा स्थितिकाल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। अन्य ऐतिहासिक लेखों के आधार पर उनके जीवनवृत्त का पुनर्निर्माण करने का प्रयास किया गया है। उनके अनुसार कीर्त्तिराज अपने समय के प्रख्यात तथा प्रभावशाली खरतरगच्छीय आचार्य थे। वे सखवालगोत्रीय शाह कोचर के वशज देपा के कनिष्ठ पुत्र थे। उनका जन्म सम्वत् १४४९ मे देपा की पत्नी देवलदे की कुक्षि से हुआ। उनका जन्म नाम देल्हाकुवर था। देल्हाकुंवर ने चौदह वर्ष की अल्पावस्था मे, सम्वत् १४६३ की आषाढ वदि एकादशी को दीक्षा ग्रहण की। जिनवर्द्धनसूरि ने आपका नाम कीर्त्तिराज रखा। कीर्त्तिराज के साहित्यगुरु भी जिन-वर्द्धनसूरि ही थे। उनकी प्रतिभा तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर जिनवर्द्धनसूरि ने सम्वत् १४७० में वाचनाचार्य पद तथा दस वर्ष पश्चात् जिनभद्रसूरि ने उन्हें मेहवे में उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया। पूर्व देशों का विहार करते समय जव कीर्त्तिराज जैसलमेर पधारे, तो गच्छनायक जिनभद्र-सूरि ने योग्य जानकर उन्हें सम्वत् १४९७ की माघ शुक्ला दशमी को आचार्य पद प्रदान किया। तत्पश्चात् वे कीर्तिरत्नसूरि के नाम से प्रख्यात हुए। आपके अग्रज लक्खा और केल्हा ने इस अवसर पर पद-महोत्सव का भव्य आयोजन किया। कीर्त्तिराज ७६ वर्ष की प्रौढावस्था मे, पचीस दिन की अनशन-आराधना के पश्चात् सम्वत् १५२५ वैशाख वदि पचमी को वीरमपुर में स्वर्ग सिधारे। संघ ने वहा पूर्व दिशा मे एक स्तूप का निर्माण कराया जो अव भी विद्यमान है। वीरमपुर, महवे के अतिरिक्त जोधपुर, आवू आदि स्थानों में भी आपकी चरणपादुकाएं स्थापित की गयीं। जयकीर्त्ति और अभयविलासकृत गीतों से ज्ञात होता है कि सम्वत् १८७९, वैशाख कृष्ण दशमी को गड़ाले (बीकानेर का समीपवर्ती नालग्राम) में उनका प्रासाद वनवाया गया था। कीर्त्तिरत्नसूरि के ५१ शिष्य थे। नेमिनाथ काव्य के अतिरिक्त उनके कतिपय स्तवनादि भी उपलब्ध है।[1]

नेमिनाथ महाकाव्य उपाध्याय कीर्त्तिराज की रचना है। कीर्तिराज को उपाध्याय पद संवत् १४८० में प्राप्त हुआ और सं० १४९७ मे वे आचार्य पद पर आसीन होकर कीर्त्तिरत्नसूरि बने। अत: नेमिनामकाव्य का रचना-काल सवत् १४८० तथा १४९७ के मध्य मानना सर्वथा न्यायोचित है। सं० १४९५ की लिखी हुई इसकी प्राचीन-तम प्रति प्राप्त है और यही इसका रचनाकाल है।

कथानक

नेमिनाथ महाकाव्य के वारह सर्गों में तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनचरित निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है। कवि ने जिस परिवेश में जिनचरित प्रस्तुत किया है, उसमे उसकी कतिपय प्रमुख घटनाओं का ही निरूपण सम्भव हो सका है।

च्यवनकल्याणक वर्णन नामक प्रथम सर्ग मे यादव राज-धानी सूर्यपुर मे समुद्रविजय की पत्नी, शिवादेवी के गर्भ मे बाईसवें जिनेश के अवतरण का वर्णन है। अलंकारो के विवेकपूर्ण योजना तथा बिम्बवैविध्य के द्वारा कवि सूर्यपुर का रोचक कवित्वपूर्ण चित्र अकित करने मे समर्थ हुआ है। द्वितीय सर्ग मे शिवादेवी परम्परागत चौदह स्वप्न देखती है। समुद्रविजय स्वप्नफल वतलाते हैं कि इन स्वप्नों के दर्शन से तुम्हें प्रतापी पुत्र की प्राप्ति होगी जो अपने भुजवल

---

१ विस्तृत परिचय के लिये देखिये श्री अगरचन्द नाहटा तथा भवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसग्रह', पृ० ३९-४०

से चारों दिशाओं को जीतकर चौदह भुवनों का अधिपति बनेगा। प्रभात वर्णन नामक इस सर्ग के शेषांश में प्रभात का मार्मिक वर्णन हुआ है। तृतीय सर्ग में समुद्रविजय स्वप्नदर्शन का वास्तविक फल जानने के लिये कुशल ज्योतिषियों को निमन्त्रित करते हैं। दैवज्ञों ने बताया कि इन चौदह स्वप्नों को देखनेवाली नारी की कुक्षि में ब्रह्मतुल्य जिन अवतीर्ण होते है। समय पर शिवा ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। चतुर्थ सर्ग मे दिक्कुमारियां नवजात शिशु का सूतिकर्म करती है। मेरुवर्णन नामक पंचम सर्ग मे इन्द्र शिशु को जन्माभिषेक के लिये मेरु पर्वत पर ले जाता है। इसी प्रसंग मे मेरु का वर्णन किया गया है। छठे सर्ग में भगवान के स्नात्रोत्सव का रोचक वर्णन है। सातवें सर्ग में चेटियों से पुत्रजन्म का समाचार पाकर समुद्रविजय आनन्द विभोर हो जाता है। वह पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष में राज्य के समस्त बन्दियों को मुक्त कर देता है तथा जीववध पर प्रतिबन्ध लगा देता है। उसने जन्मोत्सव का भव्य आयोजन किया। शिशु का नाम अरिष्ट-नेमि रखा गया। आठवें सर्ग मे अरिष्टनेमि के शारीरिक सौंदर्य तथा परम्परागत छह ऋतुओं का हृदयगाही वर्णन है। एक दिन नेमिनाथ ने पांचजन्य को कौतुकवश इस वेग से फूंका कि तीनों लोक भय से कम्पित हो गये। कृष्ण को आशंका हुई कि कहीं यह भुजबल से मुझे राज्यच्युत न कर दे, किन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण को आश्वासन दिया कि मुझे सांसारिक विषयों मे रुचि नहीं है, तुम निर्भय होकर राज्य का उपभोग करो। नवें सर्ग में नेमिनाथ के माता-पिता के आग्रह से श्रीकृष्ण की पत्नियां, नाना युक्तियाँ देकर उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती है। उनका प्रमुख तर्क है कि मोक्ष का लक्ष्य सुख-प्राप्ति है, किन्तु वह विषय भोग से ही मिल जाये, तो कष्टदायक तप की क्या आवश्यकता? नेमिनाथ उनकी युक्तियों का दृढतापूर्वक खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि मोक्षजन्य आनन्द तथा विषय-सुख में उतना ही अन्तर है जितना गाय तथा स्नुही के दूध मे। विषयभोग से आत्मा तृप्त नहीं हो सकती, किन्तु माता के अत्यधिक आग्रह से वे, केवल उनकी इच्छापूर्ति के लिये गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करना स्वीकार कर लेते है। उग्रसेन की लावण्यवती पुत्री राजीमती से उनका विवाह निश्चय होता है। दसवें सर्ग मे नेमिनाथ वधूगृह को प्रस्थान करते है। यहीं उनको देखने के लिए लालायित पुर-सुन्दरियों का वर्णन किया गया है। वधूगृह में बारात के भोजन के लिये बंधे हुए मरणासन्न निरीह पशुओं का चीत्कार सुनकर उन्हें आत्मग्लानि होती है। और वे विवाह को बीच मे ही छोडकर दीक्षा ग्रहण कर लेते है। ग्यारवें सर्ग के पूर्वार्द्ध में अप्रत्याशित प्रत्याख्यान से अपमानित राजीमती का करुण विलाप है। मोह-संयम युद्धवर्णन नामक इस सर्ग के उत्तरार्द्ध मे मोह तथा संयम के प्रीतकात्मक युद्ध का अतीव रोचक वर्णन है। पराजित होकर मोह नेमिनाथ के हृदय दुर्ग को छोड देता है। जिससे उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। बारहवें सर्ग मे यादव केवलज्ञानी प्रभु की वन्दना करने के लिये उज्जयन्त पर्वत पर जाते हैं। जिनेश्वर की देशना के प्रभाव से कुछ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं तथा कुछ श्रावक धर्म स्वीकार करते हें। जिनेन्द्र राजीमती को चरित्ररथ पर बैठा कर मोक्षपुरी भेज देते है और कुछ समय पश्चात् अपनी प्राण-प्रिया से मिलने के लिये स्वयं भी परम पद को प्रस्थान करते है।

नेमिनाथकाव्य का कथानक अत्यल्प है, किन्तु कवि ने उसे विविध वर्णनों, संवादों तथा स्तोत्रों से पुष्ट—पूरित कर बारह सर्गों के विस्तृत आलवाल मे आरोपित किया है। यह विस्तार महाकाव्य की कलेवरपूर्ति के लिए भले ही उपयुक्त हो, इससे कथावस्तु का विकासक्रम विशृंखलित हो गया है तथा कथाप्रवाह की सहजता नष्ट हो गयी है। कथानक के निर्वाह की दृष्टि से नेमिनाथमहाकाव्य को

अधिक सफल नहीं कहा जा सकता । पग-पग पर प्रासगिक-अप्रासगिक वर्णनों के सेतु बाध देने से काव्य की कथावस्तु रुक-रुक कर, मन्दगति से आगे बढती है । वस्तुतः, कथानक की ओर कवि का अधिक ध्यान नही है । काव्य का अधिकतर भाग वर्णनों से ही आच्छन्न है । कथावस्तु का सूक्ष्म संकेत करके कवि तुरन्त किसी-न-किसी वर्णन में जुट जाता है । कथानक की गत्यात्मकता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि तृतीय सर्ग मे हुए पुत्रजन्म की सूचना समुद्र-विजय को सातवें सर्ग में मिलती है । मध्यवर्ती तीन सर्ग शिशु के सूतिकर्म, जन्माभिषेक आदि के विस्तृत वर्णनों पर व्यय कर दिये गये हैं । तुलनात्मक दृष्टि से यहां यह जानना रोचक होगा कि रघुवंश मे द्वितीय सर्ग मे जन्म लेकर रघु चतुर्थ सर्ग में दिग्विजय से लौट भी आता है । द्वितीय सर्ग मे प्रभात का तथा अष्टम में षड्ऋतु का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । काव्य के शेषांश में भी वर्णनों का बाहुल्य है । इस वर्णनप्राचुर्य के कारण काव्य की अन्विति खण्डित हो गयी है । काव्य के अधिकाश भाग मूल कथा-वस्तु के साथ सूक्ष्म-तन्तु से जुडे हुए है । इसलिये काव्य का कथानक लगडाता हुआ ही चलता है । किन्तु यह स्मरणीय है कि तत्कालीन महाकाव्य-परिपाटी ही ऐसी थी कि मूल कथा के सफल विनियोग की अपेक्षा विषयान्तरों को पल्लवित करने मे ही काव्यकला की सार्थकता मानी जाती थी । अत कोर्त्तिराज को इसका सारा दोष देना न्याय्य नहीं । वस्तुत', उन्होंने वस्तुव्यापार के इन वर्णनों को अपनी बहुश्रुतता का क्रीडांगन न बना कर तत्कालीन काव्यरूढि के लौहपाश से बचने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है ।

नेमिनाथमहाकाव्य में प्रयुक्त कतिपय काव्य-रूढ़ियाँ

सस्कृत महाकाव्यों की रचना एक निश्चित ढर्रे पर हुई है जिससे उनमें अनेक शिल्पगत समानताए दृष्टिगम्य होती है । शास्त्रीय मानदडो के निर्वाह के अतिरिक्त उनमे कतिपय काव्यरूढियो का मनोयोगपूर्वक पालन किया गया है । यहाँ हम नेमिनाथ महाकाव्य मे प्रयुक्त दो रूढियों की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते है क्योकि इनका काव्य में विशिष्ट स्थान है तथा ये इन रूढियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये रोचक सामग्री प्रस्तुत करती है । प्रथम रूढि का सम्बन्ध प्रभात वर्णन से है । प्रभात वर्णन की परम्परा कालिदास तथा उनके परवर्ती अनेक महाकाव्यो में उपलब्ध है । कालिदास का प्रभात वर्णन आकार मे छोटा होता हुआ भी मार्मिकता में बेजोड़ है । माघ का प्रभातवर्णन बहुत विस्तृत है, यद्यपि प्रात काल का इस कोटि का अलकृत वर्णन समूचे साहित्य मे अन्यत्र दुर्लभ है । अन्य काव्यों में प्रभातवर्णन के नाम पर पिष्टपेषण ही हुआ है । कीर्त्तिराज का यह वर्णन कुछ विस्तृत होता हुआ भी सरसता तथा मार्मिकता से परिपूर्ण है । माघ की भाँति उसने न तो दूर की कौडी फेंकी है और न वह ज्ञान-प्रदर्शन के फेर में पडा है । उसने तो, कुशल चित्रकार की तरह, अपनी ललित-प्राजल शैली मे प्रातकालीन प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित करके तत्कालीन सहज वातावरण को अनायास उजागर कर दिया है ।[2] मागधों द्वारा राजस्तुति, हाथी के जाग कर भी मस्ती के कारण आखें न खोलने तथा करवट बदल कर शृङ्खलारव करने[3] और घोडो के द्वारा नमक चाटने की रूढि का भी

---

२ ध्याने मन स्व मुनिभिर्विलम्बित, विलम्बित कर्कशरोचिषा तमः ।
सुष्वाप यस्मिन् कुमुद प्रभासित, प्रभासितं पङ्कजवान्धवोपलै ॥ २।४१

३ निद्रासुख समनुभूय विराय रात्रावुद्भूतशृङ्खलारव परिवर्त्य पार्श्वम् ।
प्राप्य प्रबोधमपि देव ! गजेन्द्र एष नोन्मीलयत्यलसनेत्रयुग मदान्ध ॥ २।५४

इस प्रसंग में प्रयोग किया गया है। अपनी स्वाभाविकता तथा मार्मिकता के कारण, कीर्त्तिराज का यह वर्णन संस्कृत-साहित्य के सर्वोत्तम प्रभातवर्णनो से टक्कर ले सकता है।

नायक को देखने को उत्सुक पौर युवतियों के सम्भ्रम तथा तज्जन्य चेष्टाओं का वर्णन करना सस्कृत-महाकाव्यो की एक अन्य बहुप्रचलित रूढि है, जिसका प्रयोग नेमिनाथ काव्य मे भी हुआ है। बौद्ध कवि अश्वघोष से प्रारम्भ होकर कालिदास, माघ, हर्ष आदि से होती हुई यह काव्य रूढि कतिपय जैन कवियों की रचनाओ मे भी दृष्टिगत होती है। अश्वघोष तथा कालिदास का यह वर्णन, अपने सहज लावण्य से चमत्कृत है। माघ के वर्णन मे, उनके अन्य अधिकांश वर्णनों के समान, विलासिता की प्रधानता है। उपाध्याय कीर्त्तिराज का सम्भ्रमचित्रण यथार्थता से ओतप्रोत है, जिससे पाठक के हृदय में पुरसुन्दरियों की त्वरा सहसा प्रतिबिम्बित हो जाती है। नारी के नीवी-स्खलन अथवा अधोवस्त्र के गिरने का वर्णन, इस सन्दर्भ में, प्राय सभी कवियों ने किया है। कालिदास ने अधी-रता को नीवीस्खलन का कारण बता कर मर्यादा की रक्षा की है। माघ ने इसका कोई कारण नही दिया जिससे उसकी नायिका का विलासी रूप अधिक मुखर हो गया है। नग्न नारी को जनसमूह मे प्रदर्शित करना जैन यति की पवित्रतावादी वृत्ति के प्रतिकूल था, अत उसने इस रूढि को काव्य मे स्थान नहीं दिया। इसके विपरीत काव्य में उत्तरीय पात का वर्णन किया गया है। शुद्ध नैतिकता वादी दृष्टि से तो शायद यह भी औचित्यपूर्ण नहीं किन्तु नीवीस्खलन की तुलना मे यह अवश्य ही क्षम्य है, और कवि ने इसका जो कारण दिया है उससे तो पुरसुन्दरी पर कामुकता का दोष आरोपित ही नही किया जा सकता। कीर्त्तिराज की नायिका हाथ के आर्द्र प्रसाधन के मिटने के भय से उत्तरीय को नहीं पकडती, और वह उसी अवस्था मे गवाक्ष की ओर दौड़ जाती है।

काचित्करार्द्रप्रतिकर्मभङ्गभयेन हित्वा पतदुत्तरीयम्।
मञ्जीरवाचालपदारविन्दा द्रुतं गवाक्षाभिमुखं चचाल ॥
१०।१३

चरित्रचित्रण

नेमिनाथ महाकाव्य के सक्षिप्त कथानक में पात्रों की सख्या भी सीमित है। कथानायक नेमिनाथ के अतिरिक्त उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवी, राजीमती, उग्रसेन, प्रतीकात्मक सम्राट् मोह तथा सयम और दूत कैतव ही महाकाव्य के पात्र है। परन्तु इन सब की चरित्रगत विशेषताओ का निरूपण करने से कवि को समान सफलता नही मिली।

नेमिनाथ

जिनेश्वर नेमिनाथ काव्य के नायक हैं। उनका चरित्र पौराणिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है जिससे उनके चरित्र के कतिपय पक्ष ही उद्घाटित हो सके हैं और उसमें कोई नवीनता भी दृष्टिगत नही होती। वे देवोचित विभूति तथा शक्ति से सम्पन्न है। उनके धरा पर अवतीर्ण होते हो समुद्रविजय के समस्त शत्रु म्लान हो जाते है। दिक्कु-मारियाँ उनका सूतिकर्म करती हैं तथा जन्माभिषेक सम्पन्न करने के लिये स्वय सुरपति इन्द्र जिनगृह मे आता है। पाञ्चजन्य को फूँकना तथा शक्तिपरीक्षा मे षोडशकला सम्पन्न श्रीकृष्ण को पराजित करना उनकी अनुपम शक्तिमत्ता के प्रमाण है।

नेमिनाथ वीतराग नायक है। यौवन की मादक अवस्था में भी वैषयिक सुखभोग उन्हें अभिभूत नही कर पाते। कृष्णपत्नियाँ नाना प्रलोभन तथा युक्तियाँ देकर उन्हें वैवाहिक जीवन मे प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं, किन्तु वे हिमालय की भाँति अडिग तथा अडोल रहते हैं। उनका दृढ विश्वास है कि वैषयिक सुख परमार्थ के शत्रु हैं। उनसे आत्मा उसी प्रकार तृप्त नहीं हो सकती जैसे जलराशि से सागर अथवा काठ से अग्नि। उनके विचार में धर्मोपधि

को छोड कर कामातुर मूढ ही नारी रूपी औषध का सेवन करता है। वास्तविक सुख ब्रह्मलोक मे ही विद्यमान है।

हितं धर्मौषध हित्वा मूढाः कामज्वरार्दिता ।
सुखप्रियमपथ्यन्नु सेवन्ते ललनौषधम् ॥ ६।२४
आत्मा तोपयितु नैव शक्यो वैषयिकैः सुखैः ।
सलिलैरिव पाथोधिः काष्ठैरिव धनञ्जयः ॥ ६।२५
अनन्तमक्षय सौख्य भुङ्क्ता नो ब्रह्मसद्मनि ।
ज्योतिःस्वरूप एवाय तिष्ठत्यात्मा सनातन ॥ ६।२६

नेमिनाथ पितृवत्सल पुत्र है। माता के आग्रह से वे, इच्छा न होते हुए भी केवल उनकी प्रसन्नता के लिए विवाह करना स्वीकार लेते है। किन्तु वधू-गृह मे भोजनार्थ वध्य पशुओं का आर्त्त स्वर सुनकर उनका निर्वेद प्रबल हो जाता है और वे विवाह से विमुख होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते है।

समुद्रविजय—यदुपति समुद्रविजय कथानायक नेमिनाथ के पिता है। उनमे राजोचित समूचे गुण विद्यमान है। वे रूपवान्, शक्तिशाली, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा प्रखर मेघावी है। उनके गुण अलकरण मात्र नही है, वे व्यावहारिक जीवन में उनका उपयोग करते हैं (शक्तेरनुगुणाः क्रियाः १।२६)।

समुद्रविजय तेजस्वी शासक है। उनके वन्दी के शब्दो मे अग्नि तथा सूर्य का तेज भले ही शान्त हो जाये, उनका पराक्रम सर्वत्र अप्रतिहत है।

विध्यायतेऽम्भसा वह्नि सूर्योऽब्देन पिधीयते ।
न केनापि परं राजस्वत्तेज परिहीयते ॥ ७।२५

सिंहासनारुढ होते ही उनके शत्रु निष्प्रभ हो जाते है। फलतः शत्रु लक्ष्मी ने उनका इस प्रकार वरण किया जैसे नवयौवना वाला विवाहवेला मे पति का (१।३८)। उनका राज्य पाशविक बल पर आधारित नही है। केवल क्षमा को नपुंसकता तथा निर्वाध प्रचण्डता को अविवेक मान कर, इन दोनों के समन्वय के आधार पर ही वे राज्य-संचालन करते हैं। 'न खरो न भूयसा मृदु' उनकी नीति का मूलमन्त्र है।

क्लीबत्वं केवला क्षान्तिश्चण्डत्वमविवेकिता ।
द्वाभ्यामत समेताभ्यां सोऽर्थसिद्धिममन्यत ॥ १।४३

प्रशासन के चारु सचालन के लिये उन्होंने न्यायप्रिय तथा शास्त्रवेत्ता मन्त्रियो को नियुक्त किया है (१।४७)। उनके स्मितकान्त ओष्ठ मित्रो के लिये अक्षय कोश लुटाते है तो उनकी भ्रूभंगिमा शत्रुओं पर वज्रपात करती है।

वज्रदण्डायते सोऽयं प्रत्यनीकमहीभुजाम् ।
कल्पद्रुमायते काम पादद्वन्द्वोपजीविनाम् ॥ १।५२

प्रजाप्रेम समुद्रविजय के चरित्र का एक अन्य गुण है। यथोचित कर-व्यवस्था मे उसने सहज ही प्रजा का विश्वास प्राप्त कर लिया है।

आकाराय ललौ लोकाद् भागधेयं न तृष्णया । १।४५

समुद्रविजय पुत्रवत्सल पिता है। पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर उनकी वाछे खिल जाती है। पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य मे वे मुक्तहस्त से धन वितरित करते हैं, वन्दियो को मुक्त कर देते है तथा जन्मोत्सव का ठाटदार आयोजन करते है, जो निरन्तर बारह दिन तक चलता है।

समुद्रविजय अन्तस् से धार्मिक व्यक्ति है। उनका धर्म सर्वोपरि है। आर्हत-धर्म उन्हें पुत्र, पत्नी, राज्य तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

प्राणेभ्योऽपि धनेभ्योऽपि योषिद्भ्योऽप्यधिक प्रियम् ।
सोऽमस्त मेदिनीजानिर्विशुद्धं धर्ममार्हतम् ॥ १।४२

इस प्रकार समुद्रविजय त्रिवर्गसाधन में रत हैं। इस सुव्यवस्था तथा न्यायपरायणता के कारण उनके राज्य में समय पर वर्षा होती है, पृथ्वी रत्न उपजाती है तथा प्रजा चिरजीवी है। और वह स्वय राज्य को इस प्रकार निश्चिन्त होकर भोगते है जैसे कामी कामिनी की कचन काया को।

काले वर्षति पर्जन्य सूते रत्नानि मेदिनी ।
प्रजाश्चिराय जीवन्ति तस्मिन् भुञ्जति भूतलम् ॥ १।४४

समृद्धमभजद्राज्य स समस्तनयामलम् ।
कामीव कामिनीकायं स समस्तनयामलम् ॥ १ ५ ४

राजीमती— राजीमती काव्य की अभागी नायिका है। वह शीलसम्पन्न तथा अतुल रूपवती है। उसे नेमिनाथ की पत्नी बनने का सौभाग्य मिलने लगा था, किन्तु क्रूर विधि ने, पलक झपकते ही उसकी नवोदित आशाओं पर पानी फेर दिया। विवाह मे भोजनार्थ भावी व्यापक हिंसा से उद्विग्न होकर नेमिनाथ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। इस अकारण निकरारण से राजीमती स्तब्ध रह जाती है। बन्धुजनों के समझाने-बुझाने से उसके तप्त हृदय को सान्त्वना तो मिलती है, किन्तु उसका जीवन-कोश रीत चुका है। अन्ततः वह केवलज्ञानी नेमिनाथ की देशना से परमपद को प्राप्त करती है।

उग्रसेन— भोजपुत्र उग्रसेन का चरित्र मानवीय गुणो से ओतप्रोत है। वह उच्चकुलप्रसूत नीतिकुशल शासक है। वह शरणागत वत्सल, गुणरत्नों की निधि तथा कीर्तिलता का कानन है। लक्ष्मी तथा सरस्वती, अपना परम्परागत द्वेष छोड कर उसके पास एक साथ रहती हैं। विपक्षी नृपगण उसके तेज से भीत होकर कन्याओ के उपहारों से उसका रोप शान्त करते हैं।

अन्य पात्र

शिवादेवी नेमिनाथ की माता है। काव्य में उसके चरित्र का पल्लवन नही हुआ है। प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा सयम राजनीतिकुशल शासकों की भांति आचरण करते हैं। मोहराज दूत कैतव को भेजकर सयम नृपति को नेमिनाथ का हृदय दुर्ग छोडने का आदेश देता है। दूत पूर्ण निपुणता से अपने स्वामी का पक्ष प्रस्तुत करता है। सयमराज का मन्त्री शुद्ध विवेक दूत की उक्तियों का मुँह-तोड उत्तर देता है।

प्रकृति-चित्रण— नेमिनाथकाव्य के विस्तृत फलक पर प्रकृति को व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है। वस्तुत नेमिनाथ महाकाव्य की भावसमृद्धि तथा काव्यमत्ता का प्रमुख कारण इसका मनोरम प्रकृति-चित्रण है। कीर्त्तिराज ने महाकाव्य के अन्य पक्षो की भाँति प्रकृति-चित्रण मे भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। कालिदासोत्तर महाकाव्यो मे प्रकृति के उद्दीपन पक्ष की पार्श्वभूमि मे उक्ति वैचित्र्य के द्वारा नायक-नायिकाओं के विलासितापूर्ण चित्र अङ्कित करने की परिपाटी है। प्रकृति के आलम्बन-पक्ष के प्रति वाल्मीकि तथा कालिदास का-सा अनुराग अन्य सस्कृत कवियों मे दृष्टिगोचर नही होता। कीर्त्तिराज ने यद्यपि विविध शैलियों में प्रकृति का चित्रण किया है, किन्तु प्रकृति के सहज-स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने में उनका मन अधिक रमा है और इन स्वभावोक्तियों मे ही उनकी काव्यकला का उत्कृष्ट रूप व्यक्त हुआ है।

प्रकृति के आलम्बन पक्ष के चित्रण मे कीर्त्तिराज ने सूक्ष्म पर्य्यवेक्षण का परिचय दिया है। वर्ण्यविषय के साथ तादात्म्य स्थापित करने के पश्चात् प्रस्तुत किये गये ये चित्र अद्भुत सजीवता से स्पन्दित हैं। हेमन्त में दिन क्रमश छोटे होते जाते है तथा कुहासा उत्तरोत्तर वढता जाता है। उपमा की सुरुचिपूर्ण योजना के द्वारा कवि ने हेमन्तकालीन इस प्राकृतिक तथ्य का मार्मिक चित्र अङ्कित किया है।

उपययौ शनकैरिह लाघव दिनगणो खलराग इवानिशम् ।
ववृधिरे च तुषारसमृद्धयोऽनुसमयं सुजनप्रणया इव ॥८।४८

शरत्कालीन उपकरणो का यह स्वाभाविक चित्र मनोरमता से ओतप्रोत है।

आप प्रसेदु. कलमा विपेचुर्हंसाश्चुकूजुर्जहसुः कजानि ।
सम्भूय सानन्दमिवावतेरु शरद्गुणा सर्वजलाशयेषु ॥८।८२

इस श्लेषोपमा में शरत् का समग्र रूप उजागर करने मे कवि को आशातीत सफलता मिली है।

रसविमुक्तविलोलपयोधरा हसितकाशलसत्पलितांकिता ।
क्षरित-पवित्रम-शालिकणद्विजा जयति कापि शरज्जरती क्षितौ ।।
८।४३

पावस मे दामिनी की दमक, वर्षा की अविराम फुहार तथा शीतल बयार मादक वातावरण की सृष्टि करती है। पवन झकोरे खाकर मेघमाला, मधुरमन्द्र गर्जना करती हुई गगनांगन में घूमती फिरती है। वर्षाकाल के इस सहज दृश्य को काव्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। उपमा के प्रयोग ने भावाभिव्यक्ति को समर्थता प्रदान की है।

क्षरदभ्रजला कलगर्जिता सचपला चपलानिलनोदिता ।
दिवि चचाल नवाम्बुदमण्डली गजघटेव मनोभवभूपते ॥८।३८

नेमिनाथमहाकाव्य मे पशुप्रकृति के भी अभिराम चित्र प्रस्तुत किये गये है। ये एक ओर कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के साक्षी हैं और दूसरी ओर उसके पशुजगत् की चेष्टाओ के गहन अध्ययन को व्यक्त करते है। हाथी का यह स्वभाव है कि वह रात भर गहरी नींद सोता है। प्रातःकाल जागकर भी वह अलसाई आँखों को मस्ती से मूँदे पडे रहता है किन्तु बार-बार करवटें बदल कर पाद-शृंखला से शब्द करता है जिससे उसके जगने की सूचना गजपालों को मिल जाती है। निम्नोक्त स्वभावोक्ति में यह गजप्रकृति साकार हो उठी है।

निद्रासुख समनुभूय चिराय रात्रा-
वुद्भूतशृङ्खलारव परिवर्त्य पार्श्वम् ।
प्राप्य प्रबोधमपि देव ! गजेन्द्र एष
नोन्मीलयत्यलसनेत्रयुग मदान्ध ।। २।५४

व्याध के मधुरगीत के वशीभूत होकर, अपनी प्रियाओं के साथ वन मे चौकडी भरते हुए हरिणों का हृदयग्राही चित्र इस प्रकार अङ्कित किया गया है।

कलगीतिनादरसरङ्गवेदिनो हरिणा अमी हरिणलोचने वने ।
सह कामिनीभिरलमुत्पतन्ति हे, परिपीतवातपरिणोदिता इव ।।
१२।११

ह्रासकालीन महाकाव्य-प्रवृत्ति के अनुसार कीर्तिराज ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी वर्णन अपने काव्य में किया है। उद्दीपन रूप में प्रकृति मानव की भावनाओ को उद्वेलित करती है। प्रस्तुत पंक्तियों मे स्मरपटहसदृश घनगर्जना को विलासी जनों की कामाग्नि को प्रदीप्त करते हुए चित्रित किया गया है जिससे वे रणशूर कामरण मे पराजित होकर प्राणवल्लभाओं की मनुहार करने मे प्रवृत्त हो जाते है।

स्मरपते. पटहानिव वारिदान्
निनदतोऽथ निशम्य विलासिन ।
समदना न्यपतन्नवकामिनी-
चरणयो रणयोगविदोऽपि हि ॥ ८।३७

उद्दीपन पक्ष के इस वर्णन में प्रकृति पृष्ठभूमि में चली गया है और प्रेमी युगलों का भोग-विलास प्रमुख हो गया है, किन्तु परम्परा से ऐसे वर्णनों की गणना उद्दीपन के अन्तर्गत ही की जाती है।

प्रियकर कठिनस्तनकुम्भयो: प्रियकर: सरसार्तवपल्लवै ।
प्रियतमा समवीजयदाकुला नवरता वरतान्तलतागृहे ॥
८।२३

नेमिनाथ काव्य मे प्रकृति का मानवीकरण भी हुआ है। प्रकृति पर मानवीय भावनाओ तथा कार्यकलापों का आरोप करने से वह मानव की भाँति आचरण करती है। प्रात काल सूर्य के उदित होते ही कमलिनी विकसित हो जाती है और भ्रमरगण उसका रसपान करने लगते हैं इसका चित्रण कवि ने सूर्य पर नायक, कमलिनी मे नायिका तथा भ्रमरगण पर परपुरुष का आरोप करके किया है। अपनी प्रेयसी को पर पुरुषो से चुम्बित देख कर सूर्य क्रोध से लाल हो जाता है तथा कठोर पादप्रहार से उस व्यभि-चारिणी को दण्डित करता है।

यत्र भ्रमद्भ्रमरचुम्बितानना-
मवेक्ष्य कोपादिव मूर्ध्नि पद्मिनीम् ।

स्वप्रेयसीं लोहितमूर्तिमावहन्

कठोरपादैर्निजघान तापनः ॥ २।४२

निम्नलिखित पद्य मे लताओं को प्रगल्भा नायिकाओ के रूप मे चित्रित किया गया है जो पुष्पवती होती हुई भी तरुणों के साथ बाह्य रति मे लीन हो जाती हैं।

कोमलाङ्ग्यो लताकान्ताः प्रवृत्ता यस्य कानने।

पुष्पवत्योऽप्यहो चित्र तरुणालिङ्गन व्यधु ॥ १।३१

कतिपय स्थलों पर प्रकृति का आदर्श रूप चित्रित किया गया है। ऐसे प्रसगों में प्रकृति निसर्गविरुद्ध आचरण करती है। जिनजन्म के अवसर पर प्रकृति ने अपनी स्वभावगत विशेषताओ को छोड़ कर आदर्श रूप प्रकट किया है।

सपदि दशदिशोऽत्रामेयनैर्मल्यमापु

समजनि च समस्ते जीवलोके प्रकाश ॥

अपि ववुरनुकूला वायवो रेणुवर्ज

विलयमगमदापद् दौस्थ्यदुःख पृथिव्याम् ॥ ३।३६

प्रकृतिचित्रण में कीर्त्तिराज ने परिगणनात्मक शैलो का भी आश्रय लिया है। निम्नोक्त पद्य में विभिन्न वृक्षों के नामो की गणना मात्र कर दी है।

सहकारएष खदिरोऽयमर्जुनोऽयमिमौ पलाशवकुलौ सहोद्गतौ।

कुटजावमू सरल एप चम्पको मदिराक्षि शैलविपिने गवेष्यताम् ॥

१२।१३

काव्य मे एक स्थान पर प्रकृति स्वागतकर्त्री के रूप में प्रकट हुई है।

रचयितु ह्युचितामतिथिक्रियां पथिकमाह्वयतीव सगौरवम्।

कुसुमिता फलिनाम्रवणावली सुवयसा वयसां कलकूजितै ॥

८।१८

इस प्रकार कीर्तिराज ने प्रकृति के विविध रूगो का चित्रण किया है। ह्रासकालीन सम्कृत महाकाव्यकारों की भाँति उन्होंने प्रकृति चित्रण मे यमक को योजना को है किन्तु उनका यमक न केवल दुरूहता से मुक्त है अपितु इससे प्रकृति वर्णनो की प्रभावशालिता मे वृद्धि हुई है।

सौन्दर्य चित्रण—कीर्तिराज ने काव्य के कतिपय पात्रों के कायिक सौन्दर्य का हृदयहारी चित्रण किया है, परन्तु उनकी कला की सम्पदा राजीमती तथा देवागनाओं के चित्रों को ही मिली है। सौन्दर्य-चित्रण मे अधिकतर नखशिखप्रणाली का आश्रय लिया गया है जिसके अन्तर्गत वर्ण्य पात्र के अगों-प्रत्यंगों का सूक्ष्म वर्णन किया जाता है। कवि ने वहुधा परम्परामुक्त उपमानो के द्वारा अपने पात्रो का सौन्दर्य व्यक्त किया है किन्तु उपमानयोजना में उपमेय-सादृश्य का ध्यान रखने से उनके सौन्दर्य चित्रों मे सहज आकर्षण तथा सजीवता का समावेश हो गया है। जहाँ नवीन उपमानों का प्रयोग किया गया है वहाँ काव्य-कला मे अद्भुत भावप्रेपणीयता आ गयी है। निम्नोक्त पद्य में देवांगनाओ की जघनस्थली को कामदेव की आसनगद्दी कह कर उसकी पुष्टता तथा विस्तार का सहज भान करा दिया गया है।

वृता दुकूलेन सुकोमलेन विलग्नकाञ्चीगुणजात्यरत्ना।

विभाति यासां जघनस्थली सा मनोभवस्यासनगन्दिकेव ॥

६।४७

इसी प्रकार राजीमती की जघाओं को कदलीस्तम्भ तथा कामगज के आलान के रूप मे चित्रित करके एक ओर उनकी सुडौलता तथा शीतलता को व्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर, उनकी वशीकरण क्षमता को उजागर कर दिया गया है।

वभावुरुयुगं यस्या कदलीस्तम्भकोमलम्।

आलान इव दुर्दान्त-मीनवेतनहस्तिन ॥ ६।५५

नेमिनाथ महाकाव्य मे उपमान की अपेक्षा उपमेय अगों का वैशिष्ट्य वताकर, व्यतिरेक के द्वारा भी पात्रों का लोकोत्तर सौन्दर्य चित्रित किया गया है। राजीमती की मुखमाधुरी से परास्त लावण्यनिधि चन्द्रमा को, लज्जावश

मुंह छिपाने के लिये, गगनागन मे मारा-मारा फिरता हुआ चित्रित करके नवयौवना राजीमती के सर्वातिशायी मुख-सौन्दर्य को मूर्त कर दिया है।

यस्या वस्त्रेण जितः शके लाघव प्राप्य चन्द्रमा ।
तुलवद्वायुनोत्क्षिप्तो वम्भ्रमीति नभस्तले ॥६।५२

रसयोजना

शास्त्रीय विधान के अनुसार महाकाव्य में शृङ्गार, वीर तथा शान्त मे से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए। नेमिनाथ महाकाव्य में शृङ्गार का अङ्गी रस के रूप में पल्लवन हुआ है। वीर, रौद्र, करुण आदि शृङ्गार रस के पोषक बन कर आए हैं। ऋतुवर्णन के प्रसग मे शृङ्गार के अनेक रमणीक चित्र दृष्टिगत होते है।

स्मरपते पटहानिव वारिदान् निनदतोऽस्य निशम्य विलासिनः।
समदना न्यपतन्नवकामिनीचरणयो रणयोगविदोऽपि हि॥
८।३७

यहाँ नायक की नायिकाविषयक रति स्थायीभाव है। प्रमदा आलम्बन विभाव है। कामदुन्दुभितुल्य मेघगर्जना उद्दीपन विभाव है। रणजेता नायक का मानभंजन के निमित्त नायिका के चरणो मे गिरना अनुभाव है। औत्सुक्य, मद आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से पुष्ट होकर नायक का स्थायीभाव शृङ्गार के रूप मे निष्पन्न हुआ है।

निम्नोक्त पद्य मे शृङ्गाररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

उपवने पवनेरितपादपे नवतर बत रन्तुमनाः परा।
सकरुणा करुणावचये प्रिय प्रियतमा यतमानमवारयत्॥८।२२

पाचवें सर्ग मे सहसा सिंहासन के प्रकम्पित होने से क्रोधोन्मत्त हुए इन्द्र के वर्णन में रौद्र रस का भव्य चित्रण हुआ है।

ललाटपट्ट भ्रुकुटीभयानक भ्रुवौ भुजगाविव दारुणाकृती।
दृशः करालाः ज्वलिताग्निकुण्डवच्चण्डार्यमाभ मुखमादधेऽसौ॥
ददश दन्तै स्वयया हरिर्निजौ रुषेन शच्या अधराविवाधरौ॥
प्रस्फोटयामास करावितस्ततः क्रोधद्रुमस्योल्वणपल्लवाविव॥
५।३-४

यहां इन्द्र का हृद्गत क्रोध स्थायीभाव है। अज्ञात जिनेश्वर आलम्बन विभाव है। सिंहासन का अकस्मात कांपना उद्दीपन विभाव है। ललाट पर भृकुटि का प्रकट होना, भौंहों का तनना, नेत्रों का अग्निकुण्ड की भांति अग्निवर्षा करना, अधरों का काटना तथा हाथों का स्फोटन अनुभाव है। अमर्ष, आक्षेप, उग्रता आदि संचारी भाव है। इनके संयोग से क्रोध रौद्र रस के रूप में व्यक्त हुआ है।

प्रतीकात्मक सम्राट मोह के दूत तथा संयमराज के नीतिनिपुण मन्त्री विवेक की उक्तियों के अन्तर्गत, ग्यारहवें सर्ग मे, वीररस की कमनीय झांकी देखने को मिलती है।

यदि शक्तिरिहास्ति ते प्रभो प्रतिगृह्णातु तदा नु तान्यपि।
परमेष विलोलजिह्वया कपटी भाषयते जगज्जनम्॥११।४४

मन्त्री विवेक का उत्साह यहाँ स्थायी भाव के रूप मे वर्तमान है। मोहराज आलम्बन है। उसके दूत की कटूक्तियाँ उद्दीपन का काम करती है। मन्त्री का विपक्ष को चुनौती देना तथा मोह की वाचालता का मजाक उडाना अनुभाव है। धृति, गर्व, तर्क आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार वीररस के समूचे उपकरण यहा विद्यमान है।

इसी सर्ग मे अप्रत्याशित प्रत्याख्यान से शोकतप्त राजीमती के विलाप मे करुणरस की सृष्टि हुई है।

अथ भोजनरेन्द्रपुत्रिका प्रतिमुक्ता प्रभुणा तपस्विनी।
व्यलपद्गलदश्रुलोचना शिथिलागा लुठिता महीतले॥११।१

राजीमती का निराकरणजन्य शोक स्थायीभाव है। नेमिनाथ आलम्बन विभाव हैं। विवाह से अचानक विरत होकर उनका प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना उद्दीपन विभाव है। पृथ्वी पर लोटना, अगों का शिथिल होना तथा आसू

वेहाना अनुभाव है। विषाद, चिन्ता, स्मृति आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे समृद्ध होकर राजीमती के शोक की अभिव्यक्ति करुण रस के रूप में हुई है।

इस प्रकार कीर्त्तिराज ने काव्य मे रसात्मक प्रसगो के द्वारा पात्रों के मनोभावो को वाणी प्रदान की है तथा काव्य सौन्दर्य को प्रस्फुटित किया है।

भाषा

नेमिनाथ महाकाव्य की सफलता का अधिकाश श्रेय इसकी प्रसादपूर्ण प्रांजल भाषा को है। विद्वत्ताप्रदर्शन, उक्तिवैचित्र्य, अलकरणप्रियता आदि समकालीन प्रवृत्तियो के प्रवल आकर्षण के समक्ष आत्मसमर्पण न करना कीर्त्तिराज की मौलिकता तथा सुरुचि का द्योतक है। नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा महाकाव्योचित गरिमा तथा प्राणवत्ता से मण्डित है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है किन्तु अनावश्यक अलकरण की ओर उसकी प्रवृत्ति नही। इसीलिये उसके काव्य मे भावपक्ष तथा कलापक्ष का मनोरम समन्वय दृष्टिगत होता है। नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि वह, भाव तथा परिस्थिति के अनुसार स्वत अपना रूप परिवर्तित करती जाती है। फलस्वरूप वह कही माधुर्य से तरलित है तो कही ओज से प्रदीप्त। भावानुकूल शब्दों के विवेकपूर्ण चयन तथा कुशल गुम्फन से ध्वनिसौन्दर्य की सृष्टि करने में कवि ने सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। अनुप्रास तथा यमक के सुरुचिपूर्ण प्रयोग से उनके काव्य के माधुर्य मे रचनात्मक झकृति का समावेश हो गया है। निम्नलिखित पद्य में यह विशेषता भरपूर मात्रा में विद्यमान है।

गुरुणा च यत्र तरुणाऽगुरुणा वसुधा क्रियेत सुरभिर्वसुधा।
कमनातुरेति रमणैकमना रमणी सुरस्य शुचिहारमणी ॥५।५६

शृङ्गार आदि कोमल भावो के चित्रण की पदावली माखन-सी मृदुल, सौन्दर्य-सी सुन्दर तथा यौवन-सी मादक है। ऐसे प्रसगों में सर्वत्र अल्पसमास वाली पदावली का प्रयोग हुआ है। नवें सर्ग मे भाषा के ये समस्त गुण देखे जा सकते है।

विवाहय कुमारेन्द्र! बालाश्चञ्चललोचना।
भुङ्क्ष्व भोगान् सम ताभिरप्सरोभिरिवामर ॥
रूप-सौन्दर्य-सम्पन्ना, शीलालङ्कारधारिणीम्।
झरल्लावण्य-पीयूप-सान्द्र-पीनपयोधराम् ॥
हेमाब्जगर्भगौराङ्गीं मृगाक्षीं कुलबालिकाम्।
यै नोपभुञ्जते लोका वेधसा वञ्चिता हि ते ॥
ससारे सारभूतो य किलायम्प्रमदाजन।
योऽसारश्चेत्तवाभाति गर्दभस्य गुणोपम ॥६।१२-१५

शार्दूलविक्रीडित जैसे विशालकाय छन्द में भाषा के माधुर्य को यथावत् सुरक्षित रखना कवि की बहुत बडी उपलब्धि है—

पुण्याढ्य कमला यथा निजपतिं योषा: सुशीला यथा
सूत्रार्थं विशदा यथा त्रिवृतयस्तारा यथा शीतगुम्।
पुसा कर्म यथा धियश्च हृदय खाना यथा वृत्तय:
सानन्द कुलकोटय किल यदूनामन्वगुस्त तथा ॥
१०।१०

यद्यपि समस्त महाकाव्य प्रसादगुण को माधुरी से ओत-प्रोत है, किन्तु सातवें सर्ग में प्रसाद का सर्वोतम रूप दीख पडता है। इसमे जिस सहज, सरल तथा सुबोध भाषा का प्रयोग हुआ है, उस पर साहित्यदर्पणकार को यह उक्ति 'चित्त व्याप्नोति य: क्षिप्र शुष्केन्धनमिवानल' अक्षरश चरितार्थ होती है।

वभौ राज्ञ सभास्थान नानाविच्छित्तिसुन्दरम्।
प्रभोर्जन्ममहो द्रष्टु स्वर्विमानमिवागतम् ॥७।१३
अनेकै: स्वार्थमिच्छद्भिर्विनीपकावनोपकै।
राजमार्गस्तदाकीर्ण खगैरिव फलद्रुम. ॥ ७।१५

नीतिकथन की भाषा सबसे सरल है। नवें सर्ग मे नेमिनाथ की नीतिपरक उक्तियाँ भाषा को इसी सरलता, मसृणता तथा कोमलता से युक्त हैं।

हित धर्मोपथ हित्वा मूढाः कामज्वरार्दिताः ।
सुखप्रियमपथ्यन्तु सेवन्ते ललनोपथम् ॥६।२४
आत्मा तोपयितु नैव शक्यो वैषयिकै सुखै ।
सलिलैरिव पायोधि काष्ठैरिव धनञ्जय ।६।२५

किन्तु क्रोध तथा युद्ध के वर्णन मे भाषा ओज से परिपूर्ण हो जाती है। ओजव्यजक कठोर शब्दों के द्वारा यथेष्ट वातावरण का निर्माण करके कवि ने भावव्यंजना को अतीव समर्थ बना दिया है। मोह तथा सयम के युद्ध वर्णन में भाषा की यह शक्तिमत्ता वर्त्तमान है।

रणतूर्यरवे समुत्थिते भटहक्कापरिगर्जितेऽम्बरे।
उभयोर्बलयोः परस्पर परिलग्नोऽथ विभीषणो रण ॥११।७६

पांचवें सर्ग मे इन्द्र के क्रोधवर्णन मे जिस पदावली को योजना की गयी है, वह अपने वेग तथा नाद से हृदय मे ओज का सचार करती है। इस दृष्टि से यह पद्य विशेष दर्शनीय है।

विपक्षपक्षक्षयबद्धकक्ष विद्युल्लतानामिव सञ्चय तत्।
स्फुरत्स्फुलिङ्ग कुलिश कराल ध्यात्वेति यावत्स जिघृक्षतिस्म ॥ ५।६

कीर्त्तिराज की भाषा में विम्ब निर्माण की पूर्ण क्षमता है। सम्भ्रम के चित्रण मे भाषा त्वरा तथा वेग से पूर्ण है। देवसभा के इस वर्णन में, उपयुक्त शब्दावली के प्रयोग से सभासदों की इन्द्रप्रयाणजन्य आकुलता साकार हो उठी है।

दृष्टि ददाना सकलासु दिक्षु किमेतदित्याकुलित ब्रुवाणा।
उत्थानतो देवपतेरकस्मात् सर्वापि चुक्षोभ सभा सुधर्मा ॥ ५।१८

नेमिनाथ काव्य में यत्र-तत्र मधुर सूक्तियो तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है जो इसकी भाषा की लोकसम्पृक्ति को सूचक है तथा काव्य की प्रभावकारिता को वृद्धिगत करती है। कतिपय मार्मिक सूक्तियाँ यहाँ उद्धृत को जाती है।

१—ही प्रेम तद्यद्वशवर्तिचित्त प्रत्येति दु ख सुखरूपमेव ।२।४३
२—विचार्य वाच हि वदन्ति धीराः ।३।१८
३—उच्चैः स्थितिर्वा क्व भवेज्जडानाम् । ६।१३
४—स्थानं पवित्राः क्व न वा लभन्ते । ६।३३
५—जनोऽभिनवे रमतेऽखिलः । ८।३
६—काले रिपुमप्याश्रयेत्सुधी । ८।४६
७—सकलोऽप्युदितं श्रयतीह जन । ८।५३
८—पित्रोः सुखायैव प्रवर्तन्ते सुनन्दना । ६।३४
९—शुद्धिर्न तपो विनात्मन । ११।२३
१०—नहि कार्या हितदेशना जडे । ११।४८
११—नहि धर्मकर्मणि सुधीर्विलम्बते । १२।२

इन बहुमूल्य गुणो से भूषित होती हुई भी नेमिनाथकाव्य की भाषा में कतिपय दोष हैं, जिनकी ओर संकेत न करना अन्यायपूर्ण होगा। काव्य में कुछ ऐसे स्थलों पर विकट समासान्त पदावली का प्रयोग किया गया है जहाँ उसका कोई औचित्य नहीं है। युद्धादि के वर्णन मे तो समासबहुला शैली अभीष्ट वातावरण के निर्माण मे सहायक होती है, किन्तु मेरुवर्णन के प्रसग में इसकी क्या सार्थकता है?

भित्तिप्रतिज्वलदनेकमनोज्ञरत्ननिर्यन्मयूखपटलीसतत प्रकाशाः।
द्वारेषु निर्मकरपुष्करिणीजलोर्मिमूर्द्धन्महसुषितयात्रिकगात्रघर्माः ॥ ५।५२

इसके अतिरिक्त नेमिनाथ महाकाव्य में यत्र-तत्र, छन्दपूर्ति के लिये बलात् अतिरिक्त पदों का प्रयोग किया गया है। स्वकान्तरक्ताः के पश्चात् 'शुचय' तथा 'पतिव्रता' (२।३६) का, शुक के साथ 'वि' का (२।५८) मराल के साथ खग का (२।५६), विशारद के साथ 'विशेष्यजन' का (११।१६) तथा वदन्ति के साथ 'वाचम्' का (३।१८) प्रयोग सर्वथा आवश्यक नहीं है। इनसे एक ओर, इन स्थलों पर,

कवि की छन्द प्रयोग में असमर्थता व्यक्त होती है, दूसरी ओर, यहाँ वह काव्यदोष आ गया है, जो साहित्यशास्त्र मे 'अधिक' नाम से ख्यात है ।

नेमिनाथ काव्य मे कतिपय देशी शब्द भी प्रयुक्त हुए है । बीच के लिये विचाल, गद्दी के लिये गन्दिका, माली के लिये मालिक उल्लेखनीय है । इनमे से 'विचाल' शब्द कुछ उच्चारण भिन्नता के साथ, पजाबी मे अब भी प्रचलित है ।

नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा मे निजी आकर्षण है । वह प्रसगानुकुल, प्रौढ, सहज तथा प्राजल है । निस्सन्देह इससे सस्कृत-साहित्य गौरवान्वित हुआ है ।

पाण्डित्यप्रदर्शन तथा शाब्दी क्रीड़ा

कीर्त्तिराज ने बारहवें सर्ग मे चित्रालकारों के द्वारा काव्य में चमत्कृति लाने तथा पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है । सौभाग्यवश एसे पद्यो की सख्या बहुत कम है । सम्भवत इन पद्यों के द्वारा वे बतला देना चाहते है कि मैं समवर्ती काव्यशैली से अनभिज्ञ अथवा चित्रकाव्य की रचना करने में असमर्थ नही हूँ किन्तु अपनी सुरुचि के कारण मुझे वह ग्राह्य नही है । ऐसे स्थलों पर भाषा के साथ मनमाना खिलवाड किया गया है जिससे उसमे दुरूहता तथा क्लिष्टता का समावेश हो गया है ।

निम्नलिखित पद्य मे केवल दो अक्षरो, 'ल' तथा क, का प्रयोग हुआ है ।

लुलल्लीलाकलाकेलिकीला केलिकलाकुलम् ।
लोकालोकाकल काल कोकिलालिकुलालका ।। १२।३९

इस पद्य की रचना मे केवल एक व्यञ्जन तथा तीन स्वरों का आश्रय लिया गया है ।

अतीतान्तेन एतां ते तन्तन्तु तततातततिम् ।
ऋनतां ता तु तोतोत्तु तातोऽतता ततोऽन्ततुत् ॥ १२।३७

निम्नोक्त पद्य की रचना अनुलोम विलोमात्मक विधि से हुई है । अत यह प्रारम्भ तथा अन्त से एक समान पढा जा सकता है ।

तुद मे तत्तदम्भत्वं त्वं भदन्ततमेद तु ।
रक्ष तात ! विशामीश ! शमीशावितताक्षर ॥ १२।३८

प्रस्तुत दो पद्यो की पदावली मे पूर्ण साम्य है, किन्तु पदयोजना तथा विग्रह के वैभिन्य के आधार पर इनसे दो भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले गये है ।

महामद भवाऽऽरागहर्रि विग्रहहारिणम् ।
प्रमोदजाततारेन श्रेयस्कर महासकम् ॥ १२।४१
महाम दम्भवारागहर्रि विग्रहहारिणम् ।
प्रमोदजाततारेन श्रेयस्कर महासकम् ॥ १२।४२

ये पद्य विद्वत्ता को चुनौती है । टीका के बिना इनका वास्तविक अर्थ समझना विद्वानों के लिये भी सम्भव नही । ये रसचर्वणा मे भले ही बाधक हो, इनसे कवि का अगाध पाण्डित्य, रचनाकौशल तथा भाषाधिकार व्यक्त होता है । माघ, वस्तुपाल आदि की भाँति पूरे सर्ग में इन कलाबाज्यों का सन्निवेश न करके कीर्त्तिराज ने अपने पाठकों को बौद्धिक व्यायाम से बचा लिया है ।

अलकारविधान - अलङ्कारयोजना में भी कीर्त्तिराज की मौलिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है । नेमिनाथ काव्य में शब्दालङ्कार तथा अर्थालकार दोनो का व्यापक प्रयोग हुआ है, किन्तु भावों का गला घोंट कर बरबस अलकार ठूँसने का प्रयत्न कीर्त्तिराज ने कही नही किया है । उनके काव्य मे अलकार इस सहजता से प्रयुक्त हुए है कि उनसे काव्यसौन्दर्य स्वतः प्रस्फुटित होता जाता है । नेमिनाथमहाकाव्य के अलकार भावाभिव्यक्ति को समर्थ बनाने में पूर्णतया सक्षम हैं ।

अन्त्यानुप्रास की स्वाभाविक अवतारणा का एक उदाहरण देखिये—

जगज्जनानन्दथुमन्दहेतुर्जगत्त्रयक्लेशसेतु ।
जगत्प्रभुर्यादववशकेतुर्जगत्पुनाति स्म स कम्बुकेतु ।।३।३७

शब्दालकारों मे यमक का काव्य में प्रचुर प्रयाग किया गया है । यमक की सुरुचिपूर्ण योजना शृङ्गार-

माधुरी को वृद्धिगत करने में सहायक हुई है।

वनितयाऽनितया रमणं कयाऽप्यमलया मलयाचलमारुतः।
घुन-लता-तल-तामरसोऽधिको नहि मतो हिमतो विपतोऽपिन॥
८।२१

नेमिनाथमहाकाव्य में श्लोकार्धयमक को भी विस्तृत स्थान मिला है, किन्तु कीर्तिराज के यमक की विशेषता यह है कि वह सर्वत्र दुरूहता तथा क्लिष्टता से मुक्त है।

पुण्य ! कोपचयद नतावक पुण्यकोपचयद न तावकम्।
दर्शन जिनप ! यावदीक्ष्यते तावदेव गदपु स्यतादिकम्॥१२।३३

अर्थालंकारों का प्रयोग भी भावाभिव्यक्ति को सघन बनाने के लिये किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उल्लेख आदि की विवेकपूर्ण योजना से काव्य मे अद्भुत भाव प्रेषणीयता आ गयी है। जिनेश्वर के स्नात्रोत्सव के प्रसग मे मूर्त की अमूर्त से उपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

देवता अथ शिवा सनन्दना निन्यिरे धनददिङ्निकेतनम्।
धर्मशास्त्रसहिता मतिं गिरः सद्गुरोरिव विनेयमानसम्॥
४।४८

प्रस्तुत पद्य मे उत्प्रेक्षा की मार्मिक अवतारणा हुई है।

पवमानचञ्चलदल जलाशये रवितेजसा स्फुटदिद पयोरुहम्।
परिशंक्यते बत मया तवाननात् कमलाक्षि ! बिभ्यदिव कम्पतेतराम्॥ १२।१९

रूपक का सफल प्रयोग निम्नोक्त पंक्तियो मे दृष्टिगत होता है।

रात्रि-स्त्रिया मुग्धतया तमोऽञ्जनै
दिग्धानि काष्ठातनयामुखान्यथ।
प्रक्षालयत्पूपमयूखपायसा
देव्या विभात ददृशे स्वतातवत्॥ २।३०

कृष्णपत्नियां नेमिनाथ को जिन युक्तियों से वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं, उनमें, एक स्थान पर, दृष्टान्त की भावपूर्ण योजना हुई है।

किञ्च पित्रोः सुखायैव प्रवर्तन्ते सुनन्दनाः।
सदा सिन्धोः प्रमोदाय चन्द्रो व्योमावगाहते॥ ६।३४

शरद्वर्णन मे मदमत्त वृषभ के आचरण की पुष्टि एक सामान्य उक्ति से करते हुए अर्थान्तरन्यास का प्रयोग किया गया है।

मदोत्कटा विदार्य भूतल वृषाक्षिपन्ति यत्र मतस्के रजो निजे।
अयुक्त-युक्त-कृत्य-सविचारणां विदन्ति किं कदा मदान्धबुद्धय
॥ ३।४४

जिनेश्वर की लोकोत्तर विलक्षणता का चित्रण करते समय कवि की कल्पना अतिशयोक्ति के रूप में प्रकट हुई है।

यद्यर्कदुग्धं शुचिगोरसस्य प्राप्नोति साम्य च विषं सुधायाः।
देवान्तर देव ! तदा त्वदीयां तुल्या दधाति त्रिजगत्प्रदीप॥
६।३५

इनके अतिरिक्त परिसंख्या, वक्रोक्ति, विरोधाभास, सन्देह, असगति, विषम, सहोक्ति, निदर्शना, पर्यायोक्ति, व्यतिरेक, विभावना आदि अलंकार नेमिनाथ काव्य के सौन्दर्य मे वृद्धि करते है। इनमे से कुछ के उदाहरण यहा दिये जाते है।

परिसंख्या— न मन्दोऽत्र जन कोऽपि परं मन्दो यदि ग्रह।
वियोगो नापि दम्पत्योर्वियोगस्तु परं वने॥१।१७

सन्देह— पिशङ्गवासा किमयं नारायण ?
सुवर्णकाय. किमय विहङ्गम ?
सविस्मय तर्कितमेवमादित
सिंह स्फुरत्काञ्चनचारुकेसरम् ? २५

वक्रोक्ति— देव. प्रिये ! को वृषभोऽयि ! किं गौः ?
नैव वृषांक ? किमु शंकरो ? न।
जिनो तु चक्रीति वधूवराभ्यां
यो वक्रमुक्त. स मुदे जिनेन्द्र॥३।१२

असगति— गन्धसार-घनसार-विलेपं
कन्यका विदधिरेऽथ तदंगे।

कौतुकं महदिदं यदमूषामप्यनश्यदखिलो खलु ताप·
॥४।४४

विरोधाभास—दिग्देव्योऽपि रसलीना सभ्रमा अप्यविभ्रमा।
वामा अपि च नो वामा भूषिता अप्यभूषिता
॥४।६

पर्यायोक्ति—रणरात्रौ महीनाथ ! चन्द्रहासो विलोक्यते।
वियुज्यते स्वकान्ताम्यश्चक्रवाकैरिवारिभिः
॥ ८।२७

विषम– मोदक ववेदश्चात्र क्व सर्पि खण्डमोदकः।
क्वेद वैपयिक सौख्य क्व चिदानन्दज सुखम् ॥६।२२

छन्दयोजना

भावव्यजक छन्दों के प्रयोग मे कीर्त्तिराज पूर्णत सिद्ध-हस्त हैं। उनके काव्य में अनेक छन्दों का उपयोग किया गया है। प्रथम, सप्तम तथा नवम सर्ग में अनुष्टुप् की प्रधानता है। प्रथम सर्ग के अन्तिम दो पद्य मालिनी तथा उपजाति छन्द में है, सप्तम सर्ग के अन्त में मालिनी का प्रयोग हुआ है और नवम सर्ग का पैंतालीसवां तथा अन्तिम पद्य क्रमशः उपगीति तथा नन्दिनी मे निवद्ध है। ग्यारहवें सर्ग मे वैतालीय छन्द अपनाया गया है। सर्गान्त में उप-जाति तथा मन्दाक्रान्ता का उपयोग किया गया है। तृतीय सर्ग की रचना उपजाति मे हुई है। अन्तिम दो पद्यों मे मालिनी का प्रयोग हुआ है। शेष सात सर्गों में कवि ने नाना वृत्तों के प्रयोग से अपना छन्दज्ञान प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। द्वितीय सर्ग में उपजाति (वशस्थ इन्द्रवशा), इन्द्रवशा, वशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपजाति (इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा), वसन्ततिलका, द्रुतविलम्वित तथा शालिनी, इन आठ छन्दों को प्रयुक्त किया गया है। चतुर्थ सर्ग की रचना नौ छन्दों मे हुई है। इनमें अनुष्टुप् का प्राधान्य है। अन्य आठ छन्दों के नाम इस प्रकार हैं—द्रुतविलम्वित, उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), इन्द्रवज्रा, स्वागता, रथोद्धता, इन्द्रवंशा, उपजाति, (इन्द्रवंशा + वंशस्थ) तथा शालिनी। पंचम सर्ग में सात छन्दों को अपनाया गया है—उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, वंशस्थ, प्रमिताक्षरा, रथोद्धता तथा शार्दू-लविक्रीडित। छठे सर्ग में पांच छन्द दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें उपजाति की प्रमुखता है। शेष चार छन्द हैं—उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित तथा मालिनी। अष्टम सर्ग मे प्रयुक्त छन्दों की सख्या ग्यारह है। उनके नाम इस प्रकार हैं—द्रुतविलम्वित, इन्द्रवज्रा, विभावरी, उपजाति (वशस्य + इन्द्रवशा), स्वागता, वैतालीय, नन्दिनी, तोटक, शालिनी, स्रग्धरा तथा एक अज्ञातनामा विषम वृत्त। इस सर्ग मे नाना छन्दों का प्रयोग ऋतु-परिवर्तन से उदित विविध भावों को व्यक्त करने में पूर्ण-तया सक्षम है। बारहवें सर्ग मे भी ग्यारह छन्द प्रयोग में लाए गये हैं। वे इस प्रकार हैं—नन्दिनी, उपजाति (इन्द्रवशा + वशस्थ), उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्र-वज्रा), रथोद्धता, वियोगिनी, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, अनुष्टुप्, मालिनी, मन्दाक्रान्ता तथा आर्या। दसवें सर्ग की रचना मे जिन चार छन्दो का आश्रय लिया गया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), शार्दूलविक्रीडित, इंद्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा। इस प्रकार नेमिनाथ महाकाव्य में कुल मिला कर पच्चीस छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इनमें उपजाति का प्रयोग सबसे अधिक है।

इस काव्य के मूलमात्र का सस्करण यशोविजय ग्रन्थमाला भावनगर से सं० १९७० में प्रकाशित हुआ है। उसके बाद आधुनिक टीका सहित एक पत्राकार सस्करण भी प्रकाशित हुआ है।
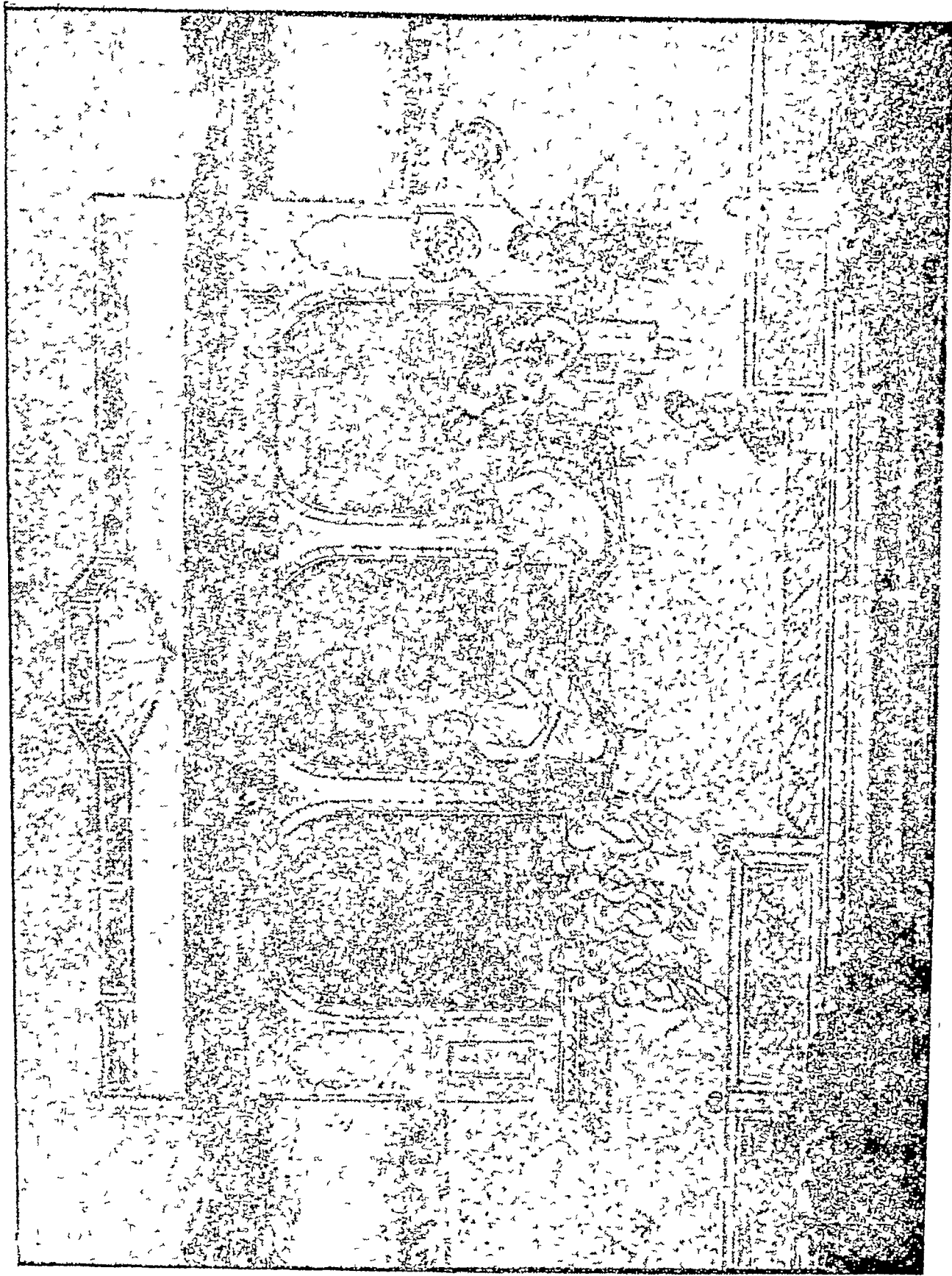
मणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी और दिल्लीपति राजा मदनपाल [महावीर स्वामी का मन्दिर, कलकत्ता से]

उ० श्रीलब्धिमुनिविरचितम्

नरमणि-मण्डित-भालस्थल युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि चरितम्

[खरतर गच्छ मे युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी, उनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी, प्रगट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरिजी और अकबर-प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी, ये चारों आचार्य दादाजी के नाम से विख्यात हैं, हमने जब साहित्य को शोध महोपाध्याय कविवर समयसुदर सबन्धी विशेष जान-कारी प्राप्त करने लिए प्रारभ को तो उनके दादागुरू चतुर्थ दादा साहब सम्बन्धी विपुल समग्री हमारे सामने आई। हमने शताधिक ग्रन्थो के आधार से उनका स्वतन्त्र विस्तृत जीवनचरित्र 'युगप्रधान श्रीजिनचन्द्र सूरि' सं० १९९२ में प्रकाशित किया और उसके बाद क्रमश दादा श्रीजिनकुशलसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के चरित्र प्रकाशत किये। जब वे परमपूज्य आशु-कवि उपाध्याय लब्धिमुनिजी को भेजे गये तो उन्होंने उनके आधार से चार सस्कृत काव्य निर्माण कर दिये। अकबर प्रतिवोधक जिनचन्द्रसूरि चरित काव्य ६ सर्गों मे १२१२ पद्यो का है। स०१९९२ के बैशाख सुदि ७ को भुजनगर मे इसकी रचना हुई है। इसके बाद श्री जिनकुशलसूरि चरित्र ६३३ श्लोकों मे स० १९९६ मार्गशीर्ष शु १५ अहमदावाद मे पूर्ण किया। तदनतर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि चरित्र सं० १९९८ के अक्षयतृतीया को बबई मे रचा। अतिम श्री जिन दत्तसूरि चरित्र ४६८ श्लोकों मे स० २००५ बैशाख सुदि ५ को जयपुर मे पूर्ण किया। इन चारों सस्कृत काव्यो मे से अकबर-प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्र दादागुरु के अनन्य भक्त को अभयचदजी व श्री लक्ष्मीचन्दजी सेठ द्वारा प्रकाशित हो गया है। अभी अष्टम शताब्दी के प्रसग से मणिधारीजी का चरित्र भी प्रकाशित करना अत्यावश्यक समझ कर उसे यहां दिया जा रहा है। —संपादक]

प्रणम्य श्रीमहावीर चरित लिख्यते मया।
मणिभृज्जिनचन्द्राख्य सूरीणां पुण्यशालिनाम्॥ १॥

जैनसमाजे विख्याता दादेति नामधारका।
श्रीजिनदत्तसूरीशाः श्रीजिनचन्द्रसूरयः॥२॥

जिनकुशलसूरीशाः श्रीजिनचन्द्रसूरयः।
श्रीखरतरगच्छस्य चतुर्ष्वेतेपु सूरिपु॥ ३॥

श्रीजिनदत्तसूरीणां समागच्छत्यनन्तरम्।
श्रीजिनचन्द्रसूरीणा-मभिधा मणिधारिणाम्॥४॥

त्रिभिर्विशेषकम्

ते महाप्रतिभाशालि-विद्वांसः सूरयोऽभवन्।
शुद्धज्ञान-क्रियायुक्ता जिनधर्मप्रभावकाः॥ ५॥

एभि सम्प्राप्य षड्विंशत्यब्दाल्पायुरकारयत्।
कार्यं तदस्ति चाश्चर्यजनक गौरवान्वितम्॥ ६॥

अज्ञायि गुरुवर्येण श्रीजिनदत्तसूरिणा।
प्रतिभादिपरीक्षातः स च महाप्रभावक॥ ७॥

दृश्यन्ते दत्तसूरीणा लोकोत्तरप्रभावकाः।
श्रीजिनचन्द्रसूरीश-जीवने चाकिता गुणाः॥ ८॥

मणिधारी महान् व्यक्ति-रसाधारणसज्जन।
अभूदतोऽस्य सक्षिप्त परिचयोऽत्र दीयते॥ ९॥

जेसलमेरुदुर्गस्य सौष्ठवराज्यवर्त्तिनि।
श्रीविक्रमपुर द्रङ्गे चैत्य-श्राद्धजनाकुले॥ १०॥

उवास रासलश्रेष्ठी श्राद्धधर्मपरायण: ।
धर्मिष्ठा स्त्री गुणश्रेष्ठा तस्य देल्हणदे प्रिया ॥ ११ ॥
युग्मम्

तस्याः कुक्षेरभूदस्य शैलाङ्करुद्रवत्सरे ।
भाद्रशुक्लाष्टमी घस्रे ज्येष्ठायां जन्म सत्क्षणे ॥ १२ ॥
श्रीजिनदत्तसूरीणां श्रीविक्रमपुरे महान् ।
प्रभावः समभून्मार्यादयुपद्रव-निवारणात् ॥ १३ ॥
श्रीजिनदत्तसूरीशै र्वाग्जड़विषये पुनः ।
रचित्वा चर्चरीग्रन्थोऽपभ्रंश भाषया वर ॥ १४ ॥
मेहर वासलादीनां विक्रमपुरवासिनाम् ।
श्राद्धानां पठनार्थं च प्रेषितो विक्रमे पुरे ॥१५॥ युग्मम्
ग्रन्थेन भावितस्तेन श्रावक सह्नियात्मजः ।
देवधर परित्यज्याम्नाय च चैत्यवासिनः ॥ १६ ॥
लात्वाऽजमेरुत सूरीन् श्री विक्रमपुरे स्वयम् ।
अचीकरच्चतुर्मासीं प्रभूतादरपूर्वकम् ॥ १७ ॥ युग्मम् ॥
सुधामयोपदेशेन तेषां प्रभावशालिनाम् ।
बहवो भविनो जीवा· प्रापुः सद्बोधमत्र च ॥ १८ ॥
सर्वविरतय केचिद्देशविरतयः पुनः ।
केचित्केचन सम्यत्व भृतो तत्राभवन् जनाः ॥ १९ ॥
माहेश्वरिवणिग्-विप्र-क्षत्रियास्तत्र सूरिणा ।
प्रतिबोध्य कृता शुद्धजैनधर्मानुयायिन. ॥ २० ॥
पुनः श्रीजिनदत्तसूरीशैस्तत्र भवाब्धितारिणी ।
महावीर प्रभोर्मूर्त्तिः स्थापिताऽभूज्जिनालये ॥ २१ ॥
मात्रा सहैकदा बालावस्थो रासलनन्दनः ।
सुगुरुं वन्दितु पूज्याधिष्ठितोपाश्रयं ययौ ॥ २२ ॥
सूरिणालोक्य तं बालं शुभलक्षणलक्षितम् ।
प्रतिभाशालिन ज्ञात्वा, स्वपदयोग्यभाविनम् ॥ २३ ॥
बहिः प्रकाशिता वार्त्ता सा तां श्रुत्वा निजात्मजः ।
जननीजनकाभ्यां हि गुरवे प्रत्यलाभि सः ॥२४॥ युग्मम्
श्री विक्रमपुरे कृत्वा बह्वीं धर्मप्रभावनाम् ।
युगप्रधानसूरीशा अजमेरुं समाययुः ॥ २५ ॥

तत्र संवद्गुणव्योमसूर्याब्दे फाल्गुनार्जुने ।
नवम्यां पार्श्वनाथस्य विधिचैत्ये महोत्सवात् ॥ २६ ॥
श्री जिनदत्तसूरीणां महाप्रभावशालिनाम् ।
शिष्यत्वेनाभवद् दीक्षा लात्वा रासलनन्दनः ॥ २७ ॥
सोऽसाधारणधीशाली स्मरणशक्तिसंयुत ।
अल्पीयसापि कालेन विकसत्प्रतिभोऽभवत् ॥ २८ ॥
चक्रे लघुवयस्कस्य सरस्वतीसुतस्य च ।
मेधा श्लाघा मुनेरस्य सर्वैर्जनैः प्रहर्षितैः ॥ २९ ॥
सूरेरपि परीक्षाया श्लाघां चक्रुर्जना अथ ।
श्री विक्रमपुरे संवद्बाण-ख-सूर्य-वत्सरे ॥ ३० ॥
वैशाखे शुक्लपष्ठ्यां च महावीरजिनालये ।
स जिनचन्द्रसूरीशैः स्वपदे स्थापितो मुनिः ॥३१॥युग्मम्
श्रीजिनचन्द्रसूरीति नाम्ना ख्यातिं गतः स च ।
अस्य पित्रा महायुक्त्या सूरिपदोत्सव कृतः ॥ ३२ ॥
श्री जिनचन्द्रसूरीशे ललाट-मणिधारिणि ।
श्रीजिनदत्तसूरीणामभवन्महती कृपा ॥ ३३ ॥
यतो यैश्च स्वयं ज्योति र्मन्त्र-तन्त्रागमादिकान् ।
साम्नायान् पाठयित्वाऽयं महाविशारदः कृतः ॥ ३४ ॥
सूरीशजिनचन्द्रोऽपि क्षमावान् विनयी गुणी ।
सर्वदा गुरुसेवायां दत्तचित्तश्च तस्थिवान् ॥३५॥
अस्य विनयिशिष्यस्याकृत्रिमभक्तिसेवया ।
आसन्नतिप्रसन्ना हि श्रीजिनदत्तसूरयः ॥ ३६ ॥
स्व-परोन्नतिकृद्गच्छ-सञ्चालनादिकाः पुन ।
अस्मै श्रीदत्तसूरीशैर्दत्ता शिक्षा अनेकशः ॥ ३७ ॥
ता सुमहत्त्वसयुक्ताऽसीच्छिक्षैका वदामहे ।
वयं यतो गुरो· सेवा-मूल्यलाभो हि विद्यते ॥ ३८ ॥
सा शिक्षेयं कदापि त्वं मा गमो योगिनीपुरम् ।
तत्र ते गमने भावी मृत्यु र्दुष्ट सुरीच्छलात् ॥ ३९ ॥
यतस्तत्र क्षणे तस्मिन् दुष्टानामभवन्महान् ।
योगिनीवीरवेतालादि देवानामुपद्रवः ॥ ४० ॥

सूरीशो भाविसङ्केत-भावार्थोयमभूद्यतः ।
सम्वन्वेस्मिन्नयं तिष्ठेत्सावधानतया स्वयम् ॥ ४१ ॥
रुद्र-सूर्य-समाषाढ-धवलैकादशीतिथौ ।
अजमेरे गता स्वर्गं श्रीजिनदत्तसूरयः ॥ ४२ ॥
ततश्चन्द्रगुरौ सर्व-गच्छभार समागत ।
निरवहद्यथार्थेन पदमिदमसावपि ॥ ४३ ॥
पावयन्तः पुरग्रामान् श्रीजिनचन्द्रसूरयः ।
सम्वद्वेदेन्दुसूर्याब्दे त्रिभुवनगिरिं ययुः ॥ ४४ ॥
तत्रत्य शान्तिनाथस्य विधिचैत्ये प्रतिष्ठिते ।
श्रीजिनदत्तसूरीशै श्रीजिनचन्द्रसूरिणा ॥ ४५ ॥
स्वर्णमय ध्वजा दण्ड-कुम्भाः प्रतिष्ठिताः पुनः ।
प्रदत्तं गणिनी हेम-देव्यै प्रवर्तिनीपदम् ॥ ४६ ॥ युग्मम्
ततस्ते मथुरायात्रां कृत्वा गुर्भीमपल्लिकाम् ।
तत्र सम्वन्नगेलाक्षीन्दुवर्षे फाल्गुनार्जुने ॥ ४७ ॥
दशम्यां हि महावीरच्चैत्ये श्रीचन्द्रसूरिणा ।
पूर्णदेव गणी वीरभद्रो जिनरथः पुन ॥ ४८ ॥
वीरनयो जयशीलो जिनभद्रो जगहितः ।
श्रीनरपतिरेतेष्टौ दीक्षिता मुनयो वरा ॥ ४९ ॥
त्रिभिर्विशेषकम्

श्राद्ध-क्षेमन्धरश्रेष्ठी पुनस्तैः प्रतिबोधितः ।
ततो विहृत्य सूरीशा मरुकोट ययु क्रमात् ॥ ५० ॥
तत्र चन्द्रप्रभस्वामिचैत्ये पूज्यै प्रतिष्ठिना ।
स्वर्णदण्डध्वजा कुम्भाः साधुगोलककारिताः ५१ ॥
उत्सवेऽस्मिन्ललौ मालां रौप्यपञ्चाशताऽर्पणात् ।
श्रेष्ठिक्षेमन्धरोथार्यास्तत उच्चपुरं गताः ॥ ५२ ॥
तत्र सम्वद्गजेलाक्षीन्दुवर्षे गुणवर्द्धनः ।
ऋषभदत्त-विनयशीलादि मुनयो वरा ॥ ५३ ॥
सरस्वती गुणश्रीश्च जगश्रीरार्यिकाः पुन ।
दीक्षिताः सूरिभिश्चैव मन्येऽपि बहव क्रमात् ॥ ५४ ॥
युग्मम्

सम्वच्चन्द्रकराक्षीन्दु वर्षे श्री चन्द्रसूरिणा ।
सागरपाड़ा सद्ग्रामे पार्श्वनाथजिनालये ॥ ५५ ॥
श्री देवकुलिका श्रेष्ठिगयधर विधापिताः ।
प्रतिष्ठितास्तत पूज्या अजमेरुं समागता ॥५६॥ युग्मम्
तत्र स्तूपं प्रतिष्ठाप्य श्रीजिनदत्तसद्गुरो ।
ततो विहृत्य सूरीशा बब्बेरकपुरं ययु ॥ ५७ ॥
तत्र तैर्दीक्षिता गुण-भद्रा-भयेन्दुवाचका ।
यशश्चन्द्र-यशोभद्रो देवभद्रश्च तत्प्रिया ॥ ५८ ॥
तत श्रीआशिकापुर्यां नागदत्ताय साधवे ।
अदायि वाचनाचार्यपद श्रीचन्द्रसूरिणा ॥ ५९ ॥
ततो महावनस्थाने श्रीजिनचन्द्रसूरिणा ।
अजितजिननाथस्य विधिचैत्य प्रतिष्ठिनम् ॥ ६० ॥
तत इन्द्रपुरे पूज्यैः शान्तिनाथजिनालये ।
स्वर्णमयध्वजा दण्ड-कुम्भाः प्रतिष्ठिता पुनः ॥ ६१ ॥
तगलायां ततः पूज्यैरजितनाथमन्दिरम् ।
गुणचन्द्रमुने पितृमहलाल विनिर्मितम् ॥ ६२ ॥
पुनः कराक्षिनेत्रेन्दुवत्सरे वादलोपुरे ।
तेनैव कारिताः श्रीमत्पार्श्वनाथजिनालये ॥ ६३ ॥
स्वर्णमयध्वजा दण्डकुम्भा अम्बासुरी गृहे ।
स्वर्णकुम्भध्वजा दण्डा प्रत्यस्थापि महोत्सवात् ॥६४॥
त्रिभिर्विशेषकम्

ततः सुखेन सूरीशा विहरन्त पुरादिषु ।
रुद्रपल्ली गता जग्मु र्नरपालपुर ततः ॥ ६५ ॥
तत्र गुरु पराजेतु ज्योतिर्विदेकपण्डितः ।
अभिमान्यकरोत् ज्योतिश्चर्चा श्रीगुरुणा समम् ॥६६॥
चरस्थिरादिलग्नेषु प्रभावो दर्श्यतां त्वया ।
एक लग्नस्य कस्यापीति पृष्टः सच सूरिणा ॥ ६७ ॥
तस्मिन्निरुत्तरीभूते वृषलग्नस्य सूरिणा ।
अन्तिमैकादशांशेपु मार्गशीर्षमुहूर्त्तके ॥ ६८ ॥
श्रीपार्श्वनाथ चैत्याग्रे शिलैषा स्यास्यति स्थिरा ।
यावदङ्गमुनीलाब्द, प्रतिज्ञायेति तत्पुरः ॥ ६९ ॥
सस्थाप्यतां शिला कुद्धा विप्रो नीतः पराजयम् ।
स्वस्थान स गतः पूज्या रुद्रपल्लीं गतास्ततः ॥ ७० ॥
त्रिभिर्विशेषकम्

चैत्यवासिपद्मचन्द्र-सूरिणा हीर्ष्ययाऽन्यदा ।
संगच्छन्तो बहिर्भूमि स्वाश्रयासन्नमार्गत. ॥ ७१ ।
लघुवयस्कसूरीशा: समुनयो विलोकिता ।
व सुखशातिरस्तीति पृष्टास्ते जगुरोमिति ॥ ७२ ॥
पुन पृष्टो गुरुः पद्म-सूरिणा भवताऽधुना ।
केषां केषां च शास्त्राणामध्ययन विधीयते ॥ ७३ ॥
तत् श्रुत्वा मुनिना प्रोक्तमेकेन पार्श्ववर्तिना ।
अधीयन्तेऽधुनास्माक सूरयो न्यायकन्दलीम् ॥ ७४ ॥
पुन पृष्टो गुरुश्चैत्यस्थ पद्मचन्द्रसूरिणा ।
ईर्षालुना तमोवादो भवता पठितो न वा ॥ ७५ ॥
गुरुः प्राह तमोवादग्रन्थो विलोकितो मया ।
सोऽवग् त्वया समीचीन तन्मनन कृत न वा ॥ ७६ ॥
गुरु प्राह समीचीन तत्कृत सोऽवदत्पुनः ।
स्वरूप कीदृश तस्य रूप्यरूपि तमोस्ति वा ॥ ७७ ॥
पूज्योऽवक् तत्स्वरूप च कीदृशमपि विद्यताम् ।
अधुना नास्ति तद्वाद-विवादकरणक्षण ॥ ७८ ॥
विवादग्रस्तवस्तूना निर्णयो राजपर्षदि ।
विद्वच्छिष्टजनाध्यक्षमेव भवितुमर्हति ॥ ७९ ॥
प्रमाण-नय-निक्षेपै स्व-स्वपक्षसमर्थनम् ।
कृत्वा वस्तुस्वरूपस्य विचार· क्रियते बुधैः ॥ ८० ॥
निश्चितोऽय हि यत् स्वीयपक्षे संस्थापितेऽपि च ।
द्रव्यं स्वस्य स्वरूपंच नैव त्यजति कर्हिचित् ॥ ८१ ॥
प्रोक्तं तेन पुनः स्वीयपक्षस्थापनमात्रत ।
गुणपर्यायपुग् द्रव्य स्व-स्वरूप त्यजेन्न वा ॥ ८२ ॥
प्रोक्त सर्वैस्तमो द्रव्य तदस्ति सर्वसम्मतम् ।
पूज्योऽवादीत्तमो द्रव्य विद्वान्नाङ्गीकरोति क ॥ ८३ ॥
वार्त्तालापप्रसंगे तस्मिन् श्रीजिनचन्द्रसूरिणा ।
निश्चला नम्रता शान्तिः प्रदर्शिता यथा यथा ॥८४॥
प्रकम्पितशरीरस्क कोपातिरक्तलोचनः ।
पद्मचन्द्रोऽभिमानेनोन्मत्तोऽजनि तथा तथा ॥ ८५ ॥
तेनोक्तं च तमो द्रव्यमस्तीति न्यायरीतितः ।
यदाऽह स्थापयिष्ये कि मदग्रे स्थास्यसे तदा ॥ ८६ ॥
गुरु प्राह तमस्तीति योग्यता कस्य कस्य न ।
स्वतएव क्षणायाते ज्ञास्यथ राजपर्षदि ॥ ८७ ॥
पशुप्रायाटवीरेव रणभूरस्त्यवेत्य च ।
मां लघुवयस शक्ति नैंघनीयाधिका त्वया ॥ ८८ ॥
यूयं जानीथ सिंहस्य लघुदेहवतो रव ।
तीक्ष्ण निशम्य त्रस्यन्ति नगाकृतिगजा अपि ॥ ८९ ॥
तदाऽनयो द्वयो· सूर्यो श्रुत्वा वाद-विवादकम् ।
तत्र च कौतुकं द्रष्टुमनेकै मिलिता जना ॥ ९० ॥
लात्वा निजगुरोः पक्षं श्रावका पक्षयोर्द्वयोः ।
महान्त दर्शयामासुरहकारं परस्परम् ॥ ९१ ॥
अन्ते राजसभायां तच्छास्त्रार्थो निश्चितोऽजनि ।
तच्छास्त्रार्थ समारब्धो निर्णीतसमये पुनः ॥ ९२ ॥
तत्र श्रीचन्द्रसूरीशैर्नय-प्रमाण-युक्तिभिः ।
विद्वत्तया सम स्वीय पक्षसमर्थन कृतम् ॥ ९३ ॥
प्राप्तो निरुत्तरीभूत पद्मसूरि पराजयम् ।
तत श्रीगुरुवे सभ्यैर्जयपत्रं समर्पितम् ॥ ९४ ॥
विद्वज्जनैः समं पूज्यः स्वस्थानमाययौ गुरोः
समन्तादखिलस्थाने प्रस्फुटितो जयध्वनि· ॥९५॥
प्रशसाऽजनि सर्वत्र गुरोः सुविहिताध्वन ।
तन्निमित्त कृत श्राद्धैरष्टाह्निकोत्सवो मुदा ॥९६॥
तर्कहट्टाख्यया पद्मसूरिश्राद्धा जने पुन ।
गुरु श्राद्धागता ख्यातिं जयतिहट्टसंज्ञया ॥९७॥
तत पूज्या सुसार्थेन सम चेलुः क्रमाच्चलन् ।
चोरसिदान सद्ग्रामोसन्नमुत्तरितः सच ॥९८॥
म्लेच्छागमनमाकर्ण्य तत्र तस्मिन् क्षणेऽजनि ।
सर्व सार्थो भयभ्रान्तो नष्टुं लग्न इतस्तत ॥९९॥
सार्यं तथाविधं दृष्ट्वा स पृष्टो गुरुणां जगौ ।
भगवन् दृश्यतामत्रागच्छन्ति म्लेच्छसैनिकाः १००॥

समुच्छलति दिश्यस्यां धूलि कोलाहलोपि च।
तेषां सश्रूयते सावधानी भूयावदद्गुरुः ॥१०१॥
भो भव्या धैर्यमाधायैकत्र विधीयतां निजम्
शकट वृषभाश्चौष्ट्रा खरक्रियाणकादिकम् ॥१०२॥
श्रीजिनदत्तसूरीन्द्रो युष्मद्भद्रं करिष्यति।
तैरपि सुगुरूक्तं तत्सर्वं शीघ्रतया कृतम् ॥१०३॥
प्रच्छन्नीभूय सार्थो स्थात्ततश्चाकर्षि सूरिणा।
मन्त्रितनिजदण्डेन रेखा सार्थं समततः ॥१०४॥
सार्थजनैः स्वपार्श्वेन निर्यान्तो म्लेच्छ सैनिकाः।
अव्यवस्थिताः कृपाहीना. सहस्रशो विलोकिता ॥१०५॥
परन्तु सैनिकैर्म्लेच्छै सार्थो नादर्शि किन्तु ते।
प्राकारमेव पश्यन्तो दृष्टा दूरतर गता ॥१०६॥
सार्थजनोऽखिलो जातो निर्भयश्चलितस्तत।
सयोगिनी पुरासन्न किंचिद् ग्राम समागतः ॥१०७॥
ज्ञात्वासन्नागतान् सूरीन्नन्तु दिल्लीनिवासिनः।
ठक्कुर लोहट श्रेष्ठि महिचन्द्रकुलेन्दवः ॥१०८॥
सा पाल्हणादयश्राद्धाः सघमुख्या महर्द्धिका।
चेलू रथादिमारूढाः स्वपरिवार सयुता ॥१०९॥युग्मम्
महायुक्त्या महाभूत्या विनिर्यातिः पुराद्वहिः।
प्रासादस्थो जनान् दृष्ट्वा मदनपालभूपति ॥११०॥
अहमहमिका श्रेष्ठलोका अमो पुराद्वहि।
कथ यान्तीति पप्रच्छ स्वप्रधान नियोगिनः॥१११॥
युग्मम् ॥
तैरधिकारिभिः प्रोक्त राजन्नीतिविशारदा।
अत्यन्तसुन्दराकारा अनेकशक्तिसयुता ॥११२॥
आयान्ति गुरवोऽमीषां श्रीजिनचन्द्रसूरय।
ते तान् वन्दितु यान्ति भक्तिवासितमानसा ॥११३॥
युग्मम्॥
कुतुहलवशाद्राज्ञो मनसि गुरुदर्शनम्।
कर्तु जागरितोत्कण्ठा ज्ञापयत्सोधिकारिण ॥११४॥
आनीयतां च पट्टाश्व उद्घोष्यतां पुरे यथा।
प्रचरेयुर्मया सार्द्धं, राज्याधिकारिणो लघु ॥११५॥

राजाज्ञां प्राप्य चारुह्य तुरङ्गमान् सहस्रश।
नियोगिनोऽभवन्पृष्ठे, मदनपालभूपतेः ॥११६॥
श्राद्धेभ्य पूर्वमेवागात्ससैन्यौ भूपतिर्गुरो।
पार्श्वं सन्मानितः सार्थलोकेन वस्तुढौकनात् ॥११७॥
सूरिणाप्यर्पिता तस्मा अमृतमयदेशना।
देशनान्ते नृपेणाऽपि पृष्टा श्रीचन्द्रसूरयः ॥११८॥
पूज्याः स्थानात्कुतो जात वः शुभागमन गुरुः।
प्राह साम्प्रतमायामो रुद्रपल्लीपुराद्वयम् ॥११९॥
नृपेणावादि हे पूज्या उत्थीयतां प्रचल्यताम्।
भवद्भिश्चरणन्यासै पवित्रीक्रियतां पुरीम् ॥१२०॥
पूज्यै स्मृत्वा गुरो शिक्षां किमपि नैव जल्पितम्।
मौन दृष्ट्वा वदद्भूपः पूज्यैर्मौनं कथ धृतम् ॥१२१॥
किंवास्त्यस्मत्पुरे कोपि प्रतिपक्षी जनोऽथवा।
प्राशुकाहारपानीय-वस्त्रादिवस्तु दुर्लभः ॥१२२॥
कोस्ति हेतुर्यत पूज्यैस्त्यक्ता मार्गागत पुरम्।
गम्यतेऽन्यत्र पूज्यो वग् धर्मक्षेत्र भवत्पुरम् ॥१२३॥
तर्हि ममानुरोधेनोत्थीयतां योगिनीपुरे।
शीघ्र प्रचल्यतां तत्र सर्वभव्य भविष्यति ॥१२४॥
विश्वस्यता भवद्भिर्मत्पुरे कोपि करिष्यति।
नापमान पुनर्नोङ्गलीमप्युत्थापयिष्यति ॥१२५॥
पूज्यो राजानुरोधेन शिक्षामुल्लङ्घयन् गुरोः।
भवितव्यतयोदासीनतया तत्पुर ययौ ॥१२६॥
सूरीश्वरप्रवेशस्य महोत्सवेऽखिल पुरम्।
शृङ्गारित च सद्वस्त्रपताकातोरणादिभिः ॥१२७॥
प्रणेदुः सर्ववाद्यानि भट्टाद्या विरुदावलिम्।
लोका जगुर्जगुर्भद्रगीतानि सधवास्त्रिय ॥१२८॥
स्थाने स्थानेऽभवन्नृत्य स्थाने स्थाने स्त्रिय पुन।
स्वस्तिकादीनि चक्रुः सन्मुक्ताफलाक्षतादिभि ॥१२९॥
लक्षशो मनुजा पारसङ्कीर्णत्वेन भूपतिः।
अचालीत्सूरिसेवायां सार्थे प्रमुदितो भृशम् ॥१३०॥

प्रवेशोत्सवदृश्योयं लोकहृदयचक्षुषाम् ।
सम्पूर्णानन्ददायीचातभूत्पूर्वो भवत्पुरे ॥१३१॥
सूरिराजे समायाते योगिनीपुरवासिषु ।
नवजीवनसञ्चारो लग्नो भवितुमद्भुत. ॥१३२॥
अनेकलोकसन्तप्ता आत्मनः शान्तिलाभकम् ।
लातुं लग्नाश्च सूरीशदेशनामृतधारया ॥१३३॥
मदनपालभूपोऽपि, दर्शनार्थमनेकशः ।
आगत्य सूरिराजोपदेशलाभं गृहीतवान् ॥१३४॥
द्वितीयाचन्द्रवद्राज्ञो धर्मरागो दिने दिने ।
ववृधे प्रत्यह धर्मभावना च जनेष्वपि ॥१३५॥
स्वान्यकल्याणनिष्ठस्य तिष्ठतो योगिनीपुरे ।
श्रीजिनचन्द्रसूरेश्च कियन्तो वासरा गता ॥१३६॥
एकस्मिन्वासरे दृष्ट्वा धनाभावेन दुर्बलम् ।
स्वभक्तं कुलचन्द्राख्य श्राद्धं दयालुसूरिणा ॥१३७॥
लिखितमष्टगन्धेन यन्त्र वितीर्य जल्पितम् ।
मुष्टीप्रमाणवासेन पूजनीय त्वानिशम् ॥१३८॥
यन्त्रपट्टस्य निर्माल्य-वासक्षेपञ्च मिश्रित ।
पारदादिप्रयोगेण सौवर्णं च भविष्यति ॥१३९॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥
कुलचन्द्रोपि पूज्योक्त-विध्यनुसारतोऽनिशम् ।
कुर्वाणस्तद्विधिं स्वल्पकालेन धनवानभूत् ॥१४०॥
एकस्मिन्वासरे पूज्या दिल्ल्युत्तरीयद्वारतः
बहिर्भूमि च गच्छन्तो भवन्स्वमुनिभि समम् ॥१४१॥
नवरान्यन्तिमाश्विन-धवलनवमीदिने ।
तदभूद्यत्र मार्यन्तेऽनेके जीवा नराधमै. ॥१४२॥
सूरिणा गच्छता मार्गे मांसार्थं कलहं मिथ. ।
कुर्वाणो द्वौ सुरौ दृष्टौ मिथ्यात्वमतिमोहितौ ॥१४३॥
दयार्द्रहृदयाचार्यैरेकोमध्यात्तयोर्द्वयो. ।
अतिबलाभिधो,देवो मिथ्यात्वी प्रतिबोधित ॥१४४॥
सोऽपि नूत्वोपशान्तौवम् भवद्देशनया मया ।
मांसवलि. परित्यक्तो दादगुरुसहायक. ॥१४५॥
परन्त्वनुग्रहं कृत्वा निवासार्थं प्रदर्श्यताम् ।
स्थानं मे निवसन् यत्र त्वदाज्ञां पालयाम्यहम् ॥१४६॥
पार्श्वनाथविधिचैत्ये द्वारसमीपवर्त्तिनि ।
गत्वा त्व दक्षिणस्तम्भे वसेति गुरुणाऽकथि ॥१४७॥
एवं देय समाश्वास्योपाश्रयमेत्य सूरिणा ।
लोहडादिस्वभक्तेभ्य श्राद्धेभ्योऽश्राविसा कथा ॥१४८॥
पुन पार्श्वेश चैत्यस्य स्तम्भे च दक्षिण स्थिते ।
अधिष्ठातृसुरा कृत्युत्कीर्णार्थं सूचना कृता ॥१४९॥
तथैवाकारि तैं श्राद्धैर्गुरुणा स प्रतिष्ठित. ।
अतिविस्तरतस्तस्यातिवलाख्या कृता पुन. ॥१५०॥
श्राद्धास्तद्पूजन चक्रु स्वादिष्टखाद्यवस्तुभि. ।
स सुर पूरयामास तन्मन कामनां सदा ॥१५१॥
एव सर्वत्र कुर्वाणा जैनधर्मप्रभावनाम् ।
श्रीजिनचन्द्रसूरीशा ललाटमणिधारका. ॥१५२॥
निजायुर्निकट ज्ञात्वा गुणाक्षिरविवत्सरे ।
द्वितीयभाद्रपत्कृष्णचतुर्दशीतिथौ पुनः ॥१५३॥
चतुर्विधेन संघेन सार्द्धं विधाय क्षामणाम् ।
प्रान्ते चानशन कृत्वा समाधिना दिवं ययु ॥१५४॥
मृत्यु पट्टावलिष्वेषां बभूव योगिनीच्छलात् ।
प्रान्ते भविष्यवाग्युक्ता श्राद्धाध्यक्ष च सूरिणा ॥१५५॥
अस्माक देहसस्कारं यावद्दूरं करिष्यथ ।
सविभूतिपुर तावद् दूरं वर्द्धिष्यते खलु ॥१५६॥
तत श्राद्धा महायुक्त्याऽनेकमण्डपराजिते
पूत संस्थाप्य निर्याणविमाने सुगुरोस्तनुम् ॥१५७॥
पुराद्दूरतरं नीत्वा सद्वस्तूच्छालनादिभि. ।
चक्रु रन्तक्रिया सारचन्दनादिकवस्तुभि. ॥१५८॥
तत्स्थानं विद्यतेऽद्यापि "वड़ेदादाजी" सज्ञया ।
रा साधुरथ कुर्वाणो-न्तिमपवित्रदर्शनम् ॥१५९॥
अधीरमानस कुर्वन्नश्रुपातं शुचाकुलः ।
गुणचन्द्रगणीसूरेरित्थं चकार सत्तवम् ॥१६०॥ युग्मम्॥

चातुर्वर्ण्यमिदं मुदा प्रययते तद्रूपमालोकितुं ।
मातृक्षाश्च महर्षयस्तव वच कर्तु सदैवोद्यता ।
शक्रोऽपि स्वयमेव देवसहितो युष्मत्प्रभामीहते
तत्किं श्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरो स्वर्गं प्रति प्रस्थितः । १॥
साहित्य च निरर्थक समभवन्निर्लक्षण लक्षणम्
मन्त्रैर्मन्त्रपरैरभूयत तथा कैवल्यमेवाश्रितम्
कैवल्या जिनचन्द्रसूरिवर ते स्वर्गाधिरोहे हहा !।
सिद्धान्तः सुकरिष्यते किमपि यत्तन्नैव जानीमहे॥२॥
प्रमाणिकैराधुनिकैर्विधेयः प्रमाणमार्ग स्फुटमप्रमाण ।
हहा ! महाकष्टमुपस्थितं ते स्वर्गाधिरोहे जिनचन्द्रसूरे
॥३॥

पूज्यस्नेहवशाचक्रुरन्येपि माधव पुन ।
मिथःपराङ्मुखीभूयाश्रुपात शोकविह्वलाः ॥१६१॥
उपस्थिता पुनः श्राद्धा अपि वस्त्राञ्चलेन च ।
समाच्छाद्य स्वनेत्राणि चक्रुर्गद्गदरोदनम् ॥ ६२॥
समयेऽस्मिन् सामायात शोकसिन्धुः समततः ।
कस्य कापि कथा नाभूत्सुगुरुविरह विना ॥१६३॥
सुनिश्चितमिदं दृश्यमपरे दर्शका अपि ।
नेष्ट दृष्टवाऽभवन् रोद्धुं निजहृदयमक्षमाः ॥१६४॥
गुणचन्द्रगणी दृष्ट्वेमामसमजसां दशाम् ।
कियन्त समय पश्चाद्धैर्यं धृत्वा मुनीनवग् ॥१६५॥
भवन्त स्वात्मनः शान्ति सत्वशालिसुसाधव ।
यच्छन्तु गमित रत्न महार्घं दुर्लभ च यत् ॥१६६॥
लक्षोपायविधानेऽपि, हस्ते तन्न चटिष्यति ।
प्रान्ते मे गुरुणाऽवश्यकर्त्तव्यसूचन कृतम् ॥१६७॥
करिष्याम्येवमेवाह तेषामाज्ञानुसारतः ।
सर्वेषां भवतां येन सुसन्तोषो भविष्यति ॥१६८॥
अधुना चल्यता मागम्यतां मया समवरैः
भवद्भिर्मुनिभिः शीघ्र सर्व भव्य भविष्यति ॥१६९॥
क्षणेऽस्मिन् दाहसस्कार सत्काखिलक्रियां गणी ।
समाप्योपाश्रय विद्वान् मुनिभि सममागत ॥१७०॥

तत्र स्थित्वा गणी कञ्चित्काल ततो विहृत्य च ।
चतुर्विधेन सघेन सार्द्धं बब्बेरक ययौ ॥१७१॥
श्रीजिनचन्द्रसूरीणामाज्ञाया अनुसारतः ।
गुणचन्द्रगणी तत्र सर्वमान्यो महोत्सवात् ॥१७२॥
श्रीजिनदत्तसूरीणां वृद्धशिष्येण धीमता ।
दापयित्वा पद सूरेः श्रीजयदेवसूरिणा ॥१७३॥
श्रीजिनपतिसूरीश इत्यभिधानपूर्वकम् ।
स्थापयामास तत्पट्टे नरपतिं मुनीश्वरम् ॥१७४॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥

नूतनसूरिपितृव्य-मानदेवो ऽकरोन्महे ।
सार्द्धमत्रत्यसघेन, सहस्ररौप्यक व्ययम् ॥१७५॥
देशान्तरीयसघेना-पि मिलित्वा महोत्सवे ।
बहुद्रव्यव्यय कृत्वा स्वजन्म सफलीकृतम् ॥१७६॥
क्षणेऽस्मिन् वाचनाचार्य-जिनभद्रोप्यलकृतः ।
श्रीजिनचन्द्रसूरीश-शिष्यः सूरिपदेन हि ॥१७७॥
पाठकजिनपालेन कृताया अनुसारत ।
गुर्वावलेर्मयाऽलेखि, चरित्र मणिधारिणाम् ॥१७८॥
कियानन्योपि वृत्तान्त पट्टावलिषु दृश्यते ।
अन्यासु चन्द्रसूरीणां स्वल्प सोप्यत्र कथ्यते ॥१७९॥
चन्द्रसूरिललाटेऽभून्मणिश्च तेन हेतुना ।
प्रसिद्धिस्तस्य लोकेऽभून्मणिधार्यभिधानतः ॥१८०॥
प्रोक्त एतस्य सम्बन्ध इत्थं पट्टावलौ मणे ।
निजान्तसमयेऽवादि श्राद्धेभ्यश्चन्द्रसूरिणा ॥१८१॥
युष्माभिरग्निसस्कार-समयात्पूर्वमेव हि ।
स्थापनीय च मद्देहनिकषा दुग्धभाजनम् ॥१८२॥
ततो मणिः स निर्गत्यायास्यति दुग्धभाजने ।
सुगुरुविरहात् श्राद्धैस्तत्करण तु विस्मृतम् ॥१८३॥
भवितव्यवशाद्योगि-हस्ते स चटितो मणिः ।
पूर्वोक्तविधिना लात्वा तं योगी प्रययौ मणिम् ॥१८४॥
प्रतिष्ठाप्यार्हतोमूर्तिं स्तम्भितां तेन योगिना ।
अन्यदा योगितः प्राप्तः स मणि. पतिसूरीणा ॥१८५॥

श्रीजिनचन्द्रसूरीशा ललाटमणिधारकाः।
शासनोद्योतका आसन् महाप्रभावशालिनः ॥१८६॥
अतः खरतरे गच्छे चतुर्थपट्टधारिणाम्।
तन्नाम स्थापनायाश्च चलितास्मात्परम्परा ॥१८७॥
महत्तीयाण जातिश्चास्थापि श्रीचन्द्रसूरिणा।
प्रतिबोध्योपदेशेन श्रीमदार्हतशासने ॥१८८॥
भाषायां महत्तीयाण मंत्रिदलीयः संस्कृते।
इत्युल्लेखः समेत्यस्या जातेर्बाहुल्यतः पुन ॥१८९॥
संस्कृतादिशिलालेख-कथनस्यानुसारत।
अस्या उत्पत्तिरत्यन्त-प्राचीनास्ति च तद्यथा ॥१९०॥
श्रीऋषभप्रभो पुत्र-भरतचक्रवर्त्तिनः।
श्रीदलमन्त्र्यभून्मुख्यो मन्त्रिगुणसमन्वितः ॥१९१॥
मन्त्रिदलीयनाम्ना तत्सन्ततिरप्यभूज्जने।
प्रसिद्धा मन्त्रिशब्दस्यापभ्रंशमहताऽजनि ॥१९२॥
अतोऽस्य वंशजानां हि जातिनामापि भूतले।
महत्तीयाण इत्यासीदुक्तशब्दानुसारत ॥१९३॥
कियद्भिर्व्यक्तिभिर्यस्य वंशपरम्परागतैः
पूर्वदेशीयतीर्थानां जीर्णोद्धाराणि भूरिश ॥१९४॥

नूतनचैत्यचैत्यानि, जिनधर्मप्रभावनाम्।
विधायमहती सेवा कृताश्शासनस्य च ॥१९५॥
साम्प्रतं पूर्वदेशीय-जैनतीर्थानि सन्ति यत्।
येषां द्रव्यात्मभोगस्य सुपरिणतिरस्ति हि ॥१९६॥
अस्या जातेः समीचीना सख्यात्रिशतवत्सरात्।
प्रागभूत् हीयमाना सा, नामशेषाऽधुनाऽभवत् ॥१९७॥
श्रीनाहटागोत्रिभवाग रेन्दुसद्द्वयभ पार्श्वय पुस्तकाच्च।
द्रव्य मया श्रीजिनचन्द्रसूरेरिद चरित्रं मणिधारकस्य
॥१९८॥
इदं समाप्त सुगुरु प्रसादात्सवद्गजाङ्काङ्कशशाङ्कवर्षे।
वैशाखशुक्लस्य तृतीयकायांतिथौ च भौमे पुरिमोहम-
ह्याम् ॥१९९॥
शुद्धे गणे खरतरे मुनिमोहनाख्य-
तच्छिष्यराजमुनितज्जिनरत्नसूरेः।
ज्ञानक्रियागुणभृतो लघुबन्धुनोपा-
ध्यायेन लब्धिमुनिना रचित चरित्रम् ॥२००॥
महेन्द्रसूर्यर्पतिशुद्धदीक्षः श्रीमोहनाख्य सुमुनिस्ततश्च।
श्रीमद्यश'सूरिवररतत श्रीजिनर्द्धिसूरीशगःरिराज्ये
॥२०१॥ युग्मम्॥

॥ इति श्रीमणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वरचरित्र समाप्तम् ॥ सवत् १९९८ वैशाखशुक्लतृतीयायां मङ्गले स्थानानगरे लब्धिमुनिना उल्लेखीय प्रतिः इति ॥

[उपर्युक्त मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी का जीवन चरित्र हमारी 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' पुस्तक के पद्यबद्ध छपने है। इससे २८ वर्ष पूर्व पूज्य उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी महाराज ने स० १९७० मे श्रीरत्नमुनिजी महाराज के सहाय्य से खरतर गच्छ पट्टावली सस्कृत मे १७४५ श्लोको मे निर्माण की थी। प्रस्तुत पट्टावली की ७४ पत्र व २०७५ ग्रंथ संख्या वाली उपाध्यायजी महाराज के स्वय महीदपुर मे लिखी हुई प्रति हमारे 'अभय जैन ग्रन्थालय' बीकानेर मे है जिसमे मणिधारी जी-का जीवनवृत्त श्लोक ६६७ से पद्यांक ९६७ पर्यन्त है। प्रस्तुत चरित्र मे मणिधारीजी के प्रतिबोधित जाति-गोत्रो का इतिहास भी है। हम अपने 'मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि' के द्वितीय सस्करण मे महाजन वंश मुक्तावली और जैन सम्प्रदाय शिक्षा के आधार से इस विषय मे प्रकाशित कर चुके है अत पट्टावली के श्लोक यहां नहीं दिये जा रहे है।

—सम्पादक]

दादाजी

आज भारतवर्ष मे कौन ऐसा जैनमतावलम्बी होगा जो कि पूज्य दादा के नाम से परिचित न हो। पूज्यदादा का नाम जैनमतावलम्बी बच्चे-बच्चे तक की जिह्वा पर नर्तन करता है। केवल जैनमतावलम्बी ही नहीं जैनेतर भी अधिकांश व्यक्ति दादाके नाम से पूर्ण परिचित हैं, दादा ये दो शब्द उसके कर्णकुहरों में प्रवेश पा चुके है और नहीं तो देश के कोने-कोने मे प्रत्येक नगरों व कस्बों में 'दादाबाडी' नाम से प्रसिद्ध स्थानों ने इस शब्द से प्रत्येक नागरिक को परिचित बना दिया है। बहुत से नागरिक चाहे वे जैनी हो या जैनेतर, प्रात. साय इन दादावाडियों में दादा की वन्दना के लिए, आराधना के लिये या स्वास्थ्यलाभार्थ भ्रमण के लिये ही सही, अवश्य जाया करते हैं। सभी व्यक्तियो को उन स्थानों मे जाने से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे एक अलौकिक शान्ति का अनुभव होता है। वह और कुछ नहीं किन्तु पूज्य दादा के व्यक्तित्व का परोक्ष प्रभाव ही है।

इतना होते हुए भी जैनेतर व्यक्तियो मे अधिकांश व्यक्ति दादा शब्द के अभिधेय उस अलौकिक प्रभावशाली महापुरुष तथा उसके अद्वितीय महागुणों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं वे केवल इतना ही समझते है कि 'दादा' जैन समाज में कोई प्रभावशाली महापुरुष हुआ है जिसके नाम पर इन दादावाडियों की स्थापना हुई है और उन्ही की वन्दना के लिए प्रतिदिन हजार व्यक्ति इस जगह जाया करते है इतना ही नही कतिपय जैनी भी उनके वास्तविक व्यक्तित्व व गुणों से अपरिचित ही हैं।

वस्तुत 'दादा' इस द्व्यक्षर शब्द से दादा इस सामान्य अर्थ की ही प्रतीति नही होती किन्तु इसके साथ ही साथ अनेक अन्य अर्थों की भी प्रतीति होती है। दादा शब्द के उच्चारण करने पर जिन-शासन को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाले, समय-प्रभाव से जैनसम्प्रदाय में समागत कुरीतियों, कदाचारो, कदाग्रहों व शिथिलाचारों का अपनी दृढ विवेकमयी व कान्तिमयी विचारधारा से समूल उच्छेद करने वाले, सिन्धु, गुजरात व मरुस्थल मे सर्वाधिक जिन-शासन का प्रचार व प्रसार करने वाले, युगप्रधान आचार्यों मे सर्वातिशायी चमत्कार व प्रभाव से अलङ्कृत अलौकिक महापुरुष अर्थ की प्रतीति होती है। दादाने उस चमत्कार का प्रदर्शन किया जिससे आकृष्ट होकर चैत्यवासियों तक ने सुविहित वसतिवास को स्वीकार किया, राजाओं, महाराजाओ, योगिनियो व देवो तक ने उनके आगे अपना मस्तक झुकाया, सर्वत्र जैनधर्म का अत्यधिक प्रचार व प्रसार हुआ, बडे-बडे प्रतिपक्षी विद्वद्गजेन्द्रों का मद उनके प्रखर व प्रकाण्ड पाण्डित्य से शान्त हुआ, लाखों से अधिक व्यक्ति इच्छा से जिनशासनानुयायी बने।

उनने अपने जीवन-काल मे ही अनेक चमत्कारो का प्रदर्शन किया यह बात नही, आज भी उनके अनेक प्रकार के चमत्कार लोगों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत किये जाते है। जैन व जैनेतर जनता के जीवन मे दादा ओतप्रोत हैं। वे किसी का व्यन्तरोपद्रव दूर करते है तो किसी का योगिनी उपद्रव। किसी के भूतोपद्रव को वे शान्ति करते हैं तो किसी के महामारी जन्य उपद्रव की। किसी को घोर काननो मे मार्ग-प्रदर्शन करते है तो किसी के समुद्र के तूफान से घिरे हुए जहाज को समुद्र से पार लगाते हैं। किसी को आपत्ति का निराकरण करते हैं तो किसी का मनोवाञ्छित पूर्ण करते है। किसी को जाग्रत मे, तो किसी को स्वप्न मे किसी को प्रत्यक्ष रूप में तो किसी को अप्रत्यक्ष रूप मे वे दर्शन अब भी देते हैं। पथ-भ्रष्ट का वे पथ-प्रदर्शन करते है और उन्मार्गप्रवृत्त को सन्मार्ग पर लाते है। ये ही सब नानाविध चमत्कार है जिनके कारण आज सब जगह दादा का नाम सुनाई देता हैं, सब जगह उनके स्थान बनाये जाते हैं तथा उनकी वन्दनायें की जाती है। धन, पद, सन्तान व परमपद को प्राप्ति के लिये भी लोग उनकी उपासना करते है और अपना अभीष्ट फलशीघ्र ही प्राप्त करते हैं।

[स्वामी सुरजनदास के दादाजी और उनका साहित्य से]

महोपाध्याय जयसागर

[अगरचन्द नाहटा]

खरतर गच्छ में आचार्यो के अतिरिक्त बहुत से ऐसे प्रभावशाली विद्वान हुए है जिन्होंने अनके स्थानों में विचर कर अच्छा धर्म प्रचार किया और साहित्य-निर्माण मे भी निरन्तर लगे रहे। पट्टावलियों मे आचार्य-परम्परा का ही विवरण रहता है इसलिए ऐसे विशिष्ट विद्वानो के सम्बन्ध मे भी प्राय आवश्यक जानकारी हमें नहीं मिल पाती। मुनि जिनविजयजी ने सन् १९१६ मे उपाध्याय जयसागर की विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक महत्वपूर्ण रचना सुसम्पादित कर जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित करवायी थी। इसके प्रारभ में उन्होंने बहुत महत्वपूण एवं विस्तृत प्रस्तावना ९६ पृष्ठों में लिखी थी, इस मे जयसागर उपाध्याय के संबन्ध मे लिखा था कि 'इनके जन्म स्थान और माता पितादि के विपय मे कुछ भी वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हुआ, होने की विशेप संभावना भी नहीं है। विशेषकर इन बातों का उल्लेख पट्टावली मे हुआ करता है परन्तु उस में भी केवल गच्छपति आचार्य ही के सम्बन्ध की बातें लिखी जाने की प्रथा होने से इतर ऐसे व्यक्तियों का विशेष हाल नहीं मिल सकता। ऐसे व्यक्तियों के गुर्वादि एव समयादि का जो कुछ थोड़ा बहुत पता लगता है वह केवल उनके निजके अथवा शिष्यादि के बनाये हुए ग्रन्थों वगैरह की प्रशस्तियों का प्रताप है।"

सौभाग्य से हमारे सग्रह में एक ऐसा प्राचीन पत्र मिला जिसमें उ० जयसागरजी सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें लिखी हुई थी अतः हमने उसका आवश्यक अश अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह' पृ० ४०० में प्रकाशित कर दिया था तथा उनका ऐतिहासिक सार, उनकी रचनाओं की नामावली सह प्रारम्भ मे दे दिया था। पर उसी पत्र के नीचे इनके वंश का विवरण भी लिखा हुआ था, जिसे नही दिया जा सका। उसे शोधपत्रिका भाग ९ अक १ मे प्रकाशित हमारे 'महोपाध्याय जयसागर और उनकी रचनाएँ' नामक लेख मे छपवा दिया गया था।

सं० १९९४ में मुनि जयन्तविजयजी का 'श्री अर्बुद प्राचीन जैन लेख सदोह' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, उसमें आबू के खरतरवसही या चौमुखजी के प्रतिमा लेख भी प्रकाशित हुए, इनमे से लेखाङ्क ४४९-५६-५७ मे जयसागर महोपाध्याय के मन्दिर निर्माता दरडा गोत्रीय सघपति मण्डलिक के भ्राता होने का उलेख प्रकाशित हुआ। मुनि जयन्तविजयजी ने आबू की खरतरवसही के लेखों का गुजराती अनुवाद प्रकाशित करते हुए सघपति मन्डलिक का शिलालेखो में प्राप्त वश वृक्ष भी दे दिया था। उसमें उन्होने लिखा था कि सघवी मन्डलिक के ६ भाइयों में से बडे भाई साह देल्हा और छोटे भाई साह महीपति के स्त्री पुत्र परिवार के नाम किसी प्रतिमा लेख मे नहीं मिले। अत छोटे भाई महीपति की अल्प वय मे मृत्यु हो गई होगी और बडे भाई देल्हा ने छोटी उम्र में ही दीक्षा ले ली होगी। ऐसा लगता है कि दीक्षित अवस्था में इनका नाम जयसागरजी रखा गया होगा। पीछे से योग्यता प्राप्त होने पर वे महोपाध्याय हो गए। इसी लिए संघवी मण्डलिक के कई लेखों में 'श्री जयसागर महोपाध्याय बान्धवेन' लिखा मिलता है। अर्थात् महोपाध्याय जयसागरजी सघवी मण्डलिक के ससार-पक्ष में भ्राता होते थे।

वास्तव मे मुनि श्री जयन्तविजयजी के उपर्युक्त दोनों अनुमान सही नहीं है। पूज्य गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी ने हमे उ० जयसागरजी के रचित स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र की

एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति नकल करके भेजी थी, इससे स्पष्ट है कि सघपति मण्डलिक के भ्राता सघपति महीपति ने स० १५०६ में यह प्रति लिखवायी थी और इस प्रशस्ति मे महीपति की पत्नी पुत्रों और पुत्रवधु के नाम प्राप्त है, अत. महीपति की अल्पायु मे मृत्यु हो गई—यह अनुमान जो आवू के प्रतिमा लेखो में महीपति के स्त्रीपुत्रों के नाम न मिलने से किया गया था, प्राप्त प्रशस्ति से असिद्ध हो जाता है। इसी तरह देल्हा के भी स्त्रीपुत्रादि का प्रतिमा लेखों मे नाम न मिलने से उन्होंने अल्पायु मे दीक्षा ले ली होगी व उनका नाम जयसागर रखा गया होगा—यह अनुमान भी प्राप्त प्रशस्ति में देल्हा के पुत्र कीहट का नाम मिल जाने से गलत सिद्ध हो जाता है। सव से महत्वपूर्ण वात इस प्रशस्ति से यह मालूम होती है कि हरिपाल के पुत्र आसिग या आसराज के पुत्रो मे से तृतीय पुत्र जिनदत्त ने बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण करली थी। आठवें श्लोक मे इसका स्पष्ट उल्लेख होने से यह निश्चित हो जाता है कि जयसागरजी दरडा गोत्रीय आसराज के पुत्र थे और उनका 'जिनदत्त' नाम था, तथा बाल्यावस्था मे दीक्षा ग्रहण कर ली थी। प्रतिमा लेखों में हरिपाल के पूर्वजों के नाम नहीं मिलते लेकिन प्रशस्ति में पद्मसिंह-खीमसिंह ये दो नाम पूर्वजों के और मिल जाते हैं तथा वशजों के भी कई अज्ञातनाम प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही साथ इस वश के पुरुषो के कतिपय अन्य सुकृत्यों का भी उल्लेखनीय विवरण मिल जाता है। यथा—

सघपति आसा धर्मशाला, तीर्थयात्रा, उपाध्यायपद स्थापन और स्वधर्मी-वात्सल्यादि में द्रव्य का सद्व्ययकर कृतार्थ हुए थे। स० १४८७ मे उ०जयसागरजी के सान्निध्य में मण्डलिक ने शत्रुञ्जय-गिरनार महातीर्थों की सघ सहित यात्रा की थी। एव दूसरी बार स० १५०३ में भी उभय-तीर्थों की यात्रा की थी। मण्डलिक आदि ने आवू पर चौमुख प्रासाद बनाया था, इसी प्रकार गिरनार तीर्थ के वीर जिनालय में देवकुलिका निर्माण करवायी थी। प्रस्तुत प्रशस्ति वा० जयसागर की रचित है ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने से नीचे दी जा रही है।

स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र-प्रशस्ति (१)

स्वस्ति सर्व्वास्तिमन्मुख्य, ऊकेश ज्ञातिमण्डन ॥
पद्मसिंह पुरा जज्ञे, खीमसिंहस्तत क्रमात् ॥१॥
खीमणिर्दयिता तस्य हरिपालस्तदङ्गभू ॥
निविष्ट यन्मन पूष्णि श्राद्धधर्म्ममय मह ॥२॥
दसाजकान्हडौ भोज वीरभावासिगस्तथा ॥
बड्याकश्च सर्वेऽपि षडमी हरिपालजा ॥३॥
भारमल्लो भावदेवो, भीमदेवस्तृतीयक ॥
कान्हडस्य त्रयोऽप्येते सुताः सुजनताश्रिता ॥४॥
छाडादय पुन पञ्च नन्दना भोजसम्भवाः ।
आसीद्वीरमसम्भूतो—नगराजः सुताधिकः ॥ ५॥
प्रथमराज इत्यस्ति वडुयाङ्गरुहो महान् ॥
तेषु श्रीमानुदारश्च, साध्वासाको व्यशिष्यत ॥६॥
तत्प्रिया प्रियधर्म्मासो - स्सोषूरित्यमलाशया ॥
तयोरष्टसुतेष्वाद्य: पाल्ह प्रल्हादभून्मना ॥७॥
द्वितीयो मण्डनो नाम कुटुम्बजनपूजित ॥
तृतीयो जिनदत्तश्च यो वाल्येऽप्यग्रहीद्व्रतम् ॥८॥
चतुर्थ किल देल्हाख्य भूटाक पञ्चम पुन ॥
मण्डलाधिपवन्मान्य: षष्ठो मण्डलिकस्तथा ॥
सप्तमः साधुमालाको —ऽष्टमः साधुमहीपतिः ॥९॥
गोविन्दरतनाह्र्प — राजा पाल्हाङ्गजास्त्रय ॥
कीहटो देल्हजन्माऽऽस्ते तस्याप्यस्त्यम्बडोङ्गजः ॥१०॥
श्रीपालो भीमसिंहश्च, द्वाविमौ ऊण्टजातकौ ॥
साजणः सत्यनाऽस्ते, पुत्रो मण्डलिकस्य तु ॥११॥
पोमसिंहो लष्म(क्ष्म)सिंहो-रणमल्लश्च माल्हजा. ॥
सुस्थिर स्थावरो नाम, महीपत्यङ्गसम्भव ॥१२॥
तद्भार्या पूनलि पुण्य-वती शीलवती सती ॥
तनयौ सुनयौ तस्या देवचन्द्र-हचाभिधौ ॥ ३॥
कलत्रं देवचन्द्रस्य, कोबाई नामतः शुभा ॥
महीपतिपरीवार — श्चिर जयतु भूतले ॥१४॥
इत्यादि सन्ततिर्भूयस्यासाकस्योज्ज्वले कुले ।
उत्तरोत्तर सत्कर्म्म-निरतास्ते निरन्तरम् ॥१५॥
धर्म्मशाला तीर्थयात्रो-पाध्याय स्थापनादिषु ।
सार्धर्म्मिकेषु चासाको घन निन्ये कृतार्थताम् ॥१६॥

अपित्र-सवत् १४८७ वर्षे सहोदरभावस्थितोपाध्याय-

श्रीजयसागरगणिसान्निव्यमासाद्य

महाविभूत्या च महामहिम्ना, यात्रां महातीर्थ युगेऽप्यकार्षीत्।

सङ्घेन युक्तो महता महिष्ठ सङ्घेशता मण्डलिक प्रपन्न ॥१७॥

सवत् १५०३ वर्षे तत्सान्निध्यादेव—

लोकोत्तरा स्फातिरुदारता च, लोकोत्तर सङ्घजनर्चनञ्च।

शत्रुञ्जये रैवतके च यात्रा कृताद्भुता मण्डलिकेन भूयः ॥१८॥

सम मण्डलिकेनैव, मालाकश्च महीपतिः।

तदा सङ्घपती जातौ प्रिया-मण्डलिकस्य तु ॥१९॥

रोहिणी नामत ख्याता मांजुर्मालाङ्गना पुन ।

मणकाई महोत्साहा, महीपतिसधर्म्मिणी ॥२०॥

आसदन् सङ्घपत्नीत्वमेतास्तिस्रः कुलस्त्रिय ।

प्रायेण हि पुरन्ध्रीणां, महत्त्व पुरुषाश्रितम् ॥२१॥

अर्बुदाद्रिशिरस्युच्चै-स्ते प्रासादं चतुर्मुखम्।

भ्रातर कारयन्ति स्म, त्रयो मण्डलिकादयः ॥२२॥

इतश्च—

चान्द्रे कुले श्रीजिनचन्द्रसूरि सविज्ञभावोऽभयदेवसूरि ।

सद्वल्लभ श्रीजिनवल्लभोऽपि युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥२३॥

भाग्याद्भुतः श्रीजिनचन्द्रसूरिः क्रियाकठोरो जिनपत्तिसूरिः।

जिनेश्वरः सूरिरुदारवृत्तो, जिनप्रबोधो दुरितान्निवृत्त ॥२४॥

प्रभावक श्रीजिनचन्द्रसूरिः सूरिर्जिनादिः कुशलान्तशब्द ।

पद्मानिधि. श्रजिनपद्मसूरि-लब्धेर्निधान जिनलब्धिसूरि ॥२५॥

संवेगिकः श्रीजिनचन्द्रसूरिर्जिनोदयःसूरिरभूदभूरिः।

ततः पर श्रीजिनराजसूरि सौभाग्यसीमा श्रुतसम्पदोक ॥२६॥

तदास्पदव्योमतुषाररोचि विरोचते श्रीजिनभद्रसूरि ।

तस्योपदेशामृतपानतुष्ट स्तेषु त्रिषु भातृषु पुण्य पुष्टः ॥२७॥

श्रीरैवते वीरजिनेन्द्रचैत्ये, विधाप्य सद्देवकुलीं कुलीनः।

महीपतिः सङ्घपतिः सुवर्णा-क्षरैर्मुदा लेखयतिस्म कल्पम् ॥

२८॥ युग्मम्

सवत् १५०६ वर्षे—

श्रीजयसागर वाचक विनिर्म्मिता सदसि वाच्यमानाऽसौ ।

कल्पप्रशस्तिरमला नन्दत्वानन्दकल्पलता ॥२९॥

इति श्री खरतर गुरुभक्त सङ्घपति मण्डलिक भ्रातृ सङ्घपति सा० महीपति कल्पपुस्तक प्रशस्ति
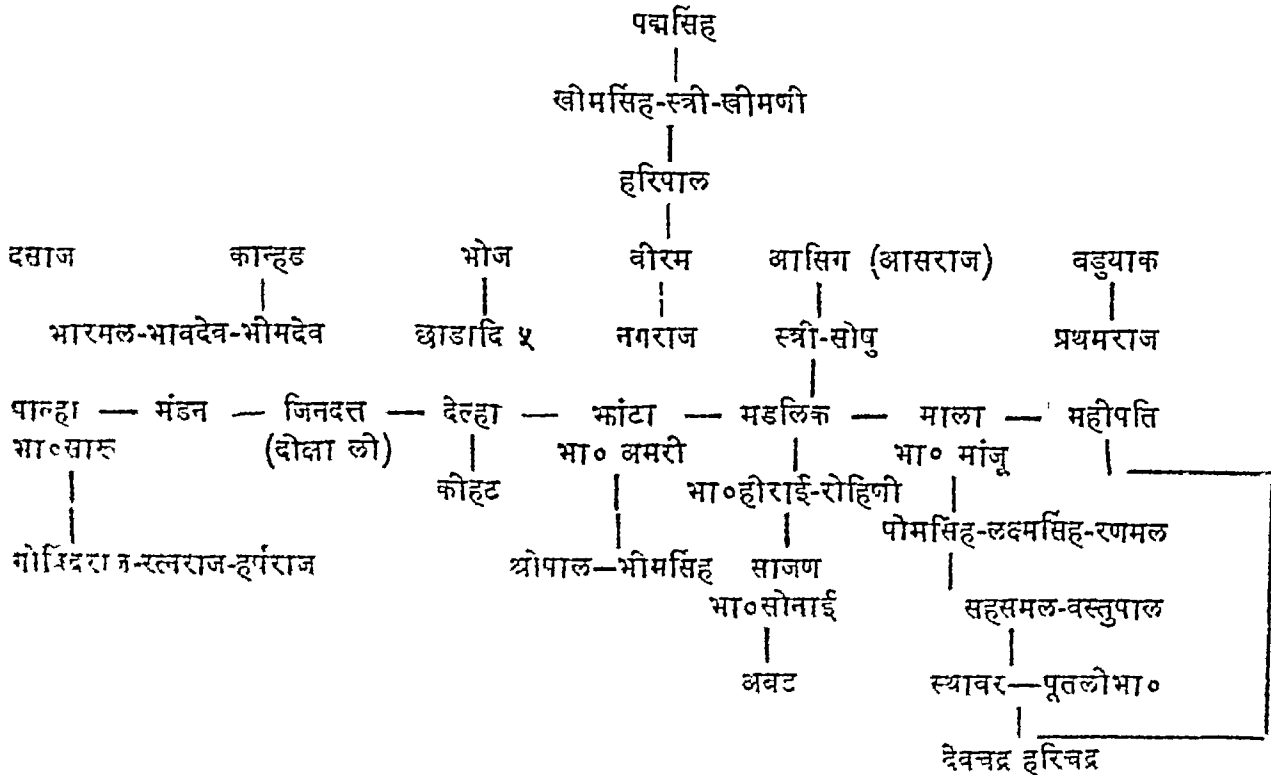
स० १५११ की प्रशस्ति मे गणपति, उदयराज मेघराज के नाम अधिक हैं।

उपाध्याय जयसागरजी की विज्ञप्ति-त्रिवेणी द्वारा अनेक नये तथ्य और जैन इतिहास तथा अप्रसिद्ध तीर्थ सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। मुनि जिनविजयजी ने लिखा है कि विज्ञप्ति त्रिवेणी रूप पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इसमें लिखा गया वृत्तांत मनोरजक होकर जैन समाज की तत्कालीन परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय भारत के उन (सिन्धु पजाब) प्रदेशो में भी जैन धर्म का कैसा अच्छा प्रचार व सत्कार था। इन प्रदेशों में हजारो जैन वसते थे व सैकडों जिनालय मौजूद थे जिनमें का आज एक भी विद्यमान नही। जिन मरुकोट, गोपस्थल, नन्दनवनपुर और कोटिल्लग्राम आदि तीर्थस्थलो का इसमे उल्लेख है उनका आज कोई नाम तक भी नहीं जानता। जहाँ पर पाच पाच दस दस साधु चातुर्मास रहा करते थे वहा पर आज दो घण्टे ठहरने के लिये भी यथेष्ट स्थान नहीं। जिस नगरकोट महातीर्थ की यात्रा करने के लिए इतनी दूर दूर से सघ जाया करते थे वह नगरकोट कहा पर आया है इसका भी किसी को पता नही।

इसमें केवल अलकारिक वर्णन ही नहीं है परन्तु एक विशेष प्रसग का सच्चा और सम्पूर्ण इतिहास भी है। ऐसा पत्र अभी तक पूर्व मे कोई नही प्रगट हुआ। यह एक बिल्कुल नई ही चीज है।"

नगरकोट कांगडा में बहुत प्राचीन प्रतिमा थी। खरतरगच्छ के आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के प्रतिष्ठित और साधु खीमसिंह कारित शातिनाथ मदिर व मूर्ति का उपाध्यायजी ने वहा दर्शन किया। वहा के राजा भी परपरा से जैन थे। नरेन्द्र रूपचद के बनाये हुए मदिर मे स्वर्णमय महावीर विम्बको भी उन्होंने नमन किया। यहा की खरतरवसही का उल्लेख करते हुए लिखा है —

"अपि च नगरकोट्टे देशजालन्धरस्थे
प्रथम जिनपराज· स्वर्णमूर्त्तिस्तु वीर.
खरतरवसतौ तु श्रेयसां धाम शान्ति-
स्त्रयतिदमभिनम्याह्लादभावं भजामि ॥१८॥"

पजाब और सिन्ध प्रदेश में शताब्दियो तक खरतरगच्छ का बहुत अच्छा प्रभाव रहा है। इस सम्बन्ध मे मेरा लेख "सिन्ध प्रान्त और खरतरगच्छ" द्रष्टव्य है।

हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह में जयसागरोपाध्याय सम्बन्धी जो महत्त्वपूर्ण विवरण स० १५११ का लिखा हुआ छपा है उसका सार इस प्रकार है—

"उज्जयन्त शिखर पर नरपाल सघपति ने "लक्ष्मीतिलक" नामक विहार बनाना प्रारभ किया तब अम्बादेवी, श्री देवी आपके प्रत्यक्ष हुई और सेरिसा पार्श्वनाथ जिनालय में श्री शेष, पद्मावती सह प्रत्यक्ष हुआ था। मेदपाटदेशवर्त्ती नागद्रह के नवखण्डा-पार्श्व चैत्यालय में श्रीसरस्वती देवी आप पर प्रसन्न हुई थी। श्री जिनकुशलसूरिजी आदि देवता भी आप पर प्रसन्न थे। आपने पूर्व मे राजगृह नगर उद्दड-विहारादि, उत्तर मे नगरकोट्टादि, पश्चिम में नागद्रह आदि को राजसभाओं में वादि वृन्दो को परास्त कर विजय प्राप्त की थी। आपने सन्देह, दोलावली वृत्ति, पृथ्वीचन्द्र चरित पर्व रत्नावली, ऋषभस्तव, भावारिवारण वृत्ति एवं सस्कृत प्राकृत के हजारो स्तवनादि बनाये। अनेकों श्रावकों को सघपति बनाये और अनेक शिष्यों को पढाकर विद्वान बनाये।"

इसमे उल्लिखित गिरनार के नरपाल कृत "लक्ष्मीतिलक प्रासाद" के सबन्ध में रत्नसिंहसूरि रचित गिरनार तीर्थमाला में भी उल्लेख मिलता है—

'थापी श्रीतिलक प्रासादहिं, साहनरपालि
पुण्य प्रसादिहिं सोवनमयसिरिवीरो"

महो० जयसागर जिनराजसूरिजी के शिष्य थे अत. उनकी दीक्षा स० १४६० के आस-पास होनी चाहिये। इनकी दीक्षा बाल्यकाल मे हुई, ऐसा प्रशस्ति मे उल्लेख है, अत दस-बारह वर्ष की आयु मे दीक्षित होने से जन्म स०

१४४५-५० के बीच होना चाहिये। सं० १४७५ में श्रीजिनभद्रसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया था। श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी के पास आपने लक्षण-साहित्यादि का अध्ययन किया था। सं० १४७८ से स० १५०३ तक की आपकी अनेक रचनायें प्राप्त हैं। स० १५११ की प्रशस्ति के अनुसार आपने हजारो स्तुति-स्तोत्रादि बनाये थे। खेद है कि आपकी रचनाओ की तीन संग्रह-प्रतियाँ हमारे अवलोकन में आईं, वे तीनों ही अधूरी थी, फिर भी आपकी पचासो रचनाएं सप्राप्त है। स्वर्गीय मुनि श्री कान्तिसागरजी के सग्रह मे आपकी कृतियों का एक गुटका जानने मे आया है जिसे हम अब तक नही देख सके है। स० १५१५ के आसपास आपका स्वर्गवास अनुमानित है।

खरतर गच्छ में महोपाध्याय पद के लिए यह परम्परा है कि अपने समय मे जो सब उपाध्यायों से वयोवृद्ध-गीतार्थ हो वह अपने समय का एक ही महोपाध्याय माना जाता है। आचार्य-उपाध्याय तो अनेक हो सकते पर महोपाध्याय एक ही होता है, अत महोपाध्याय जयसागर दीर्घायु, पचहत्तर-अस्सी वर्ष के हुए होंगे। असाधारण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान होने के नाते आपने सैकड़ों रचना अवश्य की होगी। प्राप्त रचनाओ का सुसम्पादित आलोचनात्मक सग्रह प्रकाशन होने से आपकी विद्वत्ता का सच्चा मूल्यांकन हो सकेगा।

महो० जयसागरजी की शिष्य-परम्परा भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है। मुनि जिनविजयजी ने विज्ञप्ति त्रिवेणी की विस्तृत प्रस्तावना में आपके शिष्य समूह के सम्बन्ध में भी लिखा है। तदनुसार आपके प्रथम शिष्य मेघराज गणि थे जिनके रचित नगरकोट के आदिनाथ स्तोत्र, चौबीस पद्यों का हारबन्ध काव्य है। दूसरे शिष्य सोमकुञ्जर के विविध अलंकारिक पद्य विज्ञप्ति त्रिवेणी में प्राप्त है। एव खरतरगच्छ-पट्टावली हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह मे पद्य ३० की प्रकाशित है। जेसलमेर के श्री संभवनाथ जिनालय की प्रशस्ति स० १४९७ में आपने निर्माण की जो जैसलमेर जैन लेख संग्रह में मुद्रित है।

जयसागरोपाध्याय के विशिष्ट शिष्यों मे उ० रत्नचन्द्र भी उल्लेखनीय है जिनकी दीक्षा सं० १४८४ के लगभग हुई होगी। स० १५०३ मे जयसागरोपाध्याय के पृथ्वीचन्द्र चरित्र की प्रशस्ति मे गणि रत्नचन्द्र द्वारा रचना में सहायता का उल्लेख है। सं० १५२१ से पूर्व इन्हें उपाध्याय पद प्राप्त हो चुका था। इनके शिष्य भक्तिलाभोपाध्याय भी अच्छे विद्वान थे उनकी कई रचनायें उपलब्ध है। उनके शिष्य पाठक चारित्रसार के शिष्य चारुचन्द्र और भानुमेरु वाचक थे जिनके शिष्य ज्ञानविमल उपाध्याय और उनके शिष्य श्रीवल्लभोपाध्याय अपने समय के नामी विद्वान थे। आपके रचित विजयदेव माहात्म्य की मुनि जिनविजयजी ने बडी प्रशसा की है। आपके अरजिनस्तव सटीक और सघपति रूपजी वश प्रशस्ति महो० विनयसागर जी सपादित एवं विद्वद्प्रबोध तथा हेमचन्द्र के व्याकरण कोश आदि की टीका प्रकाशित हो चुकी है।

श्रीगुणरत्नगणि की तर्कतरङ्गिणी

[जितेन्द्र जेटली]

अनेकान्तवाद का आचरण करने वाले जैनाचार्यों ने अपने सम्प्रदाय के दार्शनिक ग्रन्थो पर टीका-टिप्पण आदि की रचना की है यह आश्चर्य की बात नही है किन्तु अन्य दर्शन के ग्रन्थों पर भी प्रामाणिक व्याख्या रूप टीकायें लिखी हैं ।[1] ऐसी रचनाओं मे से श्रीगुणरत्नगणिजी की तर्कतरङ्गिणी भी है ।

श्रीगुणरत्नगणि विनयसमुद्रगणि के शिष्य थे । विनयसमुद्रगणि जिनमाणिक्य के शिष्य थे जो कि जिनचन्द्रसूरि के समानकालीन थे । जिनचन्द्रसूरि श्रीहीरविजयसूरि के समानकालीन थे । उनका समय मोगल सम्राट अकबर के समय का है क्योंकि वे उनके दरबार मे आमन्त्रित हुआ करते थे । श्री गुणरत्नगणि ने तर्कतरङ्गिणी के उपरान्त 'काव्यप्रकाश' के ऊपर एक १०००० श्लोकप्रमाण की सुन्दर टीका लिखी है । यह टीका उन्होंने अपने शिष्य रत्नविशाल के लिए लिखी है । इसी तरह यह तर्कतरङ्गिणी भी उन्होने उसी शिष्य के वास्ते लिखी है । तर्कतरङ्गिणी पुष्पिका मे यह स्पष्ट निदेश है । वे लिखते है कि—

श्रीमद्रत्नविशालाख्यस्वशिष्याध्ययनहेतवे ।
गुणरत्नगणिश्चक्रे टीकां तर्कतरङ्गिणीम् ॥

यह तर्कतरङ्गिणी गोवर्धन की प्रकाशिका जो कि केशव मिश्र की तर्कभाषा के ऊपर टीका है उसकी प्रतीक है । तरङ्गिणी की समाप्ति में और मङ्गल मे इस विषय का निर्देश किया गया है ।

इस तर्कतरङ्गिणी के अभ्यास से यह स्पष्ट प्रतीत होती है कि श्री गुणरत्नगणिजी अनेक शास्त्रों के विद्वान होते हुए एक अच्छे तार्किक थे । वे खरतरगच्छ के थे इसलिए उस गच्छ के लिए यह अत्यन्त गौरव की बात है । वे किस प्रकार के उच्च श्रेणी के तार्किक थे यह तर्कतरङ्गिणी से ही ज्ञात होता है ।

तर्कतरङ्गिणी गोवर्धन की प्रकाशिका की टीका होने से सामान्यत चर्चा मे गोवर्धन का वे अनुसरण करते है फिर भी वे जिन सिद्धान्तों की चर्चा गोवर्धनजी ने नही की है उन सिद्धान्तो की चर्चा भी समय २ पर करते है । जैसे कि गोवर्धन मङ्गलवादकी कोई विशेष चर्चा नही करते हैं फिर भी गुणरत्नगणि अपनी तर्कतरङ्गिणी मे अन्य नैयायिक विद्वानो की भाति मङ्गलवादकी चर्चा विस्तार से करते है । इस चर्चा मे वे उदयनाचार्य, गङ्गेश, पक्षधर मिश्र आदि रूढ प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों को वे मङ्गल विषयक मतो की आलोचना करके वे गङ्गेश उपाध्याय के मत से सम्मत होते हैं ।[3]

मङ्गलवाद के अनन्तर वे न्यायसूत्र के प्रमाण प्रमेय आदि प्रथम सूत्र को लेकर समासवाद की चर्चा करते हैं । यद्यपि गोवर्धन ने यह चर्चा मोक्षवाद के अनन्तर की है । परन्तु गुणरत्नगणि ने यह चर्चा यही पर की है और उचित स्थान भी यही है क्योंकि समासवाद की चर्चा से ही न्यायसूत्र के प्रमाण को लेकर अपवर्ग का अर्थ स्पष्टतर होता

---

१ द्रष्टव्य 'जैनेतर ग्रन्थों पर जैन विद्वानों की टीकाएँ' भारतीय विद्या वर्ष २ अङ्क ३ ले० अगरचन्द नाहटा तथा सप्तपदार्थी जिनवर्धनसूरि टीका सहित प्रस्तावना पृ० ७ से ९ । प्र० ला० द० भारतीय विद्यामन्दिर अहमदाबाद

२ द्रष्टव्य युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि पृ० १६३-१६४ श्री अगरचन्द नाहटा, भँवरलाल नाहटा ।

है इस वास्ते यह चर्चा यहां की जाय यह अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

समासवाद में गोवर्धन ने न्यायसूत्र के प्रथमसूत्र में इतरेतर द्वन्द्व समास कहकर सूत्र को समझाया है। गुणरत्नगणि ने भिन्न-भिन्न द्वन्द्व समासो की चर्चा पाणिनि के सूत्र के आधार पर की है।[४] वे कर्मधाराय और द्वन्द्व के भेद को समझकर सूत्र मे इतरेतर द्वन्द्व समास क्यो है इस विषय को स्पष्ट करते है। इस चर्चा से गुणरत्नगणि अच्छे वैयाकरण थे यह भी प्रतीत होता है।

समासवाद के अनन्तर प्रकाशिकाकार मोक्षवाद की चर्चा विस्तार से करते हैं। न्याय के सोलह पदार्थो का तत्वज्ञान मोक्ष का कारण किस तरह होता है यह समझाने का प्रयत्न करते है। वे शास्त्र तथा तत्वज्ञान को मोक्ष का सीधा कारण न मानकर शास्त्र तथा तत्वज्ञान मोक्ष के प्रयोजक हैं ऐसा सिद्ध करते है।[५] गुणरत्न प्रकाशिका के प्रामाणिक टीकाकार होनेसे गोवर्धन की इस बात का समर्थन करते हुए इसे विस्तार से समझाते हैं और किस तरह शास्त्र और तत्वज्ञान मोक्ष का सीधा जनक न होकर प्रयोजक हैं इसे स्पष्ट करते हैं।[५] इस चर्चा मे गुणरत्नगणि काशीमरण से मुक्ति होती है या नहीं इसकी भी चर्चा करते है और नैयायिक मतानुसार काशीमरण से तत्वज्ञान होता है और तत्वज्ञान मोक्षका प्रयोजक है इस बात को वे सिद्ध करते है। यहां काशी मरण जैसा सरल मार्ग को छोडकर शास्त्रभ्यास जैसा कठिन मार्ग क्यों लिया जाय? जैसे पूर्वपक्ष का खण्डन गुणरत्न प्रामाणिक टीकासार के नाते करते हैं।[६] वे चाहते तो इस विषय का अच्छी तरह खण्डन कर सकते थे पर प्रामाणिक टीकासार होनसे ही उन्होंने ऐसा यहा नही किया है।

न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य में शास्त्र की विविध प्रवृत्ति, उद्देश, लक्षण तथा परीक्षा निर्दिष्ट है। तर्कभाषाकार इन तीनों का लक्षण देते है। प्रकाशिका के कर्त्ता गोवर्धन इन तीनों विषय की विस्तृत चर्चा करते हैं। उन्हीं का अनुसरण करते हुए गुणरत्न इन विषयों की ओर विस्तृत चर्चा करते हैं।[७] उनकी इस चर्चा मे उनका नव्यन्याय का पाण्डित्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

उद्देश, लक्षण और परीक्षा इन तीनों की चर्चा के पीछे प्रमाण वगैरह सोलह पदार्थो का विचार शुरु होता है। प्रमाण का क्रम प्रथम होने से स्वाभाविक रूप से प्रमाण का लक्षण और परीक्षा की जाती है। गुणरत्न प्रमाण के लक्षण में प्रमा की यथार्थता क्या है इसकी चर्चा गोवर्धन का अनुसरण करते हुए विस्तार से करते है। यथार्थत्व को समझाते हुए तद्वति तत्प्रकारात्व में गुणरत्न 'तद्वति' पद के अर्थ में जितने भी विरोधि अर्थ हैं उनका युक्ति से खण्डन करते है।[८] प्रमा का करण प्रमाण है ऐसा लक्षण करने मे जैसे प्रमा के लक्षण की चर्चा करनी होती है उसी तरह करण की भी चर्चा स्वाभाविक रूपसे करनी पडती है। गोवर्धन प्रमा करण प्रमाण को समझाते हुए 'अनुभवत्वव्याप्याजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वे सति प्रमाकरणत्वम् प्रमात्व' ऐसी प्रमाण की व्याख्या देते हैं। गुणरत्न नव्यन्याय की पद्धति से विस्तार से प्रमाण के इस लक्षण का पकृत्य करके समझाते है।[९] कारण के लक्षण को समझाते हुए उन्होंने पाचों अन्यथासिद्धि को भी विस्तार से स्पष्ट किया है।[१०] तदनन्तर तीनों प्रकार के करण तथा समवायि कारण और

---

३ द्रष्टव्य मङ्गलवाद तर्कतरङ्गिणी पृ० १ से ८ स० डॉ० वसन्त पारीख

४ द्रष्टव्य वही पृ० १०

५ द्रष्टव्य तर्कतरङ्गिणी मोक्षवाद पृ० २३-२८

६ ,, वही पृ० ३०

७ ,, वही पृ० ३७-५१

८ द्रष्टव्य वही पृ० ५८

९ ,, ,, पृ०—६७-७१ तथा पृष्ठ ७८-८४

१० ,, ,, पृ० ८४-९०

उपादान कारण मे क्या भेद है इसकी चर्चा भी की है[११]।

प्रमाण के लक्षण मे प्रत्यक्ष प्रमाण की चर्चा मे तर्क भाषाकार और प्रकाशिकाकार का अनुसरण करते हुए उन्होंने बौद्ध और मीमांसक के प्रत्यक्ष लक्षणों की भी विस्तार से चर्चा करके खण्डन किया है[१२]।

प्रत्यक्ष के अनन्तर अनुमान प्रमाण की चर्चा मे 'अनुमान का कारण लिंग परामर्श ही है' इस तर्कभाषाकार और प्रकाशिकाकार के मत की गुणरत्न ने विशदता से नव्यन्याय के आधार पर समझाया है[१३]। इस चर्चा में व्याप्ति के लक्षण की चर्चा गोवर्धन ने अधिक नहीं की है परन्तु गुणरत्न नव्यन्याय के प्रस्थापक गगेश उपाध्याय के व्याप्ति के लक्षण को लेकर व्याप्ति के अनेक लक्षण प्रस्तुत करते है और इससे उनके नव्यन्याय के ज्ञान की विशिष्टता स्पष्टतया गोचर होती है[१४]। इस चर्चा मे वे उपाधि, तर्क वगैरह की चर्चा करते हुए मीमांसक जैसे अन्य दार्शनिको के मतों की भी व्याप्तिग्राहत्व के विषय मे चर्चा करते है। चार्वाक जोकि प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वीकार ही नहीं करते है उनके मत का भी गुणरत्न ने नैयायिक पद्धति मे खण्डन किया है[१५]।

अनुमान मे व्याप्ति की चर्चा के साथ हेतु की चर्चा भी अनिवार्य है। नैयायिक अन्वयव्यतिरेकी केवलान्वयी और केवलव्यतिरेकी तीनों प्रकार के हेतुओं का स्वीकार करते हैं। इस चर्चा में गुणरत्न उदयन के मत का अनुसरण करते हुए केवलव्यतिरेक व्याप्ति अन्वय रूप से भी कैसे हो सकती है उसे स्पष्ट करते हैं[१६]। पक्षता की चर्चा मे 'अनुमित्साविरह विशिष्ट सिद्ध्यभाव पक्षता' के लक्षण में विशिष्टाभाव के अर्थ की चर्चा वे विशदतासे और विस्तार से करते हैं[१७]।

अनुमान की चर्चा में हेत्वाभास की चर्चा अनिवार्य है। गुणरत्न हेत्वाभास का गोवर्द्धन से प्रस्तुत लक्षण किस तरह पांचों हेत्वाभासों को आवृत करता है यह एक प्रामाणिक टीकाकार के नाते विस्तार दिखाते हैं। वे प्रत्येक हेत्वाभास मे क्या फर्क है, विशेषत असिद्ध और विरुद्ध में क्या अन्तर है इसका सूक्ष्म निरूपण उदयन के मत का अनुसरण करते हुए देते है। साथ में एक ही स्थान पर हेत्वाभासो का सग्रह हो जाय, अर्थात् अनेक हेत्वाभास हों तो उसमे कोई दोष नहीं है, इस बात को भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते है[१८]।

अनुमान के अनन्तर उपमान की चर्चा टीकाकार गोवर्धन के अनुसार अत्यन्त संक्षेप मे करके वे शब्दप्रमाण की चर्चा करते हैं। गोवर्द्धन शब्द प्रमाण की चर्चा को अधिक विस्तार से "एतावत्प्रपचस्य बालबोधार्थं करणात्' ऐसा कह कर नही करते है, परन्तु गुणरत्न शब्द प्रमाण की अनेक विशेषताओ की चर्चा विस्तार से करते है (पृ० ३०७)। वे गङ्गेश के मत को उद्धृत करके गोवर्धन के दिये हुए लक्षण को विस्तार से समझाते हैं, और आप्तत्व क्या है, तथा आकाक्षा, योग्यता आदि भी क्या

११ तर्कतरङ्गिणी पृ० १०० और आगे

१२ ,, ,, पृ० १७४

१३ द्रष्टव्य वही पृ० १८३-१८४

१४ ,, ,, पृ० १८७ और आगे

१५ ,, ,, पृ० २४२

१६ ,, ,, पृ० २७२

१७ ,, ,, पृ० २७५

१८ 'वायुर्गन्धवान् स्नेहात्' इस हेत्वाभास के उदाहरण मे वे लिखते है कि एकस्यैव 'स्नेहस्य अनैकान्तिकविरुद्धेत्यादि पञ्चत्वव्यवहारः कथमित्याशङ्कायामुत्तरम्—उपाधेयसङ्करेऽप्युपाध्यसङ्कर इति न्यायाद्दोषगतसख्यामादाय दुष्टहेतौ पञ्चत्वादिसख्याव्यवहार'—तर्कतरङ्गिणी स० डॉ० परीख, हस्तलिखित प्रति पृ० ६०५-६०६।

है, यह भी स्पष्ट करते है। तर्कभाषाकार और प्रकाशिकाकार ने शब्द के अनित्यत्व की चर्चा यद्यपि नहीं की है किन्तु इसका महत्त्व समझते हुए गुणरत्न इस चर्चा को छेडते है, और शब्द-नित्यत्व आदि मीमांसक के मत का खण्डन भी करते है। इस चर्चा मे शब्द की शक्तियाँ, अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना की चर्चा भी समाविष्ट हो जाती है (पृ० ३ ·५)।

चारो प्रमाणो की स्थापना के अनन्तर अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, किंवा अभाव ये दो प्रमाणो का अन्तर्भाव अनुमान मे न्याय और वैशेषिक परम्परा करती है। तरङ्गिणीकार भी उनका अनुसरण करते हुए इन प्रमाणों का अमुमान में अन्तर्भाव करते है। प्रमाण के अन्तर्भाव की इस चर्चा में विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध से अभाव का प्रत्यक्षज्ञान कैसे होता है यह भी विशदता से तरंगिणी मे समझाया गया है (पृ० ३३५-३५७)।

प्रमाणों की चर्चा मे तर्कभाषाकार ने प्रामाण्यवाद की चर्चा भी की है। इस विषय में तर्कभाषाकार पूर्व पक्ष मे भट्टमत के सिद्धान्त को रखते है। प्रकाशिका का स्वतः प्रामाण्यवादो मीमासक के तीनो मतो को लेकर उनका खण्डन करते है। गुणरत्न मीमासक और नैयायिक दोनों के मतों को समझाकर प्रथम ज्ञानप्रामाण्य क्या है, यह विस्तार से समझाते है और मीमांसक के प्रत्येक मत को विशदता से और विस्तार से चर्चा करते हैं (पृ० ३६१-६२)। यद्यपि इस विषय में जैन सिद्धान्त न्याय वैशेषिक के सिद्धान्त से पृथक् है। फिर भी गुणरत्न इसे प्रामाणिकता से न्याय वैशेषिक के परतः प्रामाण्यवाद का स्थापन और मण्डन करते है। करीब आधा ग्रन्थ तरगिणीकार ने प्रमाण की चर्चा मे उपयुक्त किया है।

प्रमाण की चर्चा के अनन्तर न्याय दर्शन के बारह प्रमेयों की चर्चा शुरू होती है। इन बारह प्रमेयों मे भी आध्यात्मिक दृष्टि से मुख्य आत्मा, शरीर, और इन्द्रिय की चर्चा होनी चाहिए परन्तु प्रमाण-विचार जितनी चर्चा इन प्रमेयो की नही की गई है। इस विषय मे तर्कभाषाकार से लेकर तरङ्गिणीकार तक सब समान है। शरीर की चर्चा मे गुणरत्न ने शरीरत्व जाति है या नहीं इसकी चर्चा छेडी है (पृ० ४३८-३९) और साङ्कर्य दोष होते हुए भी शरीरत्व जाति है ऐसा स्वीकार किया है।

चतुर्थ प्रमेय अर्थ की चर्चा में वैशेषिक मत के सातों पदार्थों का निरूपण तर्कभाषाकार ने किया है। इससे कुछ पदार्थों की चर्चा की पुनरुक्ति होती है। गुणरत्न इस वास्ते इस विषय की कोई विस्तृत चर्चा नहीं करते हैं। यहा 'एवम्' पद का विचार श्रीगुणरत्न विस्तार से करते है (पृ० ४४८)। चर्चा का समापन करते हुए 'एव' पद का अर्थ अन्योन्याभाव हो सकता है ऐसे लीलावतीकार के मत को वे समर्थित करते है।

अर्थ मे से द्रव्य पदार्थ के निरूपण मे पृथ्वी का निरूपण आता है। इसमे विशेष चर्चा पाकज प्रक्रिया की की गई है। यह चर्चा यहां सक्षेप मे ही की जाती है, क्योंकि इस चर्चा का उचित स्थान गुणों की चर्चा में है। द्रव्यों की चर्चा मे तैजस द्रव्य सुवर्ण की चर्चा भी स्वभावत की जाती है। इस विषय मे तरगिणीकार सूचन करते है कि यद्यपि सुवर्ण में तैजस रूप तथा स्पर्श उत्पन्न होता है किन्तु वे पृथ्वी के परमाणु की अधिकता होने से पार्थिवरूप और पार्थिव स्पर्श से अभिभूत हो जाते है (पृ० ४५२-५४)।

पृथ्वी, जल, तेज और वायु के निरूपण के अनन्तर चारों द्रव्यों के परमाणुओ की चर्चा मे परमाणुवाद की चर्चा की जाती है। जैनदर्शन के पुद्गल और न्याय-वैशेषिक के परमाणु भिन्न होने पर भी श्री गुणरत्न यहा केवल परमाणुवाद की चर्चा करते हैं। परमाणुओ से सृष्टि-संहार की प्रक्रिया कैसे होती है, यह वैशेषिक मत के अनुसार समझाया गया है। यहा पर प्रलय के समय सारे परमाणुओ का विभाजन कैसे होता है इसे विस्तार से तर्क-

तरङ्गिणीमें श्रीगुणचन्द्र समझाते हैं (पृ० ४५५-५६)। यहां पर प्राचीन और नवीन नैयायिकों के मतभेदमे गुणरत्न प्राचीन नैयायिकों के मत को समर्थित करते हुए समवायि कारण के नाश से कार्य का नाश होता है, इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। द्रव्य की चर्चा में गुणरत्न आत्मा की चर्चा प्रमेय में हो जाने के कारण पुनरुक्ति दोष के वारण के लिये नही करते हैं।

द्रव्य के अनन्तर गुण निरूपण मे तर्कभाषाकार गुण का लक्षण "सामान्यवानसमाधिकारणमस्यन्यात्मा गुण" ऐसा देते है। प्रकाशिकाकार गोवर्धन इस लक्षण मे 'कर्मद्रव्यभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण बढाते हैं। गुणरत्न इस विशेषण वृद्धि को विस्तार से समझाते है और रघुनाथ शिरोमणि के गुण के लक्षण को भी उद्धृत करते हैं। गुण की चर्चा मे रूप की चर्चा भी की जाती है। गुणरत्न प्राचीन नेयायिको के मत को पुष्ट करते हुए चित्ररूप की आवश्यकता समझाते है (पृ० ४८६)। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चारों गुणों के लक्षण को पदकृत्य शैली से समझा कर पाचन प्रक्रिया की विस्तार से चर्चा करते हैं। यहा पिठरपाकवादी नैयायिक और पीलुपाकवादी वैशेषिक के मतो को वे विस्तार से और विशदता से निष्पक्ष रूप से स्थापित करते हैं। इस प्रक्रिया मे विभागज विभाग की सहायता से परमाणु में रूपादि का फर्क कैसे होता है यह बात अपने शिष्य की स्पष्टता के वास्ते वे समझाते है (पृ०४९४)।

चार गुणों के निरूपण मे सख्या का निरूपण तर्कभाषाकार करते है। गुणरत्नजी ने यहा पर गोवर्धन के लक्षण के साथ असम्मति प्रगट करते हुए कहा है कि "वस्तुतस्तु तदपि लक्षण न सभवति तस्य लक्षणतावच्छेदकत्वात्"। इतना कह कर वे अपनी ओर से "व्यासज्यवृत्तित्वे सति पृथक्त्वात्मगुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्" (पृ० ४९९) ऐसा यथार्थ लक्षण देते हैं। यह बात उनकी सूक्ष्मेक्षिका की बोधक है। इसी तरह वे परिमाण नामक गुण का भी 'कालवृत्तिवृत्तित्वे सति एतेवृत्तिमात्रवृत्तिगुणेत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिकत्व परिमाणत्वम्' (पृ० ५०४) स्पष्ट लक्षण देते हैं। 'पृथक्त्व' गुण को समझाते हुए वे अन्योन्याभाव से पृथक्त्व किस तरह भिन्न है इसका स्पष्टीकरण विशदतासे करते हैं।

तदनन्तर वे सयोग को समझाते हुए इसका भी समुचित लक्षण "विभागप्रतियोगिकान्योन्याभावत्वे सति एकवृत्तिमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिकत्व सयोगत्वम्" देते है। इस लक्षण को पदकृत्य शैली से समझा कर सयोग के भेद को भी वे समझाते हैं। इस विषय मे नैयायिक जो कि सयोग को अव्याप्य वृत्ति कहते है उनके साथ अपनी असम्मति प्रकट करते हुए श्रीगुणरत्न सयोग को भी व्याप्य वृत्ति सिद्ध करते है। अपने मत के समर्थन मे वे लीलावती को उद्धृत करते हैं (पृ० ५१३-१६)। सयोग के अनतर स्वाभाविक क्रम से विभाग का निरूपण आता है। विभाग यह सयोग का अभाव नहीं है किन्तु स्वतत्र गुण है—यह बात एक अच्छे तार्किक की तरह गुणरत्न समझाते है।

तदनन्तर परत्व, अपरत्व इत्यादि गुणो को सक्षेप मे समझा कर वे शब्द निरूपण की चर्चा विस्तार से करते हैं। 'वीचीतरङ्गन्याय' किंवा 'कदम्बमुकुलन्याय' से नये-नये शब्द किस तरह उत्पन्न होते है और श्रोत्रेन्द्रिय में ही उत्पन्न होकर शब्द का किस प्रकार ग्रहण होता है इसे वे विस्तार से समझाते हैं। शब्द का अनित्यत्व और केवल तीन क्षण तक शब्द कैसे रहता है यह समझाते हुए बुद्धि केवल दो क्षण तक ही रहती है ऐसा स्पष्ट करते हैं। शब्द के नाश के विषय मे पूर्व पक्ष के मत को तर्कभाषाकार का मत समझने मे भूल गुणरत्नजी ने यहाँ पर की है। यह कुछ केशव मिश्र की बात को समझने मे गलती से हो गया है। शब्द के अनन्तर बुद्धि, धर्म, अधर्म आदि आत्मा के गुणो का निरूपण करते हुए भ्रम किंवा अन्यथाख्याति का भी निरूपण वे करते है। इस निरूपण मे ख्यातवाद और भिन्न-भिन्न ख्यातियों की चर्चा की गई है (पृ० ५३०)।

द्रव्य और गुण की चर्चा के अनन्तर कर्म निरूपण मे गुणरत्न कर्म का स्वतन्त्र लक्षण ही देते हैं। यह है "सयोगविभागयोरनपेक्षकारण कर्म" (पृ० ५३२)। यहा वे प्रशस्तपाद भाष्य का अनुसरण करते है। उन्हें तर्कभाषाकार का और गोवर्धन का दिया हुआ लक्षण सतोष नहीं दे सका है। सामान्य, विशेष समवाय और अभाव ये चारों पदार्थ वैशेषिक के ही अपने पदार्थ है। फिर भी यहाँ गुणरत्न इन पदार्थों का खण्डन नहीं करते है सामान्य मे सामान्य या जाति उपाधि से किस तरह भिन्न है, यह समझाते है। उनके मतानुसार जाति सकर मे मुक्त होनी चाहिए (पृ० ५३४)। "ब्राह्मणत्व" जाति किस तरह चारों प्रकार से शक्य होती है यह तार्किक युक्ति से वे प्रस्तुत करते है। विशेष की खास चर्चा न करते हुए समवाय की चर्चा में स्वरूप सम्बन्ध से समवाय किस तरह भिन्न है और अवयवी केवल अवयवो का समूह न होकर अवयवों से भिन्न है यह न्याय वैशेषिक का सिद्धान्त वे अच्छी तरह प्रतिपादित करते है (पृ०५३७)।

समवाय के वाद अभाव की चर्चा वे विशेष रूप से करते हैं। अन्योन्याभाव से ससर्गाभाव, जिसके तीन प्रकार है, वह कैसे पृथक् हैं इसे विशदता से और विस्तार से वे समझते है। इसी चर्चा मे प्रत्येक अभाव एक दूसरे से क्यों भिन्न हैं यह भी वे अच्छी तरह समझाते हैं (पृ०-५४१-५२)। मीमासक जो कि अभाव को अलग नहीं मानते है उनका खण्डन भी वे न्याय वैशेषिक के सिद्धान्तों के अनुसार करते है।

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और अर्थ के निरूपण के अनन्तर न्याय के अवशिष्ट आठ प्रभेदो में वे अत्यन्त सक्षेप करते है। सिद्धान्त की चर्चा मे गुणरत्न गोवर्धन का अनुसरण करते है और गोवर्धन ने वार्त्तिककार के मतानुसार तर्कभाषाकार जो कि भाष्यकार वात्स्यायन के मत का स्वीकार करते हैं उनका खण्डन करते है। गुणरत्न भी उसी तरह तर्कभाषाकार के मत का खडन विशेषत अभ्युपगम सिद्धान्त के भेद के विषय मे करते है। सिद्धान्त के बाद तर्क का लक्षण देकर प्रकाशिकाकार के अनुसार तर्क के प्रकार समझाते है (पृ० ५८३-८४)।

न्याय शास्त्र के अन्य पदार्थो की विशेष चर्चा न करते हुए वे वादजल्प और वितण्डा ये तीन पदार्थो को समझाते है। यद्यपि हेमचन्द्रसूरि ने केवलवाद को ही स्वीकार जैन दर्शन की दृष्टि से प्रमाणमीमासा मे किया है फिर भी यहाँ प्रामाणिक टीकाकार गुणरत्न तीनो को अच्छी तरह समझा कर तीनों के भेद की आवश्यकता भी समझाते है। कथा की चर्चा के इस प्रसग में निग्रहस्थान की चर्चा भी समाविष्ट होती है। कथा मे केवलवादी और प्रतिवादी ही भाग लेते हैं इस मत का खण्डन करते हुए गोवर्धन वादी और प्रतिवादी के समूह अर्थात् एक से अधिक व्यक्ति भी इसमे भाग ले सकते है, गुणरत्न उन्हीं का अनुसरण करते है। इस विषय मे रत्नकोशकार ने कथा के जो अन्तर प्रकट किया है उसका खण्डन भी गुणरत्न करते हैं। निग्रह स्थान की चर्चा मे हेत्वाभास की चर्चा एक बार आचुकी है वे इस वास्ते पुनरावृत्ति नहीं करते है। छल और गति के विषय में भी वे अधिक कुछ विवरण नहीं करते हैं क्योकि कथा की चर्चा मे ये सब आ जाते है।

सक्षेप मे तर्कभाषाकार और उनके टीकाकार प्रकाशिकाकार गोवर्धन ने जिन विषयों की विशेष चर्चा नहीं की है, ऐसे विषयो की चर्चा गुणरत्न ने अपनी तर्कतरङ्गिणी में आधुनिक प्रामाणिक टीकाकार की तरह की है। ये विषय है (१) मङ्गलवाद, (२) काशीमरण मुक्ति, (३) उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा का विस्तार से विवरण, (४) कारण लक्षण (५) षोढा सन्निकर्ष (६) व्याप्ति (७) अवच्छेदकत्व (८) सामान्यलक्षणा तथा ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्ति (९) हेतुकेतीन प्रकार (१०) सत्प्रतिपक्ष और सदेह का भेद (११) शब्द की अनित्यता (१२) शब्द शक्तियाँ (१३) प्रामाण्यवाद में मीमांसकों के तीनो मत की आलोचना (१४) शरीरत्व जाति (१५) प्रलय (१६) गुण का लक्षण (१७) चित्ररूप (१८) पाकज प्रक्रिया (१९) पृथक्त्व और अन्योन्याभाव का भेद (२०) अन्यथाख्याति और अभाव के प्रकारों के भेद इत्यादि है।

न्याय की अन्य कृतियों में शशधर टिप्पण वगैरह भी उन्होंने लिखा है। काव्यप्रकाश की भी विस्तृत टीका उनकी कृति है इस तरह खरतरगच्छ के यह विद्वान अपने समय के पदवाक्यप्रमाणज्ञ ऐसे एक गच्छ के गौरव प्रदान करने वाले विद्वान थे। आशा है खरतर गच्छ के श्रेष्ठी उनकी कृतियों को प्रकाश मे लाने का सविशेष प्रयत्न करेंगे।

महत्त्वपूर्ण खरतरगच्छीय ज्योतिष ग्रंथ

जोइसहीर

[पं० भगवानदास जैन]

इस नाम का ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त्त विषय का प्राचीन ग्रंथ है। इसका दूसरा नाम ज्योतिषसार भी है। यह दो प्रकार की रचना वाला देखने में आता है। एक तो दूहा और चौपाई छंदों में भाषामय है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित दो प्रति साक्षररत्न श्रीअगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वाले के शास्त्र सग्रह मे मौजूद है। इन दोनो प्रति के पीछे का कुछ भाग बिना लिखा रह गया है, जिससे इसकी रचना समय आदि समझने मे कठिनता है परन्तु इसकी रचना करने वाला खरतरच्छीय पं० हीरकलश मुनि ही है, ऐसा ग्रन्थ वाचने से मालूम हुआ कि छंदों मे कई एक स्थान पर कर्त्ता ने अपना नाम जोडा है।

इस ग्रंथ की दूसरी रचना प्राकृत गाथाबद्ध है, इसकी एक प्रति जालोर (राजस्थान) में ज्ञानमुनि मण्डली लायब्रेरी में है, प्रति मे मुख्य ग्रंथ के अलावा प्रत्येक पन्ने के चारों तरफ खाली जगह में टिप्पणिया लिखी हुई हैं, परन्तु ग्रंथ का अन्तिम भाग कुछ विना लिखा रह गया है। इसकी दूसरी प्रति नाहटाजी ने कलकत्ता गुलाबकुमारी लायब्रेरी से लाकर मेरे पास भेजी थी यह पूर्ण लिखी हुई थी। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार की प्रशस्ति होने से मालूम हुआ कि—'बृहत्खरतरगच्छीय जगमयुगप्रधान भट्टारक जैनाचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वरजी के विजयराज्य में पंडित हीरकलश मुनि ने विक्रमसवत् १६२७ के वर्ष में रचना की है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में लगभग १२०० गाथायें हैं। इनके दो अध्याय तरगों के नाम से रखा है। प्रथम तरग मे ५९ विषय हैं। प्रथम मगलाचरण यह है—

"पण परमिट्ठ णमेय समरीय सुहगुरु य सरस्सई सहियं।
कहियं जोइसहीर गाथा छदेण बधेण ॥१॥"

मगलाचरण में इष्ट देवो को नमस्कार करके ग्रन्थ का नाम 'जोइसहीर' (ज्योतिषहीर) स्पष्ट किया है। इसके बाद प्रथम तरग मे ५९ विषयों के नाम की पाच गाथाएँ हैं। विषय यह है—

"तिथि १, वार २ नक्षत्र ३, योग ४, होराचक्र ५, राशि ६, दिनशुद्धि ७, पुरुष नव वाहन ८, स्वरनाडी ९, वत्सचक्र १०, शिवचक्र ११, योगिनीचक्र १२, राहु १३, शुक्र १४, कीलक योग १५, परिघचक्र १६, पचक १७, शूल १८, रविचार १९, स्थिरयोग २०, सर्वा कयोग २१, रवियोग २२, राजयोग २३, कुमारयोग २४, अमृत योग २५, ज्वालामुखी योग २६, शुभयोग २७, अशुभयोग २८, अर्द्ध-प्रहर २९, कालवेला ३०, कुलिकयोग ३१, उपकुलिक-योग ३२, कटकयोग ३३, कर्कटयोग ३४, यमघटयोग ३५, उत्पातयोग ३६, मृत्युयोग ३७, काणयोग ३८, सिद्धि-योग ३९, खजयोग ४०, यमलयोग ४१, सवर्त्तकयोग ४२, आडलयोग ४३, भम्मयोग ४४, उपग्रहयोग ४५, दड-योग ४६, हालाहलयोग ४७, वज्रमूसलयोग ४८, यमदष्ट्रा-योग ४९, कुभचक्र ५०, भद्रा (विष्टि) योग ५१, कालपाश-योग ५२, छींक विचार ५३, विजययोग ५४, गमनफल ५५, तारावल ५६, ग्रहचक्र ५७, चन्द्रावस्था ५८ और करण ५९।"

इतने विषयवाले प्रथमतरङ्ग में ४१६ गाथायें हैं। इसके अन्त मे ग्रन्थकार ने लिखा है कि—"इतिश्रीखरतर-

गच्छे पडित हीरकलशकृते श्रीज्योतिषसारे प्रथमस्तरङ्ग ।"

इन विषयों में प्रसगोपात कुछेक चमत्कारि प्रयोग दिये गये है, जो ज्योतिष नहीं जाननेवाले भी आसानी से अपना प्रत्येक दिन का शुभाशुभ फल जान सकते है ।

"दिनरिक्ख जम्मरिक्ख मेली तिहिवार अक सव्वेहिं ।
सत्तेण भाग हरए सेस अंकाइ फल भणिय ॥९३॥
लच्छी दुक्ख लाभं सोगं सुक्ख च जरा असणाय ।
सव्वेहिं जोइसाय भासिअ हीरच निव्वाय ॥९४॥"

दिन का नक्षत्र, जन्म का नक्षत्र, तिथि और वार, इन सबके अकों को इकट्ठा करके सात से भाग देना । जो शेप वचे उसका फल कहना । एक शेप वचे तो लक्ष्मी की प्राप्ति, शेष दो वचे तो दु ख तोन वचे तो लाभ, चार वचे तो शोक, पांच वचे तो सुख, छह वचे तो वृद्धपना और सात शेष वचे तो भोजन प्राप्ति होवे । ऐसा सव ज्योतिप शास्त्र में कहा गया है, इसका अवलोकन करके हीरमुनिने यहाँ कथन किया है ।

इत्यादि कईएक चमत्कारिक कथन इस ग्रन्थमे लिखे गये है ।

दूसरे तरगमें ६३ विषय इस प्रकार हैं—

"नक्षत्रों की योनि, नाड़ी, वेघ, वर्ण, गण, यूजीप्रीति, षडाष्टक, ग्रहमित्र, राशिमेल, वर्ग, लेना देनी, द्विद्वादश, तृतीय एकादश, दशम चतुर्थ, उभय समराप्तक, नवपचम, ग्रामचक्र. गृहारभ, चुल्हीचक्र, विद्यामुहूर्त्त, ग्रहण, शिशु अन्नप्राशन, क्षौरकर्म, कर्णवेघ, वस्त्राभरण, भोजन, सीमत, स्नान, नृपमन्त्रो, शुभाशुभ, मास अविकमास, पक्ष, तिथि की हानि वृद्धि, न्यूनाधिक नक्षत्रयोग, पाचवार का फल, नक्षत्रस्नान, गर्भयोग, पंथाचक्र, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र जातक शान्ति, रोहिणीचक्र मृतकार्य, रात्रिदिनमान, रर-शलाका, रोगीनाडीवेघ, सूर्यकालानक्षत्र, चन्द्रकालानल, मृत्युकालानल, चतुःनाडीचक्र, चउघडिया, विषकन्या, शील-परीक्षा, राशि आयचक्र, खजचक्र, गतवस्तु ज्ञान, पंच तत्त्व, समयपरीक्षा, दिशाचक्र, संक्रान्ति विचार, चतुःमंडल, अकडमचक्र, लग्न और भावफल, सर्वपृच्छा, दीक्षा, वधुप्रवेश, गर्डातयोग, विवाह," इत्यादि विषय है ।

इन विषयों मे पोरसी साढ पोरसी आदि पच्चक्खाण पारने का समय अपने जानुकी छाया से जानने का वतलाया है । गाथा ३३१ से गाथा ४६५ तक वर्ष का शुभाशुभफल लिखा है—वर्ष कैसा होगा ? सुकाल पडेगा या दुष्काल, वर्षा कितनी और कव वरसेगी, धान्यादि वस्तु तेज होगी या मदी इत्यादि जानने का अर्घकांड लिखा है । बाद मे जन्म कुंडलियों का वर्णन है । विजय यत्र आदि लिखने का प्रकार भी लिखा है । ग्रहों की शान्ति के लिये उपासना विधि वतलाई है, एव चौवीस तीर्थंकरों को राशि तथा किसके लिये कौन तीर्थंकर लाभदायक है इत्यादि विषयों का वर्णन है ।

अन्तमे ग्र थकार ने अपनी प्रशस्ति लिखी है—

"गाहा छद विरुद्ध अत्थ विरुद्ध च ज मए भणिय ।
त गीयत्था सव्व करिय पसाउव्व खमियव्व ॥२७६॥
सिरिखरतरगण गुरुणो सूरिजिणचदविजयराएहिं ।
हीरकलसेहिं गुफिय जोइससार हियगरत्थ ॥२७७॥
सोलसए सगवीस वच्छर विक्कम्मविजयदसमीए ।
अहिपुरमज्झे आगम उद्धारिय जोइस हीर ॥२७८॥"

इति श्रीखरतरगच्छे पण्डितहीरकलशमुनिकृति. श्रीज्योतिषसारे द्वितीयस्तरङ्ग सम्पूर्ण. ।

ऐसा महत्वपूर्ण ग्र थ प्रकाशित हो जाय तो जनता को विशेष लाभ हो सकता है ।

महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिक-तत्व

[डा० मनोहर शर्मा]

जैन कवि-कोविदों ने राजस्थान साहित्य की श्रीवृद्धि में अपूर्व योगदान किया है। इनमे महोपाध्याय समयसुन्दरजी का ऊचा स्थान है। आपकी वहुविध रचनाओं से राजस्थानी साहित्य गौरवान्वित है। आप एक साथ ही वहुत वडे विद्वान और और उच्चकोटि के कवि थे। आपने सुदीर्घ काल तक साहित्य-साधना की और जनसाधारण मे शोल धर्म का प्रचार किया। मध्यकालीन भारतीय सन्त-साधकों में उनका व्यक्तित्व निराला ही है।

महोपाध्याय समयसुन्दरजी की साहित्य साधना की यह एक विशेषता है कि उसमें एक साथ ही शास्त्र और लोक दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। जैन मुनि स्वय शीलधर्म का आचरण करके उससे जनसाधारण को भी लाभान्वित करने की दिशा मे सदैव प्रयत्नशील रहे हैं, अत उनके साहित्य मे लौकिक तत्त्वों का प्रवेश स्वाभाविक है। महाकवि समयसुन्दरजी के साहित्य मे तो लोकसाहित्य का रंग भरपूर है। मध्यकालीन राजस्थानी (गुजराती) लोकसाहित्य के अध्ययन हेतु उनका साहित्य एक सुन्दर एव उपयोगी साधन है। इस विषय मे एक वडा ग्रन्थ लिखा जा सकता है परन्तु यहां विषय को विस्तार न देकर सक्षिप्त ज्ञातव्य ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

लोकगीतों की महिमा निराली है। इनमे एक साथ ही शब्द और स्वर दोनो का सरल सौन्दर्य समन्वित मिलता है। यह रसपूर्ण साधन जनसाधारण में किसी भी तत्व का प्रचार-प्रसार करने हेतु परमोपयोगी है। जनता अपने ही स्वरो में गाए जानेवाले ज्ञान-तत्व को सहज ही अपनाकर उसको जीवन का अग वना लेती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को मुनिवरो ने पूर्णतया समझा और इसका अपने गीतो में प्रचुरता से प्रयोग किया। इसका मधुर फल यह हुआ कि उनकी दिव्यवाणी का लोक हृदय मे प्रवेश तो हुआ ही, साथ ही लोकगीतो का अमूल्य भण्डार भी सुरक्षित हो गया। आज प्राचीन राजस्थानी लोकगीतो के अध्ययन हेतु जैन मुनियों के वनाये हुए गीत ही एक मात्र साधन स्वरूप उपलब्ध हैं। उन्होंने अपने गीतो की रचना लोक प्रचलित 'देशियो' के आधार पर की और साथ ही उस गीत की प्रथम पक्ति का प्रारम्भ मे ही सकेत भी कर दिया। 'जैन गुर्जर कवियो' (भाग ३ खण्ड २) मे इन देशियों की विस्तृत सूची का सकलन देखते ही वनता है।

महाकवि समयसुन्दरजी सगती शास्त्र के प्रेमी एव ज्ञाता थे। आपने अपने गीतो को अनेक राग रागनियों के अतिरिक्त तत्कालीन लोक प्रचलित 'ढालो' (तर्जो) मे भी ग्रथित किया है। कहावत प्रसिद्ध है—'समयसुन्दर रा गीतडा नै राणै कुम्भैरा भींतडा।' समयसुन्दरजी के गीतों की यह लोकप्रशस्ति कोई साधारण वात नही है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इस महिमा का मूल कारण उनके द्वारा लोकगीतों की स्वरलहरी को अपना कर उसके आधार पर गीत-रचना करना ही है। इस दिशा में कुछ चुने हुए उदाहरण द्रष्टव्य हैं, जिनमें लोकगीतों का प्रारभिक अश सकेत हेतु दिया गया है—

१ चरणाली चामड रणि चढइ, चख करि राता चोलो रे
विरती दाणव दल विचि, घाउ दीयइ घमरोलो रे.
चरणाली चामड रणि चढइ ।
सीताराम चौपई, खण्ड २, ढाल ३)

२ वेसर सोना की घरि दे वे चतुर सोनार,
वेसर सोना की ।
वेसर पहिरी सोना की रभे नदकुमार,
वेसर सोना की ।
(वही, खण्ड ४, ढाल १)

३ तोरा कीजई म्हांका लाल दारू पिअइजी,
पडवइ पधारउ म्हांका लाल, लसकर लेज्यांजी,
तोरी अजब सूरति म्हाको मनडउ रज्यो रे
लोभी लज्यो जी ।
(वही, खड ५, ढाल ३)

४ सहर भलो पणि साकडो रे, नगर भलो पणि दूर रे,
हठीला वयरी नाह भलो पणि नान्हडो रे लाल ।
आयो आयो जोवन पूर रे, हठीला वयरी
लाहो लइ हरपालका रे लाल ।
(वही, खड ५, ढाल ४)

५ लका लीजइगी, पुणि रावण लका लीजइगी ।
ओ आवत लखमण कउ लश्कर, ज्युं घण उमटे श्रावण ।
(वही खड ६, ढाल २)

६ रे रगरता करहला, मो प्रीउ रत्तउ आणि,
हुं तो ऊपरि काढि नइ, प्राण करू कुरवाण,
मुरगा करहा रे, मो प्रीउ पाछउ वालि,
मजीठा करहा रे ।
(वही, खड ७, ढाल ३)

७ मिहरां सिरहर सिवपुरी रे, गढा वडउ गिरनारि रे,
राण्या सिरहरि रुकमिणी रे, कुमरा नन्दकुमार रे,
कसासुर-मारण आविनइ,
प्रल्हाद-उधारण रास रमणि घरि आज्यो,
घरि आज्यो हो रामजी, रास रमणि घरि आज्यो ।
(वही, खण्ड ७, ढाल ५)

८ सूवरा तु सूलताण,
बीजा हो, बीजा हो थारा सूंवरा ओलगू हो
(वही, खण्ड ८, ढाल ६)

९ अम्मां मोरी मोहि परणावि हे,
अम्मां मोरी जेसलमेरा जादवां हे,
जादव मोटा राय, जादव मोटा राय हे.
अम्मां मोरी कडि मोरी नइ घोडै चढै हे ।
(वही, खण्ड ८, ढाल ७)

१० गलियारे साजण मिल्या मारुराय,
दो नयणा दे चोट रे घण वारी लाल ।
हसिया पण बोल्या नही मारुराय,
काइक मन मांहि खोट खोट रे,
आज रहउ रगमहल मइ मारुराय ।
(वही, खड ९, ढाल २)

११ दिल्ली के दरबार मइं लख आवइ लख जाइ,
एक न आवइ नवरगखान जाकी पघरी ढलि
ढलि जावइ वे,
नवरग वइरागी लाल ।
(वही, खण्ड ९, ढाल ४)

यहां महाकवि समयसुन्दरजी के द्वारा अपने गीतों मे प्रयुक्त केवल ग्यारह 'देशियों' के सकेत दिये गए है, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इन 'देशियो' के गीत विविध प्रकार के है । इनमे भक्तिरस के साथ ही शृ गाररस भी है और साथ ही सामाजिक जीवन की झलक भी स्पष्ट है । महाकवि ने कई जगह पर गीत के प्रचलन-स्थान की भी सूचना दी है, जैसे 'ए गीत सिंध माहे प्रसिद्ध छइ' 'ए गीतनी ढाल जोधपुर, नागौर, मेड़ता नगरे प्रसिद्ध छइ' आदि । इतना ही नही, कहीं-कही प्रयुक्त 'देशी' के गेयतत्व के सम्बन्ध में भी सूचना दी गई है, जैसे —

१ 'जा जा रे बांधव तुं बडउ'
ए गुजराती गीतनी ढाल
अथवा 'वीसरी मुन्हें वालहइ' तथा हरियानी
(सीताराम चौपई, खण्ड ४, ढाल २)

२ एहनीं ढाल नायकानी ढाल सरीखी छइ
पण आंकणी लहरकउ छइ।
(वही, खण्ड ५, ढाल ४)

३ ए गीतनी ढाल राग खभायती सोहलानी।
वही खण्ड ८, ढाल ७)

यहा तक महाकवि के गीतों में प्रयुक्त लोक-सगीत पर चर्चा हुई है। आगे उनके गीतो में प्रयुक्त लौकिक दोहों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जो एक निराली ही छटा प्रकट करते है। लोक और शास्त्र का यह समन्वय अन्य राजस्थानी कवियो में भी अनेक देखा जाता है और यह परम्परागत चीज है। नमूने के तौर पर यहा महाकवि समयसुन्दरजी का एक पूरा गीत दिया जाता है—

श्रीस्थूलिभद्र गीतम्

(राग सारग)

प्रीतडिया न कीजइ हो नारि परदेसिया रे,
खिण खिण दाझइ देह।
वीछडिया वाल्हेसर मलवो दोहिलउ रे,
सालइ सालइ अधिक सनेह ॥प्रीत०॥
आज नइ तउ आव्या काल उठि चालवु रे,
भमर भमता जोइ।
साजनिया वोलावि पाछा वलता थका रे,
धरती भारणि होइ ॥प्रीत० ॥
राति नइ तउ नावइ वाल्हा नींदडी रे,
दिवस न लागइ भूख।
अन्न नइ पाणी मुझ नइ नवि रुचइ रे,
दिन दिन सबलो दुख ॥ प्रीत० ॥
मन ना मनोरथ सवि मनमा रह्या रे,
कहियइ केहनइ रे साथि।
कागलिया तो लिखता भीजइ आंसूआं रे,
आवइ दोखी हाथि ॥ प्रति० ॥
नदियां तणा व्हाला रेला वाल्हा रे,
ओछा तणां सनेह।
वहता वहइ वाल्ह उंतावला रे,
झटकि दिखावइ छेह ॥ प्रीत० ॥
सारसडी चिडिया मोती चुगइ रे,
चुगे तो निगले कांइ।
साचा सदगुरु जो आवी मिलइ रे,
मिले तो विछुडइ कांइ ॥ प्रीत० ॥
इण परि स्थूलिभद्र कोशा प्रतिवूझवी रे,
पाली-पाली पूरब प्रीति सनेह।
शील सुरगी दीधी चुनडी रे,
समयसुन्दर कहइ एह ॥ प्रीत० ॥

(समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, पृष्ठ ३११-३१२)

उपर्युक्त गीत की प्रायः सभी 'कडियों' में लोक-प्रचलित दोहो का सरस एव सुन्दर प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है, जिनमें निम्न दोहे तो अति प्रचलित हैं—

राति न आवइ नींदडी, दिवस न लागइ भूख।
अन्न पाणी नवि रुचइ, दिन दिन सवलो दूख ॥ १ ॥
डूगर केरा वाहला, ओछा केरा नेह।
वहता वहइ उतावला, झटकी दिखावइ छेह ॥ २ ॥
सारसडी मोती चुगै, चुगै तो निगलें काय।
साचा प्रीतम जो मिलै, मिलै तो विछुडै काय ॥ ३ ॥

लोक साहित्य का दूसरा प्रमुख अग लोककथा है। लोककथाओं के सरक्षण मे जैन विद्वानो का योगदान अत्यन्त सराहनीय है। उन्होने शीलोपदेश हेतु अनेक लोककथाओं का प्रयोग किया है और साथ ही उन्हें लिखकर भी सुरक्षित कर दिया है। उनकी टीकाओं में भी लोक-

कथाओं का वालाववोध हेतु प्रयोग हुआ है। इस प्रकार वालाववोध टोकाए लोककथाओ के अध्ययन के लिए बड़ी उपयोगी है। जैन कवियो ने अपने कथा-काव्यो मे भी प्रचुरता के साथ लोककथाओं का आधार ग्रहण किया है। इस प्रक्रिया ने एक नया ही वातावरण वना दिया है। वहा लोककथाओ को साघारण परिवर्तन के साथ धार्मिक परिवेश मे प्रस्तुत किया गया है। पात्रो एवं स्थानों के नाम रख दिए गए है और उनके सुख-दु ख का कारण पूर्वजन्म के भले अथवा बुरे कर्मो को प्रगट किया गया है। जिस प्रकार वौद्ध कथा-साहित्य मे लोककथाओं का धार्मिक दृष्टि से प्रयोग हुआ है, वैसा ही कुछ जैन साहित्य मे भी हुआ है। परन्तु दोनो जगह प्रयोग करने की शैली मे कुछ भिन्नता अथवा अपनी विशेपता है। साथ ही व्यान रखना चाहिये कि एक ही लोककथा को आधार मान कर अनेक जैन विद्वानो ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है, जो उन लोककथाओ की जनप्रियता तथा वोधपूर्णता की सूचक है। महाकवि समयसुन्दरजो ने भी अनेक कथा-काव्यों की रचना की है, जिनको परम्परा के अनुसार 'रास' 'चौपई' अथवा 'प्रवध' नाम दिया गया है। यह विषय अति-विस्तृत विवेचना की अपेक्षा रखता है परन्तु यहा स्थानाभाव के कारण उनकी केवल एक रचना पर ही कुछ चर्चा की जाती है। महाकवि प्रणीत 'श्री पुण्यतर चरित्र चौपई' नामक कथाकाव्य प्रसिद्ध है, जो श्री भवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित समयसुन्दर रास पंचक मे प्रकाशित हो चुका है। इस काव्य की वस्तु सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है—

धर्मात्मा पुरन्दर सेठ के पुण्यश्री नामक पतिव्रता पत्नी थी, परन्तु उनके कोई पुत्र न था। अत वे उदास रहते थे। आखिर सेठ ने पुत्र हेतु कुलदेवी की आराधना की, जिसके वरदान से उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम पुण्यसार रखा गया और उसका बड़े दुलार से पालन किया गया।

जब पुण्यसार वडा हुआ तो उसको पढने के लिए पाठशाला में भेजा गया। उसी पाठशाला में सेठ रत्नसार की पुत्री रत्नवती भी पढती थी। वह पुरुष-निंदक थी। एक दिन इन दोनों मे विवाद हो गया और पुण्यसार ने रत्नवती को पत्नी के रूप में प्राप्त करने का निश्चय प्रकट कर दिया।

पुण्यसार ने घर आकर अन्न-पान छोड दिया और रत्नवती से विवाह करने का निश्चय सबको कह सुनाया। उसका पिता पुरन्दर सेठ नगर मे वडी प्रतिष्ठा रखता था। वह रत्नसार के घर गया और अपने पुत्र के लिए उनकी पुत्री रत्नवती को मांग को। परन्तु रत्नवती इस सम्वन्ध के लिए एकदम नट गई। फिर भी उसके पिता ने उसे अवोध समझ कर उसकी सगाई पुण्यसार के साथ कर दी।

जब पुण्यसार कुछ और बडा हुआ तो वह जुआरियों की सगत मे पड गया और एक दिन उसके पिता के यहां धरोहर रूप में पडा हुआ रानी का हार जुए मे हार गया। फल यह हुआ कि पुण्यसार को अपना घर छोडना पडा और वह जगल मे जाकर एक वड़ के कोटर में रात विताने के लिए वैठ गया।

रात्रि के समय उस वड के पेड़ पर पुण्यसार ने दो देवियो को परस्पर मे वातचीत करते हुए सुना। उनके वार्तालाप से प्रगट हुआ कि वल्लभी नगर मे सुन्दर सेठ ने अपनी सात पुत्रियों के विवाह की पूर्ण तैयारी कर रखी है और लम्बोदर के आदेश से उनके लिए वर पाने की प्रतीक्षा मे वैठा है। यह कौतुक की वस्तु थी। अत उसे देखने के लिए उन देवियों ने वटवृक्ष को मन्त्र प्रभाव से उडाया और वे वल्लभी आ पहुँची। कहना न होगा कि पुण्यसार भी वृक्ष के कोटर में वैठा हुआ वहीं आ पहुँचा। फिर दोनों देवियाँ नायिका के रूप में

सुन्दर सेठ के यहां चली तो पुण्यसार भी उनके पीछे हो लिया। आगे सेठ ने अपनी सातो पुत्रियों का विवाह उसके साथ करके बड़ा सुख माना।

विवाह के बाद पुण्यसार अपनी पत्नियों के साथ महल में गया परन्तु उसे चिन्ता थी कि कहो वटवृक्ष उड कर वापिस न चला जावे। वह देह-चिन्ता की निवृत्ति-हेतु अपनी गुणसुन्दरी नामक पत्नी के साथ महल से नीचे आया और वहां एक दीवार पर इस प्रकार लिख दिया—

किहां गोपाचल किहां वलहि, किहां लम्बोदर देव।
आव्यो वेटो विहि वसहि, गयो सत्तवि परणेवि॥
गोपाचलपुरादागा, वल्लभ्या नियतेर्वशात्।
परिणीय वधू ' सत्त, पुनस्तत्र गतोस्म्यहम्॥

इसके वाद पुण्यसार वहां से चुपचाप चल कर उसी वटवृक्ष के कोटर मे आ वैठा और देवियो के साथ उडकर वापिस अपने स्थान मे आ गया।

अगले दिन पुरन्दर सेठ पुत्र की तलाश करता हुआ उसी वड के पास आ पहुँचा और पुत्र को वस्त्रालकारों से सुसज्जित देख कर परम प्रसन्न हुआ। सेठ अपने वेटे को घर ले गया और उसके लाए हुए गहनों को वेच कर रानी का हार प्राप्त कर लिया गया। अव पुण्यसार ने जुए का व्यसन त्याग दिया और वह पिता के साथ अपनी दूकान पर काम करने लगा।

इधर वल्लभी मे जामाता के अचानक चले जाने के कारण सुन्दर सेठ के घर में वडी चिन्ता फैल गई और उसकी सातों पुत्रियाँ विरह में विलाप करने लगीं। गुण-सुन्दरी ने पुण्यसार द्वारा दीवार पर लिखे हुए लेख को पढ कर अपने पति का पता लगाने का निश्चय किया। वह पुरुषवेश धारण करके गुणसुन्दर व्यापारी के रूप मे गोपा-चल आ पहुँची और वहाँ थोडे ही समय मे उसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

यहाँ गुणसुन्दर (युवक-व्यापारी) पर रत्नवती की नजर पडी तो वह उसके रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई और उसी के साथ विवाह करने का निश्चय किया। रत्नसार सेठ ने अपनी पुत्री के विवाह हेतु गुणसुन्दर को कहा परन्तु वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। फिर वहुत आग्रह किए जाने पर उसे रत्नवती का पाणि-ग्रहण करना ही पडा।

गुणसुन्दरी ने ६ मास की अवधि मे अपने पति का पता लगा लेने का प्रण किया था। यह अवधि समाप्त होने पर उसने गोपाचल में अग्निप्रवेश करने का निश्चय किया। राजा ने उसे रोका और पुण्यसार को उसे समझाने के लिए भेजा। इस समय वार्तालाप मे सारा भेद प्रकट हो गया और गुणसुन्दर ने नारी-वेश धारण कर लिया।

सुन्दर सेठ की पुत्री का विवाह गुणसुन्दर के साथ हुआ था, जो स्वय एक नारी था। अव उसके पति की समस्या सामने आई तो स्वभावत ही पुण्यसार उसका पति माना गया। अत में गुणसुन्दरी की ६ वहनो को भी वल्लभी से गोपाचल वुलवा लिया गया और पुण्यसार अपनी आठो पत्नियों के साथ आनद से रहने लगा।

पुण्यसार विषयक उपर्युक्त कथा के प्रमुख प्रसग इस प्रकार के है, कि वे अन्य लोककथाओ में कुछ वदले हुए रूप मे भी मिलते हैं। उनका सामान्य परिचय नीचे लिखे अनुसार है—

१ देवी अथवा देव की आराधना से सतानहीन व्यक्ति को पुत्र की प्राप्ति।

२ युवक तथा युवती का पाठशाला मे एक साथ पढना और उनमें परस्पर प्रेम अथवा विवाद का पैदा होना।

३ सेठ-पुत्र का विशिष्ट कन्या से विवाह के लिए हठ करना और उसकी इच्छापूर्ति होना।

४ धन खो देने के कारण सेठ-पुत्र का पिता द्वारा अपने घर से निकाला जाना।

५ किसी वृक्ष के नीचे सोए हुए अथवा छिपे हुए कथानायक द्वारा देवों अथवा पक्षियों की बातचीत सुनना तथा उससे लाभान्वित होना।

६ उड़ने वाले वृक्ष पर बैठकर कथानायक का दूर देश मे पहुँचना और वहाँ धन प्राप्त करना तथा विवाह करना।

७ कथानायक का देववाणी से दूर-देश मे विवाहित होना।

८ वर द्वारा दीवार पर या वधू के वस्त्र पर कुछ लिख कर चुपचाप अज्ञात-दशा में चले जाना।

९ वधू द्वारा पुरुष-वेश धारण करके अपने पति की तलास मे निकलना और अत में अपने पति का पता लगाने मे सफल होना।

१० पुरुष-वेश धारण करने वाली युवती का अन्य युवती से विवाह होना और अत में उसके पति को उसका परिणीता पत्नी के रूप मे प्राप्त होना।

११ घर से निकले हुए युवक कथानायक का अत में धन-सम्पन्न होना तथा उसे सुन्दरी पत्नी प्राप्त होना।

महाकवि समयसुन्दरजी ने अपने काव्य के अत मे जैन-परम्परा के अनुसार कथानायक के पूर्वजन्म का वृत्तान्त देकर उसे समाप्त किया है परन्तु उपर्युक्त प्रसगों पर ध्यान देने से विदित होता है कि वे देश-विदेश की अनेक लोककथाओं मे सहज ही देखे जा सकते है और कुल मिला कर एक रोचक लोककथा का ठाठ सामने खडा कर देते है।

इस कथानक मे वह पद्य पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करता है, जिसे वर एक दीवार पर अपने परिचय हेतु लिख कर चुपचाप चला जाता है। इसी प्रकार की अन्य लोककथा मे यह पद्य अनेक रूपान्तरों मे देखा जाता है। 'ठकुरै साह री बात' में पद्य का रूप इस प्रकार है —

सरसो पाटण सरस नय, सुसरै ठकुरो नांव।
ईसर तूठे पाईये, आ गैहण ओ गांव॥

उपर्युक्त कथावस्तु मे पुरुषवेश धारण करने वाली नारी द्वारा दूसरी नारी के साथ विवाह करना भी आश्चर्यजनक घटना है। यह घटना अंग्रेज-कवि शेक्सपीयर विरचित 'बारहवीं रात' (Twelfth Night) नामक प्रसिद्ध नाटक के कथानक का सहज ही स्मरण करवा देती है, जिसमें समान रूप वाले भाई-बहिन घर से निकलते है और अंत में आश्चर्यजनक रूप से उनके प्रेम-विवाह सम्पन्न होते है। वहाँ बहिन पुरुषवेश मे एक 'ड्यूक' की सेवा करती है, जो आगे जाकर उसका पति बनता है। इन दोनों कथानकों मे विशेष समानता न होने पर भी पुरुषवेश-धारिणी नारी पर दूसरी नारी का मुग्ध होना और उसके साथ विवाह करने के लिए इच्छा करना तो स्पष्ट ही है। इतना ही नहीं, वह भ्रम मे पड़ कर उसी के समान रूप वाले उसके भाई से विवाह भी कर लेती है, जिसके साथ उसका पूर्व-परिचय नहीं है। महाकवि शेक्सपीयर ने अपने नाटक का कथानक किसी लोककथा के आधार पर ही खडा किया है। इस प्रकार लोककथाओं की सार्वभौमिक समप्राणता सिद्ध होती है।

महाकवि समयसुन्दरजी ने अपनी कथानक रचनाओं मे स्थान-स्थान पर लोक-सुभाषितों का प्रयोग करके उनको सजाया है। इस क्रिया से उनकी रचना मे सामर्थ्य का सचार हुआ और साथ ही अनेक लोक-सुभाषितो का सहज ही सरक्षण भी हो गया। राजस्थान के अन्य कवियों ने भी इसी प्रकार लोक-सुभाषितो का अपनी रचनाओं मे बडे चाव से प्रयोग किया है। 'बातों' मे तो इनका प्रयोग और भी अधिक रुचि से हुआ है। इन लोक-सुभाषितों मे कई प्राकृत-गाथाए भी हैं, जो काफी लम्बे समय से चली आ रही थी और थोडी-बहुत रूपान्तरित होकर लोकमुख पर अव-

स्थित थीं। यही कारण है कि ऐसी गाथाओ को अनेक रूपो में प्रयुक्त देखा जाता है। आगे समयसुन्दरजी की रचनाओं मे प्रयुक्त कुछ प्राकृत-गाथाओ के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ किं ताणं जम्मेण वि, जणणीए पसव दुक्ख जणएण।
पर उपयार मुणो विहु, न जाण हिययमि विप्फुरई ॥१॥
दो पुरिसे धरउ धरा, अहवा दोहिं पि धारिया धरिणी।
उवयारे जस्स मई, उवयार जो नवि म्हुसई ॥२॥
लच्छी सहाव चला, तओ वि चवलं च जीविय होई।
भावो तउ वि चवलो, उपयार विलवणा कीम ॥३॥

२ दीसइ विविह चरियं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण विसेसो।
अप्पाण च कलिज्जइ, हिंडिज्जइ तेण पुहवीए ॥१॥
(प्रियमेलक चौपई)

३ गेहंपि त मसाण, जत्थ न दीसइ धूलि धूसरीया।
आवति पडंति रडवडति, दो तिन्नि डिंभाडं ॥१॥
(पुण्यसार चरित्र चौपई)

आगे राजस्थानी भाषा के कुछ लोक प्रचलित सुभाषित द्रष्टव्य है—

१ घरि घोडउ नइ पालउ जाइ,
वरि घोणउ नइ लूखउ खाइ।
घरि पलग नइ धरती सोयइ,
तिण री वइरी जीवतइ नइ रोवइ ॥
(प्रियमेलक चौपई)

२ छट्ठी राते जे लिख्या, मत्थइ देइ हत्थ।
देव लिखावइ विह लिखइ, कुण मेटिवा समत्थ ॥
(चपक सेठ चौपई)

३ जसु घरि वहिल न दीसइ गाडउ,
जसु घरि भइसि न रीके पाडउ।
जसु घरि नारि न चूडउ खलकइ,
तसु घरि दालिद वहरे लहकइ ॥

४ दोकडा वाल्हा रे दोकडा वाल्हा।
दोकड़े रोता रहइ छे काल्हा ॥
दोकडे ताल मादल भला वाजइ।
दोकडे जिणवर ना गुण गाजइ ॥
दोकडे लाडी हाथ वे जोडइ।
दोकडा पाखइ करडका मोडइ ॥
(धनदत्त श्रेष्ठि चौपई)

५ जासु कहीयै एक दुख, सो ले उठे इकवीस।
एक दुख विच मे गयो, मिले वीस बगसीस ॥
(पुण्यसार चरित्र चौपई)

ऊपर जो लोक प्रचलित सुभाषित प्रस्तुत किये गए हैं, वे जनसाधारण मे कहावतों के समान काम में लाये जाते रहे हैं। कहावत के समान ही उक्तियो के द्वारा वक्ता अपने कथन को प्रमाण-पुष्ट बनाकर सतोष मानते है। साथ ही ध्यान रखना चाहिये कि महाकवि समयसुन्दरजी ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर राजस्थानी कहावतो का भी वडा ही सुन्दर प्रयोग किया है। आगे इस सम्बन्ध में कुछ चुने हुए उदाहरण दिये जाते हैं—

१ ऊखाणउ कहइ लोक, सहिया मोरी,
पेटइ को घालइ नही, अति वाल्ही छुरी रे लो।
(सीताराम चौपई, खण्ड ८, ढाल १)

२ जिण पूठइ दुसमण फिरइ, गाफिल किम रहइ तेह रे,
सूतां री पाडा जिणइ, दृष्टात कहइ सहु एहरे।
(समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, पृ० ४३५)

३ उघतइ विछाणउ लाधउ, आहीणइ बूझाणउ वे।
मुग नइ चाउल माहि, घी घणउ प्रीसाणउ वे ॥
(सीताराम चौपई, खण्ड १, ढाल ६)

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिक-तत्व प्रचुर परिमाण में प्रयुक्त है और यही कारण है कि उनकी रचनाओं को इतनी जनप्रियता प्राप्त हुई है। इस विषय पर विस्तार से विचार किया जाय तो कई रोचक तथ्य प्रकट होंगे। आशा है राजस्थानी-साहित्य के अध्येता इस दिशा मे प्रयत्नशील होकर अपने परिश्रम का उपयोगी एव मधुर फल साहित्य-जगत् को भेंट करेंगे।

योगनिष्ठ आचार्य बुद्धिसागरसूरिजी रचित गुंहली

(१) श्री अभयदेवसूरि नी गुंहली

राग—भवि तमे वदो रे

भविजन भावे रे, अभयदेवसूरि वंदो,
आगमज्ञानी रे, मुनि वाचक सूरि इदो,
नव अंगो नी वृत्ति करी ने, जग आगम प्रसराव्यां,
जेनी टीकाओ वांची ने, मुनिगण मन हरखाया, भवि—१
चैत्यवासी श्री द्रोणाचार्य, शोधी टीकाओ भावे,
महावीर पाटे मोटा भक्तो, भक्ति रागना दावे, भवि०-२
वर्त्तमान मां अभयदेवसूरि, टीकानी शुभ स्हाय,
बुद्धिसागर सकल सघने, उपकारी सूरिराय, भवि०-३

(२) श्रीजिनदत्तसूरिजी नी गुंहली

राग--अली सहेली ए

जिनदत्तसूरि, जैनधर्म वृद्धि करनारा थइ गया
शासन शोभा, कारक जेनो नवा करी शोभा लह्या;
जिनदत्तसूरि जगमां दादा, केह्वाया गुण गणधि सादा
धन्य धन्य पिताजी ने माता ··जिनदत्त-१
जगमां जिन शासन उजवाल्यु, धर्मी जीवन सघलु गाल्यु,
घटमां परमातम पद भाल्यूं···जिनदत्त-२
खरतर गच्छे बहु पकाया, दादा भारत सघले छाया,
बुद्धिसागर गुणी गुण गाया·· जिनदत्त-३

(३) श्रीमद् आनंदघनजी नी गुंहली

राग—अली साहेली जगम तीरथ जावा उभी रहेने,

आतमज्ञानी आनदघन जोगी, वदो नरनारी,
प्रख्यात थया बहु दर्शन मां, खाखी अतिशयधारी,
जेना मन नही म्हारु त्हारु, साचु ते मान्यु मन सारु
आतम संयम मा मन धारु···आतम०-१
नदी काठे जंगल मां वसिया, शुद्धातम नां थइया रसिया,
जे ध्यान समाधि उल्लसिया· आतम०-२
सिद्धियो प्रगटी रही स्हामी, परसिद्धिना नहीं जे कामी;
निशदिन रहेता आतम रामी·· आतम०-३
पहाडो गुफा मां बहु रहीया, शुद्धातम दर्शन जे लहीया,
अध्यात्म मार्ग विषे वहिया · आतम०-४
वाचकजी ए स्तवना कीधी, पाम्या संगत समता सिद्धि
चोवीस पद आतम ऋद्धी ·· आतम०-५
अवधूत अलख मुनि अवतारी, फकीराई जेनी सुखकारी,
बुद्धिसागर गुरु जयकारी आतम०-६

(४) श्रीमद् देवचन्द्रजी नी गुंहली

राग—व्हाला गुरुराज उपदेश आपे।

गुरुदेवचन्द्र जी पद वदो, भवोभवना पाप निकदो, गुरु०
रच्या ग्रन्थ घणा गुणकारी, नयचक्र आगमसार भारी
बीजा ग्रन्थ घणा सुखकारी—गुरु० १
जेह अध्यातम उपयोगी, जेह आतम गुण गण भोगी
तत्त्वज्ञानी सहज गुण योगी—गु० २
निज शुद्धातम दिल प्यारो, मोह भाव ने मान्यो न्यारो,
जेना घट मा ज्ञान अपारो—गु० ३
जैन शासन नी करी सेवा, पाम्या आतम सुखना मेवा,
प्रभु भक्ति नी साची हेवा—गु० ४
जैन कौम मा जेह प्रसिद्ध, जेना ग्रन्थ दिये सुख ऋद्धि,
बुद्धिसागर ल्हावो लीव—गु० ५

महाकवि जिनहर्ष : मूल्याङ्कन और सन्देश

[डॉ० ईश्वरानन्द शर्मा एम० ए० पी-एच० डी०]

अठारहवीं शती के खरतरगच्छीय जैन साधु महाकवि जिनहर्ष वागीश्वरी के वरदपुत्र थे। वे जन्मजात काव्य-प्रतिभा, नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना और विचारसार-सदोह के धनी थे। उनकी श्रमशील कुशल लेखनी सरस काव्य प्रणयन में षष्ठि ६० वर्ष पर्यन्त निरन्तर सलग्न रही। उस सुदीर्घ अवधि में उन्होंने पाँच महाकाव्यों, उन्नीस एकार्थ काव्यों एवं लगभग पैंतालीस खण्डकाव्यो एव शतश मुक्तकों से मा भारती के भडार को सभरित किया। चतु शती रचनाओं के प्रणेता वाचक एव गायक जिनहर्ष सरस रास कथाकारों मे भी शीर्षस्थ स्थान रखते है। गीतकारों, भक्तिपदप्रणेताओं और लोकसाहित्य सर्जकों में उनका वैशिष्ट्य निर्विवाद है। भावों की अनुपम अजस्र अभिव्यक्ति, भाषा की प्राणवन्त अभिव्यंजना, जीवन की समग्रता का व्यापक आयाम, मर्मस्थलो का सस्पर्श, व्यापक वैदुष्य और कवि-हृदय की सहृदयता आदि विशिष्ट गुण उन्हें कलाकोविद रसिक पाठक समुदाय का कलकठहार बना देते है। वे खरतरगच्छीय क्षेमकीर्त्ति शाखा में दीक्षित मुनि थे, किन्तु उनका भावप्रवण मानस किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह, दुराग्रह और धर्मासहिष्णुता से सर्वथा मुक्त था। जातिभेद, धर्मभेद और सीमित साम्प्रदायिक दृष्टि-कोण से वे ऊपर उठ चुके थे। राग, द्वेष, ईर्ष्या, गच्छ-मोह, जैसे दुर्गुण उनके उत्तुग शिखर के समान व्यक्तित्व के सम्मुख बौने से प्रतीत होते थे।

जन्मना के राजस्थानी थे, लेकिन उनके देशप्रेमी कविने भारतभूमि के विविध स्वरूपों को अपनी सरस्वती में रूपायित किया है। आर्यावर्त, भारतवर्ष, भरतक्षेत्र आदि नाम उन्हें विशेष प्रिय थे। निर्मल नीरगगा, श्याम जलराशि जमुना, परम पवित्र गोदावरी, अन्त सलिला सरस्वती, रजताभ रेवा, सवेगा सरयू, नद्‌रूप सिन्धु आदि नदियों, हिमाचल, विन्ध्याचल, गिरिनार, वैताढ्य, रैवतक, शत्रुजय प्रभृति पर्वतों, विविध जन्तुसकुल वनों, पुष्पराजि शोभित उपवनों, शतदल विभूषित सरोवरो के वर्णन में कवि का देशप्रेम अभिव्यक्त हुआ है। उनके काव्य में टुहकती कोकिल, गुजनरत मधुप, धनगर्जित वनराज, मदझरित गजराज, चपल विलोचन हरिण, पयस्वती धेनु का भूरिश वर्णन-चित्रण मिलता है। जैनतीर्थों की सुषमा, प्राचीन भारतीय नगरियों का वैभव और अभ्रकष देव-मन्दिरों का सौन्दर्यवर्णन—उनकी वाणी को प्रबल वेगवती बनाता रहा है। भारतीय राजा, प्रजा, शासन-व्यवस्था का मनोरम काव्यमय चित्रण कर उन्होंने अपने देशप्रेम का प्रकटन ही किया है। कवि ने भारत भूमि की ईषद् वर्तुल आकृति को चढी सींगडी के सदृश बताकर मौलिक अप्रस्तुत का पुरःस्थापन ही नही किया; अपितु दक्षिणा-वर्त्त की भौगोलिक आकृति का स्वरूप साम्य भी व्यजित किया है (चन्दनमलयागिरि चौपई पृष्ठ ४)। कवि की स्वदेश भक्ति का इससे बडा प्रमाण और क्या हो सकद है कि वे आर्यदेश में जन्मको प्रबल पुण्यका कारण मानते है और अपनी अचल आस्था व्यक्त करते है कि भारत में उत्पन्न हुए बिना पामर प्राणीको ऐहिक सुख और पारलौकिक शान्ति प्राप्त ही नही हो सकते (शत्रुजय रास पृष्ठ १७३)।

कविका वैदुष्य व्यापक और गहन था। उन्हें राज-स्थानी, गुजराती और सस्कृत भाषा का विशिष्ट ज्ञान

था। ज्योतिष शास्त्र में उनकी विशेष अभिरुचि थी। शास्त्रों के निदिध्यासन, विद्वत् प्रवचन-श्रवण, और लक्षण ग्रन्थों के पठन-पाठन से उनकी प्रतिभा शाण पर चढे मणि-रत्नके समान देदीप्यमान हो गयी थी। उन्हें जैन और जैनेतर धर्म ग्रन्थों का तलस्पर्शी बोध था। काव्यशास्त्र के वे निष्णात विद्वान् थे। स्वाध्याय प्रियता ने उन्हे पुराण, इतिहास, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, शालिवाहन प्रभृति शास्त्रो का प्रकाण्ड पण्डित बना दिया था। ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी उनके विशेष ज्ञान का निदर्शन निम्नांकित पद मे प्रकट है। वीरसेन और कुसुमश्री के विवाह मुहूर्त्त के विषय मे वे लिखते हैं :—

"वीरसेन कुमारनी वृषराशि कहाइ।
मिथुन राशि कन्यातणी, थापी ज्योतिष राइ॥
गौरी गुरुवल जोइयू, विदनइ रविवल जोइ।
चन्द्र विहू नई पूजतोकैं, जोयो यूं सुप होइ॥
दूषण दस साहा तणा, टाल्या गणिक सुजाण॥
माहौं-माहिं विचारनइ, कीधनु लगन प्रमाण॥

कुसुमश्री रास पृष्ठ ४

कहने की आवश्यक्ता नहीं कि कवि ने विवाह मुहूर्त्त और लग्न देखने की पूरी पद्धति का यहाँ विधिवत् उल्लेख किया है। कवि अपनी चलती कविता मे भी समय का निर्देश ज्योतिष को साकेतिक भाषा में करता है—जैसे—
"करक्क लगन्न भयो वर सुन्दर, राम करै तो सही सुखपावे।

ग्रन्थावली पृष्ठ ४०६

उत्तराषाढा विद्युवास 'लालरे'

[शत्रुञ्जय महात्म्य रास पृष्ठ ६२]

कवि ने नवग्रहगर्भित स्तवनों मे भी अपनी ज्योतिष सम्बन्धी अभिरुचि को प्रकट किया है। कवि का ज्योतिष विद्या पर कितना पाण्डित्य था, उसका निर्देशन नीचे कूटशैलो मे लिखे पद मे द्रष्टव्य हैं —

"पंचम प्रवीणवार, सुणो मेरी सीष सार,
तेरमो नखत भैया, नौमी रासि दीजिये।
छहुण आये ते द्वारि, मातन को तात छारि,
तातन को तात किये, सुजस लहीजिये।
तीसरी संक्रांति तू तो, दसमी हि रासि पासि,
कुगति को घर मनू चौथी रासि गीजिये।
पर प्रिया छिपा रासि, सातमी निहारि प्यार,
जिनहर्ष पंचम रासि, उपमा लहीजिये॥"

मृगाक्लेखा रास पृष्ठ १३

ज्योतिषशास्त्र के समान ही शकुनशास्त्र मे भी कवि की गति और रुचि थी। उनके काव्यों में अनेक प्रकरणों में चक्रवर्त्ती सम्राट, महापुरुष और उच्चकोटि के त्यागी पुरुषों के लक्षण वर्णित हुए हैं। शुभ शकुनों की सूची पठितव्य हैं :—
'तरु ऊपर तीतर लवइ, घुडसिरि सेव करत।
शकुन प्रमाण जांणिज्यो, एक अनेक विरतंत॥
भैरव तीतर कूकरइ, जाहिणजो वासेह।
एके कज्जे नीसर्या, कज्जा सयल करेह॥
वायस जिमणो ऊतरइ, हुए सावहू स्वान।
शुभ शकुने पामइ सही, पग-पग पुरुष निधान॥

[जि० : ग्र० पृ० ४२४]

शकुनशास्त्र के समान सामुद्रिक शास्त्र में भी कवि का ज्ञान अत्यन्त व्यापक था। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—
'दीठा लक्षण नृप तणां, मेंगल मच्छ आकार।
धज मायर तोरण धनुष, छत्र चामर उदार'॥

—कुमारपाल रास पृष्ठ ८४

कवि के आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान का परिचय-उसके द्वारा वर्णित अठारह प्रकार के कुष्ठों और उनके कारणो से मिलता है।

'हरिचन्द राजानो रास' और 'कलियुग आख्यान'

नाम्नी रचनाओं में कवि का पौराणिक ज्ञान विजृम्भित हुआ है।

पाटण की राजवंशावली के संवत वार वर्णन मे उसका प्रमाण-पुष्ट ऐतिहासिक ज्ञान प्रकटित होता है।

कवि जिनहर्ष वीतराग साधु होने पर भी लोक विमुख नहीं थे। वे जन-कल्याण को अपनी साधना का अग समझते थे। वे समाज के सच्चे हितचिन्तक थे और अपने ज्ञान, अनुभव तथा आचरणों से उसे सन्मार्ग पर चलाना चाहते थे। कवि का समस्त साहित्य समाज को साथ लेकर चला है। उन्होंने वर्ग-विशेष की तर्कप्रनिष्ठ शुष्क ऊहापोहात्मक मानसिक सतृप्ति का कभी प्रयत्न नही किया। यह भी अनुभव नहीं किया कि साधुवेश में उन्हें गृहस्थ धर्मोपदेश, विवाह विधान, प्रसूता परिचर्या आदि का वर्णन नही करना चाहिये था। वे भेद बुद्धि से सर्वथा परे थे। उनके लिये प्रसूता और नवोढा में कोई अन्तर नहीं था। वे सर्वहित कथन में तत्पर रहते थे। जब भी उन्हें अवसर मिला—उन्होंने उसका सदुपयोग उठाया। इसी सामाजिक कल्याण दृष्टि ने उन्हें समाज का प्रकाश-स्तम्भ बना दिया था।

महाकवि परिवार हीन थे फिर भी पारिवारिकों को सदुपदेश देते थे। उन्होंने अनेक प्रसगो मे उपदेश दिया है कि सुगृहिणी ही गृहमडन है और सुस्वामी ही गृहस्थी का प्राणतत्त्व। सास और वहू को परस्पर प्रेम से रहने की वात पर वे अत्यधिक वल देते हैं। पत्नी को पति से न लडने की सुमति देते है। पितृगृह से श्वसुरगृह के लिए प्रस्थानोद्यत नवोढा को शिक्षा दी गयी है कि उसे सहिष्णुता रखनी चाहिये। सास, ससुर, ननद, देवरानी, जेठानी का अपमान नहीं करना चाहिये। कवि ने सास वहू के वैर को उन्दुर मार्जार का सा सहज वैर कहा है, इसलिए वह वहू को पूर्व सावधानी का पाठ पढाकर उसको गृहस्थी की सुखद कामना करता है। कवि ने विवाह-विधि का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। एक ओर वह कन्यादान का शास्त्रोक्त फल बताता है तो दूसरी ओर वही गेय लोकगीतो की स्मृति भी दिलाता है। उसने राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोकगीत 'केशरियो लाडो को बडे चाव और मनोयोग से गवाया है। कवि ने घर-जामाताओं की अपमानावस्था का चित्रण भी किया है और उन्हे अविलम्ब स्वाभिमानी जीवन के लिए श्वसुर गृह से हट जाने की शुभ सम्मति दी है।

कविने सर्वसाधारण को सत्यपथपर अग्रेसर होने की प्रेरणा दी है। वह पुरजोर शब्दावली मे दुष्ट सग त्याग का आग्रह करता है। ऋण लेने वालों को उसके दुष्फल से परिचित कराता है और कभी भी कर्जा न लेने की शिक्षा देता है। (कुमारपाल रास पृष्ठ १०२)

कवि स्वय भिक्षु याचक था, लेकिन उसने यांचावृत्ति की कटु भर्त्सना की है। वह उन अभागे निर्धन व्यक्तियों से शिक्षा ग्रहण करने को कहता है जो स्त्री के अविचारित उपदेश, दुष्टजन की कुशिक्षा और श्रावणान्त हलकर्षण से भिक्षुक बने भटकते फिरते हैं। कवि ने धन का महत्त्व इसी रूपमें स्वीकार किया है कि वह जीवन के अन्यतम साधना का साधन है। उसे साध्य समझने वालों को उसने फटकार बतायी है। कवि के पुरुष पात्र बहुविवाह करते हैं, परन्तु वह इसके विपरीत है। द्विभार्य पुरुष की वही दुर्गति होती है जो दो पाटो के बीच में पडे अन्न की। कविने 'प्रेमपत्र' लिखने का ढग भी बताया है। उसने यह पत्र विरहिणी नायिका की ओर से प्रवासी प्रियतम को लिखा है। उसने व्यावहारिक उपदेश भी दिया है कि राजा, चोर, शेर, सर्प, बालक, कवि और शस्त्रपाणि को नहीं छेडना चाहिये, अन्यथा ये विनाश कर देते हैं।

कहने की आवश्यकता नही कि महाकवि जिनहर्ष सामाजिकों के अपने ही अभिन्न अग हैं। सास बहू का झगडा हो तो वे वहाँ शान्ति स्थापनार्थ उपस्थित है। पुत्र अनर्जक हो गया है तो वे उसे उपदेश शिक्षण से उपार्जक

वँगाने का अमोघ अस्त्र रखते है । व्याधि मन्दिर शरीर को जलोदर और कुष्ट से संरक्षण के लिए वे पूर्व सावचेती के रूपमें यूकानिगरण और करोलिया भक्षण का क्रमश निषेध करते है । यात्रा, शकुन, लोक, परलोक, विधि विधान-तप, साधना-सयम—इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वह हमारे साथ है,—उनका अनुभव हमे सुदूर तक मार्ग-वोध कराता है ।

निर्गुणोपासनामे ब्रह्म निराकार है । वह अव्यक्त है । गुण-रहित होने के कारण निर्गुण है । घर-घर में वह व्याप्त है । जिनहर्प का 'सिद्ध' कवीर के ब्रह्म से मिलता है । वह भी वीतराग, गुणरहित और निराकृति है । कवीर के ब्रह्म और जिनहर्प के सिद्ध मे इतना ही अन्तर समभना चाहिये कि प्रथम की व्याति सर्वत्र है जवकि द्वितीय की नहीं है । वह चैतन्यावस्थामे आकाश मे स्थान विशेष पर रहता है; जवकि निर्गुणियों का ब्रह्म अगजग मे इस प्रकार घुला मिला है, जिस प्रकार दही मे घी ।

निर्गुणियों का आत्मतत्त्व विश्वव्यापी ब्रह्म का अश है । जवकि जिनहर्प की आत्मा कर्मफल क्षयोपरान्त स्वय ब्रह्म वन जाती है । वह किसी ब्रह्म का अंश नहीं है । इस प्रकार जिनहर्प के समस्त सिद्ध एक-एक ब्रह्म हैं । वे अनेक है, निर्गुणियों का एक है ।

कवीरदास और जिनहर्पने गुरु की महत्ता समान रूपसे स्वीकार की है । दोनों मे ही गुरुकृपा के लिए आकांक्षा है । दोनों ही गुरु के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं । कवीर ने गुरु को गोविन्द से भी वडा कहा है लेकिन जिन-हर्प ऐसा नहीं कह सके हैं । वे गुरु को ईश्वर की-सी महत्ता देते हैं । उनके काव्य मे पचपरमेष्ठियों को पचगुरु की संज्ञा दी गयी है ।

निर्गुणियों ने धर्म के बाह्य आचार का खंडन किया है । उनके आलोचना प्रहार से मदिर मस्जिद तक नहीं बच सके । कर्मकाड जन्मना जाति का उन्होने घोर विरोध किया । उनकी प्रवृत्ति खण्डनात्मक अधिक रही और मण्ड-नात्मक कम ।

महाकवि जिनहर्प ने भी प्रदर्शन निमित्त किये जाने वाले वाह्याचरण का विरोध किया है । उन्होंने जैन और जैनेतर दोनो को फटकारा है लेकिन उनकी प्रवृत्ति खंडन-प्रधान नहीं है । उसमें व्यंग्य का असह्य प्रहार नही है । वे कहते है लेकिन माधुर्य के साथ । इस प्रसग मे यह वता देना अनुचित नहीं होगा कि जिनहर्प ने मूर्त्तिपूजा का खडन नही किया है, हां, मडन अवश्य किया है । उनकी रचना 'जिन प्रतिमा हुँडी रास' का उद्देश्य एक मात्र मूर्त्तिपूजा का समर्थन ही है । मूर्त्तिपूजा के इस बिन्दु पर कवि जिनहर्प निर्गुणियो से मेल नही खाते । निर्गुणियों ने तीर्थ और ब्राह्मणों का घोर विरोध किया है । जिनहर्ष मे यह वात नहीं है । उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्राएँ की थीं और 'तीर्थ चैत्य परिपाटी' की समर्थ रचना से पुण्य स्थल यात्रा के महत्त्व को अभिव्यजित किया था । हिंसा-प्रधान धर्मो का घोर विरोध दोनों ने ही किया है । जिनहर्प हिंसा परक धर्म को धर्म और शस्त्रपाणि देवताओं को देवता स्वीकारने को तत्पर नही है । निर्गुण सम्प्रदाय मे व्रत उपवास पर अनास्था व्यक्त की गयी है । जिनहर्प ने ऐसा नहीं किया है । इस प्रकार हम देखते है कि जिनहर्प और निर्गुण सत वैचारिक मग मे कुछ दूरी तक तो साथ-साथ चलते हैं, पर फिर छिटक जाते हैं ।

सगुण भक्ति में परमात्मा के अंशभूत अवतार की भक्ति की जाती है । यह अवतरण अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के निमित्त होता है । अवतारी प्रभु भक्तों का दुःख भंजन करते हैं । अपनी लीला से ससार को सन्मार्ग दिखाते हैं । वे शील, शक्ति और सौन्दर्य के निधान होते हैं । श्रीराम और श्रीकृष्ण ऐसे ही ईश्वर रूप थे । सूरदास और तुलसीदास के आराध्य वे ही थे । उनकी भक्ति सगुण भक्ति की कोटि मे आती है ।

संचार करते है। ('सूतां हो प्रभु सूतां हो, मुपनां मां मिलइ जी' जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ० १७०)। मीरा का साध्य प्रभु-चरण-वन्दन है। इसी हेतु वह गिरधर गोपाल की चाकरी करने को समुत्सुक है। उसमें बसे प्रभुदर्शन, स्मरण और भावभक्ति का त्रिगुणित लाभ प्राप्त होगा। ('चाकरी मे दरसण पाऊँ-सुमिरण पाऊँ खरची' मीरापदावली पृ० २७)। जिनहर्ष भी केवल आराध्य सेवा की कामना रखते है। उसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ नही चाहिये। (चरण कमलनी चाऊँ चाकरी, हो राज अवर न चाऊँ बीजी वात'—जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ० १८२)।

महाकवि जिनहर्ष बहुपठित और बहुश्रुत थे। उन्होंने अनेक भाषाओं के ग्रन्थ-रत्नो का अध्ययन, मनन किया था। वे सत्सग प्रसंग मे विद्वज्जनो, पट्टधरों और मुनियों के प्रवचन श्रवण से लाभान्वित भी हुए थे। उक्त व्यापक अध्ययन, मनन और श्रवण का प्रभाव उनके काव्यों पर भी पडा है। यह मुख्यत दो रूपों मे उपलक्षित होता है।

१ विचार और भाव-साम्य के रूप मे।

२ प्रचलित पद पक्तियो, सूक्तियों को अविकल स्वीकारने के रूप मे।

महाकवि के महान् काव्यों में ऐसे अनेक भाव और विचार मिलते हैं जिनका वर्णन पूर्ववर्त्ती कवियों की रचनाओं मे उपलब्ध होता है। कतिपय उदाहरण पठितव्य हैं :—

'दुर्जन परिहर्त्तव्यो, विद्यपालङ्कृतोऽपि सन्।
मणिना भूषित· सर्प, किमसो न भयकर ॥

'जिनहर्ष का छायानुवाद भी द्रष्टव्य है :—

खल सगत तजिये जसा, विद्या सोभत तोय।
पन्नग मणि सयुक्त तैं, क्यू न भ'कर होय ॥

इसी प्रसग मे सोमप्रभाचार्य कृत सस्कृत श्लोकों और जिनहर्ष द्वारा विहित उनके भावानुवाद का उदाहरण भी पठितव्य है :—

'स्वर्णस्थाले क्षिपति सरजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्येधभारम्।
चिन्तारत्नं विकिरति कराद् वायसोड्डायनार्थम्।
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्त· ॥

इधन चंदन काठ करे, सुरवृक्ष उपारि धतूरन बोवे।
सोवन थाल भरे रजते, सुधारससूं कर पावहि धोवे।
हस्ती महामद मस्त मनोहर, भारवहाइ के ताइ विगोवे।
मूढ प्रमाद गयो जसराज न धर्म करे नर सोभत पोवे ॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि भावानुवाद में कवि बंधकर नही चला है। उसने 'इंधन चंदन काठ करें' का भाव अपनी ओर से जोडकर मूल श्लोक के भाव को और भी प्रभावक बना दिया है।

निम्नांकित उद्धरणो में भी भावसाम्य दृष्टिगोचर होता है।

'षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एप' कालिदास शाकुन्तलम्—
'लोक दीइं धनवान नो रे, रायभणो जिम लाग।
तिम मुनिवर पिण धर्म्म नो रे, छठों भाग सु राग ॥
जिनहर्ष-हरिबलमाछो रास पृ० ३८०

'सुभाषित रत्न भाण्डागार' के सुभाषित 'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' को जिनहर्ष 'दुख विण सुख किम थाय' से अभिव्यजित करते हैं।

महाकवि जिनहर्ष के काव्य मे पूर्ववर्त्ती कवियों की पद पक्तियाँ भी मिलती है। कतिपय उदाहरण दिये जा रहे है।

कबीर —नौ द्वारे का पीजरा, तामे पछी पौन।
रहने को आचरज है, गए अचम्भो कौन ॥

जिनहर्ष—दस दुवार को पींजरों, तामे पछी पौन।
रहण अचूभो है जसा, जाण अचंबो कोण ॥

मीरा—जो मैं ऐसो जाणती, प्रीत कियां दुख होय।
नगर ढढोरो फेरती, प्रीत न करियो कोय ॥

जिनहर्ष—जो हम ऐसे जानते, प्रीति बीच दुख होय।
सही ढढोरे फेरते प्रीति करो मत कोइ ॥

'ढोला मारूरां दूहा' मे पावस ऋतु का वणन जिनहर्ष रचित 'बरसातरा दूहा' से कितना साम्य रखता है—

ढोला मारूरा दूहा—'वीजुलिया चहलावहलि,
आभइ आभइ एक।
कदी मिलूं उण साहिबा, कर काजल की रेख ॥
वीजुलियां चहलावहलि, आभइ आभइ च्यारि।
कदरे मिलउली सज्जणा, लाबी बाह पसारि ॥

जिनहर्ष—वीजुलियां खल भल्लिया, आभे-आभे कोडि।
कदे मिलेसू सज्जणां, कचूकी कस छोडि ॥
वीजलियां गली बादला, सिंहरा माथै छात।
कदे मिलेसू सज्जणा, करी उघाडो गात ॥

जैन कवियों मे महाकवि जिनहर्ष, धर्मवर्द्धन, जिनराजसूरि और विनयचन्द के सम-सामयिक थे। इसलिये ये परस्पर प्रभावित प्रतीत होते है।

जिनहर्ष—'ओंकार अपार जगत आधार-
सवै नर नारि ससार जपै है'''

धर्मवर्द्धन—'ऊँकार उदार अगम्म अपार-ससार में सार
पदारथ नामी' ।

महाकवि जिनहर्ष रससिद्ध कवि थे। श्रोताओं पर उनकी सरस वाणी का जादुई प्रभाव था। शृगार के सयोग और वियोग वर्णन मे उन्हें जितनी सफलता मिली है, उतनी ही शान्त वर्णन मे। कवि का पर-दुख कातर हृदय करुण में जितना रमा है, वह हास्य से उतना ही दूर है। वीभत्स और भयानक रस वर्णन की अपेक्षा उनका हृदय वीर और रौद्रमे उल्लसित प्रतीत होता है। भक्तिरस मे कवि का श्रद्धोपेत मानस निरन्तर निमज्जित रहने का अभिलाषी है, जबकि वत्सल रस अवतारणा में वह केवल परम्परा का निर्वाह मात्र करता है। अद्भुतरस में उसकी विशिष्ट-रुचि है। कवि को प्रकृति से हार्दिक लगाव नहीं है। वह उसके उद्दीपक रूपसे जितना प्रभावित और उत्साहित होता है उतना उसके आलम्बन रूपसे नही। वस्तुतः जिनहर्ष मानव समाज के कवि है और प्रकृति को मानव के इतस्तत देखकर ही हर्षित होते है। मानव निरपेक्ष प्रकृति का रूप उन्हें आकृष्ट नहीं करता।

नागरिक सस्कृति की अपेक्षा कवि को जनपद सस्कृति से विशेष अनुराग है। ग्राम्य वेशभूषा, रहन-महन और पर्व उत्सवों का वर्णन करने में उसका अभिनिवेश देखते ही बनता है। उसने 'रावडी, बाजरे के डठल, पके बेर, खीचडा, सीगडी, आगलगी भेड, दमामी के ऊंट, चर्मरज्जु, चडस, मथनी, तिल निष्पीडन, अर्क, अर्कतूल, कूपछाया, एरण्ड, वटवृक्ष, और अजागलस्तन को अपने काव्य मे अप्रस्तुत विधान के रूपमे प्रस्तुत किया है, लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह नागरिक सस्कृति से अनभिज्ञ है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि अभिव्यञ्जना साहित्य का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। उत्तम से उत्तम अनुभूति भी अभिव्यक्ति के विना मूक रह जाती है। वस्तुतः इन दोनो में समवाय सम्बन्ध है। एक के अभाव मे दूसरी का अस्तित्व सम्भव नही है। अनुभूति यदि आत्मा है तो अभिव्यक्ति निश्चय ही शरीर है। एक के अनस्तित्व मे दूसरी का अस्तित्व निष्प्रयोजन है। कुशल कवि जिनहर्ष ने अभिव्यक्ति की रमणीयता एव प्रभाव क्षमता की सिद्धि के लिये अनेक साधनों का उपयोग किया है। इस तथ्य को हम एक दो उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट करना चाहते है। जिनहर्ष ने मानव जीवन को उसकी समग्रता मे ग्रहण किया है, इसलिये उनके काव्य मे विभिन्न प्रकार के चित्र उपलब्ध है।

स्थिर चित्र :—

वृद्ध ज्योतिषी का एक शब्दचित्र द्रष्टव्य है :—

'गोपे बैठ्यो सेठ क्रोधे भर्यो रे, दीठो ब्राह्मण एक।
नाम नारायण पोथी कापमे रे, विद्या भण्यो अनेक ॥
पीताम्बरनो पहिरण धावतीयोरे, लटपट बींटी पाग।
अवल पछेवड़ी ऊपर ऊढणीरे, घनक घनोई आग ॥

झारी जल भरीयो ग्रहीयो, जिणरे केसर तिलक अपड।
हाथ पवित्री पहिरी सोवनी रे, वांस तणो करदण्ड ॥
गरढो वूढ़ो सौ वरसा तणो रे, केस थया सिरि पीत।
सीस हलावै जमनै ना कहैरे, दोत पड्या मुखपोत ॥
पुं पु षासै, सुं सुं करे रे, दृष्ट अलप मुख लाल।
कहै जिनहरष जरा थयो जोजरो रे, एथई छठी ढाल ॥

[गुणावली चौपई पृ० ३]

कवि ने ऐसा सजीव शब्द चित्र प्रस्तुत किया है कि यदि चित्रकार चाहे तो इसके परिवेश मे अपनी तुलिका से वह ज्योतिपी का प्रभावक चित्र अंकित कर सकता है। कवि ने अनेक गति चित्रो को भी उभारा है। जिससे उसके अभिव्यजन कौशल का निदर्शन होता है।

महाकवि जिनहर्ष ने अपने विपुल साहित्य के माध्यम से अभिव्यजित किया है कि जीवन का अन्यतम उद्देश्य आत्मविकास है। सांसारिक मोह वधनो में पडकर प्राणी को मूल लक्ष्य से परिभ्रष्ट नहीं होना चाहिये। साधक को सदैव स्मृतिपथ मे यह सरक्षित रखना चाहिये कि सव जीना चाहते है, कोई मरना नहीं चाहता। दयाहित और उपकार का भाजन केवल मानव ही नहीं है, प्रत्युत् ससार के समस्त प्राणी हैं। सभी सुख चाहते हैं, दुख कोई नहीं चाहता। इसलिए सभी की सुख-सुविधा के समुचित वातावरण की सर्जना करनी चाहिये। जीव मात्र पर अहिंसा का भाव रखना चाहिये।

कवि ने वताया है कि सर्वहित कामना का मूल वैराग्य है। राग और द्वेष वन्धन के कारण है। इसलिये उनसे मुक्ति पाने का प्रयास करना चाहिये। प्राणी को वाह्य और आन्तरिक दृष्टियों से इतना पवित्र, निर्विकार और निष्कलुप वन जाना चाहिये कि उसका जीवन दोषों से आक्रान्त न होने पावे। उसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे महाव्रतो की स्थूल और सूक्ष्म साधना करनी चाहिये। क्रोध, लोभ, माया, मोह, जैसे दूषणों से वचना चाहिये।

कवि के शब्दो मे—

'खार तजो मनको अरे मानव !
खार ते देह उवार न होई।
शान्ति भजो मन भ्रान्ति तजो
कुछ होइहि सोइ करेगो तु जोई।
जीव की घात की वात निवारिके,
आप समान गणो सव कोई।
राग न द्वेप धरो मनमें जसराज
सुगति जो चाहिइं जोई ॥
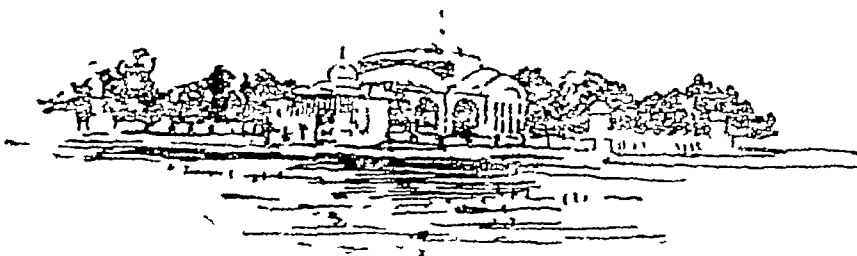
पूज्य श्रीमद् देवचंद्रजी के साहित्य में से सुधाबिन्दु

[आत्मयोग साधक स्वामीजी श्री ऋषभदासजी]

चित्र विचित्र स्वभाववाले, विविध प्रकार के जड चेतन पदार्थो से परिपूर्ण इस विशाल विश्व का जब हम अवलोकन करते है और इस विश्वतंत्र का व्यवस्थित ढग से सचालन देखकर इसके अन्तस्तल मे रहे प्रयोजन को सूक्ष्म-दृष्टि से समझने के लिये प्रयत्न करते है तो सारा तन्त्र सकल जीवराशि के लिये स्वतन्त्र, स्व-पर निरवाध, सहज सुख को सिद्धि के चरम साध्य के उपलक्ष्य मे परोपकार की प्रवल भूमिका पर निरन्तर श्रमशील हो, ऐसा भास हुए विना नहीं रहता और इसके समर्थन मे पूर्व महर्षियो के कई श्लोक मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षा, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गाव, परोपकाराय शता विभूतय ॥

वास्तव मे गगन मंडल में सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह-नक्षत्र- की जगमगाती हुई ज्योति प्राणियों के प्रवोध प्राप्ति के पथ में प्रोत्साहन देती हुई उनके प्राण-रक्षण के अमृत समान अनेक पोषक तत्वों को प्रदान कर रही है। पवन, प्रकाश, पानी, अग्नि आदि भी प्राणियों के प्राण-रक्षण मे सम्पूर्ण सहायता कर रहे है और पर्वत, नदी, नाले, वन, उपवन, उद्यान, हरे हरियाले खेत प्राणियों के प्राणों का अस्तित्व अवाधित रखने मे वहुत अनुग्रह कर रहे हों, ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा है। अगर नैसर्गिक नियंत्रण के पदार्थ विज्ञान में ऐसी परोपकारपूर्ण प्रक्रिया न होती तो प्राणी क्षण मात्र भी अपना अस्तित्व नहीं टिका सकते क्योंकि प्राणी मात्र सुख चाहते है, वह सुख भी सतत् चाहते हैं और सम्पूर्ण सुख चाहते है। इसलिये प्राणी मात्र का यह एक सनातन सिद्ध सहज स्वभाव हो, ऐसा ज्ञात होता है। अतः प्राणियों को अपने साध्य बिन्दु की सिद्धि के लिये विश्व के पदार्थ विज्ञान का प्रवोध प्राप्त करना अनिवार्य है। वह शक्ति मानव मे होने के कारण मानव अपनी महानन्द मुक्ति पद का अधिकारी माना गया है।

यद्यपि मानव जन्म की महत्ता को प्रत्येक दर्शन ने प्रधान स्थान दिया है परन्तु मानव जन्म की महत्ता का रहस्य जैसा आर्हत्-दर्शन मे प्रतिपादन किया गया है, वैसा कहीं भी नजर नही आता। आर्हत् दर्शन में समस्त चराचर प्राणियों को तीन कक्षाओं में विभाजित किया गया है। कितने ही प्राणी कर्म चेतना के वश है, कितने ही प्राणी कर्मफल चेतना के वश है और कितने ही ज्ञान चेतना के वश हैं। तीसरी ज्ञान चेतना का विशेष विकास मानव जन्म में ही दृष्टिगोचर हो रहा है। आर्हत् दर्शन मे ही आत्मा के स्वभाव और विभाव धर्म का सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिपादन है और इस उभय धर्म का अनुसन्धान करने के लिये दो प्रकार की द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दृष्टि का वडा सुन्दर वर्णन है। स्वभाव से ही यह अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख का स्वामी है और अजर, अमूर्त, अगुरुलघु और अव्यावाध गुणों का निधान है। इसीलिये सतत् सुखाभिलाषी और उसकी प्राप्ति के हेतु पूर्ण प्रयत्नशील है परन्तु विश्वतन्त्र की वस्तु-स्थिति के विज्ञान का विकास न साधे वहाँ तक यह अपनी अज्ञानदशा मे सुख के वदले दुख परम्परावर्द्धक सुखाभास के लिये प्रयास करता रहता है और उस भ्रांति मे अपने को चौरासी लाख जीवायोनि के भ्रमर-जाल मे फंसाता है

तथा जन्म मरण की भयानक भवाटवी में भटकता फिरता है।

विश्व यन्त्र का पदार्थ विज्ञान कितना ही परोपकार-पूर्ण होने पर भी उसके गर्भ मे रहे हुए परमानन्दकारी परमार्थ को हरएक प्राप्त नहीं कर सकता और इसके कई कारणों पर आर्हत् दर्शन मे अनेक प्रकार से प्रकाश डाला गया है। उसमें एक कारण यह भी बताया गया है कि यह आत्मा उर्ध्वगमन स्वभाववाला है। जिस तरह अग्नि का धुआँ उर्ध्वगामी होने से उसका उर्ध्वगमन कराने मे कोई प्रयत्न की जरूरत नहीं है लेकिन इतर दिशाओं में गमन कराने मे बडा प्रयत्न करना पड़ता है क्योंकि वह धुए का विभाव है, स्वभाव नहीं है। इसी तरह आत्मा अपने उर्ध्वगमन स्वभाव में सहज ही विकास साध सकता है जब कि अधोगमन एव तिरछागमन मे चेतन शक्ति का विकास दु साध्य हो जाता है। आत्मा वनस्पतिकाय आदि स्थावर मे अधोगामी [Topsy Torby] स्थिति में है, तिर्यंच आदि त्रस मे तिरछागामी (Oblique) स्थिति में है और नरक, देव और मनुष्य गति मे उर्ध्वगमन (Perpendicular) स्थिति में है। शास्त्रकार महर्षियो ने तीन चेतनाओं का वर्णन करके पहले ही खुलासा कर दिया है कि तिर्यंच गति, चाहे स्थावर में हो चाहे त्रस में हो, कर्म चेतना के वश है; नरक और देव कर्मफल चेतना के वश है और मानव एक ही ऐसी गति है जिसमें ज्ञान चेतना-प्रधान है। वनस्पति आदि में उसकी अधोगमन स्थिति होने से चेतना का बिल्कुल अल्प विकास नजर आता है क्योंकि उनकी जड और धड सब उल्टे है। यही कारण है कि वृक्षो की शाखा-परिशाखाओं आदि ऊपर के भागों को काटने पर भी वे जीवन का अस्तित्व बनाये रखते हैं। मानव के उर्ध्वगमन स्वभाव में विकसित होने से मस्तक के नीचे रहे हुए अधोभाग के अगपात्रों को काटने पर भी वह जीवित रहता है व अपने जीवन का अस्तित्व टिका सकता है, क्योंकि इसको आत्मप्रदेश रूप ज्ञान चेतना की विशेषता मस्तिष्क भाग में केंद्रित है। इसलिये यह सत्यानुसन्धान करके अपने साध्य-सहजानन्द, सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। तिर्यंचों में तो, तिरछे स्वभाव के होने के कारण, ज्ञान का बहुत साधारण स्थिति मे विकास होता है क्योंकि उनका मस्तिष्क तिरछा है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हाथी, घोडे आदि का मस्तिष्क कितना ही बडा होने पर भी, उनकी ज्ञान-चेतना बहुत सीमित है, इसलिये सत्य को साक्षात्कार करने के वे पात्र ही नहीं हैं। देव और नरक के जीव उर्ध्वगामी जरूर है परन्तु जन्मान्तरों के विभाव धर्म मे चाहे शुभ या अशुभ न्यूनाधिक मात्रा में प्रवृत्ति हुई है जिससे उनके सुख-दुःख की स्थिति उनके स्वाधीन नहीं है। अत वे भी सत्य साधना को चरितार्थ करने मे समर्थ नहीं है। केवल मानव जन्म में ही वैभाविक शक्ति समतुल मात्रा मे विकसित न होने से इनको स्वाभाविक शक्ति साधने का सुन्दर प्रसंग है। इसीलिये मानव जन्म को अति दुर्लभ माना गया है और उसकी दुर्लभता के दस सुन्दर दृष्टांत उत्तराध्ययन सूत्र मे बडे ढंग से दर्शाये गये है, ऐसा सुन्दर वर्णन और कहीं नहीं मिलता।

अब बात यह है कि हमे अपनी स्वाभाविक सच्चिदानन्द स्थिति को प्राप्त करने के लिये स्वभाव एव विभाव के कार्य कारण भावो पर खूब विश्लेषण करना नितान्त आवश्यक है। आर्हत-दर्शन मे उस विश्लेषण विश्व-विद्या का नाम द्रव्य गुण-पर्याय का चिंतन है और यही आर्हत्-दर्शन का आदर्श ध्यान है, क्योंकि यह विश्वतत्र इतना विचित्र एव विज्ञानपूर्ण है कि इसमे कितने ही स्थूल-सूक्ष्म कारण है, कितने ही उपादान-निमित्त कारण है और कितने ही मूर्त्त अमूर्त्त कारण है। इसलिये आर्हत्-दर्शन में सर्वज्ञ बने बिना एव केवलज्ञान प्राप्ति किये बिना कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इस विश्व-तत्र का सचालन जीव, अजीव दोनों पदार्थों के परस्पर संबध से चलता है। इसलिये केवल

जीव की अजर, अमर, अविनाशी, सच्चिदानन्द स्वरूप की मान्यतावाले दर्शन ही जीव को मुक्तिधाम पर पहुँचाने मे सफल नहीं बन सकते। साथ मे अजीव तत्व जो धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुदगल है, उनके पूर्ण स्वरूप को समझे विना छुटकारा नहीं है। यद्यपि दूसरे द्रव्य अपनी गति, स्थिति, अवकाश, प्रवर्त्तना और परिणाम क्रिया में जीव के साथ सम्बन्धित है तथापि इनपर विशेष मथन, परिशीलन न भी होवे परन्तु पुद्गल का स्वरूप समझना परम आवश्यक है क्योंकि पुद्गल और जीव परस्पर परिणामी द्रव्य है। एक दूसरे का परस्पर सम्बन्ध अलिप्त होने पर भी वे अपना प्रभाव परस्पर डाले बिना रहते नहीं।

एक दर्पण के सामने काला पर्दा रख दिया जाय तो यद्यपि पर्दा और दर्पण पृथक है, फिर भी पर्दे की परछाया दर्पण की निर्मलता को आवरित किये विना रहती नहीं। इसी तरह आत्मा के ऊपर पुद्गल का आवरण क्या है, कैसे होता है, कैसे टिकता है और कैसे मिटता है, यह सब समझना ही पडेगा क्योंकि पुद्गल की भी कई वर्गणायें है। खासकर औदारिक आदि आठ वर्गणाएँ जीव से वहुत सम्बन्धित हैं और इनमें भी कार्मण-वर्गणा, जो अति सूक्ष्म मानी जाती है, अपने परिणाम के असर द्वारा आत्मा को स्व-पर का भान तक भुला देती है और यह जीव पर-परिणामी वन जाता है। सज्ञा, कषाय, विषय-वासना, आशा, तृष्णा ये सब पुद्गल-परिणामी होने पर भी जीव अपनी अज्ञान दशा मे इनको आत्मपरिणामी समझकर उनमें परिणमन करता है और पुद्गल-परिणामी वनकर चारों गतियों मे परिभ्रमण करता है। अपने अनन्त प्राणों के सयोग-वियोग के चक्कर में अरघट घटिका न्यायेन" अनादिकाल से ससार समुद्र के जन्म-मरण की तरगों में गोते खाता रहता है। अत आर्हत् दर्शन की परिभाषा में द्रव्य-गुण-पर्याय की घटमाल मे ही सारे ससार का चक्र चलता है। इसलिये द्रव्य-गुण पर्याय का जितना भी सूक्ष्म अध्ययन, अवलोकन, चिंतन, मथन और परिशीलन होगा, उतना ही सत्य का साक्षात्कार एव वस्तुस्थिति का भान होता जायगा।

ग्रीष्म ऋतु की ताप से पीडित हाथी सरोवर के पक (कीचड) की शीतलता को देखकर उसमें सुख की भ्राति मे विश्राति लेने गया। उसे शीतलता का सुख अनुभव जरूर हुआ परन्तु उस कादव मे ऐसा फँस गया कि वह फिर बाहर नहीं आ सका। ग्रीष्म ऋतु के प्रचड ताप से कीचड सूखता गया और हाथी को अपने प्राणो की आहुति देनी पडी। इसी तरह इस ससार का हाल है। इसलिये वैभाविक सवध विकास मार्ग में कहाँ तक उपयोगी है और कहाँ तक निरुपयोगी है, इसका सम्यग्-बोध प्राप्त न हो तो वही विकास विकार रूप वनकर विनाश की तरफ ले जाता है। विश्वतत्र के प्राणियो के लिए जीवन विकाश की प्रक्रिया को जीव अपनी अज्ञान दशा मे निरर्थक बना देता है। विश्वतत्र मे कहो या आर्हत्-दर्शन की परिभाषा मे लोकस्थिति कहो या विज्ञान की भाषा मे COSMIC ORDER कहो, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वाभाविक स्वरूप मे अवस्थित रहने के लिये सदा प्रवृत्तिशील है। अत आर्हत्-दर्शन मे सब बड़े तत्वों का परम तत्व (Fulorum of the whole Universe) "उवन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा" माना है। अर्हन्त भगवत धर्म तीर्थ स्थापित करने के लिए अपनी अमृत देशना का मगलाचरण करते है तब ऐसा ही वर्णन है कि गणधर प्रश्न करते है कि "भते! किं तत्त ? किं तत्त ? उसके प्रत्युत्तर मे भगवन्त "उवन्नेइ वा, विगमेइ वा धुवेइ वा" फरमाते हैं। यही द्रव्य-गुण पर्याय की घटमाल को समझने का परमोत्कृष्ट साधन है और नैसर्गिक नियत्रण का सारा विश्व विधान इसी विज्ञान को प्रकाश मे लाने के लिये नियोजित है।

जो पुण्य-पवित्र आत्मा जन्म-जन्मान्तरों में अहिंसा सयम-तप का उत्तरोत्तर विकास साधते हुए केवलज्ञान को प्राप्त करके इस लोकालोक प्रकाशक-पूर्ण-विज्ञान प्रतिपादन के अधिकारी बनते है, वे ही तीर्थकर कहलाते है। जीवो को तारने के लिये मार्गदर्शक आगमिक भाषा मे वे महा-नियामक, महा-सार्थवाह, महा-माहण और महागोप कहलाते हैं। उनका प्रवचन ही परमोत्कृष्ट धर्म एव धर्मा-नुशासन कहलाता है। इस विश्वतत्र के विशिष्ट विज्ञान को प्रकाश मे लाये बिना इसकी पदार्थ-व्यवस्था के परदे के पीछे रही हुई परोपकार की प्रक्रिया का परमार्थ रूप परमानन्द पद प्राणी प्राप्त करे, ऐसा जो गुप्त रहस्य रहा हुआ है, उसकी पूर्ति हेतु केवल अर्हन्त भगवंत ही अधिकारी है। अत वे ही कार्य की सिद्धि के लिये कारण की सम्यग्-सामग्री सर्जन करते है और उसमे स्वाभाविक वैभाविक धर्मक्षेत्र आदि साधन ऐसा सामग्री जितनी प्राणी को अपने परमानन्द पथ की प्राप्ति के लिये चाहिये, उसकी पूर्ति करते है, अटल नियम है। इसलिये सारा विश्वतंत्र उनकी सेवा में प्रवृत्त है (The whole Cosmic order remains at their service)। इसिलिये पदार्थ व्यवस्था के विधान के मुताबिक उनके पच कल्याणकों मे देवेन्द्रों, सुरेन्द्रों का शुभागमन होता है और सामग्री की पूर्ति करनेवाले प्रभु है, ऐसा सकेत करनेवाले अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्य का प्रादुर्भाव होता है। प्राणियों को हरएक प्रतिकूलता को पलायन करके सानुकूलता के साधन जुटाने की विशिष्ट-विभूति जो चौंतीस अतिशयों के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी उनके स्वाधीन हो जाती है।

इसलिये नैसर्गिक पदार्थ व्यवस्था के प्रमाणभूत प्रति-निधि (The most bonafide representative) तीर्थंकरों और उनके स्थापित तीर्थ की आराधना-प्रभावना ही हमारे लिये परमोत्कृष्ट मगल रूप एव परम श्रेयस्कर है। इसी आराधना-प्रभावना के यथार्थ बोध के उपलक्ष मे मुझे जब भिन्न-२ साहित्य का अवलोकन, अध्ययन, मनन और परिशीलन करना पड़ा तब उसमें मुझे द्रव्यानुयोगी महात्मा देवचन्द्रजी की 'आगमसार' आदि पुस्तकों का तथा उनके तत्वगर्भित स्तवनो आदि का अध्ययन करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनमें से उपलब्ध बोध के लिये इन महान उपकारी के उपकार का मैं अनन्त ऋणी हूँ, और उन्हीं महापुरुष के दिव्य जीवन का यशोगान करने के उपलक्ष में ही यह लेखनी उठाई है। यद्यपि ऊपर लेख की मर्यादा के बाहर पूर्व-भमिका बहुत बन गई है, अतः मैं उनके विषय मे अब क्या लिखूँ? परन्तु यह कहावत प्रसिद्ध है कि राम के यशोगान में रावण की अनोखी कथनी इतनी विस्तृत बताई कि राम की कथनी उससे भी विशेष विस्तृत करना आवश्यक समझा गया, परन्तु उस सुज्ञचिंतक ने तो एक ही वाक्य मे कह दिया कि रावण अनेक विद्या, सिद्धि, ऋद्धि, वृद्धि, सपत्ति और शक्ति का स्वामी था परन्तु राम की किसी शक्ति का वर्णन किए बिना यही कहा कि राम ने रावण को पराजित किया। इससे सिद्ध हो गया कि राम मे रावण से भी अनेक विशिष्ट शक्तियाँ थीं। इसी तरह से मैं भी यहाँ कहना चाहता हू।

आपके साहित्य में से मैं जो कुछ समझा हूँ, वह सागर रूपी गागर में बतलाना चाहता हूँ कि अपने जीवन के उत्थान के लिये, परमानन्द पद की प्राप्ति के लिये एव मुक्ति मगल निकेतन का निवासी बनने के लिए तीन बातें बहुत जरूरी है —

(१) प्रभु की प्रभुता (२) समर्पणभाव (३) आशय की विशुद्धि।

उपरोक्त तीन बातें यदि ठीक तरह से समझी जावे तो मानव सुखे-सुखे नरेन्द्र देवेन्द्र, सुरेन्द्र और अहमिन्द्रों की अनुपम ऋद्धि समृद्धि की सरिता में सुख सपादन करता हुआ सिद्धिधाम में पहुँच सकता है। इन बातों को समझे बिना जो प्राणी अपनी परिमित प्रज्ञा व मर्यादित

मेधा पर आधार रखकर मुक्ति-मार्ग मे प्रवास करता है तो वह परमार्थ के वदले अनर्थ, धर्म के वदले वदले अधर्म, पुण्य के वदले पाप, उपकार के वदले अपकार, हित के वदले अहित, शुभ के वदले अशुभ और शुद्ध के वदले अशुद्ध आचरण करके पराभव स्थिति को प्राप्त कर अपना अध. पतन किये विना रहेगा नही।

जैसे निष्णात डाक्टर से सपर्क साधने के वाद अपने दिमागी दवाओं के झगडे मे पडना महामूर्खता है तथा निष्णात डाक्टर के ऊपर निर्भर रहने मे ही साध्य की सिद्धि है, उसी तरह पहले हमे प्रभु की प्रभुता को खूब समझना चाहिये तभी समर्पण-भाव आयेगा और आशय की शुद्धि के लिये आतुरता विकसित होती जायगी और वह अपनी आदर्श-भावना को सफल वना सकेगा। केवल आत्मज्ञान की अपनी मति-कल्पना की मान्यतायें मानने और मनाने मे अपना ही नहीं, लेकिन अनेकों के उत्थान के वदले पतन मे अपने शुष्क ज्ञान को उपकरण वनाने के वदले अधिकरण वनाने के समान है। इसलिये परम-पूज्य महात्मा श्रीमद् देवचन्द्रजी ने उपरोक्त तीन विषयों की रूपरेखा को समझाने का अपने स्तवनों में प्रशसनीय प्रयत्न किया है।

श्रीशीतलनाथ प्रभु के स्तवन मे आप फरमाते है कि—

"शीतल जीन प्रति प्रभुता प्रभु की,
मुझ थकी कही न जावेजी"

क्योंकि सारा विश्व-विधान आपकी आज्ञा के अधीन हो गया है।

"द्रव्य, क्षेत्र ने काल, भाव, गुण,
राजनीति ए चार जी
त्रास विना जड चेतन प्रभु की,
कोई न लोपे कारजो"

अर्थात् जड चेतन रूप षट् द्रव्य के द्वारा सारे विश्व-तन्त्र का सचालन हो रहा है, ये सब आपकी आज्ञा का लोप नही करते। मेरे कहने का आशय यह है कि आप ही विश्व के विभु एवं प्रभु है। अत ऐसे प्रभु को समर्पित होने मे ही हमारा सर्वोदय है। इसलिये ऐसा शुद्ध आशय वनाकर जो प्रभु का स्मरण करता है एव उनकी आज्ञा का पालन करता है, वह परमानन्द पद को सुलभता से प्राप्त करता है क्योंकि वे आगे फरमाते हैं कि—

"शुभाशय थिर प्रभु उपयोगे, जो-समरे तुज नामजी।
अव्यावाध अनन्तु पामे, परम अमृत सुखधामजी॥"

ऐसे ही भाव श्री सुविधिनाथ भगवान के स्तवन मे मिलते हैं।

"प्रभु मुद्रा ने योग प्रभु प्रभुता लखे हो लाल
द्रव्य तणे साधर्म्य स्वसपति ओलखे हो लाल"

आगे जाते-जाते श्री महावीर स्वामी के स्तवन मे तो यहाँ तक कहते हैं कि—

"तारजो वापजो विरुद निज राखवा,
दास नी सेवना रखे जोसो"

इस तरह से मुझे तो इन तीन वातो पर श्री देवचन्द्रजी के प्रति अपनी आत्मा मे इतना सद्भाव है कि जिसके वर्णन के लिये मेरे पास कोई शब्द नही है।

वैसे भी इनके रचना ग्रन्थो मे नय, निक्षेप प्रमाण, लक्षण, मार्गणा स्थान, गुणस्थान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, पच समवाय, औदायिक आदि पच भाव, पचाश्रव, षट् द्रव्य, सप्त धर्म-क्षेत्र, अष्ट कर्म, अष्ट करण, नौ तत्व, नौ पद आदि गहन विषयो का भी इतना सुन्दर और सरल ढंग से प्रतिपादन है कि सामान्य वुद्धिवाला भी अपना आत्मोत्थान साध सकता है। सस्कृत, प्राकृत के प्रौढ विद्वान होते हुए भी आपने सारे आगमों का अमृत-रस राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, व्रज भाषा में गद्य-पद्य में अपना साहित्य सर्जन करके वडा लोकोपयोगी वनाया जिसके लिये उनका जितना भी गुण गान गाया जावे, उतना ही थोडा है। वे वड़े आगम व्यवहारी, सच्चे अध्यात्म-पुरुष थे और

आर्हत्-दर्शन की मान्यतानुसार वे वडे आत्म-योगी पुरुष थे, इसमें कोई शक नही ।

श्रीमद् देवचन्द्रजी की साहित्य रचना में से प्रभु की प्रभुता, समर्पण भाव, आशय की विशुद्धि का आधार लेकर ही मैं आत्म योग सरोवर मे चंचुपात कर रहा हूँ । समुद्र के प्रवास मे जैसे प्रवहण ही आधार रूप है, इसी तरह से इनके प्रवचन-रूपी प्रवहण, मेरी आत्म-योग-साधना मे मेरे लिये पुष्टावलवन रूप है । अगर यह आधार न मिला होता तो इस भयानक भवसागर को पार करने का साहस भी नही होता, जैसे कि अपनी भुजा से समुद्र पार करने-वाले की स्थिति होती है । वह कितना ही पराक्रम करके प्रवहण विना अपनी भुजा वल से थोडी प्रगति साधे परन्तु समुद्र की एक ही तरग मे वह शक्ति है कि वह उसका सारा पुरुषार्थ निष्फल वना सकती है । जिस तरह समुद्र मच्छ, कच्छ, मगर आदि भयानक जतुओं से भरा है, उसी तरह इस भवसागर में भी सज्ञा, कषाय, विषय वासना, तृष्णा रूपी ऐसे भयानक जतु भरे पड़े हैं और हम प्रभु के प्रवचन रूपी प्रवहण को प्राप्त किये विना उनसे वच ही नही सकते । वडे-वडे पुरुषार्थी पूर्ववर पुरुष भी प्रगति के प्रवाह मे से पड़कर निगोद तक पहुँचे हैं तो मेरे जैसे पुरुषार्थहीन अज्ञानी इस प्रवास मे अपनो ही ज्ञान क्रिया के वल पर कैसे विकास साध सकते हैं ? अत इस अगम, अपार ससार को पार करने का मेरे जैसे पामर प्राणी का पुरुषार्थ, हिन्दू धर्म शास्त्रों मे टीटोडी के अडे समुद्र में जाने से अपने चचु-पात से समुद्र को खाली करने जैसा दृष्टान्त है । परन्तु टीटोडी के आत्म विश्वास ने गरुडजी को आकर्षित किया, गरुडजी के द्वारा विष्णु भगवान की कृपा हुई । उन्होने उसके साध्य को सफल वनाया और समुद्र को अडे वापस देकर क्षमा मागनी पड़ी । ऐसे ही इस प्रभु की प्रभुता मे वह शक्ति रही हुई है जिनकी कृपा एवं अनुग्रह से हमारा वेडापार हो सकता है । इसलिये दिन प्रति दिन प्रभु के प्रति दासत्व-भाव की वृद्धि करते जाना—यही मुक्ति द्वार तक पहुँचने का सरल उपाय है । "दासोऽहं" भाव अपने आप अप्रमत्त गुणस्थानकों मे 'सोऽहं' भाव पर पहुचायेगा और अन्त में "सोऽहं" भाव भी वीतराग गुणस्थानको में छूटकर ऐसी केवलज्ञान स्थिति में रहा हुआ अपने शुद्ध सिद्धात्म स्वरूपस्थ "ऽहं" "एगो मे सासओ अप्पा, नाण दसण सजुओ" स्व पर निरावाध सहजानन्द भाव सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करायगा ।

इस प्रकार पूज्य श्रीमद् देवचन्द्रजी का मैं दिन रात जितना भी गुण गाऊँ, वह थोडा ही है परन्तु उनके दिव्य जीवन सम्बन्धी इस स्थान पर दो शब्द उनके प्रति मेरा पूज्य भाव प्रदर्शित करने के लिये उल्लिखित किये हैं, इसमे मति मदता के कारण कोई त्रुटि रही हो तो क्षमा चाहता हू । सुज्ञेषु किं वहुना ।
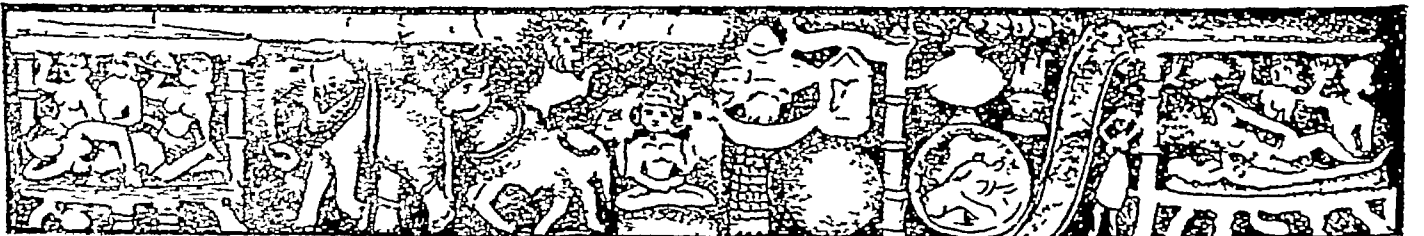
खरतर गच्छ की क्रान्तिकारी और अध्यात्मिक-परम्परा

- श्री भंवरलाल नाहटा

आर्यावर्त्त के धर्म-शरीर की आत्मा जैनधर्म है। जिस प्रकार आत्मा के बिना समस्त शरीर शव के सदृश होता है, उसी प्रकार समस्त शुष्क क्रिया काण्ड यदि उनमे अध्यात्मिकता का अभाव हो तो वे केवलकाय-क्लेश मात्र होते है। आधिभौतिक साधना से आत्म शांति नही मिलती। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब भगवान महावीर का प्रादुर्भाव हुआ, जनता त्रिविधताप सतप्त थी। शाति के लिए तडफते प्राणियो को मृग मरीचिका के चक्कर में गोते लगाने के सिवा परिणाम शून्य था। जहा वेद पुराणादि सभी शास्त्र भौतिक शिक्षा एव एकान्तिक आत्म प्ररूपणा तक सीमित रह गए, जैनागमों का प्रथम अग आचारांग "आत्मा क्या है ?" इस प्राइमरी शिक्षा का उद्घोष करता है। भगवान महावीर ने आत्मदर्शन को प्रधानता दी और लाखों वर्षो की शुष्क अज्ञान तपश्चर्या को व्यर्थ और ज्ञानी-आत्मज्ञानी की क्रिया-चर्या को सार्थक बतलाया। वह श्वासोश्वास में करोडों वर्षो के पापों को क्षय कर देता है। इसीलिए उन्होंने "अप्प नाणेण मुणो होई" कहा। बाह्य उपकरणों के मेरु जितने ढेर लगाकर भी कार्यसिद्धि में अक्षम बताकर आत्मज्ञानी श्रमणत्व की नींव दृढ की। धार्मिक क्षेत्र मे फैले ढौंग रूपी अन्धकार को दूर करने के लिए आत्मज्ञान की दिव्य ज्योति प्रकट की। चित्तवृत्ति प्रवाह बाहर भटकने से रोक कर अन्तर्मुखी करके अखण्ड आनद प्राप्ति की कला बता कर निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करने में भगवान की अमृत वाणी बड़ी ही अमोघ सिद्ध हुई। लाखों प्राणी निर्वाण मार्ग के पथिक होकर अप्रमत्त साधना में लग कर आत्मकल्याण करने लगे। भगवान महावीर ने अपनी साधना का केन्द्र बिन्दु आत्म-विशुद्धि व आत्म साक्षात्कार को माना। साढे बारह वर्ष पर्य्यन्त ध्यान, मौन, कायोत्सर्गादि द्वारा बाहरी आकर्षणो से चित्तवृत्ति ओर प्रवृत्ति को हटा कर आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों को विकसित किया। देहात्म बुद्धि को मिथ्यात्व बतलाते हुए सम्यग्दर्शन ही वास्तव में आत्मदर्शन है, इसके प्राप्त होने पर सासारिक या पौद्गलिक विषयों की आसक्ति स्वय छूट जाती है, बतलाया। केवलज्ञान, केवलदर्शन आत्मा की पूर्ण निर्मलता, विशुद्धता द्वारा प्राप्त आत्मा की चैतन्य शक्ति का परिपूर्ण विकास ही है। आचारांग सूत्र मे उन्होने कहा है, जो एक आत्मा को जान लेता है वह सब को जान लेता है। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा है —आत्मा ही अपना शत्रु और आत्मा ही अपना मित्र है, बाहरी शत्रुओं से युद्ध करने का कोई अर्थ नही, आत्मा के शत्रु राग, द्वेष, मोह हैं उन्हीं पर विजय प्राप्त करो। बाह्य तपश्चर्या आत्मलीनता हेतु और देहासक्ति के परित्याग रूप है। छ आवश्यकों में कायोत्सर्ग देहासक्ति का त्याग रूप ही है क्योंकि पुद्गल मोह मिटे बिना अन्तर्मुख वृत्ति नहीं होती और आत्मदर्शन नही होता। इच्छा ही बधन है, इच्छा निरोध ही तप और आत्म-रमणता ही चारित्र है। हमारे समस्त धर्माचरणो का उद्देश्य आत्म विशुद्धि ही होना चाहिए। आत्म'केन्द्रित साधना ही सही मोक्ष मार्ग है।

भगवान महावीर की इस अध्यात्मिक परम्परा को अनेकों भव्यात्माओ ने अपनाते हुए आत्म कल्याण किया। समय-समय पर जो बहिर्मुखता की अभिवृद्धि हुई उसे दूर

करने के लिए ही जैनाचार्यों-मुनियो ने क्रिया उद्धार किया अर्थात् शिथिलाचार का परित्याग करके अध्यात्मिक मार्ग का पुनरुद्धार किया। मध्यकालीन चैत्यवास शिथिलाचार का एक प्रवहमान श्रोत था जिसमे बडे बडे आचार्य और मुनिगण वहते चले गए फलतः अध्यात्मिक साधना क्षीण हो गई, आडम्वर और क्रिया काण्डो का आधिक्य हो गया। जनता को भी भगवान महावीर की अध्यात्मिक शिक्षाए मिलनी कठिन हो गई। जैनसघ को अध्यात्मिक प्रेरणा देने वाले क्रान्तिकारी आचार्यों की युग पुकारने आचार्य हरिभद्र, जिनेश्वरसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि मणिधारी जिनचद्रसूरि, और जिनपतिसूरि जैसे युगप्रधान आचार्यो को जन्म दिया जिन्होने जैनचैत्यो और मुनियों के आचारों मे आई हुई विकृति का प्रवल पुरुषार्थ द्वारा परिहार किया और सुविहित मुनि मार्ग का पुनरुद्धार किया।

आचार्य जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवास पर एक प्रवल चोट करके उसकी जडें हिला दी जिनवल्लभ और जिनदत्त सूरिजी ने जगह-जगह घूमकर जनता मे जागृति पदाकर युग परिवर्त्तन कर डाला और जिनपतिसूरिजी ने तो रही सही शिथिलाचार की प्रवृत्तियों का वडे वडे आचार्यो से लोहा लेकर नाम शेष ही कर डाला।

मानव स्वभाव की कमजोरी के कारण शनै शनै शिथिलाचार फिर वढता गया और समय-समय पर सुविहित आचार को प्रतिष्ठित करने के लिए क्रियोद्धार की परम्परा भी चलती रही। सोलहवीं शताब्दी मे तपागच्छ के आनन्दविमलसूरि आदि ने क्रियोद्धार किया तव खरतरगच्छ के जिनमाणिक्यसूरि ने भी आचार शैथिल्य को दूर करने की प्रवल भावना की और इसके लिए देरावर पूज्य दादा जिनकुशलसूरि जी के मङ्गलमय आशीर्वाद के लिये प्रस्थान किया पर मार्ग मे ही स्वर्गवास हो जाने से उनकी भावना मूर्त्त रूप न ले सकी इस समय खरतरगच्छ के उपाध्याय कनकतिलक ने क्रियोद्धार किया। स० १६१२ से श्रीजिनमाणिक्यसूरि के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित हुए, उन्होने अपने गुरु की अन्तिम इच्छाको वडे अच्छे रूप में पूर्ण किया। बीकानेर के मन्त्री सग्रामसिंह वच्छावत की विज्ञप्ति से सं० १६१३ मे बीकानेर आकर उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि जो साध्वाचार की ठीक से पालन करना चाहते हो वे मेरे साथ रहें और जो पालन न कर सकें वे वेश को न लजा कर गृहस्थ हो जायें। कहा जाता है कि उनके शखनाद से तीन सौ यतियों मे से केवल १६ उनके साथी साथी वने अवशेष साधुवेश परित्याग कर गृहस्थ महात्मा मथेरण कहलाये। उपाध्याय भावहर्ष ने क्रियोद्धार करके अपने साधु समुदाय को व्यवस्थित किया जो आगे चलकर भावहर्षीय शाखा के कहलाये। युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि का लोकोत्तर प्रभाव वढा फलतः सम्राट अकवर भी उनसे प्रभावित हुआ। जहाँगीर को भी अपनी अनुचित आज्ञा वापस लेनी पडी। जैन शासन का वह स्वर्ण युग था, उस समय अनेक विद्वान हुए जिनके साहित्य ने जैनधर्म का गौरव वढाया।

आचार्य जिनराजसूरि के वाद फिर साध्वाचार पालन में थोड़ी शिथिलता आगई अतः श्रीजिनरत्नसूरिजी पट्टधर जिनचन्द्रसूरि ने फिर से नये नियम वनाए। जिनराजसूरि और जिनचन्द्रसूरि के मध्यकाल में ही सुप्रसिद्ध अध्यात्म अनुभव योगी आनन्दघनजी हुए जिनका मूल नाम लाभानन्द जी था। वे मूलत खरतरगच्छ के थे। मेडता में ही जन्म और उच्च आत्म साधनरत विचर कर मेडता मे ही स्वर्गवासी हुए। उनका उपाश्रय आज भी वहाँ मौजूद है। परमगीतार्थ आचार्य कृपाचन्द्रसूरि जी ने योग-निष्ठ आचार्य बुद्धिसागर जी को आनन्दघन जी के मूलतः खरतरगच्छीय होने की जो वात कही थी उसकी पुष्टि आगम-प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी को प्राप्त खरतर गच्छीय श्री पुण्यकलश गणि के शिष्यों को लाभानन्दजी के अष्टसहस्री पढाने के उल्लेख द्वारा भी हो गई है।
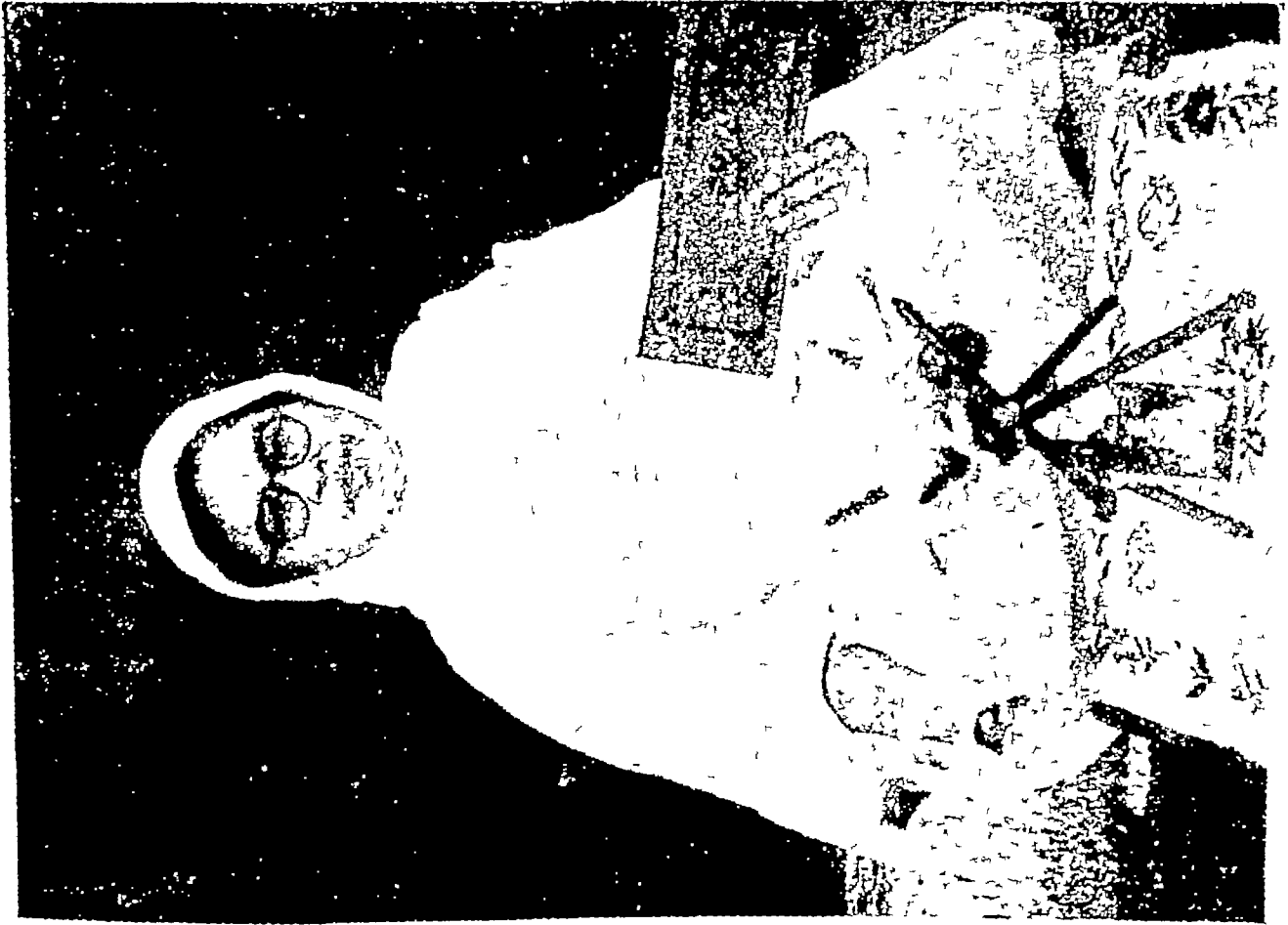
शासन प्रभाविका प्रवर्त्तिनी श्री विचक्षण श्री जी महाराज
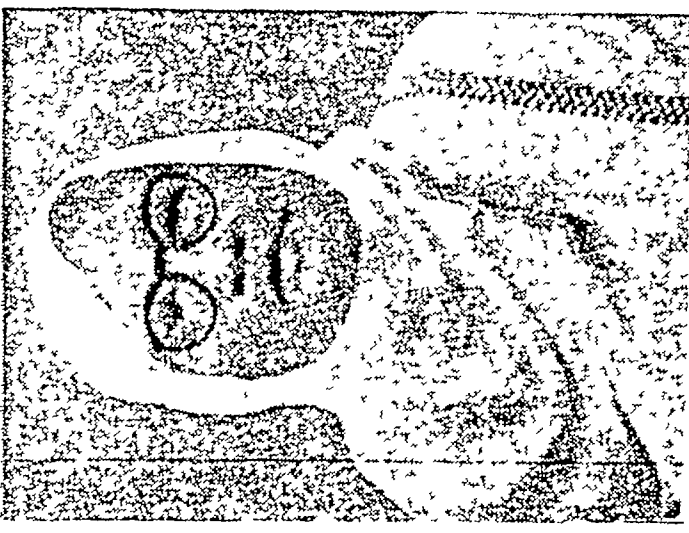
प्रवर्तिनीजी श्री ~~मनोहर~~ श्री जी महाराज
वल्लभ

सं० १९९४ पालीताना में
[प]क्ति (१) १ श्री बुद्धिमुनिजी २ उ० श्री लब्धिमुनिजी
३ गणिवर्यरतनमुनिजी ४ भावमुनिजी ५ प्रेममुनिजी
पंक्ति (२) श्रीनन्दनमुनिजी २ श्रीभद्रमुनिजी ३ ..
४ पूर्णानन्दमुनिजी ५ प्रेमसागरजी

श्रीजयानन्दमुनिजी

गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी

सतरहवीं शती के "सुमति" नामक- खरतरगच्छीय कवि अध्यात्मरसिक हुए है। जिनके कतिपय पद तत्कालीन लिखित हमारे सग्रह के दो गुटकों मे मिले जो "वीर वाणी" में प्रकाशित किये हैं।

सतरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे जिनप्रभसूरि शाखा के विद्वान भानुचन्द्रगणि से शिक्षा प्राप्त श्रीमालज्ञातीय बनारसीदास नामक सुकवि हुए। उन्होंने दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के समयसारादि ग्रन्थों से प्रभावित होकर अध्यात्म मार्ग को विशेष रूप से अपनाया जिससे उनका मत अध्यात्म मनी-बनारसीमत नाम से प्रसिद्ध हो गया। थोड़े समय में ही इस अध्यात्म मत का दूर दूर तक जबर्दस्त प्रभाव फैला। सुदूर मुलतान के कई खरतरगच्छीय ओसवाल श्रावकों ने भी उससे अध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की, फलतः उधर विचरने वाले सुमतिरग, धर्ममन्दिर, और श्री मद्देवचन्द्रजी ने कई महत्त्वपूर्ण अध्यात्मिक रचनायें उन्हीं आध्यात्मिरसिक श्रावकों की प्रेरणा से की। बनारसीदासजीका समयसार, बनारसी विलास, अर्द्ध कथानक आदि साहित्य उल्लेखनीय है।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज अकबर-प्रतिबोधक चतुर्थ दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य श्री पुण्यप्रधानोपाध्याय की शिष्य-परम्परा में उ० दीपचन्द्रजी के शिष्य थे। आपका जन्म सं० १७४६ मे बीकानेर के किसी गाव मे लूणिया तुलसीदासजी के यहा हुआ। लघुवय मे दीक्षा लेकर श्रुतज्ञान की जबदरस्त उपासना की। आप अपने समय के महान् प्रभावक, अतिशय-ज्ञानी और अद्वितीय अध्यात्म तत्त्ववेत्ता थे। आपकी १६ वर्ष की अवस्था में रचित ध्यानदीपिका चौपई जैसी रचनाओं से आपके प्रौढ पाण्डित्य और अध्यात्म ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। चौवीसी आदि रचनाओं में आपने तत्वज्ञान और भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित की है। स्नात्रपूजा आदि कृतियाँ भक्ति की अजोड स्रोतस्विनी है। आपकी कृतियों का संकलन करके ४५-५० वर्ष पूर्व योगनिष्ठ आचार्य-प्रवर श्रीबुद्धिसागरसूरिजी ने अध्यात्म-ज्ञान-प्रसारक मडल से श्रीमद्देवचन्द्र भाग-१-२ में प्रकाशित की थी एव आचार्य महाराज ने आपकी सस्कृत स्तुति आदि मे बडी ही भक्ति प्रदर्शित की है। श्रीमद्देवचन्द्रजी ने क्रियोद्धार किया था, वे सर्वगच्छ समभावी और जैनशासन के स्तम्भ थे। आपने स० १८१२ भा० व० १५ के दिन नश्वर देह का त्याग किया। विशिष्ट महापुरुषो द्वारा ज्ञात अनुश्रुतियों के अनुसार आप वर्तमान मे महाविदेह क्षेत्र मे केवली पर्याय मे विचरते है।

श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज के रास—देवविलास मे आपके ध्रांगध्रा पधारने पर जिन सुखानन्दजी महाराज से मिलने का उल्लेख आया है वे सुखानन्दजी भी खरतरगच्छ के ही अध्यात्मी पुरुष थे उनके कई पद आनन्दघन बहुत्तरी मे प्रकाशित पाये जाते हैं तथा कई तीर्थंकरो व दादासाहब के स्तवन भी उपलब्ध हैं। दीक्षानन्दी सूची के अनुसार आप सुगुणकीर्ति के शिष्य थे और स० १७२८ पोष वदि ७ को बीकानेर में श्रीजिनचन्द्रसूरि द्वारा दीक्षित हुए थे। स० १८०५ मे ध्रागध्रा प्रतिष्ठा के समय देवचन्द्रजी से बडे प्रेमपूर्वक मिले उस समय आपकी आयु ६० वर्ष से कम नहीं होगी। श्रीसुखानन्दजी की कृतिया अधिक परिमाण में मिलनी अपेक्षित है।

उन्नीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय विद्वानो मे श्रीमद्ज्ञानसारजी बडे ही अध्यात्मयोगी हुए है जिन्हें छोटे आनन्दघनजी कहा जाता है। इनकी चौवीसी, बीसी, बहुत्तरी इत्यादि संख्याबद्ध कृतियां हमारे "ज्ञानसार ग्रन्थावली" मे प्रकाशित हैं। श्रीमद् आनन्दघनजी की चौवीसी और बहुत्तरी के कई पदो पर आपने वर्षों तक मनन कर बालावबोध लिखे है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आपका जन्म स० १८०१ दीक्षा स० १८२१ और स्वर्गवास स० १८९८ में हुआ था। आपका दीर्घजीवन त्याग, तपस्या, उच्चकोटि की साहित्य साधना व योग साधनामय था। बड़े-बड़े राजा-

महाराजाओं पर आपका बड़ा प्रभाव था। इनकी जीवनी के सम्बन्ध मे हमारी 'ज्ञानसार ग्रन्थावली' द्रष्टव्य है।

उन्नीसवीं शताब्दी में काशी में खरतरगच्छ के उपाध्याय श्री चारित्रनन्दी गणि परम गीतार्थ थे। जिनके गुरु निधि उपाध्याय के दो शिष्य चिदानन्द जी (कपूरचन्दजी) और ज्ञानानन्द जो बड़े उच्चकोटि के कवि और आध्यात्मिक पुरुष हुए है। श्री चिदानन्दजी महाराज का स्वरोदय ग्रन्थ उनकी योगसाधना और तद्विषयक ज्ञान का अच्छा परिचायक है, आपकी पुद्गल-गीता, बावनो, बहुत्तरी-पद और स्तवनादि भी उच्चकोटि की काव्यकला और अनुभव ज्ञान से ओतप्रोत है। कविताओ का सर्जन, सौष्टव, फबते उदाहरण और हृदयग्राही भाव अत्यन्त श्लाघनीय है। आप गुजरात-भावनगर आदि में काफी विचरे थे। भावनगर की जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा चिदानन्दजी सर्वसग्रह दो भागों मे आपकी समस्त कृतियाँ प्रकाशित हैं।

श्री चिदानन्दजी के गुरुभ्राता श्री ज्ञानानन्दजी भी उच्चकोटि के अध्यात्म योगी थे। आपके शताधिक पदों का संग्रह ज्ञानविलास और सयमतरग रूप में साठ वर्ष पूर्व वीरचन्द पानाचन्द ने प्रकाशित किया था। श्रीचिदानन्द जी महाराज पहले पावापुरी मे गांवमन्दिर के पृष्ठ भाग की कोठरी में ध्यान किया करते थे और पीछे गिरनारजो, पालीताना व सम्मेतशिखरजी मे भी रहे। सम्मेतशिखरजी मे, गिरनारजी में तथा अन्यत्र भी आपकी ध्यान-गुफाएँ प्रसिद्ध हैं। भावनगर के पास आपने छींपा जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। तीस वर्ष पूर्व जब भद्रमुनिजी महाराज भावनगर पधारे। तब उस जाति वालों ने कहा— आप खरतरगच्छ के है। हम भो खरतरगच्छ के श्रीचिदानन्दजी महाराज द्वारा प्रतिबोधित हैं

इन चिदानन्दजी और ज्ञानानन्दजी के पश्चात खरतरगच्छीय सवेगी मुनि प्रेमचन्द्रजी का नाम आता है जो गिरनार पर्वत की गुफाओं में ध्यान करते थे। इनकी गुफा गिरनार पर राजुल गुफा से दक्षिण की ओर अब भी प्रसिद्ध है एवं जूनागढ तलहटी में धर्मशाला से सलग्न दादावाड़ी में मकसूदाबाद निवासी श्री पूरणचन्दजी गोलछा निर्मापित इनकी चरण पादुकाएँ स० १९२१ मे जूनागढ सघ व तीर्थ की पेढी सेठ देवचन्द लखमीचद ने श्री जिनहससूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित कराई थी।

बीसवी शताब्दी के खरतरगच्छीय योग साधनारत अध्यात्मी पुरुषों मे दूसरे चिदानन्दजी महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप हाथरस के निकटवर्ती ग्राम
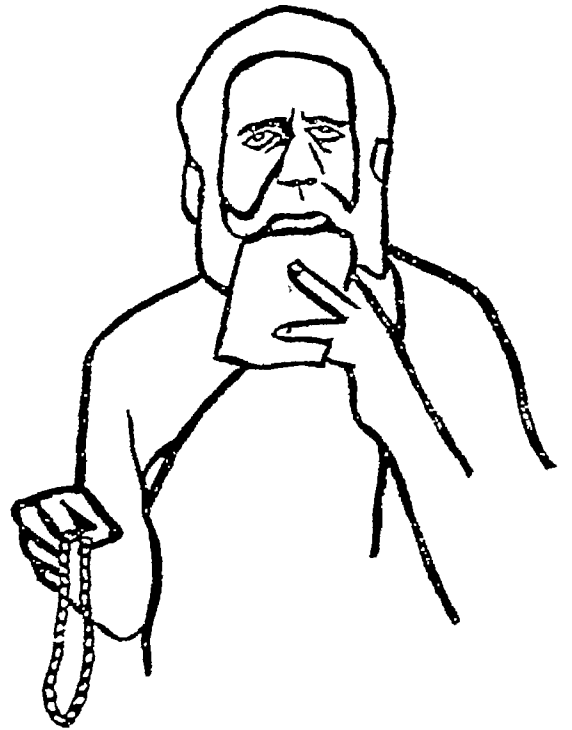
के अग्रवाल वैश्य थे। आपका नाम फकीरचन्द था। कलकत्ते में गवक, सोरे की दलाली करते हुए विरक्त होकर सर्वस्वत्यागी बने और अजीमगंज जाकर शास्त्राभ्यास पूर्वक अपने को जयपुरस्थ खरतरगच्छीय श्री शिवजीरामजी महाराज के शिष्य के रूप में उद्घोषित किया। तदनन्तर पावापुरी और राजगृही में जाकर साधना की। पहले चिदानन्दजी के ध्यान स्थान मे जाकर ध्यान करने पर ११वें दिन आपको आत्मानुभूति

हुई और गुरुकृपा से चिदानन्द नाम पाया। आपको बड़ी दीक्षा श्री सुखसागरजी महाराज ने दी थी। आपको हठयोग साधना की जानकारी बहुत जबरदस्त थी। आपने कई ग्रन्थों की रचना की थी। जिनमे (१) द्रव्यानुभव रत्नाकर (२) अध्यात्म अनुभव योगप्रकाश (३) शुद्धदेव अनुभव विचार (४) स्याद्वादानुभव रत्नाकर (५) आगमसार हिन्दी अनुवाद (६) दयानन्दमत निर्णय (७) जिनाज्ञा विधि प्रकाश (८) आत्मभ्रमोच्छेदन भानु (९) श्रुत अनुभव विचार (१०) कुमत कुलिंगोच्छेदन भास्कर प्राप्त हैं। आपका स्वर्गवास स० १९५९ पौष वदि ९ प्रात: १० बजे जावरा मे हुआ था।
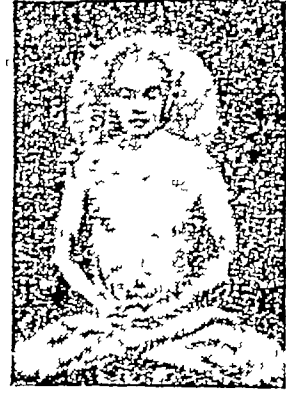
खरतरगच्छ के चारित्र सम्पन्न योगसाधकों में श्री मोतीचन्द्रजी महाराज का नाम भी उल्लेखनीय है। ये पहले लूणकरणसर के यतिजी के शिष्य थे। उत्कृष्ट वैराग्य भावना से प्रेरित हो यह साधु बने। इनकी साधना बडी कठोर थी। शास्त्रोक्त विधि से स्वाध्याय ध्यान के पश्चात् तीसरे प्रहर की चिलमिलाती धूप मे शहर मे आकर रूखा सूखा आहार लेते। ये बडे सरलस्वभावी और ध्यानयोगी थे। हमने भद्रावती की प्राचीन गुफाओं मे आपके दर्शन किये थे। आपका स्वर्गवास भोपाल मे हुआ था। तपस्वी श्री चारित्रमुनिजी आपके ही शिष्य थे। भद्रावती मे आपकी प्रतिमा विराजमान कर संघ ने आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। आपकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

खरतरगच्छ की आध्यात्मिक परम्परा-भवन के शिखर सदृश वर्त्तमान के अन्तिम महापुरुष श्रीभद्रमुनिजी—सहजानन्दघनजी हुए हैं जिनका अभी-अभी मिती कार्तिक सुदी २ को हम्पी मे निर्वाण हुआ है। आपकी साधना अद्भुत, अलौकिक और बडी ही कठिन थी। आपका जन्म स० १९७० मिती भाद्रपद शुक्ला १० के दिन कच्छ के डुमरा गाँव में हुआ था। उन्नीस वर्ष की अवस्था मे बम्बई भातबाजार में आपको ध्यान-समाधि लग गई जिसके

प्रभाव से ससार से विरक्ति होकर सिद्धभूमि मे जाकर वृक्षवत् साधना करने की आत्मप्रेरणा हुई। इस काल में ऐसी कठिन साधना असम्भव बता कर समुदाय मे साधु जीवन अमुक काल तक बिताने की आज्ञा पाकर पुनशीभाई की प्रेरणा से खरतरगच्छीय श्री मोहनलालजी महाराज के प्रशिष्य चारित्र-चूडामणि गणिवर्य श्रीरत्नमुनिजी (आचार्य श्री जिनरत्नसूरि) के पास स० १९८९ कच्छ देश के गांव लायजा मे दीक्षित हुए। उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी के पास अल्पकाल में समस्त शास्त्रों का अभ्यास किया। आप षड्भाषा व्याकरण, काव्य, कोश, छद, अलंकार आदि के प्रकाण्ड विद्वान बने। बारह वर्ष पर्य्यन्त गुरुजनों की निश्रा में चारित्र की उत्कृष्ट साधना करते हुए विचरे। स० २००३ मिती पोष सुदि १४ सोमवार संध्या ६ बजे अमृत वेला मे आपने मोकलसर गुफा मे प्रवेश किया। वहा ऊपर बाघ की गुफा थी और इस गुफा में भी दो विषधर साँप रहते थे, जिसमें कठिन साधना की। स० २००४ की कातिक पूर्णिमा को विहार कर वहा से गढ-सिवाणा पधारे। तत्पश्चात् पाली, ईडर आदि स्थानों मे गुफावास किया। ईडर में तप्त-शिलाओं पर घण्टों कायोत्सर्ग करते थे। चारभुजा रोड (आमेट) मे चन्द्रभागा तटवर्त्ती गुफा में केवल एक पछिया और एक चद्दर के सिवा अन्य वस्त्र के बिना, कडाके की ठण्ड में तप करते रहे। प्रतिदिन ठाम चौविहार एकाशना तो वर्षों से चलता ही था।

वह भी हाथ में अल्प आहार करते थे। नये कर्मबन्ध न हों और उदयाधीन कर्मों को खपाने का अद्भुत प्रयोग आपने मौन रहते हुए किया। फिर हृषीकेश, उत्तर काशी और पंजाब के स्थानों मे निर्विकल्प भाव से विचरते हुए सं० २०१० मे महातीर्थ समेतशिखरजी पधारे। मधुवन व पहाड़ पर श्रीचिदानन्दजी महाराज की गुफा मे रह कर तपश्चर्या की। वहां से विहार कर वीरप्रभु की निर्वाणभूमि पावापुरी मे पधार कर छः सात मास रहे। दहाणु की लोहाणा वकील पुरषोत्तम प्रेमजी पौंडा की पुत्री सरला के लिये समाधि-शतक रचकर मौन साधना मे भी एक घण्टा प्रवचन करके उसे समाधिमरण कराया। आत्मभावना की अखण्ड धुन प्रवारित कर राजगृहादि यात्रा कर गया होते हुए गोकाक पधारे। वहां तीन वर्ष अखड मौन साधना में गुफावास किया। इस समय ठाम चौविहार मे केवल दूध और केला के सिवा अन्नादि का त्याग था। फिर मध्य प्रदेश में पधार कर तारणपंथ के तीर्थ धाम निसिईजी में कुछ दिन रह कर आत्मसिद्धि का हिन्दी पद्यानुवाद करके प्रवचन किया। मथुरा, बीकानेर आदि पधार कर सं० २०१४ का चातुर्मास प्राचीन तीर्थ खण्डगिरि (भुवनेश्वर) में बिताया। तीर्थयात्रा करते हुए क्षत्रियकुण्ड पहाड पर तपस्वी साधक श्रीमनमोहनराजजो भणशाली के आग्रह से दो मास रहे। फिर हृषीकेश आदि स्थानों में होकर मध्यप्रदेश पधारे और चातुर्मास ऊन में बिताया। फिर बीकानेर पधारे, जैसलमेर की यात्रा की। शिववाड़ी और उदरामसर के धोरो मे रहकर बोरडी पधारे। स० २०१८ के ज्येष्ट शुक्ला १५ की रात्रि मे सातसौ नर-नारियो की उपस्थिति में दिव्य वस्तुओं के साथ युगप्रधान पद का श्लोक प्रकट हुआ जिसके साक्षी स्वरूप अनेक विशिष्ट व्यक्ति विद्यमान थे। तत्पश्चात् क्रमशः पूर्व जन्मों की साधना भूमि हम्पी पधारे जो रामायणकालीन किष्किन्ध्या और मध्यकाल के विजयनगर का ध्वंशावशेष है। वहां १४० जैन मन्दिर वाले हेमकूट पर कुछ दिन रहकर सामने की पहाडी रत्नकूट की गुफा मे अधिवास किया। श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम की स्थापना हुई। मैसूर सरकार और हेमकूट के महन्त जागीरदार ने समूचा पहाड जैन सघ को निशुल्क भेंट किया। जहाँ के भयानक वातावरण में दिन मे भी लोग जाने में हिचकिचाते थे, आपके विराजने से दिव्यतीर्थ हो गया। बहुत से मकान और गुफाओं का निर्माण हुआ। विद्युत् और जल की सुविधा तो है ही। श्रीमद्राजचन्द्र जन्मशताब्दी के अवसर पर पक्की सडक का निर्माण हो गया है जिससे मोटरें भी ऊपर जाती हैं। विशाल व्याख्यान हाल, फ्री भोजनालय आदि तो हो ही गये, विशाल मन्दिर और दादावाड़ी के निर्माण की भी योजनाएँ है। प्रतिवर्ष लाखो रुपयों का आमद-खर्च है। पर्यूषण मे तो उस निर्जन स्थल में चार पाँच सौ व्यक्ति पर्वाराधन करते रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल और मध्यान्ह के प्रवचन में भी बहुत से भावुक लाभ उठाते रहे। आपने तीन वर्ष पूर्व समस्त तीर्थ यात्रा और पचासों स्थानों में भ्रमण करके जो व्यक्ति हम्पी नही पहुँच सकते थे उन्हें भी अपनी अमृत वाणी से लाभान्वित किया। आप ध्यान और योग के पारगामी थे। चचल मन को वश करने, देहाध्यास मिटा कर आत्मदर्शन प्राप्त करने की शास्त्रीय कुंजियाँ आपके हस्तगत थीं। आप की प्रवचन शैली अद्वितीय थी। तत्वज्ञान और अध्यात्मवाद जैसे शुष्क विषय की निरूपण-शैली आपकी अजोड थी। हजारो श्रोताओं के मनोगत प्रश्नो को बिना प्रश्न किये प्रवचन में समाधान कर देने की अद्भुत प्रतिभा थी। अनेक सद्गत महापुरुषों से आपका सपर्क था, और दिव्य सुगधी दिव्य वृष्टि आदि होते रहते। अनेक लब्धि सिद्धियाँ जो युगप्रधान पुरुष में स्वाभाविक प्रगट होती हैं, विद्यमान रहते हुए भी कभी उस तरफ लक्ष्य नहीं करते। ज्वर, सर्दी आदि व्याधि की कृपा बनी रहती पर कर्म खपाने के लिये वे उसका स्वागत करते और औष-

घादि का प्रयोग न कर उदयागत कर्मो को भोगकर नाश करना ही उनका ध्येय था। ऐसे समय मे उनकी ध्यान समाधि और भी उच्चस्तर पर पहुँच जाती। सत्य है जिसे देहाध्यास नही, आत्मा के शास्वत अविनाशीपन का अखण्ड ज्ञान है उसे शरीर की चिन्ता हो भी कैसे सकती है? तो इस प्रकार की आत्मरमणता और शरीर के प्रति निर्मोहीपन से आप के शरीर को अर्शव्याधि ने जोर मारा और अशक्ति बढती गई। गत पर्युषण पर देह व्याधि का ख्याल न कर श्रोताओं को अपने प्रवचनों का खूब लाभ दिया। २८ कीलो से भी क्रमश शरीर क्षीण होता गया घटता गया पर सतत आत्मचिन्तन में रहे उन महायोगी ने गत कार्तिक शुक्ल २ की रात्रि मे इस नश्वर देह का त्याग कर दिया।

दादा साहब श्री जिनदत्तसूरिजी आदि गुरुजनों के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी और आपका जीवन भी उन्ही के पथ-प्रदर्शन में उदयाधीन प्रवृत्त था। दादा साहब ने ही आपको "तू तेरा सभाल" ध्येय मत्र देकर आत्म साक्षात्कार की प्रेरणा दी थी। वर्तमान जैन समाज अपने आत्म दर्शन मार्ग से हजारों योजन दूर चला गया है और शास्त्र-निर्दिष्ट आत्मसिद्धि से वञ्चित आत्म-रमणता से दूर केवल बाह्य चकाचौंध में भटका हुआ है। इस वर्तमान प्रवृत्ति से आपकी भाव दया प्रेरित उपकार बुद्धि आत्मदर्शन की प्रेरणा देती रही। आपके हृदय मे गच्छों की तो बात ही क्या पर दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद-भावो को भी मिटा देने की भावना थी वे स्वय दिगम्बर अध्यात्मिक ग्रथों को अध्ययन करते और उन्होंने उन ग्रथों को भाषा पद्यों मे गुफित कर अध्यात्मिक जगत् का महान् उपकार किया है। नियमसार, समाधिशतक आदि कृतियां उसी का परिणाम है। श्रीमद् आनदघन जी की चौबीसी का आपने १७-१८ स्तवनों तक का मननीय विवेचन लिखा व पदो का भी अर्थ सकलन किया था। आपने प्राकृत व भाषा में दादा साहब के स्तोत्र स्तवनादि रचे चैत्यवन्दन चौवीसी, अनुभूति की आवाज, सख्याबद्ध स्तवन व पदों का निर्माण किया। पचीस तीस वर्ष पूर्व आपने प्राकृत व्याकरण की भी रचना की थी जिसे गुफावास की एकाकी भावना ने अलभ्य कर दिया। इसी प्रकार "सरल-समाधि" की दोनों कापियाँ जिसमें अपनी प्रसिद्धि की सभावना समझ कर तीव्र वैराग्यवश अप्राप्य कर दिया। गुरुवर्य श्री जिनरत्नसूरि जी व विद्यागुरु उपाध्याय जी श्री लब्धिमुनिजी की स्तवना मे सस्कृत व भाषा मे कई पद्य रचे। आपकी सभी रचनाएं प्रकाशित करने की भावना होते हुए भी हम आपकी आज्ञा न होने से प्रकाशित न कर सके। आपके प्रवचनों का यदि सागोपाग सग्रह किया जाता तो वह मुमुक्षुओ के लिए बडा ही उपकारी कार्य होता।

वर्तमान युग में श्रीमद् राजचद्र सर्वोच्च कोटि के धर्मिष्ठ, साधक और आत्मज्ञानी हुए है। दादा साहब की उदार प्रेरणावश आपने उनके ग्रन्थों को आत्मसात् कर अधिकाधिक विवेचन अपने प्रवचनों में किया। उनके प्रति आपकी अटूट श्रद्धा-भक्ति थी जिससे आपने श्रीमद् के अनुभव पथ को खूब प्रशस्त किया। श्रीमद् राजचद्र ग्रथ में से "तत्त्व-विज्ञान" नाम से उनकी चुनी हुई रचनाओं का सग्रह प्रकाशित करवाया। श्रीमद् देवचद्रजी की रचनाओं का पुन सपादन प्रकाशन करने के लिए हमे हस्तलिखित प्रतियो के आधार से "श्रीमद् देवचद्र" ग्रथ तैयार करने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार श्रीमद् आनदघन जी की कृतियो (बावीसी स्तवन और पद बहुत्तरी) के पाठों को भी प्राचीन प्रतियों के आधार से सुसपादित सस्करण प्रकाशन करने का सुझाव दिया। हमने आपके आदेशानुसार ये दोनो कार्य यथाशक्ति किये है और उन्हें शीघ्र ही प्रकाशन किया जायगा। हमारी भावना थी कि ये दोनों ग्रन्थ आपश्री के निरीक्षण मे प्रकाशित हों पर भवितव्यता को ऐसा स्वीकार नहींथा।

खरतर गच्छ में और भी कई त्यागी वैरागी अध्यात्म प्रिय साधु साध्वी हुए हैं उनमे से प्रवर्त्तिनी स्वर्णश्री जी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में उ० श्री क्षमाकल्याण जी ने संवेगी मुनियों की परम्परा प्रारम्भ की उनमे श्री सुखसागर जी का समुदाय आज तक विद्यमान है, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे यति सम्प्रदाय में से श्रीमोहनलालजी महाराज और श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज ने क्रियोद्धार करके पचासों साधु-साध्वियों को सयमाराधन मे प्रवृत्त किए उनकी परम्परा भी चल रही है।

उपाध्याय क्षमाकल्याणजी और उनका साधु समुदाय

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

भगवान महावीर के शासन की यह एक विशेषता रही है कि मानव प्रकृत्यनुसार साध्वाचार मे जब-जब शिथिलता आयी तो उसके परिहार के लिए कई क्रान्तिकारी महापुरुष प्रकट हुए। क्योकि भ० महावीर ने जैनमुनियों का आचार बड़ा कठिन और निरवद्य रखा था इसलिए उनकी वाणी का जिन्होने भी ठीक से स्वाध्याय मनन किया उन्हें जैनधर्म का आदर्श सदा यह प्रेरणा देता रहा कि विशुद्ध साध्वाचार पालन करना ही प्रत्येक साधु-साध्वी का कर्त्तव्य है। यदि उसमें कहीं दोष लगता है तो उसका परिमार्जन किया जाना भी अत्यावश्यक है।

खरतरगच्छ अपनी विशुद्ध साध्वाचार की परम्परा के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसे सुविहित विधिमार्ग इस उपनाम से भी उल्लिखित किया जाता रहा है। समय समय पर जब भी शिथिलाचार पनपा तब खरतरगच्छ के आचार्यों और मुनियों ने क्रियोद्धार द्वारा पुन. शुद्ध साध्वाचार प्रतिष्ठित किया। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे भी वाचक अमृतधर्मगणि ने सवेग भाव से कतिपय साधूचित नियमों को ग्रहण कर आचार-निष्ठा का भव्य उदाहरण उपस्थित किया। ये जिनभक्तिसूरिजी के शिष्य प्रीतिसागर उपाध्याय के शिष्य थे। सं० १८३८ मिती माघसुदि ५ को आपने परिग्रह का सर्वथा त्याग कर दिया था। इन्ही के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणजी हुए जिनकी परम्परा का साधु समुदाय आज भी सुखसागरजी के सघाड़े के नाम से विद्यमान हैं।

प० नित्यानदजी विरचित सस्कृत क्षमाकल्याणचरित के अनुसार क्षमाकल्याणजी का जन्म बीकानेर के समोपवर्त्ती केसरदेसर गाँव के ओसवंशीय मालू गोत्र में सं० १८०१ में हुआ था। आपका जन्म नाम खुशालचन्द्र था। दीक्षानन्दी सूची के अनुसार स० १८१५-१६ में श्रीजिनलाभसूरिजी के पास आपने यति-दीक्षा ग्रहण की। आपके धर्म-प्रतिबोधक और गुरु वाचक अमृतधर्मजी थे। विद्यागुरु उपाध्याय राजसोम और उपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र) थे। सवत् १८२६ से ४० तक आप वाचक अमृतधर्मजी, श्रीजिनलाभसूरिजी और श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के साथ राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छादि मे विचरे और तत्रस्थ तीर्थों की यात्रा कर स० १८४३ मे पूर्वदेश की ओर अपने गुरु महाराज के साथ विहार किया। सं० १८४३ का चातुर्मास बालूचर में करके भगवती सूत्रकी वाचना की। पाँचवर्ष तक बगाल-विहार में विचरण कर आपने कई मदिर-मूर्त्तियों-पादुकाओं आदि की प्रतिष्ठा की। वहा के श्रावकों की प्रेरणासे हिन्दी-राजस्थानी मे कई रचनाएँ भी की।

स० १८५० का चातुर्मास बीकानेर करके स० १८५१ का जेसलमेर किया और वही माघ सुदि ८ को आपके गुरु महाराज का स्वर्गवास हो गया। जेसलमेर मे आज भी अमृतधर्म शाला उनकी स्मृति मे विद्यमान है। स० १८५५ मे श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आपको वाचक पद दिया और दो तीन वर्ष बाद श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद से विभूपित किया। स० १८५८-५९ मे आप उपाध्याय के रूप मे सूरिजी के साथ जेसलमेर थे। स० १८२६ से लेकर १८७३ तक आप निरन्तर साहित्य निर्माण करते रहे। अजीमगज, महिमापुर, महाजन टोली, पटना, देवीकोट,

अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, मंडोवर मे आपने प्रतिष्ठाए करवायीं। अनेक श्रावक श्राविकाओं ने आपसे व्रत ग्रहण किया। सभी प्रसिद्ध तीर्थों की आपने यात्राएं की। स० १८६६ में गिडिया राजाराम व सघपति तिलोकचद लूणिया के विशाल सघ के साथ शत्रुञ्जय गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की।

आपने अनेक सुयोग्य शिष्यादि को विद्याध्ययन करवाया। जिनमे से सुमतिवर्द्धन और उमेदचन्द्र की उल्लेखनीय रचनायें प्राप्त हैं। स० १८६८ मे शारीरिक अस्वस्थता के कारण आप किशनगढ से बीकानेर आ गये और अन्तिम समय तक वही विराजे। स० १८७३ पोष वदि १४ मगलवार को बीकानेर मे आपका स्वर्गवास हुआ। आपके अग्नि सस्कार स्थान पर रेल दादाजी में चरणपादुका एवं स्तूप प्रतिष्ठित हैं। श्री सीमंधर स्वामीजी के मन्दिर व सुगनजी के उपाश्रय में आपकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। आपकी तरुण और वृद्धावस्था के कई चित्र भी उपलब्ध हैं। आपके अक्षर बडे सुन्दर थे आपके लिखे हुए पत्र का ब्लाक, आपका चित्र, रचनाओ की सूची और विशेष जीवन परिचय श्री पुण्यस्वर्ण ज्ञानपीठ, जयपुर से प्रकाशित आपके प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक के हिन्दी अनुवाद मे प्रकाशित कर चुका हूँ। आपकी कई सस्कृत की रचनाएँ व स्तवनादि प्रकाशित हो चुके हैं। कल्याणविजय, विवेकविजय, विद्यानन्दन, धर्मविशाल आपके शिष्य थे। धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी उनके शिष्य ऋद्धिसागरजी के शिष्य सुखसागरजी हुए। क्षमाकल्याणजी अपने समय के बडे आगमज्ञ और गीतार्थ पुरुष थे।

श्री मद् देवचन्द्रजी के हस्ताक्षरों मे आनदवर्द्धन कृत चोवीसी का अन्तिम पत्र (१७७०)

[अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर

सुविहिताग्रणी गणाधीश सुखसागरजी का जीवन परिचय

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

महापुरुषो का नाम स्मरण ही महामाङ्गल्यप्रद माना जाता है। जन साधारण के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने मे महापुरुषो का जीवनचरित्र जितना उपयोगी होता है, अन्य कोई भी साधन नही होता। शास्त्रवाक्य मार्ग दिखाते है और उन आदर्शो के उदाहरण महापुरुष अपनी जीवनी द्वारा उपस्थित करते है। अत उनसे अधिक एव सद्य प्रेरणा मिलना स्वाभाविक है। यही कारण है कि प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति महापुरुषों के नाम स्मरण, भक्ति एव पूजादि द्वारा अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करता है।

जैन धर्म मे समय-समय पर अनेक महापुरुष हुए हैं। जिनमें से कइयो का प्रभाव तो अपने समय तक ही अधिक रहा और कइयों के दीर्घकाल तक उनके शिष्य सततिद्वारा लोकोपकार होता रहा है। यहाँ जिन महापुरुषों का परिचय कराया जा रहा है वे द्वितीय प्रकार के है। उनकी पुण्य परम्परा में आज भी दर्जन से अधिक साधु व २०० के लगभग साध्वियो का विशाल समुदाय विद्यमान है। जो कि स्थान-स्थान पर विहार कर स्वपरोपकार कर रहे हैं। इन महापुरुष का शुभ नाम मुनिवर्य सुखसागरजी था। श्वे० जैन समाज के सुविहित शिरोमणि जिनेश्वरसूरिजी की सतति खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्ध है। इस गच्छ में १८वीं शती मे जिनभक्तिसूरिजी आचार्य हो चुके है। उनके शिष्य प्रीतिसागरजी के शिष्य अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याणजी १९वीं शती के नामांकित विद्वानों मे से है। आपने तत्कालीन शिथिलाचार से अपने को ऊंचा उठाकर सुविहित मार्ग मे नवचेतना का सचार किया था। जनसाधारण के उपकार के लिये आपने अनेक उपयोगी ग्रन्थों की रचना की थी। आपके शिष्य धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी से चरित्रनायक ने दीक्षा ग्रहण की थी और उनके शिष्य ऋद्धिसागरजी के शिष्य के रूप मे आप प्रसिद्ध है।

स्वर्गीय मुनिवर्य श्रीसुखसागरजी का जन्म स० १८७६ मे सरस्वती पत्तन (सरसा) नामक स्थान मे हुआ था। आपके पिताजीका नाम मनसुखलालजी व मातुश्री का नाम जेती बाई था। ओसवाल जाति के दूगड गोत्र के आप रत्न थे। आपके यौवनावस्था मे प्रवेश से पूर्व ही माता पिता दोनो का वियोग हो गया। अत. अपनी बहन के आग्रह से ये जयपुर मे आ गये, व गोलछा माणिकचन्दजी लक्ष्मीचन्दजी की सहायता से किरियाणे का व्यापार करने लगे। थोड़े समय में ही अपनी व्यवहार कुशलता से आप उनके यहा मुनीम जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर सुशोभित हो गये।

बाल्यावस्था से ही आपकी रुचि धर्मध्यान की ओर विशेष थी। इसी से पिताजी के अनुरोध करने पर भी आपने विवाह करना स्वीकार नहीं किया था व सामायिक, पूजा, तपश्चर्यादि मे सलग्न रहते थे। स० १९०६ मे जयपुर में मुनि श्रीराजसागरजी व ऋद्धिसागरजी का चातुर्मास हुआ। फलत आपकी धर्मभावना के सींचन का शुभ सुयोग प्राप्त हो गया। अपनी चढती भावना से आपने मुनिश्री से साधु-धर्म स्वीकार करने की उत्कठा प्रकट की। उन्होंने भी आपको वैराग्यवान व दीक्षा की उत्कट भावना वाला ज्ञात कर चातुर्मास होने पर भी आपके आग्रह को स्वीकार किया। नियमानुसार अपने निकट सम्बन्धियों से
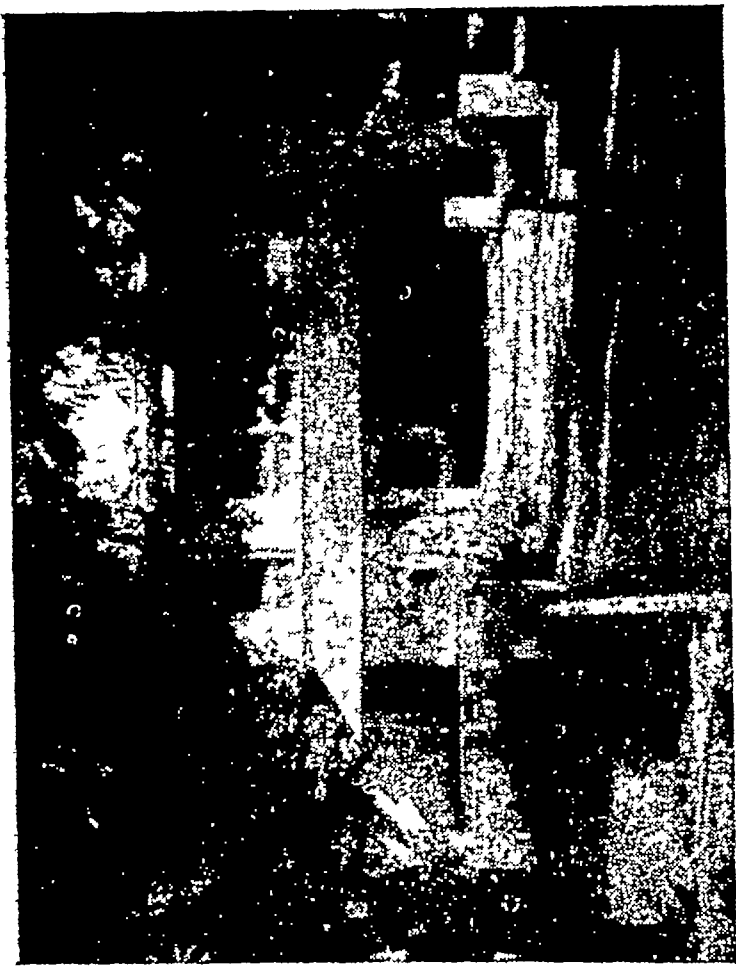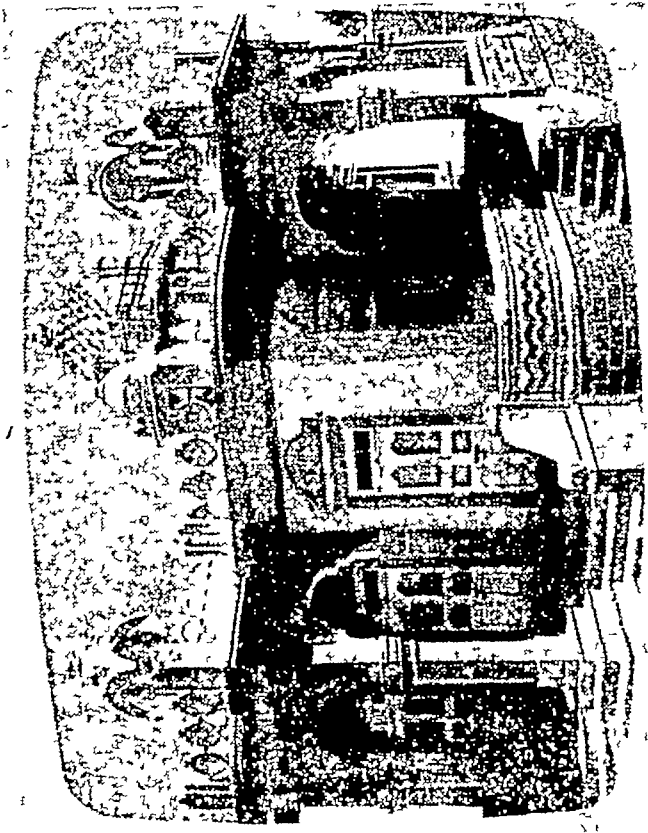
भद्रेश्वर (कच्छ) तीर्थ की दादावाड़ी

छोटा दादाजी, दिल्ली

श्रीइन्द्रदूगड़ चित्रित, श्रीजिनदत्तसूरिजी के जीवनवृत्त चित्र, कलकत्ता दादावाड़ी

तु तेरा सम्भाल

-- सहजानन्द

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघन (भद्र मुनिजी) महाराज
जन्म सं० १९७० भा० सु० १० डुमरा दीक्षा सं० १९९० वै० सु० ६ लायजा
युगप्रधान पद सं० २०१८ ज्ये० सु० १५ महाप्रयाण स० २०२७
का० सु० ३ बोरड़ी रत्नकूट

चित्र—श्री इन्द्र दूगड

(जैन भवन कलकत्ता के सौजन्य से)

चारित्र धर्म स्वीकार करने की अनुमति प्राप्तकर सांवत्सरिक क्षमत क्षामणा के मांगलिक पर्व के दिन गुरुजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा का महोत्सव उपर्युक्त गोलछा परिवार ने किया। मुनिवर राजसागरजी ने प्रव्रज्या ग्रहण कराते हुए आपको मुनिश्री ऋद्धिसागरजी का शिष्य घोषित किया।

साध्वाचार की समुचित शिक्षा के अनन्तर मार्गशीर्ष मास मे आपकी वडी दीक्षा भी हो गयी। अब आप जैन सिद्धान्त के विशेष अध्ययन मे सलग्न हो गये और थोडे ही समय मे जैनागमों मे दक्षता प्राप्त कर ली।

आगमवाचना के समय शास्त्रोक्त साधु जीवन से अपने वर्तमान जीवन की तुलना करने पर शिथिलता नजर आई। अत साध्वाचार को खप होने से आपने मुनि पद्मसागरजी व गुणवन्तसागरजी के साथ गुरुजी से अलग होकर स० १९१८ सिरोही मे क्रिया-उद्धार कर लिया। तदनन्तर सुविहित मार्ग का प्रचार व तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए सर्वत्र विहार करने लगे। अनुक्रम से तीर्थाधिराज शत्रुजय की यात्रा करके आप फलौदी पधारे।

इधर साध्वीजी रूपश्रीजी की शिष्या उद्योतश्रीजी शिथिलाचार से सम्बन्ध-विच्छेद कर स० १९२२ में फलौदी आयी। और आपको योग्य सुविहित गुरु जानकर आपसे वासक्षेप लेकर आज्ञानुवर्तिनि हो गई। स० १९२४ में लक्ष्मी बाई दीक्षित होकर उनकी लक्ष्मीश्रीजी के नाम से शिष्या हो गयी। स० १९२५ में भगवानदास श्रावक ने गुरुश्री से दीक्षा ग्रहण की। और भगवानसागरजी के नाम से वे प्रसिद्ध हो गये। मुनि पद्मसागरजी फलौदी पधारने के पूर्व ही अलग हो चुके थे अतः ३ साधु और ३ साध्वी का आपका समुदाय हुआ।

एक बार आपने स्वप्न मे मनोहर वाटिका मे बछड़ों के झुण्डसह गायों को विचरते हुए देखा जिसके फलस्वरूप आपने भविष्य में साध्वी समुदाय का विस्तार होना बताया और आपकी यह भविष्यवाणी पूर्णरूपसे सिद्ध हुई।

जैनागमों के निरन्तर अध्ययन से आपके ज्ञान की वृद्धि हुई और जन साधारण के सुबोध के लिये आपने जीवाजीव, राशिप्रकाश (१९१० में सैलाने से प्रकाशित) भाषा कल्पसूत्र, १०८ बोल, ६२ मार्गणायत्र, दशक, शतक, अष्टक एव कई अन्य बोल-चाल के ग्रन्थों की रचना की।

इस प्रकार सुविहित मार्ग का पुनरुद्धार कर धर्मप्रचार करते हुए ३६ वर्ष ४ महीने १४ दिन का निर्मल सयम पालन कर स० १९४२ के माघ वदि ४ शनिवार के प्रातः काल फलौदी मे अनशन द्वारा आप ध्यानपूर्वक स्वर्ग सिधारे।

आप बड़े पुण्यशाली महापुरुष थे। यद्यपि आपकी विद्यमानता मे ५ साधु व १४ साध्वियों का समुदाय ही हुआ पर वह क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हुआ और थोडे समय के अनन्तर ही साध्वियों की स० २०० के लगभग पहुँच गई है।

बीसवीं शती के खरतरगच्छीय विद्वान ग्रन्थकार व क्रियापात्र योगिराज चिदानन्दजी ने शिवजीराम से अलग होकर पूज्य सुखसागरजी महाराज से अजमेर मे उपस्थापना दीक्षा ग्रहण की थी। इससे उस समय आपके विशुद्ध चारित्र की ख्याति कितनी अधिक थी, इसका भली भाँति परिचय मिलता है।

ऐसे महापुरुष जैन सघ मे अधिकाधिक अवतरित हो यही हार्दिक अभिलाषा है।

प्रभावक आचार्यदेव श्री जिनहरिसागरसूरीश्वर

[ले० मुनिश्री कान्तिसागरजी]

आचार्य पद की महत्ता

जैन शासन में आचार्यों का स्थान श्री तीर्थंकर भगवान् से दूसरे नम्बर पर ही आता है क्योंकि जिस समय भव्यात्माओं को मोक्ष-मार्ग दिखा कर श्रीतीर्थंकर भगवान् अजरामर पद को प्राप्त हो जाते हैं, उस समय उनके विरहकाल में द्वादशाङ्गी रूप सम्पूर्ण प्रवचन की और जैन-संघ के विशिष्ट उत्तरदायित्व को आचार्य देव ही धारण करते हैं। अतएव प्रवचन-प्रभावक प्रातःस्मरणीय आचार्य-देवों के पुनीत चरित्रों को जानना प्रत्येक आत्महितैषी का कर्तव्य हो जाता है। अतः एक ऐसे ही आचार्यदेव के दिव्य जीवन से परिचय कराया जाता है। जिसकी अतुल-कीर्त्ति-किरणों से मारवाड़ का प्रत्येक प्रदेश आज प्रकाशमान है।

पूर्व सम्बन्ध

श्रीमन्महावीर भगवान् के ६८वें पट्टधर श्रीजिनभक्ति सूरिजी म० के पट्टशिष्य श्रीप्रीतिसागरजी महाराजने वि० की १९वीं-शताब्दी में यति समुदाय में बढ़ते हुए शिथिलाचार को और प्रभुपूजा विरोधी ढूंढक मत के प्रचार को देखकर वाचनाचार्य श्री अमृतधर्मजी म० और महोपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणजी महाराज-जो कि आपके शिष्य-प्रशिष्य थे—के साथ श्रीसिद्धाचल तीर्थाधिराज पर क्रियोद्धार किया था। महोपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणजी म० की शिष्य परम्परा में परमोपकारी सिद्धान्तदधि गणाधीश्वर श्रीसुखसागरजी महाराज हुए। आपका समुदाय खरतर गच्छीय साधुओं में अधिक प्राचीन एवं सुविस्तृत रूपसे वर्तमान है। श्रीसुखसागरजी महाराज की समुदाय के अधिनायक आबाल-ब्रह्मचारी प्रवचन-प्रभावक पूज्य श्रीजिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज थे। आपका ही पुनीत चरित्र प्रस्तुत लेख में प्रकाशित किया जाता है।

कुमार हरिसिंह

जोधपुर राज्य के नागोर परगने मे प्राकृतिक सौन्दर्य से हराभरा 'रोहिणा' नाम का एक छोटा सा गांव है। वहां खेती-पशुपालन आदि स्वावलम्बी कर्म वाले और युद्धभूमि में दुश्मनों से लोहा लेनेवाले, क्षत्रियोचित गुणों से स्वतन्त्र जीवन वाले, जाट वंशीय भुरिया खानदान के लोगों की जमींदारी है। जमींदारों के प्रधान पुरुष—श्रीहनुमन्तसिंहजी की धर्मपत्नी श्रीमती केशरदेवी की पवित्र कूँख से वि० स० १९४६ के मार्गशीर्ष शुक्ला ७ के दिन दिव्य मूहूर्त मे हमारे चरित-नायक का जन्म हुआ था। हरि-सूर्य और सिंह के समान तेजोमय भव्य आकृति और महापुरुषों के प्रधान लक्षणों से युक्त अपने सुकुमार को देखकर माता-पिता ने आपका गुणानुरूप नाम 'श्रीहरिसिंह' रखा था।

सफल संयोग

अपनी अलौकिक लीलाओं से माता-पितादि परिजनों को आनन्दित करते हुए कुमार हरिसिंह जब करीब ६-७ वर्ष के हुए तब अपने पिता के साथ पूज्य गणाधीश्वर श्री भगवान्सागरजी महाराज-जो कि गृहस्थावस्था में आपके चाचा लगते थे—के दर्शन के लिये फलोदी (मारवाड) गये। बाल लीला के साथ आपने वंदन करके श्रीगुरुमहाराज की पापहारिणी चरणधूलि को अपने मस्तक में लगाई। श्रीगुरुदेव ने दिव्य-दृष्टि से आप में भावी प्रभाव-

कता के प्रशस्त चिन्ह पाये। लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित हो गुरु-महाराज ने श्रीहनुमन्तसिंह जी को उपदेश दिया कि तुम्हारे ५ लड़के हैं। उनमे से इस मव्यम कुमार को आप हमे दे दो। क्योंकि यह कुमार वडा भारी साधु होगा, और अपने उपदेशों से जैनशासन की महती सेवा करेगा। इसको देने से तुमको भी अपूर्व धर्म-लाभ होगा। गुरुमहाराज की इस पुण्य प्रेरणा से प्रेरित हो वीरहृदयी हनुमन्तसिंहजी ने वडी वीरता के साथ अपने प्राण प्यारे पुत्र को धर्म के नाम पर श्रीगुरुमहाराज को भेंट कर दिया। गुरुदेव और कुमार के इस सफल संयोग से 'सोने मे सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हुई। धन्य गुरु! धन्य पिता!! धन्य कुमार!!!

साधुता के अङ्कुर

श्री गुरु महाराज ने अपनी वृद्धावस्था के कारण कुमार की विशेष देखभाल और पठन-पाठन का भार अपने सहयोगी महातपस्वी श्री छगनसागरजी महाराज को दिया। पूज्य तपस्वीजी के योग्य अनुशासन में महामहिम शालिनी मेधावाले कुमार ने साधु क्रिया के सूत्र थोडे ही समय मे सीख लिये। पूर्व जन्म के पुण्योदय की प्रवलता से आठ वर्ष की वाल्य अवस्था में गुरु महाराज की परम दया से साधुता के वोज अङ्कुरित हो गये।

साधु श्री हरिसागरजी

कुमार हरिसिंह जब कुछ अधिक साढे आठ वर्ष के हुए, तब युवकों का सा जोश, और वृद्धो का सा अनुभव रखते थे। गुरु महाराज ने माता पिता को और स्थानीय (फलोदी) जैन सघ की अनुमति से आपकी दीक्षा का प्रशस्त मुहुर्त्त १९५७ आषाढ कृष्ण ५ के दिन निर्धारित किया। अपने आयुष्य की अवधि निकट आ जाने से श्री गुरु महाराज ने श्री सघ से खमत-खामणा करते हुए अन्तिम आज्ञा दी कि 'हरिसिंह को योग्य अवस्था होने पर इसे मेरा उत्तराधिकारी मानना'। सघ के मुखिया महा-तपस्वी श्रीछगनसागरजी म० ने अपने पूज्य गणाधीश्वरजी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके, उनको निश्चिन्त बना दिया। गणि श्रीभगवान्‌सागरजी महाराज आत्मरमण करते हुए दिव्य लोक को सिधार गये तब सघ मे एक दम शोक छा गया। परंतु गुरुदेव के प्रतिनिधि स्वरूप कुमार हरिसिंह के दीक्षा-महोत्सव ने शोक को मिटा कर अपूर्व आनन्द को फैला दिया। श्री सघ के सामने वडे भारी समारोह के साथ पू० त० श्री छगनसागरजी महाराज ने कुमार हरिसिंह को उसी पूर्व निश्चित सुमुहुर्त्त में भगवती दोक्षा प्रदान कर पूज्य गणाधीश्वर श्री भगवानसागरजी महाराज के शिष्य 'श्री हरिसागरजी' नाम से उद्घाषित किये।

चरित नायक के गुरु भाई

गणाधीश्वर पूज्य श्री भगवानसागरजी महाराज साहब के शिष्य अध्यात्म योगी चैतन्यसागरजी म० उर्फ चिदानन्दजी महाराज महोपाध्याय श्री सुमतिसागरजी महाराज, मुनि श्री धनसागरजी महाराज, मुनि श्री तेज-सागरजी महाराज, श्री त्रैलोक्यसागरजी महाराज और हमारे चरितनायक आचार्य श्री जिनहरिसागरसूरीश्वरजी महाराज हुए।

आदर्श जीवन

पूज्य श्री छगनसागरजी महाराज की वृद्धावस्था होने से और हमारे चरितनायक की वाल अवस्था होने से स० १९५७ से १९६५ तक के चातुर्मास लोहावट और फलोदी (मारवाड़) मे ही हुए। इस सानुकूल सयोग में ज्ञान तप और अवस्था से स्थिविर पद को पाये हुए पूज्य श्री छगन-सागरजी महाराज ने आपको सस्कृत व प्राकृत भाषा को पढ़ाने के साथ-साथ प्रकरणों का तत्त्व-ज्ञान और आगमो का मौलिक रहस्य भली प्रकार से समझा दिया। विद्या-गुरु की परम दया और आपकी प्रोढ प्रज्ञा ने आपके व्यक्तित्व को आदर्श और उन्नत बना दिया।

चरितनायक गणाधीश

श्री भगवान्सागरजी महाराज की अन्तिम आज्ञानुसार हमारे चरितनायक को महातपस्वी श्री छगनसागर जी महाराज ने स० १९६६ द्वि० श्रा० शु० ५ को अपने ५२ वें उपवास की महातपश्चर्या के पुनीत दिन में जोधपुर, फलोदी, तीवरी, जेतारण, पाली आदि अन्यान्य नगरों के उपस्थित जैन सघ के सामने महा समारोह के साथ लोहावट मे गणाधीश पद से अलकृत किया। आपके गणाधीश पद के समय उपस्थित साधुओं मे मुख्य श्री त्रैलोक्यसागरजी महाराज आदि, साध्वियो मे श्री दीपश्रीजी आदि, श्रावकों में लोहावट के श्रीयुत् गेनमलजी कोचर, फलोदी के श्रीयुत् सुजानमलजी गोलेछा—स्व० फूलचंदजी गोलेछा, जोधपुर के स्व० कानमलजी पटवा आदि के नाम उल्लेखनीय है। शान्त दान्त धीर गुण योग्य गणाधीश को पाकर साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध सघ ने अपना अहोभाग्य माना।

चरितनायक और समुदाय वृद्धि

हमारे चरितनायक गणाधीश्वर श्री हरिसागरजी महाराज के अनुशासन में करीब सवासो साधु-साध्वियो की अभिवृद्धि हुई है। इस समय आपकी आज्ञा मे करीब दो सौ साधु-साध्वियाँ वर्तमान हैं। साधुओं में कई महात्मा आबाल-ब्रह्मचारी, प्रखरवक्ता, महातपस्वी, विद्वान् और कवि रूप से जैन शासन की सेवा कर रहे है। साध्वियो के तीन समुदाय (१-प्रवर्त्तिनी श्री भावश्रीजी का, २–प्र० श्री पुण्यश्रीजी का और ३—प्र० श्री सिंहश्रीजी का है)। इनमे भी कई आजीवन ब्रह्मचारिणी, विशिष्ट व्याख्यान दात्री, महातपस्विनी एव विदुषी प्रचारिका रूप मे जैन सिद्धान्तों का प्रचार कर रही हैं। अन्यान्य गच्छीय साधुओ के जैसे कच्छ, काठियावाड, गुजरात आदि जैन प्रधान देशों मे आपके साधु-साध्वी प्रचार करते ही हैं परन्तु मारवाड, मालवा, मेवाड, उ० प्र०, म० प्र०, आदि अजैन प्रधान विकट प्रदेशों में भी प्रायः ये लोग ही सुचारु प्रचार कर रहे हैं।

चरितनायक और प्रतिष्ठाएँ

हमारे चरितनायक की अध्यक्षता में कई प्रभु मन्दिरों की और गुरु मन्दिरो की पुण्य प्रतिष्ठाएँ हुई हैं। सुजानगढ मे श्रीपनेचदजी सिघी के बनाये श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर की, केलु (जोधपुर) में पचायती श्रीऋषभदेव स्वामी के मन्दिर की, मोहनवाडी (जयपुर) में सेठ श्रीदुलीचंदजी हमीरमलजी गोलेछा द्वारा विराजमान किये श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की, श्रीसागरमलजी सिरहमलजी सचेती के बनाये श्रीनवपद पट्ट की, कोटे मे दिवान बाहादुर सेठ केसरीसिंहजी के, और हाथरस (उ० प्र०) में सेठ बिहारीलाल मोहकमचदजी के बनाये श्रीदादा-गुरु के मन्दिरों की, लोहावट में पचायती गुरु मन्दिर मे गणनायक श्रीसुखसागरजी महाराज साहब की और ग० श्रीभगवान्सागरजी म० एवं श्रीछगनसागरजी म० के मूर्त्ति चरणों की प्रतिष्ठाए उल्लेखनीय है।

चरित नायक और उद्यापन

हमारे चरितनायक की अध्यक्षता में कई धर्मप्रेमी श्रीमान् श्रावकों ने अपनी २ तपस्याओं की पूर्णाहूति के उपलक्ष में बडे बड़े उद्यापन महोत्सव किये है। उनमे फलोदी (मारवाड) में श्रीरतनलालजी गोलेछा का किया हुआ श्रीनवपदजी का, कोटे में दिवान बहादुर सेठ केसरीसिंहजी का किया हुआ पौष-दशमी का, जयपुर मे सेठ गोकलचन्दजी पुंगलिया, सेठ हमीरमलजी गोलेछा, सेठ सागरमलजी सिरहमलजी, सेठ विजयचन्दजी पालेचा, आदि के किये हुए ज्ञान पचमी, नवपदजी और वीसस्थानकजी के तीवरी (मारवाड) मे श्रीमती जेठीबाई का किया हुआ ज्ञान-पचमी का, और देहली के लाला केसरचन्दजी बोहरा के किये हुए ज्ञानपचमी और नवपदजी के उद्यापन महोत्सव विशेष उल्लेखनीय हुए हैं।

चरित नायक-और संघ

हमारे चरितनायक के पवित्र उपदेश से प्रेरित हो कई भव्यात्माओं ने तारणहार तीर्थों की यात्रा के लिये छरी-पालक बड़े-बडे सघ निकाले हैं। उनमें श्रीजेसलमेर महा-तीर्थ के लिए फलोदी से पहली वार सेठ सहसमलजी गोलेछा द्वारा, और दूसरी वार सेठ सुगनमलजी गोलेछा की धर्मपत्नी श्रीमती राधावाई द्वारा, श्रीवारेजा पार्श्व-नाथ तीर्थ के लिये मांगरोल से पहली वार सेठ जमनादास मोरारजी द्वारा और दूसरी वार सेठ मकनजी कानजी द्वारा, श्रीअजारा पार्श्वनाथ तीर्थ के लिये वेरावलसे खरतर-गच्छ पचायती द्वारा, तालध्वज महातीर्थ के लिये श्रीपा-लीताना से आहोर निवासी सेठ चन्दनमल छोगाजी द्वारा, तीर्थाधिराज श्रीसिद्धाचलजी के लिए अहमदावाद से सेठ डाह्याभाई द्वारा और देहली से श्री हस्तीनापुर महातीर्थ के लिये लाला चांदमलजो घेवरिया की धर्मपत्नी श्रीमती कपूरीदेवी द्वारा आदि २ छरी-पालते हुए वड़े-बडे सघ विशेष उल्लेख योग्य हुए है।

चरित नायक और संस्थाएं

हमारे चरितनायक के अमोघ उपदेश से कई शहरों में शिक्षालय, पुस्तकालय, मित्रमण्डल आदि कई सस्थाएं स्थापित हुई हैं। पालीताना मे श्रीजिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम जामनगर में श्रीखरतरगच्छ ज्ञानमन्दिर-जैनशाला, लोहावट में जैनमित्रमण्डल, श्रीहरिसागर जैनपुस्तकालय, कलकत्ते में श्रीश्वेताम्बर जैन सेवासंघ-विद्यालय, बालुचर (मुर्शि-दावाद) मे श्रीहरिसागर जैन ज्ञानमन्दिर-जैन पाठशाला आदि विशिष्ट सस्थाएं समाजसेवा और जैन संस्कृति का प्रचार कर रही हैं।

चरित नायक और पुरातत्वरक्षा

हमारे चरित नायक ने श्रीसिद्धाचल तीर्थाधिराज पर 'खरतर वसही' के प्राचीन इतिहास की सुरक्षा के निमित्त प्रचण्ड आन्दोलन करके श्रीआनन्दजी कल्याणजी की पेढी के किसी मताभिनिवेशी मेनेजर के हटाया हुआ 'श्रीखरतर वसही' नाम का साइन बोर्ड उसी पेढी के जरिये वापिस लगवाया। वही श्रीखरतर गच्छ की विखरी हुई शक्तियों सगठित करने के लिये श्रीखरतरगच्छ सघ सम्मेलन का वृहद् आयोजन करवाया। बीकानेर में श्रीक्षमाकल्याणजी के और जयपुर मे पचायती के प्राचीन हस्तलिखित जैनज्ञान भण्डार का जीर्णोद्धार करवाया। कई तीर्थो के-मूर्त्तियों के प्राचीन शिलालेखों का, प्रभावक आचार्यो की कई प्राचीन पट्टावलियों का, और पुण्य प्रशस्तियों का वृहत् संग्रह आपने तैयार किया है।

चरित नायक और साहित्यिक प्रवृत्ति

हमारे चरितनायक श्री उववाई सूत्र का सटीक हिन्दी अनुवाद दादागुरु श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज की ऐति-सिक पूजा, महातपस्वी श्री छगनसागर जी महाराज का दिव्य जीवनवृत्त, हरि-विलास स्तवनावली के दो भाग, आदि कई ग्रन्थों का नव सर्जन किया है। लोहावट से प्रकाशित होनेवाले श्री सुखसागर ज्ञान बिन्दु जिनकी सख्या इस समय ५० है—आपकी साहित्यक भावना का मधुर फल है। इन्हीं ज्ञान बिन्दुओं से सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक प० लालचन्द भगवानदास गाँधी द्वारा लिखित श्रीजिनप्रभ-सूरिजी म० का ऐतिहासिक जीवनचरित्र, जयानन्द-केवली चरित्र, भाव प्रकरण, सबोध-सत्तरी आदि महत्वपूर्ण साहित्य ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। श्री हिन्दी जैनागम-सुमति प्रकाशन कार्यालय कोटा से प्रकाशित होनेवाले-जैनागम साहित्य के लिये आप श्री के सदुपदेश से भागलपुर के रईस रायबहादुर सुखराजजी ने, उनके सुपुत्र वावू रायकुमार सिंह जी ने अजीमगज के राजा विजयसिंह जो की माता श्री सुगनकुमारीजी ने-और कई श्रीमानो ने काफी सहायता पहुँचाई है। आपकी अमूल्य-साहित्यक सम्मति का स्व० बाबू पूरणचन्दजी नाहर M. A. B. L.

विहार पुरातत्व विभाग के प्रमुख प्रोफेसर जी० सी० चन्द्रा साहब, राय बहादुर बृजमोहन जी व्यास आदि जैन अजैन विद्वान बहुत आदर करते रहे है ।

चरित्र नायक का विहार

हमारे चरित नायक ने अपने ३७ वर्ष के लम्बे दीक्षा-पर्याय मे सयम की साधना, तीर्थों की स्पर्शना और लोक-कल्याण की विशिष्ट भावना से प्रेरित हो काठियावाड़, गुजरात, राजपूताना-मारवाड, मेवाड़, मालवा, यू० पी० पजाब, विहार, बगाल आदि प्रदेशो मे विहार करके कर्म वाद, अनेकान्तवाद, अहिंसावाद आदि मुख्य जैन सिद्धान्तो का प्रचार किया है । आपके हृदयगम उपदेशो से प्रभावित होकर कई बगाली भाइयों ने आजीवन मत्स्य-मांस और मदिरा का त्याग करके जीवन को आदर्श बनाया है । आप ने तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचल-तालध्वज-गिरनार-प्रभास पाटन-पोर्तुगीज साम्राज्य के दीवतीर्थ-शखेश्वर-तारगा अह-मदावाद-पाटण-पालनपुर-आबू-देलवाडा-राणकपुर-जैसलमेर-लोद्रवा, नाकोडा-करेडा पार्श्वनाथ-केशरियानाथ-अजमेर-जय-पुर-देहली-हस्तिनापुर-सौरिपुर-कम्पिलपुर-रत्नपुरी-अयोध्या-कानपुर-लखनऊ-बनारस-सिंहपुरी-चन्द्रपुरी-पटना-चम्पापुरी-श्रीसमेतशिखरजी - कलकत्ता - मुर्शिदाबाद-भद्दिलपुर आदि तारणहार तीर्थों की यात्राएँ की हैं ।

चरितनायक का आचार्य पद

हमारे चरितनायक को १९९३ में म० त० श्री छगन-सागरजी महाराज ने और जोधपुर आदि शहरो के प्रमुख जैन सघ ने लोहावट मे गणाधीश्वर पूज्य श्री सुखसागरजी महाराज के समुदाय के गणाधीश पद से सुचारु रूप से विभू-षित किया था । फिर भी अजीमगज (मुर्शिदाबाद) के राज मान्य धर्मप्रेमी जैन सघ ने कलकत्ता, देहली, लखनऊ, फलोदी आदि नगरों के प्रमुख व्यक्तियों के विशाल जन-समूह के बीच महा समारोह के साथ वि०स० १९९२ मार्ग-शीर्ष शुद १४ को विजय मुहुर्त्त में 'श्रीजिनहरिसागरसूरी-श्वर जी महाराज की जय' ध्वनि के साथ अभिनन्दन पूर्वक आचार्य पद से आपको सम्मानित किया ।

उपसंहार

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय जैनाचार्य श्रीजिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज का यह संक्षिप्त चरित्र है। हमारे चरितनायक आचार्यदेव श्री और आपकी आज्ञा को मानने वाले लगभग २०० साधु-साध्वियां है । एवं आचार्य श्री के शिष्य म० गणाधीश मुनि श्री हेमेन्द्र सागर जी म० मुनि श्री दर्शनसागरजी म०, मु० श्री तीर्थ सागरजी म०, एव मुनि श्री कल्याणसागरजी महाराज आदि मुनि महोदय जैन सघ की अभिवृद्धि करते हुए अपने आदर्श जीवन के प्रकाश से भव्यात्माओं को प्रकाशित करें ।

हमारे चरितनायक दो वर्ष तक जेसलमेर में विराजे और वहाँ प्राचीन भण्डार का निरीक्षण किया । इतना ही नही पर ५ पडित और ५ लहिये (लेखक) रखकर गुरुदेव श्री ने प्राचीन अलभ्य ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कराईं, सशोधनात्मक कार्यो मे विशेष श्रम करने से गुरुदेव का स्वास्थ्य विगडता गया । जेसलमेर से गुरुदेव ने विहार किया, रास्ते मे विशेष तबीयत विगड़ने से आचार्य श्री ने फरमाया—मैं अपना अन्तिम समय किसी तीर्थ पर व्यतीत करना चाहता हूँ अत आप श्री फलौदी पार्श्वनाथ मेड़तारोड़ पधारे, स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता ही गया, आहार लेना भी बन्द किया और अर्हम् अर्हम् ध्वनि लगाते रहे । दो दिन-रात निरन्तर ध्वनि करते रहे, अन्त मे जबान बन्द हो गई तब बीकानेर, जोधपुर आदि से बडे २ वैद्य, डाक्टर आये किन्तु गुरुदेव श्री ने अपना आयुष्य सन्निकट जानकर 'अप्पाण वोसिरामि' कर दिया । सवत् २००६ पोषवदि ८ मङ्गलवार प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् आप श्री सर्व चतुर्विध संघ को बिलखता हुआ छोडकर स्वर्ग पधार गये ।

शासनप्रभावक आचार्य श्रीजिनानंदसागरसूरि

[ले०—स्व० मुनि महोदयसागर]

इस संसार की सपाटी पर अनेकों जन्मे और अनेको मर गये, किन्तु अमर कौन है ? जो व्यक्ति धर्म, राष्ट्र एव समाज के हित के लिये शहीद हो गये, वे मर कर भी आज ससार मे अमर हैं ।

जिन्होंने अपना पूरा जीवन जगत को भलाई मे विताया, सेवा करते समर्पित हो गये, वे देह रूप से भले विद्यमान न हो किन्तु कार्य से वे सदा के लिये अमर है ।

पृथ्वी को 'वहुरत्ना' का पद दिया गया है । इस पृथ्वी पर अनेक सत, महत, पीर पैगम्वर हो गये सभी ने जगत को शान्ति का मार्ग दिखाया, परम्पर मैत्री भाव का उपदेश दिया। ससार भी ऐसे ही महापुरुषों की अर्चना करता है । उन्ही महापुरुषो के गुणों को याद कर, उनके पथ के अनुगामी बनकर जगत उनके उपकारो को कभी नहीं भूलता । उन्ही महानुभावों की तो जयंतिया मनाई जाती है। सभी धर्म व सभी सम्प्रदायो मे महापुरुष उत्पन्न हुये है । सदा से कडी से कडी जुडती आई है, ज्योत से ज्योत जलती आ रही है ।

उन्ही महापुरुषों में से है—हमारे परमपूज्य, परम उपकारी, परम-आदरणीय, प्रखर-वक्ता, आगम - ज्ञाता, शासन-प्रभावक आचार्यदेव श्री १००८ वीरपुत्र श्रीजिन आनन्दसागरसूरीश्वरजी म० सा० हैं। आपकी सक्षिप्त जीवनी लिखकर मैं अपने को कृतार्थ समझता हू ।

भारत भूमि के मालवा प्रात मे सैलाना नगर मे विक्रम सं० १९४६ आषाढ शुक्ल १२ सोमवार कोठारी खानदान में श्रेष्ठिवर्य श्री तेजकरण जी सा० की भार्या केशरदेवी की रत्नकुक्षी से आपका जन्म हुआ । आपका नाम यादवसिंहजी रखा गया ।

सैलाना में मुसद्दी कोठारी खानदान, सर्वश्रेष्ठ, धर्मशील, सुसस्कार युक्त एव राजखानदान में भी सम्माननीय माना जाता है। आपकी तेजस्वी मुख मुद्रा, व सुन्दर लक्षण युक्त शरीर, भावि में होनहार की निशानी थी। व्यवहारिक शिक्षा आपश्री ने बाल्य अवस्था में प्राप्त करली थी ।

स्व० प्रवर्त्तिनीजी श्री ज्ञानश्रीजी का चातुर्मास सैलाना मे हुआ । बचपन से ही आप मे धार्मिक सुसस्कार के कारण आप साध्वीजी के प्रवचन मे जाया करते थे, समय समय पर आप उनसे धार्मिक चर्चा, शका-समाधान किया करते थे। चातुर्मास समय मे आपने सत्सग का अच्छा लाभ लिया। उसके फलस्वरूप त्यागमय जीवन पर आपका अच्छा आकर्पण रहा ।

विक्रम स० १९६८ वैशाख शुदी १२ बुधवार के शुभ दिन रतलाम नगर में चारित्र-रत्न, पूज्यपाद, गणाधीश्वर जो श्रीमद् त्रैलोक्यसागर जी म० सा० के करकमलों से २२ वर्ष की युवावस्था में आपने सयम स्वीकार किया। शासनरागी, दीवान-बहादुर, सेठ केशरीसिंहजी सा० बाफना ने दीक्षा महोत्सव धाम धूम से किया ।

विनयादि श्रेष्ठ गुण, गुरुभक्ति, एक निष्ठ सेवा, आदि गुणों से तथा जन्म से तीव्र स्मरणशक्ति वाले होने के कारण कुछ ही समय मे आपने शास्त्रों की गहन शिक्षा प्राप्त कर ली। अग्रेजी भाषा के साथ हिन्दी पर भी

आपका वर्चस्व अच्छा था। आपने हिन्दी भाषा मे गद्य व पद्य की रचना की। प्राकृत भाषा के कई आगमो का भाषांतर हिन्दी में किया। कई स्वतंत्र ग्रन्थों की हिन्दी भाषा में रचना की।

आपश्री ने राजावाटी, तोरावाटी, शेखावाटी, गोडवाड, भोरामगरा, मालवा, राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र कच्छ, खानदेश आदि भारत के विभिन्न प्रांतों में विचरकर जैनधर्म का प्रचार किया।

स० १९८६ मे कच्छ प्रान्त के अजार नगर मे देश के स्वतत्रता सग्राम के सेनानी महात्मा गांधी से मुलाकात हुई। "खादी और जैन साधु" इस विषय पर काफी महत्वपूर्ण चर्चा हुई। आपके सुधारकवादी विचारधारा से महात्मा जी प्रभावित हुए।

आपश्री के गुरुवर्य, चरितरत्न, गणाधीश्वरजी श्रीमद् त्रैलोक्यसागरजी म० सा० स० १९७४ राजस्थान के लोहावट नगर में श्रावण शुक्ला १५ के दिन स्वर्ग सिधाये। उसके पश्चात् प० पू० प्रात स्मरणीय, शान्त-स्वभावी, आचार्यदेव श्री १००८ श्रीजिनहरिसागरसूरीश्वरजी म० सा० समुदाय के संचालक बने। आपश्री सरल स्वभाव के चारित्र-सम्पन्न, आचार्य थे। आप पूज्यपाद श्री ने काफी समय तक समुदाय का सचालन किया। स० २००६ में श्री फलोदी पार्श्वनाथ तीर्थ (मेडतारोड) में स्वर्ग सिधाये। तत्पश्चात् सं० २००६ माघशुदी ५ को प्रतापगढ (राजस्थान) में भारतवर्ष के समस्त खरतरगच्छ श्रीसघ ने भारी समारोह पूर्वक आपश्री को आचार्य पद पर विभूषित किया। जबसे समुदाय सचालन को सारा उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ गया।

आपश्री ने कई जगह विद्याशाला, पाठशाला, पुस्तकालय आदि की स्थापना करवाई। आप नवयुग के निर्माता थे, उस समय जनता में पढने-लिखने का अधिक प्रचार नहीं था, जिसमे कन्याशिक्षा प्राय शून्य-सी थी।

हिन्दी भाषा के आप प्रखर हिमायती थे। आपकी व्याख्यान शैली वडी विद्वता पूर्ण व रोचक थी। साधु साध्वी वर्ग को अभ्यास कराना उसे प्रवचन (भाषण) शैली सिखाना आपश्री का खास लक्ष था।

प्रवर्तनी श्रीवल्लभश्रीजी, प्र० श्रीप्रमोदश्रीजी, प्र० श्रीविचक्षणश्रीजी आदि साध्वी वर्ग को आपने ही अभ्यास कराया व भाषण शैली सिखायी। समुदाय पर आपका भारी उपकार है। आप द्रव्यानुयोग के अच्छे व्याख्याता थे। कई जिज्ञासु व्यक्ति आपसे तत्वचर्चा कर ज्ञानकी प्यास बुझाने आते थे। तत्वचर्चा के रसिकों के लिये "आगमसार" नामक विवेचनात्मक ग्रंथ की रचना की। आपश्री ने अपने जीवन काल मे करीबन ४६ पुस्तकों का प्रकाशन किया। प्रचुर मात्रा मे आपने साहित्य की सेवा की, खूब ज्ञान दान दिया। जगह-जगह ज्ञान की प्याऊ खोली।

पूज्य स्व० आचार्य श्री ने अपने जन्म स्थान सैलाना नगर (जि० रतलाम मे) ज्ञानमदिर की स्थापना की। वहाँ के राजा साहब आपके गृहस्थी जीवन के मित्र व सहपाठी थे। राजा साहब के आग्रह से आपने सैलाना मे श्रीआनद-ज्ञानमदिर की स्थापना की। ज्ञानमन्दिर का शिला स्थापन, सेठ बुद्धिसिंहजी बाफना के कर कमलों से सम्पन्न हुआ, एव ज्ञानमदिर का उद्घाटन सैलाना-नरेश के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। श्रीआनद ज्ञानमदिर आपके जीवनकी जीती जागती अमर ज्योति है।

आचार्य पद पर विभूषित होने के पश्चात् वि० सं० २००७ का चातुर्मास, करने आप कोटा पधारे। सेठ साहब क कई समय से आग्रह था, अत आप कोटा पधारे। कोटा के चातुर्मास को ऐतिहासिक चातुर्मास माना जा सकता है। आप चातुर्मास विराजे वहां उसी कोटा नगर में दिगवर आचार्य पू० श्री सूर्यसागरजी म० व स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य श्रीचौथमलजी म० भी वहीं चातुर्मास रहे। तीनो महारथियों ने एकही पाट
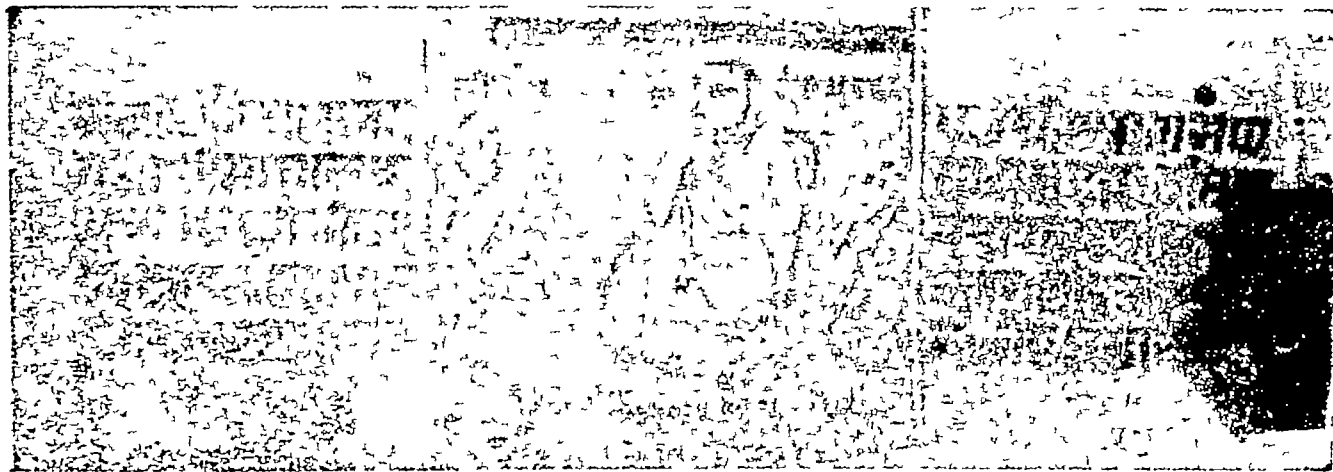
श्री जिनेश्वरसूरि (द्वितीय)

युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि और सम्राट अकबर

उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी महाराज
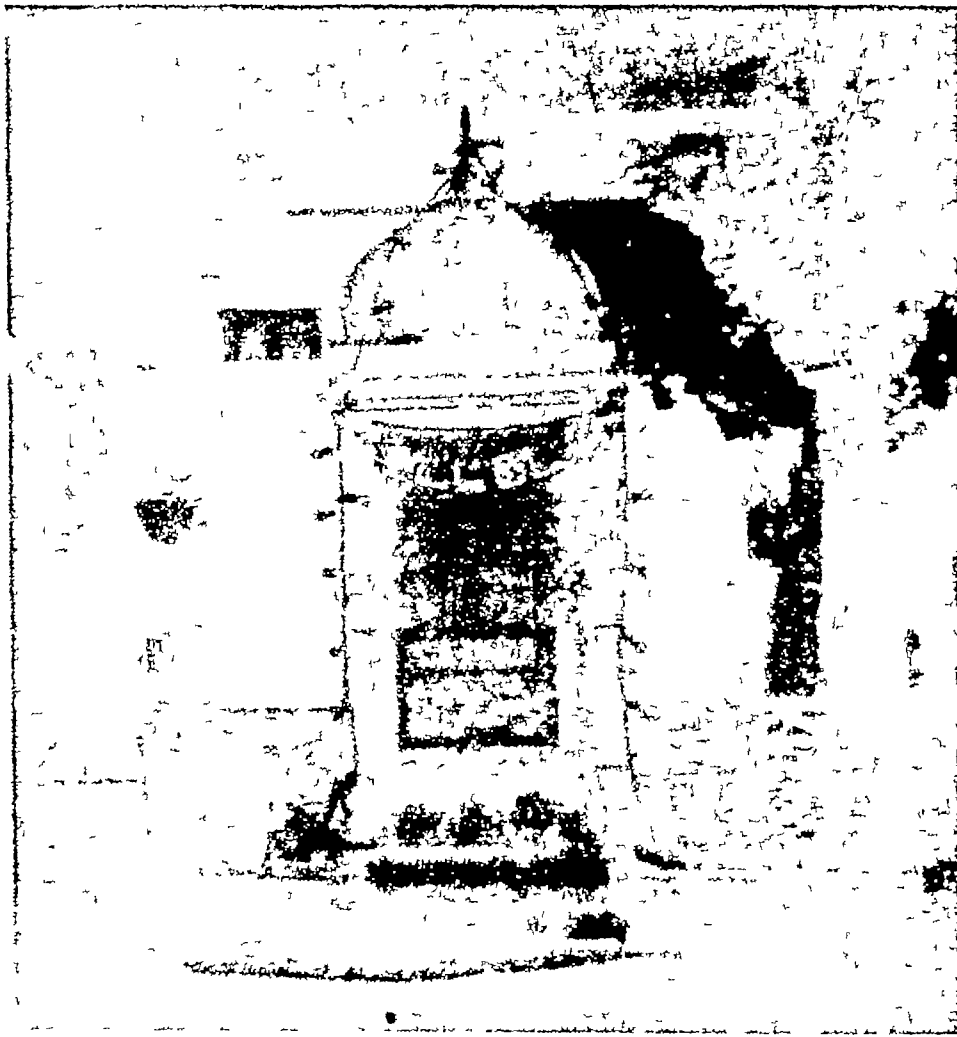
मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि छतरी, महरौली

मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी मन्दिर, बड़े दादाजी महरौली

पर से वीतराग की वाणी सुनाई। प्रतिदिन व्याख्यान की झडियां बरसने लगी। तीनों महापुरुष भिन्न-भिन्न मान्यता वाले होने पर भी एक जगह पर साथ-साथ प्रवचन देते। मधुर मिलन से जनता को ऐक्यता का अच्छी प्रेरणा मिली।

गच्छमें साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं का मजबूत सगठन एव योजनाबद्ध प्रचार व विकास/के लिये आपश्रीने समस्त श्रीसंघ से परामर्श कर स० २०११ मे अजमेर में प० पू० युगप्रधान दादा साहव श्रीजिनदत्तसूरिजी म० सा० की अष्टम शताब्दी समारोह के अवसर पर आप श्री की प्रेरणा व शासनरागी श्रीप्रतापमलजी सा० सेठिया के परिश्रम से "अखिल भारतीय श्री जिनदत्तसूरि सेवा-सघ" की स्थापना हुई। गच्छ को मानने वाले श्रावक-गण पूरे भारत के कोने-कोने में फैले हुए हैं। अत एक ऐसी सगठनात्मक सस्था हो, जो सारे देश मे गच्छ के मन्दिर, दादावाडी, ज्ञानभडार, शिलालेख आदि की देख भाल व उच्च व्यवस्था कर सके, इस वस्तु को सामने रखकर श्री जिनदत्तसूरि सेवा सघ की स्थापना हुई।

आप श्री ने कई जगह पर दीक्षाएँ, प्रतिष्ठाएँ, अजनशलाका, उपधान, छःरी पालते सघ निकलवाये जिसमे प्रमुख :—फलोदी से जैसलमेर, इन्दौर से माडवगढ, माडवी से भद्रेश्वरजीतीर्थ, मांडवी से सुथरी तीर्थ आदि।

शाश्वता तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजी तीर्थ पर दादा साहव की टोक मे, युगप्रधान पू० दादा गुरुदेव श्री जिनदत्तसूरिजी म० व श्री जिनकुशलसूरिजी म० सा० के चरण जिनकी प्रतिष्ठा मुगल सम्राट अकवर-प्रतिवोधक, युगप्रधान, जिनचन्द्रसूरीश्वरजी म० सा० के कर कमलों से सेकड़ों वर्ष पूर्व हुई थी, वह छत्री प्राय जीर्ण अवस्था मे पहुँचने का कारण उनके जीर्णोद्धार के लिये तीर्थ को वहीवट कर्ता, सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी से आज्ञा प्राप्त करने में श्री जिनदत्तसूरि सेवा सघ को भारी पुरुषार्थ करना पडा। अन्त मे आज्ञा मिली और जीर्णोद्धार का पूरा लाभ वम्बई निवासी गुरुदेव भक्त, दानवीर सेठ पुनमचन्दजी गुलावचन्दजी गोलेछा ने लिया। जीर्णोद्धार होने के बाद उनकी पुनः प्रतिष्ठा के लिये एव श्रीजिनदत्तसूरि सेवा सघ के द्वितीय अधिवेशन के आयोजन पर पधारने के लिये सघ के प्रमुख श्रावक वर्ग, पूज्यश्रीकी सेवा में सैलाना पहुँचा। श्री संघ की आग्रहपूर्वक की हुई विनति से लाभ का कारण जानकर आप श्री ने पालीताना की ओर विहार किया। गच्छ व समुदाय के पू० मुनिवर्ग व साध्वीजी गण भी पालीताना पधार गये। सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढी की ओर से पूज्य आचार्यश्री के भव्य प्रवेश महोत्सव का आयोजन किया गया।

स० २०२६ वैशाख शुक्ला ६ को सिद्धाचलजी तीर्थ पर नव-निर्मित देहरियों मे पू० दादा-गुरुदेवों के प्राचीन चरणों की प्रतिष्ठा आप पूज्य श्री के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। चातुर्मास का समय निकट आया। श्री सघ के आग्रह से आप मुनि-मडल सहित वही चातुर्मास विराजे। पू० उपाध्यायजी, वहुश्रुत श्री कवीन्द्रसागरजी म० सा० (वाद में आचार्य) पू० श्रीहेमेन्द्रसागरजी म० सा० (वर्तमान गणाधीशजी) पू० आर्यपुत्र श्री उदयसागरजी म० सा० पू० श्री कान्तिसागरजी म० सा० आदि १४ मुनिराज, एव कुल मिला कर २६ मुनिराजों व ६२ साध्वीजीगण का सयुक्त चातुर्मास पालीताना मे हुआ।

चातुर्मास काल मे साधु-साध्वियों का पठन-पाठन, भाषण देने की शिक्षा आपश्रीने प्रारम्भ की। चातुर्मास में वर्षा की झडियों के साथ-साथ तपस्या की भी झडियें लगनी प्रारम्भ हुई। आपश्री की निश्रामें १० मासक्षमण हुए। तपस्वियों का भव्यजुलूस, अट्ठाई-महोत्सव, शान्तिस्नात्र, स्वामी-वात्सल्य का आयोजन हुआ। विजयादशमी से श्री सघ की ओर से स्थानीय नजरवाग मे उपधान तप

की आराधना प्रारम्भ हुई। शानदार ढंग से चातुर्मास का समय पूरा हुआ।

प्रतिवर्ष पालीताना में यात्रा के लिये पधारने वाले साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविकाओं को धर्मशाला मे ठहरने का स्थान नही मिलता था, और मिलता भी था तो उसमे कई झंझटें आती थी। इस सकट को सदा के लिये दूर करने की योजना पूज्यवर आपश्री एवं पू० उपाध्यायजी म० सा० श्रीकवीन्द्रसागरजी म० सा० (वादमे आचार्य) ने वनाई। जयपुर सघ के प्रमुख श्रावक श्रेष्ठिवर्य श्रीहमीर-मलजी सा० गोलेच्छा व श्री सिरेमलजी सा० सचेती आदि से परामर्श कर धर्मशाला वनाने के लिये "श्रीजिनहरि विहार" के नाम पर प्लॉट खरीदा गया।

चातुर्मास का समय सपूर्ण हो चुका था, सभी विहार की तैयारियॉ मे लगे थे। पू० उपाध्यायजी म० सा० ने पालनपुर की ओर प्रस्थान किया। आप पूज्यवर भी वडोदा की ओर प्रस्थान करने वाले थे किन्तु भावी होन-हार होकर ही रहता है। एकाएक आपश्री को हार्ट एटेक सा हुआ, किसी प्रकार की विना विमारी के समाधिस्थ हुये। आपके अचानक स्वर्गवास से सारे सघ में शोक छागया। आकाशवाणी द्वारा सर्वत्र समाचार प्रसारित किये गये। आपश्री के अन्तिम संस्कार का पूरा लाभ वडोदा निवासी, सेठ शान्तिलाल हेमराज पारख ने लिया।

भवितव्यता की खास वात तो यह थी की आपकी निश्रामे पूर्वाचार्य के नाम पर खरिदे हुए प्लाट मे पक्की लिखापढी होने के वाद एकही माह के भीतर उसी ही प्लॉट में आपका अग्निदाह हुआ। उन भूमि का भी महान् सौभाग्य समझें कि मकान वनने के पूर्व महापुरुष को स्थापित किया।

कंकुवाई की धर्मशाला मे पूज्यवरश्रीजी के आत्म श्रेयार्थ अट्ठाई महोत्सव व शान्तिस्नात्र का भव्य आयोजन किया गया।

पू० स्व० आचार्यश्री अव हमारे वीचमें नहीं रहे किन्तु आप पूज्यवरश्री का आदर्श जीवन आपकी हित शिक्षायें हमारे सामने है। हम उनका पालन करते हुए आपश्री के चरणो मे हमारी नम्र व हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते है।

आपके आत्मा की महान् पुण्याई थी कि यौवन अव-स्था मे चारित्र लेकर वीतराग के शासन व गच्छ को दीपाया। आपने शासन पर किये महान् उपकार, श्रीसघ कदापि नहीं भूल सकता।

वर्तमान में आपके मुनि व साध्वीगण, पू० गणाधीश्वर श्रीहेमेन्द्रसागरजी म० सा० की आज्ञामें महाकौशल, आंध्रप्रदेश, तामिलनाडु, कर्नाटक, वगाल, राजस्थान, गुज-रात, सौराष्ट्र महाराष्ट्र आदि प्रदेशों मे विचर कर शासन का प्रचार करते है।

जो अच्छे है, और सभी के भलाई की चिंता करते हैं वे सदा के लिये जनता के हृदयपटल पर अजर हैं! अमर है!

पूज्य गुरुदेव की पवित्र आत्मा को शत-शत प्रणाम

ॐ शान्ति—

आचार्य श्रीजिनकवीन्द्रसागरसूरि

[ले०—साध्वीजी श्री सज्जनश्रीजी 'विशारद']

इस अनादिकालीन चतुर्गत्यात्मक ससार कानन मे अनन्त प्राणी स्व स्व कर्मानुसार विचित्र-विचित्र शरीरधारण करके कर्म विपाक को शुभाशुभ रूप से भोगते हुए भ्रमण करते रहते हैं। उनमें से कोई आत्मा किसी महान् पुण्योदय से मानव शरीर पाकर सद्गुरु सयोग से स्वरूप का भान करके प्रकृति की ओर गमन करते हैं। जन्म और जरामरण से छूट कर वास्तविक मुक्ति प्राप्त करने के लिये तप सयम की साधना पूर्वक स्व पर कल्याण साधते है। ऐसे ही प्राणियों में से स्वर्गीय आचार्यदेव थे, जिन्होंने बाल्यावस्था से आत्मविकास के पथ पर चल पर मानव जीवन को कृतार्थ किया।

वंश-परिचय व जन्म

आपश्री के पूर्वज सोनीगरा चौहान क्षत्रिय थे और वीर प्रसविनी मरुभूमि के धन्नाणी ग्राम में निवास करते थे। वि० स० ६०५ मे श्री देवानन्दसूरि से प्रतिबोध पाकर जैन ओसवाल बने और अहिंसा धर्म धारण किया। पूर्व पुरुष जगाजी शाह 'रानी' आकर रहने लगे। रानी से पाहूण और फिर व्यापारार्थ इन्हीं के वशज श्रीमऊजी स० १६१६ मे लालपुरा चले गये थे। वहाँ भी स्थिति ठोक न होने से इनके वशज शेषमलजी पालनपुर आये और वहीं निवास कर लिया। इसी वश मे वेचरभाई के सुपुत्र श्री निहालचन्द्र शाह को धर्मपत्नी श्रीमती बब्बू बाई की रत्नकुक्षि से वि० स० १९६४ की चैत्र शुक्ला १३ को शुभ स्वप्न सूचित एक दिव्य बालक ने अवतार लिया। पिता-माता के इनके पूर्व कई बालक बाल्यावस्था में ही काल कवलित हो चुके थे। अतः उन्होंने विचार किया कि हमारा यह बालक जीवित रहा तो इसे शासन सेवार्थ समर्पित कर देंगे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' के अनुसार यह बालक शैशवावस्था से ही तेजस्वी और तीव्र बुद्धि का था।

जब हमारे यह दिव्य पुरुष केवल १० वर्ष के ही थे तभी पिता की छत्र-छाया उठ गई और यह प्रसग इस बालक के लिये वैराग्योद्भव का कारण बना।

शोक-ग्रस्त माता पुत्र अपनी अनाथ दशा से अत्यन्त दु खी हो गये। 'दुख' में भगवान याद आता है यह कहावत सही है। कुछ दिन तो शोकाभिभूत हो व्यतीत किये। बालक धनपत ने कहा, माँ मैं दीक्षा लूगा। मुझे किसी अच्छे गुरुजी को सौंप दें।

माता ने विचार किया, अब एक बार बडी बहिन के दर्शन करने चलना चाहिये। माताजी की बडी बहिन, जिनका नाम जीवीबाई था, स्वनामधन्या प्रसिद्ध विदुषी आर्यारत्न श्रीमती पुण्यश्रीजी म० सा० के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गई थी। उनका नाम श्रीमती दयाश्री जी म० था। वे इस समय श्रीमती रत्नश्रीजी म० सा० के साथ मारवाड मे विचरती थी, वही माता पुत्र दर्शनार्थ जा पहुँचे।

श्रीमती रत्नश्रीजी म० सा० ने इस बुद्धिमान तेजस्वी बालक की भावना को वैराग्यमय आख्यानों से परिपुष्ट किया और गणाधीश्वर श्रीमान् हरिसागरजी म० सा० के पास धार्मिक शिक्षा-दीक्षा लेने को कोटे भेज दिया। वहीं रह कर शिक्षा प्राप्त करने लगे। थोड़े दिनों मे ही

इन्होंने जीवविचार, नवतत्त्व आदि प्रकरण एव प्रतिक्रमण, स्तवन, सज्झाय आदि सीख लिये ।

गणाधीश महोदय कोटा से जयपुर पधारे । वहीं वि० स० १९७६ के फाल्गुन मास की कृष्ण पचमी को १२ वर्ष के किशोर बालक धनपतशाह ने शुभ मुहूर्त में बड़ी धूमधाम से ४ अन्य वैरागियो के साथ दीक्षा धारण की । इनका नाम 'कवीन्द्रसागर' रखा गया और गणाधीश महोदय के शिष्य बने ।

अध्ययन

अपने योग्य गुरुदेव की छत्रछाया में निवास करके व्याकरण, न्याय, काव्य, कोश, छन्द, अलंकार आदि शास्त्र पढे एव सस्कृत प्राकृत गुर्जर आदि भाषाओं का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किया व जैन शास्त्रो का भी गम्भीर अध्ययन किया । 'यथानाम तथागुणः' के अनुरूप आप सोलह वर्ष की आयु से ही काव्य प्रणयन करने लग गये थे । स्वल्प काल मे ही आशु कवि बन गये । आपने सस्कृत और राष्ट्रभाषा मे काव्य साहित्य में अनुपम वृद्धि की है । दार्शनिक एव तत्वज्ञान से पूर्ण अनेक चैत्यवन्दन, स्तवन, स्तुतियाँ सज्झाएँ और पुजाएँ बनाई है जो जैन साहित्य की अनुपम कृतियां हैं । जैन साहित्य के गम्भीर ज्ञान का सरल एव सरस विवेचन पढ कर पाठक अनायास ही तत्वज्ञान को हृदयगम कर सकता है और आनन्द-समुद्र में मग्न हो सकता है । आधुनिक काल में इस प्रकार तत्त्वज्ञानमय साहित्य बहुत कम दृष्टिगोचर होता है । जैन समाज को आपसे अत्यधिक आशाए थी, कि असामयिक निधन से वे सब निराशा मे परिवर्तित हो गई ।

आपने ४१ वर्ष के सयमी जीवन मे ३० वर्ष गुरुदेव के चरणों मे व्यतीत किये और मारवाड, कच्छ, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बगाल में विहार करके तीर्थ यात्रा के साथ ही धर्म प्रचार किया । जयपुर, जैसलमेर आदि कई ज्ञान भंडारों को सुव्यवस्थित करने, सूचीपत्र बनाने आदि मे गुरुवर्य महोदय की सहायता की ।

आप ही के अदम्य साहस और प्रेरणा से वि० सं० २००६ में मेडता रोड फलोधी पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना हुई । उसी वर्ष गुरुदेव ने मेडता रोड मे उपधान मालारोहण के अवसर पर मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया । आपके गुरुदेव का पक्षाघात से उसी वर्ष पोष कृष्णा अष्टमी को स्वर्गवास हो जाने पर उपस्थित श्रीसघ ने आप श्री को आचार्यपद पर विराजमान होने को प्रार्थना की, किन्तु आपश्री ने फरमाया हमारे समुदाय मे परम्परा से बडे ही इस पद को अलकृत करते है । अत यह पद वीरपुत्र श्रीमान आनन्दसागरजी महाराज सा० सुशोभित करेंगे । मुझे जो गुरुदेव बना गये है, वही रहूँगा । कितनी विनम्रता और नि.स्पृहता !

योग-साधन

आपको आत्मसाधना के लिये एकान्त स्थान अत्यधिक रुचिकर थे । विद्याध्ययनान्तर आपश्री योगसाधना के लिये कुछ समय ओसियां के निकट पर्वत गुफा में रहे थे, एवं लोहावट के पास की टेकरी भी आपका साधना स्थल रहा था ।

जयपुर मे मोहनवाडी नामक स्थान पर भी आपने कई बार तपस्या पूर्वक साधना की थी । वहाँ आपके सामने नागदेव फन उठाये रात्रि भर बैठे रहे थे । यह दृश्य कई व्यक्तियों ने आँखों देखा था । आप हठयोग को आसन प्राणायाम मुद्रानेति, धौती आदि कई क्रियायें किया करते थे ।

तपश्चर्या

प्रायः देखा जाता है कि ज्ञानाभ्यासी साधु साध्वी वर्ग तपस्या से वचित रह जाते है किन्तु आप महानुभाव इसके अपवाद रूप थे । ज्ञानार्जन, एव काव्य-प्रणयन के के साथ ही तपश्चर्या भी समय समय पर किया करते थे । ४२ वर्ष के संयमी जीवन में आपने मास-क्षमण, पक्ष-

क्षमण, अट्ठाइयाँ, पंचौले, आदि किये। तेलों की तो गिनती ही नहीं की जा सकती।

साहित्य सेवा

आपने सैंकडों छोटे मोटे चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ स्तवन, सज्झाय आदि बनाये, रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पंचकल्याणक पूजा, महावीर पचकल्याणक पूजा, चौसठप्रकारी पूजा, तथा चारों दादा गुरुओ की पृथक २ पूजाएँ एव चैत्रो-पूर्णिमा कार्तिक-पूर्णिमा विधि, उपधान, विंशतिस्थानक, वर्षीतप छम्मासी तप आदि के देव-वन्दन आदि विशिष्ट रचनाएँ की है। आप सस्कृत प्राकृत हिन्दी मे समान रूप में रचनाएँ करते थे। बहुत सी रचनाओं में आपने अपना नाम न देकर अपने पूज्य गुरुदेव का, गुरुभ्राताओं का एव अन्यों का नाम दिया है। इस सारे साहित्य का पूर्ण परिचय विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

आपकी प्रवचन शैली ओजस्वी व दार्शनिक ज्ञानयुक्त थी। भाषा सरल, सुबोध और प्रसाद गुणयुक्त थी। रचनाओं मे अलकार स्वभावत ही आ गये हैं। अत आपको एक प्रतिभाशाली कवि भी कहा जा सकता है।

आचार्य पद

विक्रम सं० २०१७ की पौष शुक्ला १० को प्रखरवक्ता व्याख्यान-वाचस्पति वीरपुत्र श्री जिन आनन्दसागर सूरीश्वर जी म० सा० के आकस्मिक स्वर्ग गमनानन्तर सारी समुदाय ने आपही को समुदायाधीश बनाया। अहमदावाद में चैत्र कृष्ण ७ को श्री खरतरगच्छ सघ द्वारा आपको महोत्सव पूर्वक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

आपश्री स्वभाव से ही सरल मिलनसार और गम्भीर थे। दयालुता और हृदय की विशालता आदि सद्‌गुणों से सुशोभित थे। आपश्री के अन्त करण मे शासन, व गच्छ व समुदाय के उत्कर्ष की भावनाएँ सतत् जाग्रत रहती थी। पालीताना में "श्री जिन हरि विहार" आपश्री की सत्प्रेरणा का कीर्तिस्तम्भ है।

आपश्री के कई शिष्य हुए, पर वर्त्तमान मे केवल श्री कल्याणसागरजी तथा मुनिश्री कैलाशसागर जी विद्यमान है।

समुदाय के दुर्भाग्य से आपश्री पूरे एक वर्ष भी आचार्य पद द्वारा सेवा नहीं कर पाये कि करालकाल ने निर्दयता पूर्वक इस रत्न को समुदाय से छीन लिया। उग्र विहार करते हुए स्वस्थ्य सवल देहधारी ये महानपुरुष अहमदावाद से केवल २० दिन मे मन्दसौर के पास बूढा ग्राम मे फा० शु० एकम को सध्या समय पधारे। वहाँ प्रतिष्ठा कार्य व योगोद्‌वहन कराने पधारे थे किन्तु फा० शु० ५ शनिवार २०१८ को रात्रि को १२॥ बजे अकस्मात हार्टफेल हो जाने से नवकार का जाप करते एव प्रतिष्ठा कार्य के लिये ध्यान मे अवस्थित ये महानुभाव संघ व समु-दाय को निराधार निराश्रित बनाकर देवलोक मे जा विराजे दादा गुरुदेव व शासनदेव उस महापुरुष की आत्मा को शांति एव समुदाय को उनके पदानुसरण की शक्ति प्रदान करें, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

महान् प्रतापी श्रीमोहनलालजी महाराज

[भँवरलाल नाहटा]

पचमकाल मे जिनेश्वर भगवान के अभाव मे जिनशासन को अक्षुण्ण रखने मे जिनप्रतिमा और जैनागम दोनों प्रवल कारण है जिसकी रक्षा का श्रेय श्रमण परम्परा को है। उन्होंने ही अपने उपदेशों द्वारा श्रावक-गृहस्थ वर्ग को धर्म मे स्थिर रखा और फलस्वरूप सातो क्षेत्र समुन्नत होते रहे। सुदूर बगाल जैसे हिंसाप्रधान देश मे तो यतिजनो ने विचर कर जैन धर्मी लोगो को धर्म-मार्ग मे स्थिर रखा है। समय-समय पर आये हुए शैथिल्य को परित्याग कर शुद्ध साध्वाचार की प्रतिष्ठा वढाने वाले वर्त्तमान साधु-समुदाय के तीनों महापुरुषों ने क्रियोद्धार किया था। श्रीमद् देवचन्द्रजी, जिनहर्षजी आदि अनेक सुविहित साधुओ की परम्परा अव नही रही है पर क्षमाकल्याणजी महाराज जिनका साधु-साध्वी समुदाय खरतर गच्छ मे सर्वाधिक है, के पश्चात् महान्-प्रतापी तपोमूर्त्ति श्रीमोहनलालजी महाराज का पुनीत नाम आता है। आपने पहले यति दीक्षा लेकर लखनऊ मे काफी वर्ष रहे फिर कलकत्ता-बगाल मे विचरणकर यहीं से वैराग्य में अभिवृद्धि होने पर तीर्थयात्रा करते हुए अजमेर जाकर फिर त्याग-मार्ग की ओर अग्रसर हुए थे, उनका सक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है।

महान् शासन-प्रभावक श्रीमोहनलालजी महाराज अठारहवीं शताब्दी के आचार्यप्रवर श्रीजिनसुखसूरिजी के विद्वान् शिष्य यति कर्मचन्द्रजी-ईश्वरदासजी-वृद्धिचन्द्रजी-लालचन्दजी के क्रमागत यति श्रीरूपचन्दजी के शिष्यरत्न थे। आपका जन्म स० १८८७ वैशाख सुदि ६ को मथुरा के निकटवर्ती चन्द्रपुर ग्राम मे सनाढ्य ब्राह्मण वादरमलजी की सुशीला धर्मपत्नी सुन्दरवाई की कुक्षि से हुआ था। आपका नाम मोहनलाल रखा गया, जव आप सात वर्ष के हुए माता-पिता ने नागौर आकर स० १८९४ में यति श्रीरूपचन्द्रजी को शिष्य रूपमें समर्पण कर दिया। यतिजी ने आपको योग्य समझकर विद्याभ्यास कराना प्रारम्भ किया। अल्प समय में हुई प्रगति से गुरुजी आप पर बड़े प्रसन्न रहने लगे। उस समय श्रीपूज्याचार्य श्रीजिनमहेन्द्र-सूरिजी वड़े प्रभावशाली थे और उन्ही के आज्ञानुवर्त्ती यति श्रीरूपचन्द्रजी थे। दीक्षानदी सूची के अनुसार आप की दीक्षा स० १९०० मे नागोर मे होना सम्भव है। मोहन का नाम मानोदय और लक्ष्मीमेरु मुनि के पौत्र-शिष्य लिखा है। जीवनचरित के अनुसार आपकी दीक्षा मालव देश के मकसीजी तीर्थ में श्री जिनमहेन्द्रसूरिजी के कर कमलों से हुई थी। इन्ही जिनमहेन्द्रसूरि जी महाराज ने तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय पर वम्वई के नगरसेठ नाहटा गोत्रीय श्री मोतीशाह की टूँक मे मूलनायकादि अनेकों जिनप्रतिमाओं की अजनशलाका प्रतिष्ठा वडे भारी ठाठ से कराई थी।

श्रीमोहनलालजी महाराज ने ३० वर्ष तक यतिपर्याय मे रहकर स० १९३० मे कलकत्ता से अजमेर पधारकर क्रियोद्धार करके सवेगपक्ष धारण किया। आपका साध्वाचार वड़ा कठिन और ध्यान योग में रत रहते थे एकवार अकेले विचरते हुए चल रहे थे नगर में न पहुच सके तो वृक्ष के नीचे ही कायोत्सर्ग में स्थित रहे, आपके ध्यान प्रभाव से निकट आया हुआ सिंह भी शान्त हो गया।

तपश्चर्यारत संयमी जीवन मे आपको रात्रि मे पानी तक रखने की आवश्यकता नही पडती थी। पीछे जब साधु समुदाय बटा तब रखने लगे। एकबार आप प्राचीन तीर्थ श्रीओसियां पधारे तो वहां का मन्दिर-गर्भगृह और प्रभु प्रतिमा तक बालु मे ढके हुए थे। आपने जबतक जीर्णोद्धार कार्य न हो विगय का त्याग कर दिया। पीछे नगरसेठ को मालूम पडा और जीर्णोद्धार करवाया गया। ओसिया के मन्दिर में आपश्री की मूर्त्ति विराजमान है।

आपने मारवाड, गुजरात, काठियावाड आदि अनेक ग्राम नगरो में अप्रतिबद्ध विहार किया था। बम्बई जैसी महानगरी में जैन साधुओं का विचरण सर्वप्रथम आपने ही प्रारभ किया। वहाँ आपका बडा प्रभाव हुआ, वचन-सिद्ध प्रतापी महापुरुष तो थे ही, बम्बई मे घर घरमें आपके चित्र देखे जाते हैं। आपने अनेकों भव्यात्माओ का देशविरति-सर्वविरति धर्म मे दीक्षित किया। आपका विशाल साधु समुदाय हुआ। अनेक स्थानों मे जीर्णोद्धार-प्रतिष्ठाएं आदि आपके उपदेशों से हुई। सं० १९४९ में महातीर्थ शत्रुञ्जय की तलहट्टी मे मुर्शिदाबाद निवासी रायबहादुर बाबू धनपतसिंहजी दुगड द्वारा निर्मापित विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा-अजनशलाका आपही के कर-कमलों से सम्पन्न हुई थी।

आपका शिष्य परिवार विशाल था, आपमे सर्वगच्छ समभाव का आदर्श गुण था अत आपका शिष्य समुदाय आज भी खरतर और तपगच्छ दोनों मे सुशोभित है। आपके व आपके शिष्यो द्वारा अनेक मन्दिरों, दादावाडियों के निर्माण, जीर्णोद्धारादि हुए, ज्ञानभडार आदि सस्थाए स्थापित हुई, साहित्योद्धार हुआ। आप अपने समय के एक तेजस्वी युगपुरुष थे। निर्मल तप-सयम से आत्मा को भावित कर अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करके स० १९६४ वैशाख कृष्ण १४ को सूरत नगर मे आप समाधि पूर्वक स्वर्ग सिधारे।

आचार्य-प्रवर श्रीजिनयशःसूरिजी

[भंवरलाल नाहटा]

खरतर गच्छ विभूषण, वचनसिद्ध योगीश्वर श्री मोहनलालजी महाराज के पट्ट-शिष्य श्री यशोमुनिजी का जन्म स० १९१२ में जोधपुर के पूनमचदजी साड की धर्मपत्नी मागीबाई की कुक्षि से हुआ। इनका नाम जेठमल था, पिताश्री का देहान्त हो जाने पर अपने पैरों पर खड़े होने और धार्मिक अभ्यास करने के लिये माता की आज्ञा लेकर किसी गाडेवाले के साथ अहमदाबाद की ओर चल पडे। इनके पास थोडा सा भाता और राह खर्च के लिये मात्र दो रुपये थे। इनके पास पार्श्वनाथ भगवान के नाम का सबल था अत भूख प्यास का ख्याल किये बिना अविरत यात्रा करते हुए अहमदाबाद जा पहुँचे। किसी सेठ की दुकान मे जाकर मधुर व्यवहार से उसे प्रसन्न कर नौकरी कर ली और निष्ठापूर्वक काम करने लगे। मुनि महाराजों के पास धार्मिक अभ्यास चालू किया एव व्याख्यान-श्रवण व पर्वतिथि को तपश्या करने लगे। एकबार कच्छ के परासवा गाव गए, जहा जीतविजयजी महाराज का समागम हुआ। आपकी धार्मिकवृत्ति और अभ्यास देखकर धर्माध्यापक रूप मे नियुक्ति हो गई। धार्मिक शिक्षा देते हुए भी आपने ४५ उपवास की दीर्घतपश्चर्या की। स्वधर्मी-बन्धुओं के साथ समेतसिखरजी आदि पचतीर्थी की यात्रा की।

पन्द्रह वर्ष के दीर्घ प्रवास से जेठमलजी जोधपुर लौटे और विनयपूर्वक माता को स्थानकवासी मान्यता छुडाकर जिनप्रतिमा के प्रति श्रद्धालु बनाया। तदनन्तर उन्होंने ५१ दिन की दीर्घ तपश्चर्या प्रारम्भ की दीवान कुदनमलजी ने बडे ठाठसे अपने घर ले जाकर पारणा कराया। माता-पुत्र दोनों वैराग्य रस ओत-प्रोत थे। माता को दीक्षा दिलाने के अनन्तर जेठमलजी ने खरतरगच्छ नभोमणि श्री मोहनलाल जी महाराज के वन्दनार्थ नवाशहर जाकर दीक्षा की भावना व्यक्त कर जोधपुर पधारने के लिये वीनती की। गुरुमहाराज के जोधपुर पधारने पर आपने सं० १९४१ जेठ शु०५ के दिन उनके करकमलो से दीक्षा ली और 'जसमुनि' बने। व्याकरण, काव्य, जैनागमादि के अभ्यास में दत्त-चित होकर अभ्यास करते हुए गुरुमहाराज के साथ अजमेर, पाटण और पालनपुर चातुर्मास कर फलोदी पधारे। जोधपुर सघ की वीनती से गुरु महाराजने जसमुनिजी को वहां चातुर्मास के लिये भेजा। तपस्वी तो आप थे ही सारे चातुर्मास मे आयविल तप करते तथा उत्तराध्ययन सूत्र का प्रवचन करते थे। अपनी भूमि के मुनिरत्न को देख सघ आनन्द-विभोर हो गया। चातुर्मास के अनन्तर फलोदी पधार कर गुरुमहाराज के साथ जेसलमेर, आबू, अचलगढ आदि तीर्थो की यात्रा करते हुए अहमदावाद पधार कर चातुर्मास किया। तदनन्तर पालीताना, सूरत, बंबई, सूरत, पालीताना चातुर्मास किया सातवें चातुर्मास मे आपने गुणमुनि को दीक्षित किया।

सिद्धाचलजी की जया तलहटी में राय धनपतसिंहजी बहादुर ने धनवसी टुक का निर्माण कराया। उनकी धर्म-पत्नी रानी मैनासुन्दरी को स्वप्न मे आदेश हुआ कि जिनालय की प्रतिष्ठा श्री मोहनलालजी महाराज के करकमलों से करावे। उन्होंने बाबूसाहब को अपने स्वप्न की बात कही। उनके मन में भी वही विचार था अत: अपने पुत्र बाबू नरपतसिंह को भेजकर महाराज साहब को प्रतिष्ठा के हेतु पालीताना पधारने की प्रार्थना की।

बाबू साहब की भक्तिसिक्त प्रार्थना स्वीकार कर पूज्यवर श्री मोहनलालजी महाराज अपने शिष्य समुदाय सहित पालीताना पधारे और नौ द्वार वाले विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा स० १९४९ माघ सुदि १० के दिन बडे ठाठ के साथ कराई। १५ हजार मानव मेदिनी की उपस्थिति में अंजनशलाका के विधि-विधान के कार्यों में गुरु महाराज के साथ श्रीयशोमुनि जी की उपस्थिति और पूरा पूरा सहयोग था।

इसी वर्ष मिती अषाढ सुदि ६ को चूरु के यति राम-कुमारजी को दीक्षा देकर ऋद्धिमुनिजी के नाम से यशो-मुनिजी के शिष्य प्रसिद्ध किये। फिर केवलमुनि और अमर मुनि भी आपके शिष्य हुए। सूरत-अहमदावाद के संघ की आग्रहभरी वीनती थी। अत: स० १९५२-५३ के चातुर्मास सूरत मे करके अहमदावाद पधारे। स० १९५४-५५-५६ के चातुर्मास करके पन्यास श्री दयाविमल जी के पास ४५ आगमोंके योगोद्वहन किये। समस्त सघ ने आपको पन्यास और गणिपद से विभूषित किया। तदनन्तर गुरु महाराज के चरणों में सूरत आकर हरखमुनिजी को योगोद्वहन कराया। स० १९५७ सूरत चौमासा कर १९५८ बम्बई पधारे और हरखमुनिजी को पन्यास पद प्रदान किया।

राजस्थान में धर्म प्रचार और विहार के लिये गुरु महाराज की आज्ञा हुई तो आपश्री ने सात शिष्यो के साथ शिवगंज चातुर्मास कर उपधान कराया। राजमुनिजी के शिष्य रत्नमुनिजी, लब्धिमुनिजी और हेतश्रीजी को बडी दीक्षा दी। स० १९६० का चातुर्मास जोधपुर में किया और स० १९६१ का चातुर्मास अजमेर विराजे। इसी समय कान्फ्रेन्स अधिवेशन पर गए हुए कलकत्ताके राय बद्री-दास मुकीम बहादुर, रतलाम के सेठ चांदमलजी पटवा, ग्वालियर के रायबहादुर नथमलजी गोलछा और फलौदी के सेठ फूलचन्दजी गोलछा ने श्री मोहनलालजी महाराज

महान प्रतापी श्रीमोहनलालजी महाराज

महान् तपस्वी श्रीजिनयशःसूरिजी महाराज

जैनाचार्य श्री जिनऋद्धिसूरिजी महाराज

विद्वद्वर्य उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी
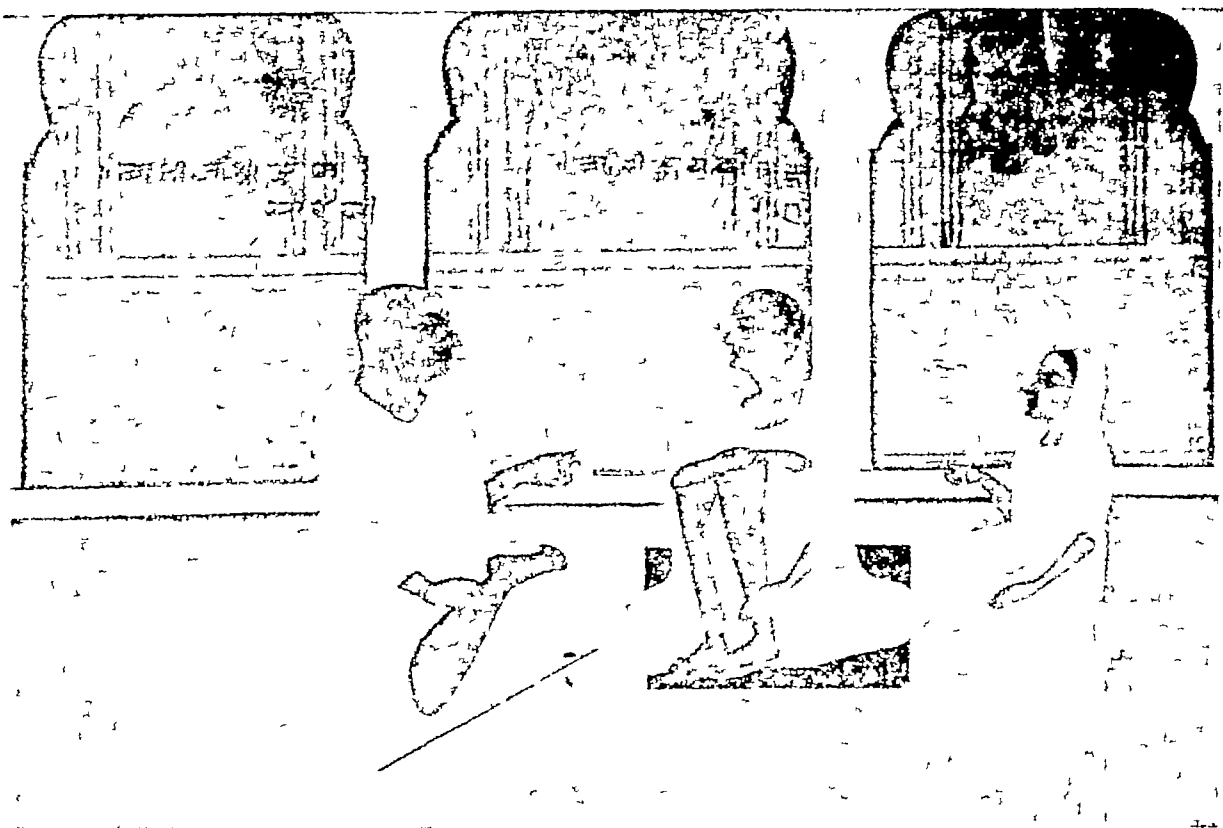
मस्तयोगी श्री ज्ञानसागरजी और वा० जयकीत्तिजी

ज. यु प्र. भ स्व. जैनाचार्य पुज्य श्री हरिसागर सूरीश्वरजी महाराज साहब
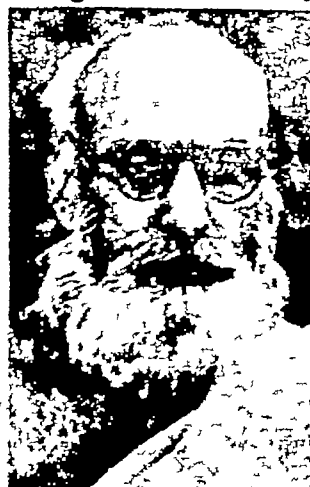
शिष्यरत्न

शिष्यरत्न

जन्म १९४९, दिक्षा १९५७

आचार्यपद- स्वर्गवास-

श्री कान्तिसागरजी महाराज साहब [सं १९९२ - स.२००६] श्री दर्शनसागरजी महाराज साहब

जन्म १९६८ दिक्षा-१९७६

[चांदा चातुर्मासमें स २०१?]

जन्म १९८४ दिक्षा-२००२

जैनाचार्य श्री जिनहरिसागरसूरिजी शिष्य रत्न मुनि कान्तिसागरजी व दर्शनसागरजी

से अर्ज की कि आप खरतर गच्छ के हैं और इधर धर्म का उद्योत करते हैं तो राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बंगाल को भी धर्म मे टिकाये रखिये। गुरुमहाराज ने प० हरखमुनिजी को कहा कि तुम खरतरगच्छ के हो, पारख गोत्रीय हो अत: खरतर गच्छ की क्रिया करो। पन्यास जी ने गुर्वाज्ञा-शिरोधार्य मानते हुए भी चालू क्रिया करते हुए उधर के क्षेत्रों को सभालने की इच्छा प्रकट की। गुरुमहाराज ने अजमेर स्थित हमारे चरित्रनायक यशोमुनि जी को आज्ञापत्र लिखा जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। गुरु महाराज को इससे बड़ा सन्तोष हुआ। चातुर्मास बाद पन्यास जी बम्बई की ओर पधारे और दहाणु मे गुरुमहाराज के चरणों मे उपस्थित हुए। आपने गुरु-महाराज की बडी सेवाभक्ति की, वेयावच्च में सतत् रहने लगे।

एकदिन गुरुमहाराज ने यशोमुनिजी को बुलाकर शत्रुञ्जय यात्रार्थ जाने की आज्ञा दी। वे ८ शिष्यों के साथ वल्लभीपुर तक पहुँचे तो उन्हें गुरुमहाराज के स्वर्गवास के समाचार मिले।

स० १९६४ का चातुर्मास पालीताना करके सेठाणी आणदकुवर बाई की प्रार्थना से रतलाम पधारे। सेठानीजी ने उद्यापनादिमे प्रचुर द्रव्य व्यय किया। सूरत के नवलचन्द भाई को दीक्षा देकर नीतिमुनि नाम से ऋद्धिमुनिजी के शिष्य किये। इसी समय सूरत के पास कठोर गाव मे प्रतिष्ठा के अवसर पर एकत्र मोहनलालजी महाराज के सघाडे के कान्तिमुनि, देवमुनि, ऋद्धिमुनि, नयमुनि, कल्याणमुनि क्षमामुनि आदि ३० साधुओं ने श्रीयशोमुनिजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने का लिखित निर्णय किया।

श्रीयशोमुनिजी महाराज सेमलिया, उज्जैन, मक्सीजी होते हुए इन्दौर पधारे और केशरमुनि, रतनमुनि, भावमुनि को योगोद्वहन कराया। ऋद्धिमुनिजी भी सूरत से विहार कर माडवगढ मे आ मिले। जयपुर से गुमानमुनिजी भी गुणा की छावनी आ पहुँचे। आपने दोनो को योगोद्वहन क्रिया में प्रवेश कराया। सं० १९६५ का चातुर्मास ग्वालियर मे किया। योगोद्वहन पूर्ण होने पर गुमानमुनिजी, ऋद्धिमुनिजी और केशरमुनिजी को उत्सव पूर्वक पन्यास पद से विभूषित किया। पूर्व देश के तीर्थों की यात्रा की भावना होने से ग्वालियर से विहार कर दतिया, झासी, कानपुर, लखनऊ, अयोध्या, काशी, पटना होते हुए पावापुरी पधारे। वीरप्रभु की निर्वाणभूमि की यात्रा कर कुडलपुर, राजगृही, क्षत्रियकुड आदि होते हुए सम्मेतशिखरजी पधारे। कलकत्ता सघ ने उपस्थित होकर कलकत्ता पधारने की वीनति की। आपश्री साधुमण्डल सहित कलकत्ता पधारे और एक मास रहकर सं० १९६६ का चातुर्मास किया। स० १९६७ अजीमगंज और स० १९६८ का चातुर्मास बालूचर में किया। आपके सत्सग में श्रीअमरचन्दजी बोथरा ने धर्म का रहस्य समझकर सपरिवार तेरापथ की श्रद्धात्यागकर जिनप्रतिमा की दृढ मान्यता स्वीकार की। सघ की वीनति से श्रीगमानमुनिजी, केशरमुनिजी और बुद्धिमुनिजी को कलकत्ता चातुर्मास के लिए आपश्री ने भेजा।

आपश्री शान्तदान्त, विद्वान और तपस्वी थे। सारा सघ आपको आचार्य पद प्रदान करने के पक्ष में था। सूरत में किये हुए ३० मुनि-सम्मेलन का निर्णय, कृपाचन्द्रजी महाराज व अनेक स्थान के सघ के पत्र आजाने से जगत् सेठ फतेचन्द, रा० ब० केशरीमलजी, रा० ब० बद्रीदासजी, नथमलजी गोलछा आदि के आग्रह से आपको सं० १९६९ ज्येष्ठ शुद ६ के दिन आपको आचार्य पद से विभूषित किया गया। आपश्री का लक्ष आत्मशुद्धि की ओर था मौन अभिग्रह पूर्वक तपश्चर्या करने लगे। प० केशरमुनि भावमुनिजी साधुओ के साथ भागलपुर, चम्पापुरी, शिखरजी की यात्रा कर पावापुरी पधारे। आश्विन सुदी मे आपने ध्यान और जापपूर्वक दीर्घतपस्या प्रारम्भ की। इच्छा न होते हुए भी सघ के आग्रह से मिगसरवदि १२ को ५३ उपवास का पारणा किया। दुपहर में उल्टी होने के बाद असाता बढती गई और मि० सु०३ स० १९७० मे समाधि पूर्वक रात्रि में २ बजे नश्वर देह को त्यागकर स्वर्गवासी हुए। पावापुरी में तालाब के सामने देहरी मे आपकी प्रतिमा विराजमान की गई।

प्रभावक आचार्य श्रीजिनऋद्धिसूरि

[भँवरलाल नाहटा]

सुविहित शिरोमणि महामुनिराज श्री मोहनलाल जी महाराज के स्वहस्त दीक्षित प्रशिष्य श्रीजिनऋद्धिसूरि जी विद्वान, सरल-स्वभावी और तप जप रत एक चरितवान् महात्मा थे। उनका जन्म चूरू के ब्राह्मण परिवार में हुआ था और वहीं के यतिवर्य चिमनीरामजी के पास आपने दीक्षा ली थी, आपका नाम रामकुमारजी था। आपके वडे गुरु भाई ऋद्धिकरणजी भी उच्चकोटि के त्याग वैराग्य परिणाम वाले थे इन्होंने देखा कि उनसे पहले मैं त्यागी वन जाऊ अन्यथा गद्दी का जाल मेरे गले मे आ जायगा। आप चुरू से निकल कर बीकानेर गये, मदिरों व नाल में दादा साहव के दर्शन कर पैदल ही चलकर आवू जा पहुँचे क्योंकि रेल भाड़े का पैसा कहां था ? वहाँ से एक यतिजी के साथ गिरनारजी गये। और फिर सिद्धाचलजी आकर यात्रा करने लगे। श्रीमोहनलालजी महाराज के पास स० १९४९ आषाढ सुदि ६ को दीक्षित होकर रामकुमारजी से श्रीऋद्धिमुनि जी बने, आपको श्रीयशो-मुनि जी का शिष्य घोषित किया गया। आपने दत्त चित होकर विद्याध्ययन किया, तप जप पूर्वक सयम साधना करते हुए गुरु महाराज श्री सेवा में तत्पर रहे जव तक मोहनलालजी महाराज विद्यमान थे, अधिकांश उन्होंने आपको अपने साथ रखा, और उनका वरद हाथ आपके मस्तक पर रहा। सात चौमासे साथ करने के वाद अलग विचरने की भी आज्ञा देते थे। स० १९५९ में गुरु श्री यशोमुनि जी के साथ रोहिडा प्रतिष्ठा कराई। अनेक स्थानों में विचर कर तीर्थ यात्राएँ की। सं० १९६१ में बुहारी में प्रतिष्ठा कराने आप और चतुरमुनि जी गए। प्रतिष्ठा समय आगतुक लोगों ने उत्सव मे ग्रामोफोन के अश्लील रिकार्ड बजाने प्रारभ किये। और मना करने पर भी न माने तो आप मौन धारण कर बैठ गए। ग्रामोफोन भी मौन हो गया और लाख उपाय करने पर भी ठीक न हुआ। आखिर आपसे प्रार्थना की और अहाते से वाहर जाने पर ठीक हो गया। स० १९६३ में मोहनलालजी महाराज का स्वर्ग-वास हो गया तो कठोर चौमासा कर आपने गुजराती-मारवाड़ी का क्लेश दूर कर परस्पर सप कराया। मोहन लालजी म० के चरणो की प्रतिष्ठा करवाई। मारवाड़ी साथ का नया मन्दिर हुआ, चमत्कार पूर्ण प्रतिष्ठा करवाई यहीं यशोमुनि जी को आचार्य पद पर स्थापित करने का सारे साधु समुदाय ने निर्णय किया। झगडिया सघ में यात्रा कर वडोद मे सं० १९६४ माघ में शातिनाथ भ० की प्रतिष्ठा कराई। व्यारे मे अजितनाथ भ० की वैशाख मे तथा सरभोण मे ज्येठ महीने मे प्रतिष्ठा करवायी। सूरत नवापुरा मे शामला पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की। आपके उपदेश से उपाश्रय का जीर्णोद्धार हुआ। गुरु महाराज की आज्ञा से मांडवगढ पधार कर योगोद्वहन किया। स० १९६६ मार्गशीर्ष शुक्ल ३ के दिन ग्वालियर मे आपको गुरुमहाराज ने पन्यास पद से विभूषित किया। गुरुमहाराज पूर्व देश यात्रार्थ पधारे आपने जयपुर आकर चौमासा किया वडे भारी उत्सव हुए। दीक्षा के वाद प्रथम वार चूरू में आकर २० दिन स्थिरता की तेरापथियों को शास्त्र चर्चा मे निरुत्तर किया। नागोर के सघ में अनैक्य दूर कर सप कराया, दीक्षा महोत्सवादि हुए।

सं० १९६७ का चातुर्मास पन्यास जी ने कूचेरा किया। यज्ञ-होम, शांतिपाठ और ठाकुरजी जी सवारी निकलने पर भी बूंद न गिरी तो आपश्री के उपदेश से जैन रथयात्रा निकली, स्नात्र पूजा होते ही मूसलधार वर्षा से तालाव भर गए। वहा से तीन मील लूणसर में भी इसी प्रकार वर्षा हुई तो कूचेरा के ३० घर स्थानकवासियों ने पुन: मन्दिर आम्नाय स्वीकार कर उत्सवादि किए, दोढसौ व्यक्तियों के सघ ने प्रथमवार शत्रुञ्जय यात्रा की। तदनन्तर फलौदी, पुष्कर, अजमेर होकर जयपुर पधारे, उद्यापनादि उत्सव हुए। पचतीर्थी कर अनेक नगरों में विचरते बम्बई पधारे। दो चातुर्मास कर पालीताना पधारे ८१ आंबिल और ५० नवकारवाली पूर्वक निन्नाणुं यात्रा की। सं०१९७१ का चातुर्मास खभात मे करके मोहनलालजी जैन हुन्नरशाला और पाठशाला स्थापित की। स० १९७२ में सूरत चातुर्मास मे उपधान तप एव अनेक उत्सव हुए। सं १९७३-७४ लालवाग बम्बई का उपधान कराया, उत्सवादि हुए। पालीताना पधार कर एकान्तर उपवास और पारणे मे आंबिल पूर्वक उग्रतपश्चर्या की कई वर्षो से मन्दिर के प्रति श्रद्धान्तु वने स्थानकवासी मुनि रूपचन्दजी के शिष्य गुलाबचन्द जो ने अपने शिष्य गिरीवारीलालजी के साथ आकर आपके पास स० १९७५ वै० शु० ६ को दीक्षा ली। उनका श्री गुलावमुनि और उसके शिष्य का गिरिवर मुनि नाम स्थापन किया। तदनन्तर सं० १९७६ का चौमासा बम्बई कर खभात आये और अठाई-महोत्सवादि के बाद सूरत पधारे।

सूरत में दादागुरु श्रीमोहनलालजी के ज्ञानभंडार को सुव्यवस्थित करने का बीडा उठाया और ४५ अलमारियों को अलग-अलग दानाओ से व्यवस्था की। आलीशान मकान था, उपधान तप मे माला की बोलो आदि के मिलाकर ज्ञानभण्डार मे तीस हज़ार जमा हुए। मोहनलालजी जैन पाठशाला की भी स्थापना हुई। स० १९७९ खंभात व १९८० कठोद चातुर्मास किया। वहाँ लाडुआ श्रीमाली भाइयों को सघ के जीमनवार में शामिल नहीं किया जाता था, पन्यासजी ने उपदेश देकर भेदभाव दूर कराया। सं० १९८१ वलसाड करके नदरबार पधारे आपके उपदेश से नवीन उपाश्रय का निर्माण हुआ। प्रभु प्रतिष्ठा, ध्वजदडारोहण आदि वडे ही ठाठ-माठ से हुए। सं० १९८२ व्यारा चौमासे में भी उपधान आदि प्रचुर धर्मकार्य हुए। टाकेल गाँव में मन्दिर और उपाश्रय निर्माण हुए, और भी ग्रामानुग्राम विचरते अनेक प्रकार के शासनोन्नति के कार्य किये। सं० १९८३ वैशाख मे सामटा बन्दर में मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। स० १९८३-८४ के चातुर्मास बम्बई हुए। घोलवड़ मे मन्दिर व उपाश्रय उपदेश देकर करवाया। स० १९८५ सूरत, १९८६ कठोर में चौमासा किया। आपने चार और पाँच उपवास से एक-एक पारणा करने की कठिन तपस्या तीन महीने तक की। फिर सायण होकर सूरत आदि अनेक स्थानो में विचरते हुए स० १९८७ का चातुर्मास दहाणु किया। बोरडी पधार कर उपाश्रय के अटके हुए काम को पूरा कराया। फणसा मे उपाश्रय-देहरासर बना। गुजरात मे स्थान-स्थान में विचर कर विविध धर्म कार्य कराये। मरोली मे उपाश्रय हुआ। खभात की दादावाडी की चारों देहरियों का जीर्णोद्धार होने पर सूरत से विविध गांवो में विचरते हुए खमात पधार कर दादावाडी की प्रतिष्ठा स० १९८८ ज्येष्ठ सुदि १० को की। कटारिया गोत्रीय पारेख छोटालाल मगनलाल नाणावटी ने प्रतिष्ठा, स्वधर्मीवत्सल आदि मे अच्छा द्रव्य व्यय किया। चातुर्मास के बाद मातर तीर्थ की यात्रा कर सोजित्रे पधारने पर माणिभद्रवीर की देहरी से आकाशवाणी हुई कि खभात जाकर माणेकचौक के उपाश्रय स्थित माणिभद्र देहरी को जीर्णोद्धार का उपदेश दो। खभात में पन्यासजी उपदेश से स० १९८९ फा० सु० १ को जीर्णोद्धार सम्पन्न हुआ। कार्तिक पूर्णिमा के दिन

महोदयमुनि को दीक्षा देकर श्री गुलाबमुनिजी के शिष्य बनाये। अनेक गाँवों मे विचरते हुए अहमदाबाद पधारे। सघ की वीनति से जीर्णोद्धारित कसारी पार्श्वनाथजी की प्रतिष्ठा खभात जाकर बडे समारोह से कराई। अहमदाबाद पधार कर दादासाहबकी जयन्ती मनाई, दादावाडी का जीर्णोद्धार हुआ। अनेक स्थान के मन्दिर-उपाश्रयो के जीर्णोद्धारादि के उपदेश देते हुए दवीयर पधार कर प्रतिष्ठा कराई। घोलवड मे जैन बोर्डिग की स्थापना करवायी। स० १९९१ का चातुर्मास बम्बई किया। पन्यास श्रीकेशरमुनिजी ठा० ३ महावीर स्वामी मे व कच्छी वीसा ओसवालों के आग्रह से श्रीऋद्धिमुनिजी ने माँडवी मे चौमासा किया। वर्द्धमानतप आबिल खाता खुलवाया। अनेक धर्मकार्य हुए। स० १९९२ लालवाडी चौमासा किया भाद्रव दो होने से खरतरगच्छ और अचलगच्छ के पर्यूषण साथ हुए। दूसरे भाद्रव में गुलाबमुनिजी ने दादर मे व पन्यासजी ने लालवाड़ी मे तपागच्छीय पर्यूषण पर्वाराधन कराया। पन्यास केशरमुनिजो का कातो सुदि ६ को स्वर्गवास होने पर पायधुनी पधारे।

जयपुर निवासी नथमलजी को दीक्षा देकर बुद्धिमुनिजी के शिष्य नदनमुनि नाम से प्रसिद्ध किये। पन्यासजी का १९९३ का चातुर्मास दादर हुआ। ठाणा नगर में पधार कर सघ में व्याप्त कुसप को दूर कर बारह वर्ष से अटके हुए मन्दिर के काम को चालू करवाया। स० १९९४ मिती वै० सु० ६ को ठाणा मन्दिर की प्रतिष्ठा का मूहूर्त्त निकला। यह मन्दिर अत्यन्त सुन्दर और श्रीपाल चरित्र के शिल्प चित्रो से अद्वितीय शोभनीक हो गया। प्रतिष्ठा कार्य वै० व० १३ को प्रारम्भ होकर अठाई महोत्सवादि द्वारा बडे ठाठ से हुआ। वै० सु० १२ को पन्यासजी महाराज विहार कर बम्बई के उपनगरों में विचरे। माटुगा मे रवजी सोजपाल के देरासर में प्रतिमाजी पधराये। मलाड़में सेठ बालूभाई के देरासर मे प्रतिमाजी विराजमान की। स० १९९४ का चातुमास ठाणा सघ के अत्याग्रह से स्वय विराजे। दादासाहब की जयन्ती-पूजा बड़े ठाठ से हुई। वर्द्धमानतप आयंबिल खाता खोला गया। साहमी वच्छलादि में कच्छी, गुजराती और मारवाडी भाइयों का सहभोज नहीं होता था, वह प्रारम्भ हुआ। ठाणा और बम्बई संघ पन्यासजी महाराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने का विचार करता था पर पन्यासजी स्वीकार नहीं करते थे। अन्त में रवजी सोजपाल आदि समस्त श्री सघ के आग्रह से स० १९९५ फागुण सुदि ५ को बड़े भारी समारोह पूर्वक आपको आचार्य पद से अलंकृत किया गया। अब पन्यास ऋद्धिमुनिजी श्रीजिनयश सूरिजी के पट्टधर जैनाचार्य भट्टारक श्रीजिनऋद्धिसूरिजी नाम से प्रसिद्ध हुए।

सं० १९९६ मे जब आप दहाणु मे विराजमान थे तो गणिवर्य श्री रत्नमुनिजी, लब्धिमुनिजी भी आकर मिले। अपूर्व आनन्द हुआ। आपश्री की हार्दिक इच्छा थी ही कि सुयोग्य चारित्र-चूडामणि रत्नमुनिजी को आचार्य पद और श्रीलब्धिमुनिजी को उपाध्याय पद दिया जाय। बम्बई संघने श्री आचार्य महाराज के व्याख्यान मे यही मनोरथ प्रकट किया। आचार्य महाराज और संघ की आज्ञा से रत्नमुनिजी और लब्धिमुनिजी पदवी लेने में निष्पृह होते हुए भी उन्हें स्वीकार करना पड़ा। दश दिन पर्यन्त महोत्सव करके श्रीजिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने रत्नमुनिजी को आचार्य पद एव लब्धिमुनिजी को उपाध्याय पद से अलंकृत किया। मिती आषाढ सुदि ७ के दिन शुभ मूहूर्त्त में यह पद महोत्सव हुआ।

तदनंतर अनेक स्थानो मे विचरण करते हुए आप राजस्थान पधारे और जन्म भूमि चूरु के भक्तों के आग्रह से वहाँ चातुर्मास किया। उपधान तपके मालारोपण के अवसर पर बीकानेर पधार कर उ० श्रीमणिसागरजी महाराज को आचार्य-पद से अलंकृत किया। फिर नागोर आदि स्थानों मे विचरण करते हुए जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठादि द्वारा शासनोन्नति कार्य करने लगे।

अन्त मे बम्बई पधार कर बोरीवली में संभवनाथ जिनालय निर्माण का उपदेश देकर कार्य प्रारम्भ करवाया। स० २००८ मे आपका स्वर्गवास हो गया। महावीर स्वामी के मन्दिर मे आपकी तदाकार मूर्त्ति विराजमान की गई। आपका जीवन वृतान्त श्रीजिनऋद्धिसूरि जीवन-प्रभा में स० १९९५ में छपा था और विद्वत् शिरोमणि उ० लब्धिमुनिजी ने सं० २०१४ मे सस्कृत काव्यमय चरित कच्छ मांडवी मे निर्माण किया जो अप्रकाशित है।

आचार्यरत्न श्रीजिनरत्नसूरि

[भंवरलाल नाहटा]

जगत्पूज्य मोहनलालजी महाराज के संघाडे मे आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी वस्तुत रत्न ही थे। आपका जन्म कच्छ देश के लायजा में स० १९३८ मे हुआ। आपका जन्म नाम देवजी था। आठ वर्ष की आयु मे पाठशाला मे प्रवेश किया। धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर वम्बई में अपने पिताजी की दुकान का काम सभाल कर अर्थोपार्जन द्वारा माता-पिता को सन्तोप दिया। देश मे आपके सगाई-विवाह की वात चल रही थी और वे उत्सुकता से देवजी भाई की राह देखते थे। पर इधर वम्बई मे श्रीमोहनलालजी महाराज का चातुर्मास होने से सस्कार-संपन्न देवजी भाई प्रतिदिन अपने मित्र लधाभाई केसाथ व्याख्यान सुनने जाते और उनकी अमृत वाणी से दोनों की आत्मा में वैराग्य वीज अकुरित हो गए। दोनो मित्रों ने यथावसर पूज्यश्री से दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने उन्हें योग्य ज्ञातकर अपने शिष्य श्रीराजमुनिजी के पास रेवदर भेजा। स० १९५८ चैत्रवदि ३ को दीक्षा देकर देवजी का रत्नमुनि और लधाभाई का लब्धि मुनि नाम दिया। स० १९५९ का चातुर्मास मढार मे करने के वाद स० १९६० वै०-शु०-१० को शिवगंज मे पन्यास श्रीयशोमुनिजी के करकमलों से वडी दीक्षा हुई। सं० १९६० शिवगज, १९६१ नवाशहर स० १९६२ का चातुर्मास पीपाड मे गुरुवर्य श्रीराजमुनिजी के साथ हुआ। व्याकरण, अलकार, काव्यादिका अध्ययन सुचारुतया करके कूचेरा पधारे। यहां राजमुनिजी के उपदेश से २५ घर स्थानकवासी मन्दिर आम्नाय के वने।

श्रीरत्नमुनिजी योगोद्वहनके लिए पन्यासजी के पास चाणोद गये। उनके पास आपका शास्त्राभ्यास अच्छी तरह चलता था, इधर श्रीमोहनलालजी महाराज की अस्वस्थता के कारण पन्यासजी के साथ वम्बई की ओर विहार किया, पर भक्तों के आग्रहवश मोहनलालजी महाराज ने सूरत की ओर विहार किया था, अत मार्ग मे ही दहाणु में गुरुदेव के दर्शन हो गए। श्रीमोहनलालजी महाराज १८ शिष्य-प्रशिष्यों के साथ सूरत पधारे। श्रीरत्नमुनिजी उनकी सेवा में दत्तचित्त थे। उनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त कर उनकी आज्ञा से पन्यासजी के साथ आप पालीताणा पधारे। फिर रतलाम आदि मे विचर कर उनकी आज्ञासे भावमुनिजी के साथ केशरियाजी पधारे। शरीर अस्वस्थ होते हुए भी आपने २१ मास पर्यन्त आविल तप किया। पन्यासजी ने स० १९६६ मे ग्वालियर में उत्तराध्ययन व भगवती सूत्र का योगोद्वहन श्रीकेशरमुनिजी, भावमुनिजी और चिमन मुनिजी के साथ आपको भी कराया। तदनन्तर आप गणि पद से विभूषित हुए। स० १९६७ का चातुर्मास गुरु महाराज श्रीराजमुनिजी के साथ करके १९६८ महीदपुर पधारे। तदनन्तर स० १९६९ का चातुर्मास वम्बई किया। यहा फा० सु० २ को गुरु महाराज की आज्ञा से वोछडोद के श्रीपन्नालाल को दीक्षा देकर प्रेममुनि नाम से प्रसिद्ध किया। सं० १९७० का चातुर्मास भी बम्बई किया। यहाँ श्रीजिनयशःसूरिजी महाराज के पावापुरी मे स्वर्गवासी होने के दुःखद समाचार सुने।

गणिवर्य श्रीरत्नमुनिजी को जन्मभूमि छोडे वहुत वर्ष हो गए थे अत श्रावकसघ की प्रार्थना स्वीकार कर शत्रुजय यात्रा करते हुए अपने शिष्यो के साथ कच्छ में प्रविष्ट हो

अंजार होते हुए भद्रेश्वर तीर्थ की यात्राकर लायजा पधारे। यहाँ पूजा प्रभावना, उद्यापनादि अनेक हुए। स० १९७१ का चातुर्मास बीदडा, १९७२ का मांडवी किया। यहां से नांगलपुर पधारने पर गुरुवर्य राजमुनिजी के स्वर्गवास होने के समाचार मिले। सं० १९७३ भुज, १९७४ लायजा चातुर्मास किया। फिर मांडवी में राजश्रीजी को दीक्षा दी। कच्छ देश मे धर्म प्रचार करते हुए १९७५ स० में दुर्गापुर (नवावास) चौमासा किया और सघ मे पड़े हुए दो तडोंको एक कर शान्ति की। इन्फ्लुएंजा फैलने से शहर खाली हुआ और रायण जाकर चातुर्मास पूर्ण किया। स० १९७३ मे डोसाभाई लालचन्द का सघ निकला ही था, फिर भुज से शा० वसनजो वाघजी ने भद्रेश्वर का सघ निकाला। गणिवर्य यात्रा करके अंजार पधारे। इधर सिद्धाचलजी यात्रा करते हुए श्रीलब्धिमुनिजी आ मिले। उनके साथ फिर भद्रेश्वर पधारे। स० १९७६ का चातुर्मास भूज और स० १९७७ का मांडवी किया। फिर जामनगर, सूरत, कतार गाव, अहमदाबाद, सेरिसा, भोयणीजी, पानसर, तारगा, कुभारियाजी, आबू यात्रा करते हुए अणादरा पधारे। लब्धिमुनिजी, भावमुनिजी को शिवगज भेजा और स्वय प्रेममुनिजी के साथ मढार चातुर्मास किया। पाली में पन्यास श्रीकेशरमुनिजी से मिले। दयाश्रीजी को दीक्षा दी। स० १९८० का चातुर्मास जेसलमेर किया। किले पर दादा साहब की नवीन देहरी में दोनो दादासाहब की प्रतिष्ठा कराई। सं० १९८१ में फलोदी चातुर्मास किया। ज्ञानश्रीजीव वल्लभश्रीजी के आग्रह से हेमश्रीजी को दीक्षा दी। लोहावट मे गोतमस्वामी और चक्रेश्वरीजी की प्रतिष्ठा कर अजमेर पधारे। तदनन्तर रतलाम, सेमलिया, पधारे। स० १९८२ नलखेडा चातुर्मास किया, चौदह प्रतिमाओं की अजनशलाका की। महोदा मे रिखबचन्दजी चोरड़िया के बनवाये हुए गुरुमदिर मे दादा जिनदत्तसूरि आदि की प्रतिष्ठा करवायी। खुजनेर और पडाणा मे गुरुपादुकाएं प्रतिष्ठित कीं। डग पधारने पर श्रीलक्ष्मीचन्दजी बैद के तरफसे उद्यापनादि हुए और दादा जिनकुशलसूरिजी व रत्नप्रभसूरिजी की पादुका-प्रतिष्ठा की। मांडवगढ यात्रा करके इन्दौर मक्सीजी, उज्जैन, होते हुए महीदपुर पधारे। लब्धिमुनिजी और प्रेममुनिजी को वीछडोद चातुर्मासार्थ भेजा। स्वय भावमुनिजी के साथ रुणीजा पधारकर स० १९८३ का चातुर्मास किया। १९८४ महीदपुर, सं० १९८५ का चातुर्मास भाणपुरा किया। उद्यापन और बडी दीक्षादि हुए। मालवा में गणिजी महाराज को विचरते सुनकर बम्बई से रवजी सोजपाल ने आग्रह पूर्वक बम्बई पधारने की विनती की। आपश्री ग्रामानुग्राम विचरते हुए घाटकोपर पहुँचे। मेघजी सोजपाल, गणसी भीमसी आदि की विनतिसे बम्बई लालवाडी पधारे। दादासाहब को जयन्ती श्रीगौडीजी के उपाश्रय मे श्रीविजयवल्लभसूरिजी की अध्यक्षता मे बडे ठाट-माठ से मनायी। स० १९८६ का चौमासा लालवाडी में किया।

गणिवर्य श्रीरतनमुनिजी के उपदेश और मूलचन्द हीराचन्द भगत के प्रयास से महावीर स्वामी के पीछे के खरतरगच्छीय उपाश्रय का जीर्णोद्धार हुआ। स० १९८७ का चातुर्मास वही कर लब्धिमुनिजी के भाई लालजी भाई को सं० १९८८ पो० सु० १० को दीक्षितकर महेन्द्र मुनि नाम से लब्धिमुनि जी के शिष्य बनाये। प्रेममुनिजी को योगोद्वहन के लिए श्री केशरमुनिजी के पास पालीताना भेजा। वहां कच्छ के मेघजी को स० १९८९ पोष सुदि १२ के दिन केशरमुनिजी के हाथ से दीक्षित कर प्रेममुनिजी का शिष्य बनाया।

श्री रत्नमुनिजी महाराज सूरत, खभात होते हुए पालीताना पधारे। श्री केशरमुनिजी को वन्दन कर फिर गिरनारजी की यात्रा की और मुक्तिमुनिजी को बड़ी दीक्षा दी। स० १९८९ का चातुर्मास जामनगर करके अजार पधारे। भद्रेश्वर, मुद्रा, मांडवी होकर मेराऊा पधारे।

नैणवाई को बडे समारोह और विविध धर्मकार्यों में सद् द्रव्यव्यय करने के अनन्तर दीक्षा देकर राजश्रीजी की शिष्या रत्नश्री नाम से प्रसिद्ध किया।

सं० १९९१ का चातुर्मास अपने प्रेममुनिजी और मुक्ति मुनिजी के साथ भुज मे किया। महेन्द्रमुनिजी की बीमारी के कारण लब्धिमुनिजी मांडवी रहे। उमरसी भाई की धर्मपत्नी इन्द्राबाई ने उपधान, अठाई महोत्सव पूजा, प्रभावनादि किये। तदनन्तर भुज से अजार, मुद्रा, होते हुए मांडवी पधारे। यहां महेन्द्रमुनि बीमार तो थे ही चै० सु० २ को कालधर्म प्राप्त हुए। गणिवर्य लायजा पधारे, खेराज भाई ने उत्सव, उद्यापन, स्वधर्मीवात्सल्यादि किये।

कच्छ के डुमरा निवासी नागजी-नेणवाई के पुत्र मूलजी भाई—जो अन्तर्वैराग्य से रगे हुए थे—माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर गणिवर्य श्री रत्नमुनिजी के पास आये। दीक्षा का मुहूर्त्त निकला। नित्य नई पूजा-प्रभावना और उत्सवों की धूम मच गई। दीक्षा का वरघोडा बहुत ही शानदार निकला। मूलजी भाई का वैराग्य और दीक्षा लेने का उल्लास अपूर्व था। रथ में बैठे वरसीदान देते हुए जय-जयकारपूर्वक आकर वै० शु० ६ के दिन गणीश्वरजी के पास विधिवत् दीक्षा ली। आपका नाम भद्रमुनिजी रखा गया। स० १९९२ का चातुर्मास रत्नमुनिजी ने लायजा, लब्धिमुनिजी, भावमुनिजी का अजार व प्रेम मुनिजी, भद्रमुनिजी, का मांडवी हुआ। चातुर्मास के वाद माडवी आकर गुरु महाराज ने भद्रमुनिजी को बडी दीक्षा दी।

तुवडी के पटेल शामजी भाई के सघ सहित पचतीर्थी यात्रा की। सुथरी में घृतकलोल पार्श्वनाथजी के समक्ष सघपति माला शामजी को पहनायी गई। स० १९९३ में माडवी चातुर्मास कर मुद्रा मे पधारे और रामश्रीजी को दीक्षित किया। वहीं इनकी बडी दीक्षा हुई और कल्याणश्रीजी की शिष्या प्रसिद्ध की गई। वहां से रायण में सं० १९९४ चातुर्मास कर सिद्धाचलजी पधारे। इस समय आप का १० साधु थे। प्रेममुनिजी के भगवती सूत्र का योगोद्वहन और नन्दनमुनिजी की बडी दीक्षा हुई। कल्याणभुवन में कल्पसूत्र के योग कराये, पन्नवणा सूत्र बाचा, प्रचुर तपश्चर्याएं हुई। पूजा प्रभावना स्वधर्मीवात्सल्यादि खूब हुए। मुर्शिदाबाद निवासी राजा विजयसिंहजी की माता सुगुण कुमारी की तरफ से उपधानतप हुआ। मार्गशीर्ष सुदि ५ को गणिवर्य रत्नमुनिजी के हाथ से मालरोपण हुआ। दूसरे दिन श्री बुद्धिमुनिजी और प्रेममुनिजी को 'गणि' पद से भूषित किया गया। जावरा के सेठ जडावचन्दजी की ओर से उद्यापनोत्सव हुआ।

सं० १९९६ का चातुर्मास अहमदाबाद हुआ। फिर बडौदा पधारकर गणिवर्य ने नेमिनाथ जिनालय के पास गुरुमन्दिर मे दादा गुरुदेव श्रीजिनदत्तसूरि की मूर्त्ति पादुका आदि की प्रतिष्ठा बडे ही ठाठ-बाठ से की। वहाँ से बबई की ओर विहार कर दहाणु पधारे। श्रीजिनऋद्धिसूरिजी वहाँ विराजमान थे, आनन्द पूर्वक मिलन हुआ। सघ की विनति से बम्बई पधारे। सघ को अपार हर्ष हुआ। श्रीरत्नमुनिजी के चरित्र गुण की सौरभ सर्वत्र व्याप्त थी। आचार्य श्री जिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने सघ की विनति से आपको आचार्य पद देना निश्चय किया। बम्बई में विविध प्रकार के महोत्सव होने लगे। मिती अषाढ सुदि ७ को सूरिजी ने आपको आचार्य पद से विभूषित किया। स० १९९७ का चातुर्मास बम्बई पायधुनी मे किया। श्रीजिनऋद्धिसूरि दादर, लब्धिमुनिजी घाटकोपर और प्रेममुनिजी ने लालवाडी मे चौमासा किया। चरितनायक के उपदेश से श्री जिनदत्तसूरि ज्ञानभडार स्थापित हुआ। लालवाडी में विविध प्रकार के उत्सव हुए। आचार्य श्री ने अपने भाई गणशी भाई की प्रार्थना से स० १९९८ का चातुर्मास

लालवाडी किया। वेलजी भाई को दीक्षा देकर मेघमुनि नाम से प्रसिद्ध किया, वहुत से उत्सव हुए।

स० १९९९ में दश साधुओं के साथ चरित्रनायक ने सूरत चौमासा किया। फिर वडौदा पधारकर लब्धिमुनिजी के शिष्य मेघमुनिजी व गुलावमुनिजी के शिष्य रत्नाकरमुनि को वड़ी दीक्षा दी। स० २००० का चातुर्मास रतलाम किया, उपधान तप आदि अनेक धर्म कार्य हुए। सेमलिया जी की यात्रा कर महीदपुर पधारे। महीदपुर मे राजमुनि जी के भाई चुनीलालजी वाफणा ने मन्दिर निर्माण कराया था, प्रतिष्ठा कार्य वाकी था, अत खरतरगच्छ सघ को इसका भार सौंपा गया पर वह लेख पत्र उनके वहिन के पास रखा, वह तपागच्छ की थी उसने उनलोगों को दे दिया। कोर्ट चढने पर दोनों को मिलकर प्रतिष्ठा करने का आदेश हुआ, पर उन्होंने कब्जा नहीं छोडा तो क्लेश वढता देख खरतरगच्छ वालो ने नई जमीन लेकर मन्दिर वनाया और उसमे राजमुनिजी व नयमुनिजी के ग्रन्थों का ज्ञान भडार स्थापित किया। प्रतिमा की अप्राप्ति से संघ चिन्तित था क्योंकि उत्सव प्रारंभ हो गया था फिर उपाध्यायजी, रत्नश्रीजी और श्रावक और श्राविका गोमी वाई को एक सा प्रतिमा प्राप्त होने व पुष्पादि से पूजा करने का स्वप्न आया। आचार्य श्री ने वीकानेर जाकर प्रतिमा प्राप्त करने की प्रेरणा दी। स० ११५५ की प्रतिमा तत्काल प्राप्त हो गई और आनन्दपूर्वक प्रतिष्ठासम्पन्न हुई। दादा साहव की मूर्त्ति पादुकाएँ, राजमुनिजी व सुखसागर जी की पादुकाए तथा चक्रेश्वरी देवी की भी प्रतिष्ठा हुई। स० २००१ का चातुर्मास महीदपुर हुआ। वड़ोदिया मे पधारने पर उद्यापन व दादासाहव की चरण प्रतिष्ठा हुई। शुजालपुर के मदिर में दादासाहव की चरण प्रतिष्ठा की। स० २००२ का चातुर्मास कर आसामपुरा, इन्दौर होते हुए मांडवगढ यात्रा कर रतलाम पधारे। गरवट्ट गाँव मे दादासाहव की चरण प्रतिष्ठा की। तदनन्तर भाणपुरा कुकुटेश्वर, प्रतापगढ व चरणोद पधारे। चरणोद मे प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न कराके सं० २००३ को प्रतापगढ मे चातुर्मास किया। मंदसौर में चक्रेश्वरीजी की प्रतिष्ठा कराई। जावरा से सेमलियाजी का सघ निकला, सघपति चांदमलजी चोपडा को तीर्थमाला पहनायी। रतलाम से खाचरोद पधारे। जावरा के प्यारचंद जी पगारिया ने वड पार्श्वनाथजीका सघ निकाला। तदनंतर जयपुर की ओर विहार कर कोटा पधारे। गणि श्री भावमुनिजी को पक्षाघात हो गया और जेठ वदि १५ की रात्रि में उनका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

स० २००४ का चातुर्मास कोटा मे हुआ। भगवती सूत्रवाचना, अठाई महोत्सव एवं स्वधर्मी-वात्सल्यादि अनेक धर्मकार्य सेठ केशरीसिंहजी वाफणा ने करवाये। तदनंतर सूरिजो जयपुर पधारे। अशातावेदनीय के उदय से शरीर में उत्पन्न व्याधि को समता से सहन किया। श्रीमालों के मंदिर में देरागाजीखान से आई हुई प्रतिमाए स्थापित की। कच्छभुज की दादावाड़ी की प्रतिष्ठा के लिये सघ की ओर से विनती करने रवजी शिवजी वोरा आये। सं० २००५ का चातुर्मास जयपुर कर स० २००६ का अजमेर में किया। सं० २००७ ज्येष्ठ सुदि ५ को विजयनगर मे प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, चन्द्रप्रभस्वामी आदि के सह दादासाहव के चरणो की प्रतिष्ठा की। फिर रतनचन्दजी सचेती की विनती से अजमेर पधारे। उनके वीस-स्थानक का उद्यापन हुआ। भड़गतियाजी की कोठी के देहरासर में दादा साहव जिनदत्तसूरि मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी। अजमेर से व्यावर पधार कर मुलतान निवासी हीरालालजी भुगड़ी को स० २००७ आषाढ़ सुदि १ को दीक्षित कर हीरमुनि वनाये। उपधान तप हुआ। सूरिजी चातुर्मास पूर्ण कर पाली, राता महावीर जी, शिवगज, कोरटा होते हुए गढसिवाणा पधारे। फिर वांकली, तखतगढ़ होकर श्रीमेश्वरमुनिजी की जन्मभूमि

चूड़ा पधारे। सं० २००८ जेठ वदि ७ को दादा जिनदत्तसूरि मूर्ति, मणिधारी जिनचंद्रसूरि व जिनकुशलसूरि एव पं० केशरमुनिजी की पादुकाऐं प्रतिष्ठित की। वहां से आहोर, जालोर होते हुए गढसिवाणा आकर चातुर्मास किया। फिर नाकोड़ाजी पधार कर मार्गशिर सुदि १ को दादासाहब जिनदत्तसूरि मूर्ति व श्रीकीर्तिरत्नसूरिजी की जीर्णोद्धारित देहरी मे प्रतिष्ठा करवाई। नाकोड़ाजी से विहार कर सूरिजी डीसा कैंप भीलडियाजी होते हुए राघनपुर, कटारिया, अजार होते हुए भद्रेश्वर तीर्थ पहुँचे।

भद्रेश्वरजी की यात्रा कर मांडवी होते हुए भुज पधारे, संघ का चिरमनोरथ पूर्ण हुआ। यहाँ दादावाडी निर्माण का लम्वा इतिहास है पर इसकी चेष्टा करने वाले हेमचन्द भाई जिस दिन स्वर्गवासी हुए उसी दिन आपने स्वप्न में पुरानी और नई दादावाड़ी आदि सहित उत्सव को व हेमचद भाई आदि को देखा वही दृश्य भुजकी दादावाडी प्रतिष्ठा के समय साक्षात् हो गया। स० २००६ माघ सुदि ११ को वड़े समारोह पूर्वक प्रतिष्ठा हुई। सूरत से सेठ वालूभाई विधि-विधान के लिये आये। जिनदत्तसूरि की प्रतिमा व मणिधारी जिनचन्द्रसूरि व श्रीजिनकुशलसूरि के चरणों की प्रतिष्ठा वडे धूमधाम से हुई।

सं० २०१० का चातुर्मास सूरिजी ने मांडवी किया। मि० व० २ को धर्मनाथ जिनालय पर ध्वजदड चढाया गया, उत्सव हुए। मोटा आसविया में मदिर का शताब्दी महोत्सव हुआ। भुज की दादाबाड़ी मे हेमचंद भाई की ओर से नवीन जिनालय निर्माण हेतु सं० २०११ वै० शु० १२ को सूरिजी के कर-कमलों से खात मुहूर्त्त हुआ। तदनतर सूरिजी ने अजार चातुर्मास किया।

चातुर्मास के पश्चात् भद्रेश्वर यात्रा कर मांडवी पधारे। वहां की विशाल रमणीय दादावाड़ी में दादा जिनदत्तसूरि प्रतिमा विराजमान करने का उपदेश दिया, पटेल वीकमसी राघवजी ने इस कार्य को सम्पन्न करने की अपनी भावना व्यक्त की। सूरिजी का शरीर स्वस्थ था, आंख का मोतियविंद उतरता था जिसका इलाज कराना था पर माघ वदी ८ को अर्द्धाङ्ग व्याधि हो गयी ओर माघ सुदि १ के दिन समाधिपूर्वक स्वर्गवासी हुए। आपने अपने जीवन में शुद्ध चरित्र पालन करते हुए, शासन और गच्छ की खूब प्रभावना की थी।

विद्वद्वर्य उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी

[भंवरलाल नाहटा]

वीसवीं शताब्दी के महापुरुषों मे खरतरगच्छ विभूषण श्री मोहनलालजी महाराज का स्थान सर्वोपरि है। वे वड़े प्रतापी, क्रियापात्र, त्यागी-तपस्वी और वचनसिद्ध योगी पुरुष थे। उनमे गच्छ कदाग्रह न होकर सयम साधन और समभावी श्रमणत्व सुविशेष था। उनका शिष्य समुदाय भी खरतर और तपा दोनों गच्छों की शोभा वढ़ाने वाला है। उ० श्रीलब्धिमुनिजी महाराज ने आपके वचनामृत से ससार से विरक्त होकर सयम स्वीकार किया था।

श्रीलब्धिमुनिजी का जन्म कच्छ के मोटी खाखर गाँव में हुआ था। आपके पिता दनाभाई देढिया वीसा ओसवाल थे। सं० १९३५ मे जन्म लेकर धार्मिक सस्कार युक्त माता-पिता की छत्र-छाया में वड़े हुए। आपका नाम

लधाभाई था। आपसे छोटे भाई नानजी और रतनबाई नामक बहिन थी। स० १९५८ में पिताजी के साथ बम्बई जाकर लधाभाई, मायखला मे सेठ रतनसी की दुकान में काम करने लगे। यहाँ से थोडी दूर पर सेठ भीमसी करमसी की दुकान थी, उनके ज्येष्ठ पुत्र देवजी भाई के साथ आपकी घनिष्ठता हो गई क्योंकि वे भी धार्मिक संस्कार वाले व्यक्ति थे। सं० १९५८ मे प्लेग की बीमारी फैली जिसमे सेठ रतनसी भाई चल बसे। उनका स्वस्थ शरीर देखते-देखते चला गया, यही घटना संसार की क्षणभंगुरता बताने के लिये आपके संस्कारी मनको पर्याप्त थी। मित्र देवजी भाई से बात हुई, वे भी ससार से विरक्त थे। संयोगवश उस वर्ष परमपूज्य श्रीमोहनलालजी महाराज का बम्बई मे चातुर्मास था। दोनों मित्रों ने उनकी अमृत-वाणी से वैराग्य-वासित होकर दीक्षा देने की प्रार्थना की।

पूज्यश्री ने मुमुक्षु चिमनाजी के साथ आपको अपने विद्वान शिष्य श्रीराजमुनिजी के पास आबू के निकटवर्ती मडार गांव में भेजा। राजमुनिजी ने दोनों मित्रों को स० १९५८ चैत्रवदि ३ को शुभमुहूर्त्त में दीक्षा दी। श्रीदेवजी भाई रत्नमुनि (आचार्य श्रीजिनरत्नसूरि) और लधा भाई लब्धिमुनि बने। प्रथम चातुर्मास में पच प्रतिक्रमणादि का अभ्यास पूर्ण हो गया। स० १९६० वैशाख सुदि १० को पन्यास श्रीयशोमुनिजी (आ० जिनयश सूरिजी) के पास आप दोनों की बड़ी दीक्षा हुई। तदनन्तर सं० १९७२ तक राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात और मालवा मे गुरुवर्य श्रीराज-मुनिजी के साथ विचरे। उनके स्वर्गवासी हो जाने से डग में चातुर्मास करके स० १९७४-७५ के चातुर्मास बम्बई और सूरत में प० श्रीऋद्धिमुनिजी और कान्तिमुनिजी के साथ किये। तदनन्तर कच्छ पधार कर स० १९७६-७७ के चातुर्मास भुज व मॉडवी मे अपने गुरु-भ्राता श्रीरत्नमुनिजी के साथ किये। सं० १९७८ में उन्हीं के साथ सूरत चौमासा कर १९७९ से ८५ तक राजस्थान व मालवा में केशरमुनिजी व रत्नमुनिजी के साथ विचर कर चार वर्ष बम्बई विराजे। सं० १९८९ का चौमासा जामनगर करके फिर कच्छ पधारे। मेराऊ, मॉडवी, अजार, मोटी खाखर, मोटा आसबिया मे क्रमशः चातुर्मास करके पालीताना और अहमदाबाद में दो चातुर्मास व बम्बई, घाटकोपर में दो चातुर्मास किये। सं० १९९९ मे सूरत चातुर्मास करके फिर मालवा पधारे। महीदपुर, उज्जैन, रतलाम में चातुर्मास कर स० २००४ मे कोटा, फिर जयपुर, अजमेर, ब्यावर और गढ़ सिवाणा में स० २००८ का चातुर्मास बिता कर कच्छ पधारे। सं० २००९ मे भुज चातुर्मास कर श्रीजिनरत्नसूरिजी के साथ ही दादाबाडी की प्रतिष्ठा की। फिर मांडवी, अंजार, मोटा आसबिया, भुज आदि मे विचरते रहे। स० १९७६ से २०११ तक जबतक श्रीजिनरत्नसूरिजी विद्यमान थे, अधिकांश उन्हीं के साथ विचरे, केवल दस बारह चौमासे अलग किये थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् भी आप वृद्धावस्था में कच्छ देश के विभिन्न क्षेत्रों को पावन करते रहे।

आप बडे विद्वान, गभीर और अप्रमत्त विहारी थे। विद्यादान का गुण तो आप मे बहुत ही श्लाघनीय था। काव्य, कोश, न्याय, अलकार, व्याकरण और जैनागमों के दिग्गज विद्वान होने पर भी सरल और निरहकार रह कर न केवल अपने शिष्यों को ही उन्होंने अध्ययन कराया अपितु जो भी आया उसे खूब विद्यादान दिया। श्रीजिन-रत्नसूरिजी के शिष्य अध्यात्मयोगी सन्त प्रवर श्रीभद्रमुनि (सहजानदघन) जी महाराज के आप ही विद्यागुरु थे। उन्होंने विद्यागुरु की एक संस्कृत व छ स्तुतियाँ भाषा मे निर्माण की जो लब्धि-जीवन प्रकाश में प्रकाशित हैं।

उपाध्यायजी महाराज अपना अधिक समय जाप मे तो बिताते ही थे पर सस्कृत काव्यरचना में आप बडे सिद्ध-हस्त थे। सरल भाषा में काव्य रचना करके साधारण व्यक्ति भी आसानीसे समझ सके इसका ध्यान रख कर

क्लिष्ट शब्दों द्वारा विद्वत्ता प्रदर्शन से दूर रहे। आप संस्कृत भाषा के प्रखर विद्वान और आशुकवि थे। स० १९७० में खरतरगच्छ पट्टावली की रचना आपने १७४५ श्लोकों मे की। सं० १९७२ मे कल्पसूत्रटीका रची। नवपद स्तुति, दादासाहब के स्तोत्र, दीक्षाविधि, योगोद्वहन विधि आदि की रचना आपने १९७७-७९ मे की। स० १९९० में श्रीपालचरित्र रचा।

सं० १९९२ में हमारा युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ प्रकाशित होते ही तदनुसार १२१२ श्लोक और छ: सर्गो में संस्कृत काव्य रच डाला। सं० १९८० मे आपने जेसलमेर चातुर्मास में वहाँ के ज्ञानभंडार से कितने ही प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपियां की थीं। सं० १९९६ में ६३३ पद्यों में श्रीजिनकुशलसूरि चरित्र, सं० १९९८ में २०१ श्लोकों में मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि चरित्र एवं सं० २००५ में ४६८ श्लोकमय श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र काव्य की रचना की।

स० २०११ में श्री जिनरत्नसूरि चरित्र, स० २०१२ मे श्रीजिनयश सूरि चरित्र, स० २०१४ मे श्रीजिनऋद्धि सूरि चरित्र, स० २०१५ मे श्री मोहनलालजी महाराज का जोवन चरित्र श्लोकवद्ध लिखा। इस प्रकार आपने नौ ऐतिहासिक काव्यों के रचने का अभूतपूर्व कार्य किया। इनके अतिरिक्त आपने स० २००१ में आत्म-भावना, स० २००५ में द्वादश पर्व कथा, चैत्यवन्दन चौबोसी, वीस स्थानक चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ और पांचपर्व-स्तुतियों की भी रचना की। स० २००७ में संस्कृत श्लोकबद्ध सुसढ चरित्र का निर्माण व २००८ में सिद्धाचलजी के १०८ खमासमण भी श्लोकवद्ध बनाये।

आपने जेनमन्दिरों, दादावाडियो और गुरु चरण-मूर्त्तियो की अनेक स्थानों में प्रतिष्ठाएं करवायी। आपके उपदेश से अनेक मन्दिरों का नवनिर्माण व जीर्णोद्धार हुआ। स० १९७३ में पणासली में जिनालय की प्रतिष्ठा कराई। स० २०१३ मे कच्छ मांडवी की दादावाडी का माघवदि २ के दिन शिलारोपण कराया। स० २०१४ में निर्माण कार्य सम्पन्न होने पर श्रीजिनदत्तसूरि मन्दिर की प्रतिष्ठा करवायी और धर्मनाथ स्वामी के मन्दिर के पास खरतर गच्छोपाश्रय मे श्रीजिनरत्नसूरिजी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित करवायी। स० २०१६ में कच्छ-भुज की दादावाडी मे स० हेमचन्द भाई के बनवाये हुए जिनालय में सभवनाथ भगवान आदि जिनविम्वों की अञ्जनशलाका करवायी। और भी अनेक स्थानों मे गुरुमहाराज और श्रीजिनरत्नसूरि जी के साथ प्रतिष्ठादि शासनोन्नायक कार्यों में बराबर भाग लेते रहे।

ढाई हजार वर्ष प्राचीन कच्छ देश के सुप्रसिद्ध भद्रेश्वर तीर्थ में आपके उपदेश से श्रीजिनदत्तसूरिजी आदि गुरुदेवों का भव्य गुरु मन्दिर निर्मित हुआ। जिसकी प्रतिष्ठा आपके स्वर्गवास के पश्चात् वडे समारोह पूर्वक गणिवर्य श्रीप्रेम-मुनिजी व श्रीजयानन्दमुनिजी के करकमलों से स० २०२६ वैशाख सुदि १० को सम्पन्न हुई।

उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी महाराज बाल-ब्रह्मचारी, उदारचेता, निरभिमानी, शान्त-दान्त और सरलप्रकृति के दिग्गज विद्वान थे। वे ६५ वर्ष पर्यन्त उत्कृष्ट सयम साधना करके ८८ वर्ष की आयु मे स० २०२३ में कच्छ के मोटा आसबिया गाँव मे स्वर्ग सिधारे।

स्वर्गीय गणिवर्य बुद्धिमुनिजी

[अगरचन्द नाहटा]

जैन धर्म के अनुसार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ही मोक्षमार्ग है। जो व्यक्ति अपने जीवन में इस रत्नत्रयी की जितने परिमाण से आराधना करता है वह उतना ही मोक्ष के समीप पहुचता है, मानव जीवन का उद्देश्य या चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना ही है। मनुष्य के सिवा कोई भी अन्य प्राणी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये मनुष्य जीवन को पाकर जो भी व्यक्ति उपरोक्त रत्नत्रयी की आराधना मे लग जाता है उसी का जीवन धन्य है, यद्यपि इस पचम काल में इस क्षेत्र से सीधे मोक्ष की प्राप्ति नही होती, फिर भी अनन्तकाल के भव-भ्रमण को बहुत ही सीमित किया जा सकता है। यावत् साधना सही और उच्चस्तर की हो तो भवान्तर (दूसरे भव मे) भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। चाहिये संयमनिष्ठा और निरतर सम्यक्साधना। यहां ऐसे ही एक सयमनिष्ठ मुनि महाराज का परिचय दिया जा रहा है जिन्होंने अपने जीवन मे रत्नत्रयी की आराधना बहुत ही अच्छे रूप मे की है, कई व्यक्ति ज्ञान तो काफी प्राप्त कर लेते है पर ज्ञान का फल विरति है उसे प्राप्त नहीं कर पाते और जब तक ज्ञान के अनुसार क्रिया-चारित्र का विकास नही किया जाय वहां तक मोक्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता--'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः। गणिवर्य बुद्धिमुनिजी के जीवन मे ज्ञान और चारित्र-इन दोनों का अद्‌भुत सुमेल हो गया था यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आपका जन्म जोधपुर प्रदेशान्तर्गत गगाणी तीर्थ के समीपवर्ती बिलारे गांव में हुआ था। चौधरी (जाट) वश मे जन्म लेकर भी सयोगवश आपने जैन—दीक्षा ग्रहण की। आपके पिता का स्वर्गवास आपके बचपन में ही हो गया था और आपकी माता ने भी अपना अन्तिम समय जान कर इन्हें एक मठाधीश-महत को सौंप दिया था, वहां रहते समय सुयोगवश पन्यास श्री केसरमुनिजी का सत्समागम आपको मिला और जैन मुनि की दीक्षा लेने की भावना जाग्रत हुई। पन्यासजी के साथ पैदल चलते हुए लूणी जकशन के पास जब आप आये तो स० १९६३ मे ९ वर्ष की छोटी सी आयु मे ही आप दीक्षित हो गये आपका जन्म नाम नवल था, अब आपका दीक्षा नाम बुद्धिमुनि रखा गया वास्तव में यह नाम पूर्ण सार्थक हुआ आपने अपनी बुद्धि का विकास करके ज्ञान और चारित्र की अद्‌भुत आराधना की। थोडे वर्षो मे ही आप अच्छे विद्वान हो गये और अपने गुरुश्री को ज्ञान सेवा में सहयोग देने लगे।

तत्कालीन आचार्य जिनयशःसूरिजी और अपने गुरु केसरमुनिजी के साथ सम्मेतशिखरजी की यात्रा करके आप महावीर निर्वाण-भूमि-पावापुरी मे पधारे आचार्यश्री का चतुर्मास वहीं हुआ और ५३ उपवास करके वे वही स्वर्गवासी हो गये, तदनन्तर अनेक स्थानों मे विचरते हुए आप गुरुश्री के साथ सूरत पधारे, वहां गुरुश्री अस्वस्थ हो गये और बम्बई जाकर चतुर्मास किया उसी चातुर्मास मे कार्तिक शुक्ला ६ को पूज्य केसरमुनिजी का स्वर्गवास हो गया। करीब २० वर्ष तक आपने गुरुश्री की सेवा मे रहकर ज्ञानवृद्धि और संयम और तप—जो मुनि-जीवन के दो विशिष्ट गुण हैं—में आपने अपना जीवन लगा दिया आभ्यतर तप के ६ भेदों मे वैयावृत्य सेवा में आपकी बड़ी रुचि थी, आपके गुरुश्री के भ्राता पूर्णमुनिजी के शरीर मे

एक भयंकर फोड़ा हो गया उससे मवाद निकलता था और उसमें कीड़े पड़ गये थे दुर्गन्ध के कारण कोई आदमी पास भी बैठ नहीं पाता था, पर आपने ६ महीनों तक अपने हाथों से उसे धोने मल्हमपट्टी करने आदि का काम सहर्ष किया। इससे पूर्णमुनिजी को बहुत शाता पहुँची, वे स्वस्थ हो गये।

आगमों का अध्ययन करने के लिए आपने सम्पूर्ण आगमो का योगोद्वहन किया। इसके बाद स० १९९५ में सिद्धक्षेत्र पालीताना मे आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी ने आपको गणिपद से विभूषित किया।

मारवाड, गुजरात, कच्छ, सौराष्ट्र और पूर्व प्रदेश तक में आप निरतर विचरते रहे। कच्छ और मारवाड में तो आपने कई मन्दिरमूर्त्तियों एवं पादुकाओ की प्रतिष्ठा भी करवायी। श्रीजिनरत्नसूरिजी की आज्ञा से भुज में दादा-जिनदत्तसूरिजी की मूर्त्ति एव अन्य पादुकाओं की प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम से करवाई। वहाँ से मारवाड़ के चूडा ग्राम में आकर जिनप्रतिमा, नूतन दादावाडी और जिनदत्तसूरिजी की मूर्त्ति-प्रतिष्ठा करवाई। चूडा चातुर्मास के समय ही आपको जिनरत्नसूरिजी के स्वर्गवास का समाचार मिला आचार्यश्री की अन्तिम आज्ञानुसार आपने जिनऋद्धिसूरिजी के शिष्य गुलाबमुनिजी की सेवा के लिए बम्बई की ओर विहार किया और उनको अतिम समय तक अपने साथ रख कर उनकी खूब सेवा की, उनके साथ गिरनार, पालीताना आदि तीर्थों की यात्रा की। इसी बीच उपाध्याय लब्धि-मुनिजी का दर्शन एवं सेवा करने के लिये आप कच्छ पधारे और वहाँ मंजलग्राम मे नये मन्दिर और दादावाडी की प्रतिष्ठा उपाध्यायजी के सान्निध्य मे करवाई, इसी तरह अंजार (कच्छ) के शान्तिनाथ जिनालय के ध्वजादड एवं गुरुमूर्त्ति आदि की प्रतिष्ठा करवाई। वहां से विचरते हुये पालीताना पधारे अशाता वेदनीय के उदय से आप अस्व-स्थ रहने लगे, फिर भी ज्ञान और संयम की आराधना में निरन्तर लगे रहते थे।

कदम्बगिरि के सघ में सम्मिलित होकर सौभागचन्दजी मेहता को आपने सघपति की माला पहनाई और तदनन्तर उपाध्यायजी की आज्ञानुसार अस्वस्थ होते हुए भी भुज-कच्छ के सम्भवनाथ जिनालय की अजनशलाका और प्रतिष्ठा उपाध्यायजी के सान्निध्य में करवाई फिर पालो-ताना पधारे और सिद्धगिरि पर स्थित दादाजी के चरण-पादुकाओं की प्रतिष्ठा और श्रीजिनदत्तसूरि सेवा सघ के अधिवेशन मे सम्मिलित हुए। वहां श्रीगुलाबमुनिजी काफी दिनों से अस्वस्थ थे। आपने उनकी सेवामें कोई कसर नही रखी, पर उनकी आयुष्य की समाप्ति का अवसर आ चुका था, अत स० २०१७ वैसाख सुदि १० महावीर केवलज्ञान तिथि के दिन गुलाबमुनिजी स्वर्गस्थ हो गये।

आपका स्वास्थ्य पहले से ही नरम चल रहा था और काफी अशक्ति आ गई थी। तलहट्टी तक जाने मे भी आप थकजाते थे। पर स० २०१८ के मिगसर से स्वास्थ्य और भी गिरने लगा और वैद्यों के दवा से भी कोई फायदा नहीं हुआ तो आप को डोली में विहार करके हवापानी बदलने के लिए अन्यत्र चलने को कहा गया। पर आपने यही कहा कि मैं डोली में बैठकर कभी विहार नहीं करूंगा फाल्गुन महीने से ज्वर भी काफी रहने लगा और वैद्यों ने आपको श्रम करने का मना कर दिया। पर आप ज्वर मे भी अपने अधूरे कामों को पूरा करने-लिखने आदि में लगे रहते थे। चिकित्सक को आपने यही उत्तर दिया कि यह तो मेरी रुचि का विषय है, लिखना बन्द कर देने पर तो और भी बीमार पड़ जाऊँगा। वैद्यों की दवा में लाभ होता न देखकर आपसे डाक्टरी इलाज करने का अनुरोध किया गया, तो आपने कहा कि मैं कोई डाक्टरी दवा-इजे-क्शन-मिक्सचर आदि नही लूँगा। तुम लोग आग्रह करते

होतो फ़िर सूखी दवा ले सकता हूं। दो तीन महीने दवा ली भी, पर कोई फायदा नहीं हुआ। तव श्रीप्रतापमलजी सेठिया और अरचतलाल शिवलाल ने वम्बई से एक कुशल वैद्य को भेजा। पर अशाता वेदनीय कर्मोदय से कोई भी दवा लागू नहीं पड़ी। आप अपने शिष्यो को हित की शिक्षा देते रहते थे। शिष्यो ने कहा कि कल्पसूत्र के गुजराती अनुवाद का मुद्रण अधूरा पडा है। उसे कौन पूरा करेगा? प्रत्युत्तर में आपने कहा—इसकी चिन्ता मत करो, जहां तक वह पूरा नहीं होगा, मेरी मृत्यु नहीं होगी। आपका दृढ निश्चय और भविष्यवाणी सफल हुई और आपके स्वर्गवास के दो-तीन दिन पहले ही कल्पसूत्र छप कर आ गया और उसे दिखाने पर आपने उसे मस्तक से लगाया, ऐसी आपकी अपूर्व ज्ञान-भक्ति थी।

श्रावण सुदी पचमी से आपकी तवियत और भी विगडने लगी पर आप पूर्ण शांति के साथ उत्तराध्ययन, पद्मावती सज्झाय, प्रभजना व पंचभावना की सज्झाय आदि सुनते रहते थे। सप्तमी के दिन आपका शरीर ठडा पडने लगा। उस समय भी आपने कहा—मुझे जल्दी प्रतिक्रमण कराओ। प्रतिक्रमण के वाद नवकार मंत्र की अखण्ड धुन चालू हो गयी। सवसे क्षमापना कर ली। दूसरे दिन साढे तीन वजे आपने कहा मुझे वैठाओ। पर एक मिनट से अधिक न वैठ सके और नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए श्रावण शुक्ल अष्टमी पार्श्वनाथ मोक्ष कल्याणक के दिन स्वर्गवासी हो गये।

आप एक विरल विभूति थे। आपके चारित्र की की प्रशसा स्वगच्छ और परगच्छ के सभी लोग मुक्त कण्ठ से करते थे। ज्ञानोपासना भी आपकी निरन्तर चलती रहती थी। एक मिनट का समय भी व्यर्थ खोना आपको वहुत ही अखरता था। साध्वोचित क्रियाकलाप करने के अतिरिक्त जो भी समय वचता था, आप ज्ञान सेवा में लगाते थे। इसीलिए आपने कई ज्ञानभन्डारों की सुव्यवस्था की, सूची वनाई। आप जो काम स्वयं कर सकते थे, दूसरों से न हो करवाते थे। श्रावक समाज का थोडा-सा भी पैसा वरवाद न हो और साध्वाचार में तनिक भी दूषण न लगे इसका आप पूर्ण ध्यान रखते थे। अनेक ग्रन्थों का सम्पादन एवं संशोधन वड़े परिश्रम पूर्वक आपने किया था। खरतरगच्छ गुर्वावली के हिंदी अनुवाद का सशोधन-कार्य जब आपको सौंपा गया तब ग्रन्थ के शब्द व भाव को ठीक से समझ कर पक्ति पंक्ति का सशोधन किया। आपके सम्पादित एव सशोधित ग्रन्थों में प्रश्नोत्तरमञ्जरी, पिंडविशुद्धि, नवतत्व सवेदन, चातुर्मासिक व्याख्यान पद्धति, प्रतिक्रमण हेतुगर्भ, कल्पसूत्र सस्कृत टीका, आत्मप्रवोध, पुष्पमाला लघुवृत्ति आदि प्राकृत-सस्कृत ग्रन्थों का तथा जिनकुशलसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि आदि ग्रन्थों के गुजराती अनुवाद के सशोधन मे आपने काफी श्रम किया। सूत्रकृताग सूत्र भाग १-२ द्वादशपर्वकथा के अतिरिक्त जयसोमोपाध्याय के प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् शतक का सम्पादन एव गुजराती अनुवाद वहुत ही महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के सम्पादन के द्वारा आपने खरतरगच्छ की महान् सेवा की है। आपने और भी कई छोटे मोटे ग्रन्थों का सम्पादन एव सशोधन नाम और यश की कामना रहित होकर किया। ऐसे महान मुनिवर्य का अभाव वहुत ही खटकता है। श्री जयानदमुनिजी आदि आपके शिष्यों से भी आशा है, अपने गुरुदेव का अनुकरण कर गच्छ एव शासन की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वर्गीय गणिवर्य को श्रीमद्देवचन्द्रजी की रचनाओं के स्वाध्याय एव प्रचार मे विशेष रुचि थी। कई वर्ष पूर्व श्रीमद् देवचन्द्रजी को अप्रसिद्ध रचनाओं का संकलन करके एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी। जिस रहस्य को श्रीमद् देवचन्दजी ने अपूर्व शैली द्वारा प्रकाशितकिया है, पूज्य वुद्धिमुनिजी का जीवन वहुत कुछ उन्हीं आदर्शो से ओतप्रोत था।

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी और उनका साधु समुदाय

[भंवरलाल नाहटा]

बीसवीं शताब्दी के चारित्रनिष्ठ प्रभावक महापुरुषों मे श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन मे जैन शासन की उल्लेखनीय सेवायें कीं और गुजरात, राजस्थान, कच्छ और मध्यप्रदेश मे उग्रविहार करके खरतरगच्छ की प्रतिष्ठा में समुचित अभिवृद्धि की थी। वे एक तेजस्वी, विद्वान और महान् प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उन्हें देखकर पूर्वाचार्यों की स्मृति साकार हो जाती थी। खरतरगच्छ की सुविहित परम्परा मे अनेक महापुरुषों ने यतिपने के परिग्रह त्याग स्वरुप क्रियोद्धार करके आत्म-साधना क्रम को अक्षुण्ण रखा है उन्ही में से आप एक थे।

आपका जन्म जोधपुर राज्य के चामु गाव मे बाफणा मेघराजजी की धर्मपत्नी अमरादेवी की कुक्षि से स० १९१३ में हुआ था। पूर्व पुण्य के प्रावल्य से आपको साधारण विद्याध्ययन के पश्चात् गुरुवर्य श्रीयुक्तिअमृत मुनि का सयोग प्राप्त हुआ जिससे पचप्रतिक्रमणादि धार्मिक अभ्यास के पश्चात् व्याकरण, न्याय, कोष आदि विपयो का अच्छा ज्ञान हो गया। सदाचारी और त्याग वैराग्यवान् होने से सिद्धान्त पढाने योग्य ज्ञात कर गुरुजी ने आपको सं० १९३६ मे यति दीक्षा दी। गुरुमहाराज के साथ अनेक स्थानो की तीर्थयात्रा व धर्मप्रचार हेतु आपने अनेक स्थानों मे चातुर्मास किये। रायपुर, नागपुर आदि मध्य प्रदेश मे आपने पर्याप्त विचरण किया था। सयम मार्ग मे आगे बढने की भावना थी ही। सं० १९४१ में गुरु महाराज का स्वर्गवास हो जाने से वैराग्य परिणति मे और भी अभिवृद्धि हुई। परिणाम स्वरूप आपने ज्ञानभडार, दो उपाश्रय मन्दिर, नाल की धर्मशाला आदि लाखों की सम्पत्ति-परिग्रह का त्याग कर क्रियोद्धार किया। इन्दौर मे पैंतालीस आगम वाचे। आपने वत्तीस वर्ष पर्यन्त विद्याध्ययन किया था। यति अवस्था मे आपने ज्योतिष विषयकग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था पर साधु होने के बाद उस ओर लक्ष नहीं दिया। कायथा मे एक दीक्षा दी। यति अवस्था के शिष्य तिलोकमुनि भी कुछ दिन साधुपने में रहे थे। स० १९५२ में उदयपुर चौमासा कर केशरियाजी पधारे। खैरवाडा में जैनमन्दिर की प्रतिष्ठा करवायी। स० १९५३ देसूरी, १९५४ जोधपुर, स० १९५५ जेसलमेर, १९५६ फलोदी चौमासा करके १९५७ मे बीकानेर पधारे और अपनी यतिपने की सारी सम्पत्ति को जिसे पहले ही परित्याग कर चुके थे विधिवत् ट्रष्टी आदि कायमकर सघ को सुपुर्द की। स० १९५८ जैतारण चौमासा कर गोडवाड पचतीर्थी करते हुए फलोदी निवासी सेठ फूलचन्दजी गोलछा के संघ सहित शत्रुञ्जय-यात्रा की। स० १९५९ पालीताना, १९६० पोरबन्दर चातुर्मास कर कच्छ देश में पदार्पण किया। मुंद्रा, माडवी, विदड़ा, भाडिया, अजार आदि स्थानों मे पाँच वर्ष विचरे और पाँच उपधान करवाये। दस साधु-साध्वियों को दीक्षा दी। माण्डवी से आपके उपदेश से सेठ नाथाभाई ने शत्रुजय का सघ निकाला। स० १९६६ मे आपश्री ने १७ ठाणों से चातुर्मास पालीताना मे किया। नन्दीश्वर द्वीप की रचना हुई और पाँच साधु-साध्वियों को दीक्षित किया। स० १९६० में जामनगर चातुर्मास कर उपधानतप कराया, चार दीक्षाएं हुई। स० १९६८ मे मोरवी चातुर्मास कर मोयणी, सखेश्वर होते

हुए अहमदाबाद पधारे। १९६९ का चातुर्मास किया। फिर तारंगाजी, खभात यात्रा कर स० १९७० का चौमासा पालीताना किया। रतलाम वाले सेठ चाँदमलजी की धर्मपत्नी फूलकुँवर बाई ने आपसे भगवतीसूत्र वचाया, उपधान करवाया। सोने की मोहरो की प्रभावना और स्वधर्मीवात्सल्यादि किये।

पालीताना से आपश्री भावनगर, तलाजा होते हुए खभात पधारे। वहाँ से सेठ पानाचन्द भगूभाई की विनती से सूरत पधार कर स० १९७१ का चौमासा किया। यहाँ साधुओं को दीक्षा दी। तदनन्तर जगडिया, भरौच, कावी तीर्थ होते हुए पादरा पाधारे। वहाँ से वडोदा होते हुए वम्बई पधारे। मोतीसाह सेठ के वशज सेठ रतनचन्द खीमचन्द, मूलचन्द हीराचन्द, प्रेमचन्द कल्याणचन्द, केशरीचन्द कल्याणचन्द आदि संघ ने आपका प्रवेशोत्सव बडे ठाठ से कराया। लालवाग मे सं० १९८२ का चौमासा करके भगवतीसूत्र वाँचा। आपकी विद्वत्ता, वाचनकला और उच्चचरित्र से सघ वडा प्रभावित हुआ और आपकी इच्छा न होते हुए भी सघ के अत्यन्त आग्रह से आचार्यपद स्वीकार करना पडा। इस अवसर पर लालवाग में ५चतीर्थी की रचना हुई। बीकानेर से श्रीजिनचारित्रसूरिजी को साम्नाय सूरिमत्र देने के लिए बुलाया गया।

स० १९७३ का चौमासा भी वम्बई हुआ। विहार करके मार्ग में तीन साधुओं को दीक्षित किया। सूरतवाली कमलाबाई की विनती से बुहारी पधार कर चातुर्मास किया और श्रीवासुपूज्य भगवान के जिनालय की प्रतिष्ठा करवायी। तीन दीक्षाए दीं। सुरत चातुर्मास के लिए पानाचन्द भगुभाई और कल्याणचन्द घेलाभाई आदि की विशेष विनति से शीतलवाड़ी उपाश्रय में विराजे। पानाचन्द भाई ने जिनदत्तसूरि ज्ञानभडार वनवाया व उद्यापन किया। इस अवसर पर श्रीजयसागरजी को उपाध्यायपद व सुखसागरजी को प्रवर्त्तक पद से विभूषित किया। प्रेमचद केशरीचन्द ने उद्यापन किया। धम्माभाई, पानाभाई, मोतीभाई आदि ने चतुर्थ व्रत ग्रहण किया। सं० १९७५-७६ का चातुर्मास करके स० १९७७ में वडौदा चातुर्मास किया। रतलाम वाले सेठजो ने आकर मालवा पधारने की वीनती की और रुपया-नालेर की प्रभावना की। तदनन्तर आप अहमदाबाद, कपडवंज, रम्भापुर, झाबुआ होते हुए रतलाम पधारे। उपधानतप के अवसर पर रतलाम-नरेश सज्जनसिंहजी भी दर्शनार्थ पधारे। यहाँ पाँच साधु-साध्वियों को दीक्षित कर इन्दौर पधारे। स० १९७९ का चातुर्मास कर भगवती सूत्र वांचा। रतलाम वाले सेठाणीजी ने रुपया नारेल की प्रभावना की। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी ज्ञान भण्डार की स्थापना हुई। उ० सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद, राजसागरजी को वाचक पद व मणिसागरजी को पण्डित पद से विभूषित किया गया। सघ सहित माडवगढ की यात्रा कर भोपावर, राजगढ, खाचरोद, सेमलिया होते हुए सैलाना पधारे। सैलाना नरेश आपके उपदेशों से बडे प्रभावित हुए। तदनन्तर प्रतापगढ होते हुए मदसौर में स० १९७९ का चातुर्मास किया। वहाँ से नीमच, नीवाहेडा, चित्तौड होते हुए करहेडा पार्श्वनाथ और देवलवाडा होकर उदयपुर पधारे। कलकत्ता वाले बाबू चंपालाल प्यारेलाल के सघ सहित केशरिया जी पधारे। वहाँ से लौटकर स० १९८१ का चातुर्मास ठाणा २५ से उदयपुर किया। तदनन्तर राणकपुर पचतीर्थी करके जालोर, बालोत्तरा पधारे। स० १९८२ का चातुर्मास बालोतरा किया। नाकोडा पार्श्वनाथ यात्राकरके संघसहित जेसलमेर पधारे। साधु-विहार न होने से मारवाड मे लोग धर्म विमुख हो गये थे। आपने जिनप्रतिमा के आस्थावान करके बाड़मेर में एक दिन में ४०० मुहपत्तियां तोडवाकर श्रद्धालु बनाया। स० १९८३ में जेसलमेर चातुर्मासकर वहां के श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभडार के ताडपत्रीय ग्रन्थों का जीर्णोद्धार कराया। कई प्रतियों के फोटो स्टेट व नकले करवाई।

कई ग्रन्थों की प्रेसकापियाँ करवा लायी। सं० १६८४ का चौमासा फलौदी करके मा० सु० ५ को बीकानेर पधारे। बीकानेर में आपने तीन चातुर्मास किये जिसमे उपधान, दीक्षा उद्यापनादि हुए। श्री प्रेमचन्दजी खचानची ने उपधान करवाया। उस समय रुग्णावस्था में भी उन्होने शिष्यो को समस्त आगमो की वाचना दी थी। हमारी कोटडी मे चातुर्मास होने से हमें धार्मिक अभ्यास, धर्मचर्चा, व्याख्यान-श्रवण, प्रतिक्रमणादि का अच्छा लाभ मिला।

सं० १६८७ के चातुर्मास के अनन्तर आप सूरतवाले श्री फतेचन्द प्रेमचन्द भाई की वीनति से पालीताना पधार कर सं० १६६४ मिती माघ सुदि ११ के दिन स्वर्गवासी हुए।

आपकी प्रतिमाए शत्रुंजय तलहटी मदिर-वनावसही दादावाडी में, जैनभवन मे, और बीकानेर श्रीजिन-कृपाचन्द्रसूरि उपाश्रय मे है रायपुर के मदिर मे भी आपकी प्रतिमा पूज्यमान है।

आपके उपदेश से इन्दौर, सूरत, बीकानेर आदि ज्ञान-भंडार, पाठशालाएँ, कन्याशालाएं, खुली। कल्याणभुवन, चांदभुवन आदि धर्मशालाएँ तथा जिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम संस्थाओं के स्थापन में आपका उपदेश मुख्य था। आपने बहुत से स्तवन, सज्झाय, गिरनार पूजा आदि कृतियों की रचना की जो कृपाविनोद में प्रकाशित है। कल्पसूत्र टीका द्वादश पर्वव्याख्यान व श्रीपाल चरित्र के हिन्दी अनुवाद करके आपने हिन्दी भाषा की बडी सेवा की।

सूरत से श्रीजिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फण्ड ग्रन्थमाला चालू कर बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया। स्वर्गवास के समय आपकी साधु साध्वी समुदाय लगभग ७० के आस पास था। तदनन्तर नए साधु दीक्षित न होने से घटते २ अभी साधुओं में केवल वयोवृद्ध मुनि मंगलसागर जी और २०-२२ साध्वियाँ ही रहे हैं।

सूरिजी के तीन चौमासा में हमें उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला। जो गुण उनमे देखे गये अद्यतन कालीन साधुओं में दुर्लभ है। उनमे समय की पावन्दी बडी जबर्दस्त थी। विहार, प्रतिक्रमणादि किसी भी क्रिया मे कोई आवे या न आवे, एक मिनिट भी विलम्ब नहीं करते। शास्त्रों का अध्ययन-अभ्यास एवं स्मरणशक्ति भी बहुत गजब की थी। भगवती सूत्र जैसे अर्थ गंभीर आगम को विना मूल पढे सीधा अर्थ करते जाते थे। यह उनके गहरे आगम ज्ञान का परिचायक था।

आप एक आसन पर बैठे हुए घण्टों जाप करते, व्याख्यान देते। आपके पास गुरु-परम्परागत आम्नाय और गच्छमर्यादा आदि का पूर्ण अनुभव था। आपने अपने जीवन मे जैन सघ का जो उपकार किया, वर्णनातीत है। आप प्रतिदिन एकाशना व तिथियों के दिन प्रायः उपवास किया करते थे। आप अप्रमत्त संयमपालन मे प्रयत्नशील रहते थे।

आचार्य श्रीजयसागरसूरिजी

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी का शिष्य-समुदाय बडा विशाल था। आपके विद्वान शिष्य आणदमुनिजी का स्वर्ग-वास आपके समक्ष ही बहुत पहले हो गया था। द्वितीय शिष्य उपाध्याय जयसागरजी थे जिन्हें आचार्य पद देकर आपने जयसागरसूरिजी बनाया, बडे विद्वान और क्रियापात्र थे। श्रीजयसागरसूरिजी के छोटे भाई राजसागरजी ने भी सूरिजी के पास दीक्षा ली थी उन्होंने सूरिजी की बहुत सेवा की और छोटी बहिन ने भी दीक्षा ली थी जिनका नाम हेतश्रीजी था, जिनकी शिष्याए कीर्त्तिश्रीजी, महेन्द्रश्रीजी आदि हैं, कीर्त्तिश्रीजी अभी मन्दसौर मे विराजमान है।

श्रीजयसागरसूरिजी महाराज प्रकाण्ड विद्वान थे। विना शास्त्र हाथ में लिए भी शृंखलावद्ध व्याख्यान देने का अच्छा अभ्यास था। आपने श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र दो भागों मे तथा गणधर-सार्धशतक भाषान्तर आदि कई पुस्तकें लिखी थी। आप ठाम चौविहार करते थे, अपने व्रत-नियमों मे बड़े दृढ़ थे। बीकानेर की भरकर गर्मी में

भी आपने पानी लेना स्वीकार नही किया और समाधि पूर्वक अपनी देह का त्याग कर दिया। बीकानेर रेलदादाजी में आपके अग्निसंस्कार स्थान में स्मारक विद्यमान है। गढसिवाणा, मोकलसर आदि में आपने चातुर्मास किए थे गढसिवाणा मे आपके ग्रन्थों का दादावाडी मे सग्रह विद्यमान है। श्रीजिनजयसागरसूरिजी कृत श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि चरित्र ५ सर्ग और १५७० पद्यो मे सं० १९९४ फा० सु० १३ पालीताना मे रचित है जो जिनपालोपाध्यायकृत द्वादशकुलकवृत्ति के साथ श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभडार पालीताना से प्रकाशित है। इसमें इन्होने अपना जन्म १९४३ दीक्षा १९५६ उपाध्याय पद १९७६ व आचार्य पद १९९० पालीताना मे होना लिखा है।

उपाध्याय सुनिसुखसागरजी

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी के शिष्यो मे उपाध्यायजी का स्थान बडा महत्त्वपूर्ण है। आप प्रसिद्ध वक्ता थे। आपकी बुलन्द वाणी बहुत दूर-दूर तक सुनाई देती थी। आप अधिकतर गुरुमहाराज के साथ विचरे और धार्मिक क्रियाएं कराने आदि से सघ को सम्भालने का काम आपके जिम्मे था। आप ने सस्कृत, काव्य, अलकार आदि का भी अच्छा अभ्यास किया था। बीकानेर चातुर्मास के समय आपको हजारों श्लोक कण्ठस्थ थे। ग्रन्थ सम्पादनादि कामों मे आप हरदम लगे रहते और श्रीजिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फंड सूरत से सर्व प्रथम गणधर सार्द्धशतक प्रकरण व बाद में पचासों ग्रन्थो का प्रकाशन हो पाये वह आप के ही परिश्रम और उपदेशो का परिणाम था। गुरुमहाराज के स्वर्गवास के पश्चात् भी आपने वह काम जारी रखा और फलस्वरूप बहुत ग्रन्थ प्रकाश मे आये।

आप इन्दौर के निवासी मराठा जाति के थे। सेठ कानमलजी के परिचय मे आने पर उल्लासपूर्वक उनके सहाय्य से गुरुमहाराज के पास कच्छ मे जाकर दीक्षित हुए। आपका नाम सुखसागर रखा गया। शास्त्राभ्यास करके विद्वान हुए और व्याख्यान-वाणी में निष्णात हो गए। सं० १९७४ मा० सु० १० को गुरुमहाराज ने सूरत में मगलसागरजी को दीक्षित कर आपके शिष्य रूप में प्रसिद्ध किया। उस समय कृपाचन्द्रसूरिजी १८ ठाणो से थे, इनका १९वां नंबर था। सूरिजी के प्रत्येक कार्यो मे आपका पूरा हाथ था। इन्दौर मे श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभण्डार की स्थापना की। आपको सूरिजी ने प्रवर्त्तक पद से विभूषित किया। बालोतरा चौमासा मे बहुत से स्थानकवासियों को उपदेश देकर जिनप्रतिमा के प्रति श्रद्धालु बनाया। मध्याह्न मे आप जसोल गाव मे व्याख्यान देने जाते व शास्त्रचर्चा व धर्मोपदेश देकर जिनप्रतिमा-पूजा की पुष्टि करते थे। आप उपधान आदि की प्रेरणा करके स्थान-स्थान पर करवाते, सस्थाएं स्थापित करवाते एवं सामाजिक कुरीतियो के विरुद्ध क्रान्तिकारी उपदेश देकर समाज में फैले हुए मिथ्यात्व को दूर कर व्रत-पच्चक्खाण दिलाते थे। आपके कई चातुर्मास गुरुमहाराज के साथ व कई अलग भी हुए।

जैसलमेर चौमासे मे ज्ञानभण्डार के जीर्णोद्धार, व प्राचीन प्रतियो की नकलें फोटोस्टेट करवाने मे आपका पूरा योगदान था। फलौदी, बीकानेर मे भी उपधान आदि हुए। फिर गुरुमहाराज के साथ पालीताना पधारे। सं० १९९२ मे शत्रुञ्जय तलहटी की धनवसही मे आपकी प्रेरणा से भव्य दादावाडी हुई जिसमे श्रीपूज्य श्रीजिनचारित्रसूरिजी के पास प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी उस समय आप उपाध्याय पद से विभूषित हुए एव मुनि कान्तिसागरजी की दीक्षा हुई। इसके बाद सूरत, अमलनेर, बम्बई आदि में चातुर्मास किया। ग्रन्थ सम्पादन-प्रकाशन तो सतत् चालू ही था। नागपुर, सिवनी, बालाघाट, गोंदिया आदि स्थानो मे चातुर्मास किये। उपधान तप आदि हुए। गोंदिया का पन्द्रह वर्षों से चला आता मनमुटाव दूर कर

के सं० १९९९ के माघ महीने मे समारोह पूर्वक मन्दिर को प्रतिष्ठा करवायी। तदनन्तर राजनांदगांव के चातुर्मास में भी उपधान आदि करवाये। रायपुर होकर महासमुन्द मे चातुर्मास किया। धमतरी पधारकर स० २००१ के फाल्गुन में अञ्जनशलाका प्रतिष्ठा, गुरुमूर्त्ति प्रतिष्ठादि विशाल रूप मे उत्सव करवाये। कान्तिसागरजी की प्रेरणा से महाकोशल जैन सम्मेलन बुलाया गया जिसमे अनेक विद्वान पधारे थे। फिर रायपुर चातुर्मास कर सम्मेतशिखर महातीर्थ की यात्रार्थ पधारे। कलकत्ता संघ की वीनती से दो चातुर्मास किये, वडा ठाठ रहा। फिर पटना और वाराणसी में चातुर्मास किये, फिर मिर्जापुर, रीयां होते हुए जबलपुर पधारे। वहां ध्वजदण्डारोपण, अनेक तपश्चर्यादि के उत्सव हुए। वहां से सिवनी होते हुए राजनाद गाव में स० २००८ का चातुर्मास किया। आपके उपदेश से नवीन दादावाडी का निर्माण होकर प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। वहां से सिवनी हो भोपाल व लश्कर, ग्वालियर चातुर्माम किये। जयपुर पधारकर चातुर्मास किया। अजमेर दादासाहब के अष्टम शताब्दी उत्सव में भाग लेकर उदयपुर चातुर्मास किया। तदनन्तर गढसिवाणा चातुर्मास कर गोगोलाव जिनालय की प्रतिष्ठा कराई। गुजरात छोडे बहुत वर्ष हो गये थे, अहमदाबाद सघ के आग्रह से वहां चातुर्मास कर पालीताना पधारे स० २०१६ में उपधान तप हुआ। गिरिराज पर विमलवसही मे दादासाहब को प्रतिष्ठा के समय जिनदत्तसूरि सेवासघ के अधिवेशन व साधु सम्मेलन आदि में सब से मिलना हुआ।

पालीताना-जैन भवन मे चातुर्मास किये। आपकी प्रेरणा से जैनभवन की भूमि पर गुरुमन्दिर का निर्माण हुआ। दादा साहब व गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई। स० २०२२ में घण्टाकर्ण महावीर की प्रतिष्ठा हुई। पालनपुर के गुरु भक्त केशरिया कम्पनी वालों के तरफ से ५१ किलो का महाघण्ट प्रतिष्ठित किया। दादासाहब के चित्र, पचप्रतिक्रमण एव अन्य प्रकाशन कार्य होते रहे। वृद्धावस्था के कारण गिरिराज की छाया मे ही विराजमान रह कर स० २०२४ के वैशाख सुदि ९ को आपका स्वर्गवास हो गया।

पुरातत्व एवं कलामर्मज्ञ प्रतिभामूर्ति मुनि श्रीकान्तिसागरजी को श्रद्धांजलि

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

संसार में दो तरह के विशिष्ट व्यक्ति मिलते हैं। जिनमें से किसी मे तो श्रम की प्रधानता होती है किसी में प्रतिभा की। वैसे प्रतिभा के विकास के लिए श्रम की भी आवश्यकता होती है और अध्ययन व साधना में परिश्रम करने से प्रतिभा चमक उठती है। फिर भी जन्म जात प्रतिभा कुछ विरलों में ही होती है जो बहुत परिश्रम करने पर भी प्राय. प्राप्त नहीं होती। अभी-अभी जयपुर मे जिन साहित्यालंकार पुरातत्त्ववेत्ता शोध कलामर्मज्ञ मुनिश्री कान्तिसागर जीका असामयिक स्वर्गवास ता: २८ सितम्बर को शाम को हो गया है, वे ऐसे ही प्रतिभा सम्पन्न विद्वान मुनि थे। जिनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

बीसवीं शताब्दी के जैनाचार्यों में खरतरगच्छ के आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी बड़े गीतार्थ विद्वान और क्रियापात्र आचार्य हो गये हैं। जो पहले बीकानेर के यति सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। आगे चलकर अपने सारे परिग्रह को बीकानेर के खरतरगच्छ संघ को सुपुर्द करके

क्रियाउद्धार करते हुए साधु हो गये। आगमों आदि का विशेष अध्ययन करके आचार्य बने। उनके शिष्य उपाध्याय सुखसागरजी ने अनेकों ग्रन्थों को प्रकाशित कराया और अच्छे वक्ता थे। उनके लघुशिष्य स्वर्गीय कान्तिसागरजी हुए। जिनके बड़े गुरुभाई मंगलसागरजी अभी पालीताना में है।

जन्मत. वे सौराष्ट्र जामनगर के थे। छोटी अवस्था में ही जैनेतर कुल में जन्म लेने पर भी उ० सुखसागरजी के दीक्षित शिष्य बने। अपनी असाधारण प्रतिभा से थोड़े समय में ही उन्होंने अनेक विषयो में अच्छी गति प्राप्त कर ली। हिन्दी भाषा पर उनका बहुत अच्छा अधिकार हो गया। संस्कृतनिष्ठ प्राञ्जल भाषामें उनके लिखे हुए ग्रन्थ एवं लेख विद्वद्-मान्य हुए। 'खण्डहरों का वैभव' और 'खोज की पगडंडिया' ये दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ तो भारतीय ज्ञानपीठ जैसी प्रसिद्ध संस्था से प्रकाशित हुए। उत्तरप्रदेश सरकार ने इनकी श्रेष्ठता पर पुरस्कार भी घोषित किया। विशालभारत, अनेकान्त, भारतीय, साहित्य, नागरी प्रचारणी पत्रिका आदि हिन्दी की कई प्रसिद्ध और विशिष्ट पत्रिकाओं मे आपके महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते रहे हैं। जिनसे हिन्दी साहित्य मे आपका अच्छा स्थान बन गया। 'ज्ञानोदय' आदि कई पत्रो के तो आप सम्पादकमण्डल में भी रहे है।

वक्तृत्वकला भी आपकी उच्चकोटि की थी साधारणतया बहुत से व्यक्ति अच्छे लेखक तो होते है वे उत्कृष्ट वक्ता नहीं होते। या वक्ता होते हैं तो अच्छे लेखक नहीं होते। पर आप दोनों में समान गति रखते थे। अर्थात् अच्छे लेखक और प्रभावशाली वक्ता दोनों रूपों में आपने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

पुरातत्व और कला के तो आप मर्मज्ञ विद्वान थे। जैनसाधुओं और आचार्यों में तो इन विषयों के आप सर्वोच्च विद्वान माने जा सकते हैं। प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों और कलावशेषों के खोज एवं अध्ययन में आपकी जबरदस्त रुचि थी। मध्यप्रदेश के अनेक गांव नगरों में घूमकर आपने उपरोक्त दोनों ग्रन्थ और बहुत से महत्वपूर्ण लेख लिखे थे। छोटी-छोटी बातों पर भी आप बहुत सूक्ष्मता से ध्यान देते थे और थोड़ी सी बात को अपनी प्रतिभा के बल पर बहुत विस्तार से और बड़े अच्छे रूप में प्रगट कर सकते थे। इतिहास, पुरातत्व और कला में तो आपकी गहरी पैठ थी। जबलपुर चौमासे के समय आपने काफी प्राचीन अवशेषों (मूर्तिखण्डों) को इधर उधर से बड़े प्रयत्न पूर्वक संग्रह किया था। जिसे मध्यप्रदेश सरकार ने अधिकार में ले लिया। राजस्थान मे रहते हुए आपने उदयपुर महाराणा के इष्ट देव-एकलिंगजी पर एक बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ तैयार किया था। आस-पास के नागदा आदि प्राचीन कलाधामों-जैन मन्दिरों व मूर्तियो पर आपने नया प्रकाश डाला। सैकड़ों कलापूर्ण प्राचीन अवशेषों के फोटो लिवाये। खेद है आप के घोर परिश्रम से तैयार किया हुआ एकलिंग जी वाला महत्वपूर्ण वृहद् ग्रंथ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका। प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति जिस किसी विषय को हाथ मे लेता है उसी में अद्भुत चमत्कार पैदा कर देता है। उदयपुर रहते हुए कई कारणों से आपको आर्युवेद का अध्ययन व प्रयोग करना आवश्यक हो गया, तब आपने बहुत से असाध्य रोगियों को रोग मुक्त कर दिया था। आयुर्वेदिक सम्बन्धी अनुभूत प्रयोगों का एक संग्रह "आयुर्वेदना अनुभूत प्रयोगो" भाग १ नामक ग्रन्थ आपने गुजराती में प्रकाशित किया है। वैसे और भी कई ग्रन्थ आप प्रकाशित करने वाले थे। पर आयुष्य कर्म ने साथ नहीं दिया। 'जैन धातु प्रतिमा लेख,' नगर वर्णनात्मक हिन्दी पद्य संग्रह आदि आपके और भी ग्रन्थ प्रकाशित हैं। संगीत के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। बुलन्द आवाज और अच्छा कंठ होने से आप 'अजित शान्ति स्तोत्र' आदि को ताल लय बद्ध बड़े अच्छे रूप में गाते थे।

पुरातत्व और कला के प्रति आपकी बाल्यकाल से ही गहरी अनुरक्ति रही है। खोज की पगडण्डियां के प्रारम्भिक वक्तव्य में आप ने लिखा है कि "बचपन से ही मुझे निर्जन वन व एकांत खण्डहरों से विशेष स्नेह रहा है। अपनी जन्मभूमि जामनगर की बात लिख रहा हूं। वहां का खण्डित दुर्ग ही मेरा क्रीडास्थल रहा है। आज से २२ वर्ष पूर्व की बात है—सरोवर के किनारे पर टूटे हुए खण्डहरों की लम्बी पंक्ति थी। जहा बारहमास प्रकृति स्वाभाविक शृंगार किये रहती है। कहना चाहिये ये खण्डहर सस्कृति, प्रकृति और कला के समन्वयात्मक केन्द्र थे। उनदिनों मैं गुजराती चौथी कक्षा मे पढता था। पढने मे भारी परेशानी का अनुभव होता था। शाला के समय अपने बस्ते लेकर हमलोग सरोवर तटवर्ती खण्डहरों मे छिपा देते और वहीं खेला करते। खण्डहर बनाने वालों के प्रति उन दिनों भी हमारे बाल-हृदय में अपार श्रद्धा थी। जैन कुल में उत्पन्न न होते हुए भी अल्पवय मे मैने जैन मुनि-दीक्षा अंगीकार की। सौभाग्यवश चातुर्मास के लिये बंबई जाना पड़ा। वहां प्राचीन गुजराती भाषा और साहित्य के गम्भीर गवेषक श्रीयुक्त मोहनलाल भाई दलीचन्द देसाई एडवोकेट, भारतीय विद्या भवन के प्रधान सचालक-पुरातत्वाचार्यमुनि श्रीजिनविजय और प्रख्यात पुरातत्वज्ञ डा० हंसमुखलाल धीरजलाल सांकलिया आदि अध्यवसायी अन्वेषकों का सत्सग मिला। उनके दीर्घ अनुभव द्वारा शोधविषयक जो मार्ग दर्शन मिला उससे मेरी अभिरुचि और भी गहरी होती गयी। मेरे मानसिक विकास पर और कलापरक दृष्टिदान में उपर्युक्त विद्वत् त्रिपुटी ने जो श्रम किया है, फलस्वरूप खण्डहरो का वैभव एवं प्रस्तुत पुस्तक है।"

उपरोक्त दोनों पुस्तकें सन् १९५३ में प्रकाशित हुई थी। 'खोज की पगडण्डियो की प्रस्तावना डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान ने लिखी थी। उन्होंने लिखा है "श्री मुनि कान्तिसागरजी प्राचीन विद्याओं के मर्मज्ञ अनुसन्धाता हैं। मुनिजी प्राचीन स्थानों को देखकर स्वयं आनन्द विह्वल होते हैं और अपने पाठकों को भी उस आनन्द का उपभोक्ता बना देते हैं। उनकी दृष्टि बहुत ही व्यापक एवं उदार है। जैन शास्त्रों के वे अच्छे ज्ञाता भी हैं। मुनिजी के कहने का ढंग भी बहुत रोचक है। बीच-बीच में उन्होंने व्यंग विनोद की भी हल्की छींटें रख दी है। इतिहास को सहज और रसमय बनाने का उनका प्रयत्न बहुत ही अभिनन्दनीय है।"

करीब डेढ़ साल पहले जयपुर सघ के अनुरोध से वे लम्बा विहार करके पालीताना से जयपुर चोमासा करने पहुँचे तो अस्वस्थ हो गये। उसी हालत मे पर्यूषणा के व्याख्यान आदि का श्रम अधिक पडा। तब से उनका शरीर क्षीण होने लगा। जयपुर सघ ने उपचार मे कोई कमी नहीं रखी पर स्वास्थ्य गिरता ही गया और ता० २८ सितम्बर को शाम को हृदयगति अवरुद्ध हो के स्वर्गवास हो गया। जैन सघ ने एक नामी लेखक और उद्‌भट पुरातत्वज्ञ विद्वान और प्रतिभाशाली मुनि को खो दिया जिसकी पूर्ति होनी कठिन है। मुनिजी के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

●

आचार्य श्रीजिनमणिसागरसूरि

[भंवरलाल नाहटा]

श्रीक्षमाकल्याणजी महाराज के सघाडे में श्रीजिनमणिसागरसूरिजी महाराज एक विशिष्ट विद्वान, लेखक, शान्त-मूर्ति और सत्क्रियाशील साधु हुए है। वे निस्पृह, त्यागी और सुविहित क्रियाओ, विधि-मर्यादाओ के रक्षक थे। आपका जन्म सवत् १९४३ मे रूपावटी गांव के पोरवाड गुलाबचन्दजी की पत्नी पानीबाई की कुक्षि से हुआ। आपका मनजी नाम था और मनमौजी ऐसे थे कि साधुओं के पास तो नहीं जाते पर सांपों से खेलते थे, उन्हें उनका कोई भय नहीं था। एक वार गाँव वालों के साथ सिद्धाचलजी यात्रार्थ चैत्रीपूनम पर गये और वहाँ पर आपको अपूर्व शान्ति मिली। आपका हृदय आत्मकल्याण करने और प्रभु के मार्ग पर चलने के लिये लालायित हो गया। माता-पिता वृद्ध थे, लोगो ने गाँव जाकर कहा—माता पिता आये पर मनजी तो अपनी धुन के पक्के थे भगवान के समक्ष सर्व त्याग का व्रत ले लिया था। माता-पिता को निरुपाय होकर आज्ञा देनी पड़ी। आपने सं० १९६० वैशाख सुदि २ को सिद्धाचलजी में मुनि सुमतिसागरजी के पास दीक्षा ली। दीक्षा से दो दिन पूर्व एक वृद्ध मुनिराज ने कहा—तुम तपागच्छ के पोरवाड हो, खरतरगच्छ मे क्यों दीक्षा लेते हो! पर उन्होंने साचा धर्म के नाम पर यह भेद बुद्धि क्यों? मुझे आत्म कल्याण करना है, शास्त्रों का अध्ययन करके सही मार्ग पर चलना ही श्रेयस्कर है न कि गड्डर प्रवाह से। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया और स० १९६४ में तो सघ के आग्रह और उपकार बुद्धि से गुरु-शिष्यों ने रायपुर और राजनांदगाँव अलग अलग चातुर्मास किया। योगिराज श्रीचिदानन्दजी (द्वितीय) कृत 'आत्मभ्रमोच्छेदन भानु' नामक ८० पृष्ठ की पुस्तिका को विस्तृत कर ३५० पेज मे उन्ही के नाम से प्रकाशन करवाया, यह घटना आपकी निःस्वार्थता और उदारता को प्रकट करती है।

उस समय समेतशिखरजी के अधिकार को लेकर श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज मे बडा भारी केस चल रहा था, उधर सरकार अपनी सेना के लिये बूचडखाना खोलना चाहती थी। श्वे० समाज की ओर से पैरवी करने वाले कलकत्ता के राय बद्रीदासजी थे। उन्होंने कार्य सिद्धि के लिये अध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता महसूस की और देवी सहायता प्राप्त करने के लिये साधु समाज से निवेदन किया। समय इतना कम था कि पैदल पहुँचना सम्भव नही था। सुमतिसागरजी के पास यह प्रस्ताव आया तो उन्होंने मणिसागरजी को माननीय गुलाबचदजी ढड्ढा और धनराजजी बोथरा के साथ रेल मे सम्मेतशिखरजी भेज दिया। मणिसागरजी की तरुणावस्था थी, धुन के पक्के और गुरु आम्नाय के बल पर उन्होंने तपश्चर्यापूर्वक सम्मेत-शिखरजी पर जाकर जो अनुष्ठान किया, उससे श्वेताम्बर समाज को पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई। समाज मे इनकी बहुत बडी प्रतिष्ठा बढी, कलकत्ता सघ ने इन्हें कलकत्ता बुलाया और छ वर्ष कलकत्ता बिताये। अनुष्ठान के लिये रेल में शिखरजी आने का दण्ड प्रायश्चित मांगा तो उस समय के महामुनि कृपाचन्दजी, आदि खरतरगच्छ एव तपागच्छ के मुनियों की ओर से निर्णय मिला कि यह दण्ड देने का काम नहीं, शासन प्रभावना के कार्य मे [illegible] के उपवासादि तथा ईर्यापथिकी नित्य-क्रिया ही पर्याप्त है।

सं० १९६६ में विद्याविजयजी ने "खरतरगच्छ वालों की पर्युषणादि क्रियायें लौकिक पंचांगानुसार होने से अशास्त्रीय है, इस विषय का विज्ञापन निकाला। राय बद्रीदास जी आदि खरतरगच्छ के श्रावकों के आग्रह से उन्होंने इस भ्रमपूर्ण प्रचार को रोकने के लिये विद्वत्तापूर्ण उत्तर देने की प्रार्थना की तो आपने शास्त्र प्रमाण के हेतु ग्रन्थ सुलभ करने के लिये लम्बी सूची दी। बद्रीदासजी ने तत्काल पाटण, खंभात आदि स्थानों से प्राचीन ताडपत्रीय और कागज की हस्तलिखित प्रतियां मंगा कर प्रस्तुत की। मणिसागरजी ने पहले तो एक सारगर्भित छोटा लेख लिखकर जिनयश सूरिजी शिवजीरामजी, कृपाचन्दजी व प्रवर्त्तिनी पुण्यश्रीजी आदि को भेजा। सबने मणिसागरजी के लेख की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की, उसे प्रकाशित करवाया यही लेख आगे चलकर एक हजार पेज के 'बृहत्पर्यूषणा निर्णय' ग्रन्थरूप में प्रकाशित हुआ।

कलकत्ते से विचरते हुए बम्बई पधारने पर कृपाचन्द्र-सूरिजी ने सुमतिसागरजी को उपाध्याय पद व मणिसागरजी को पण्डित पद से विभूषित किया। स० १९७_ मे तपा-गच्छ के कई महारथी बम्बई मे आ विराजे और तपागच्छ की ओर से कलकत्ते वाले विवाद को उठाने के साथ साथ प्रभु महावीर के षट् कल्याणक मान्यता का भी विरोध किया। दोनों ओर से इस विवाद मे चालीसों पर्चे निकले। मणिसागरजी द्वारा शास्त्रार्थ का आह्वान करने पर कोई उनका सामना न कर सका जिससे सर्वत्र खरतरगच्छ का सिक्का जम गया और कोई खरतरगच्छ की मान्यता को अशास्त्रीय कहने का दुस्साहस न कर सका।

जैन समाज मे मणिसागरजी अपने पाडित्य और शास्त्रार्थ के लिये प्रसिद्धि पा चुके थे। देवद्रव्य के विषय को लेकर सागरानन्दसूरिजी और विजयधर्मसूरिजी के मतभेद-विवाद चलता था। मणिसागरजी भी शास्त्र चर्चा के लिये इन्दौर पधारे। और विजयधर्मसूरिजी से पत्र व्यवहार किया। जब टालमटूल होने लगी तो मणिसागरजी ने देवद्रव्य निर्णयः नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इन्दौर में स्थानकवासी प्रसिद्धवक्ता चोथमल जी के शिष्य ने 'गुरु गुण महिमा' पुस्तिका मे मुखवस्त्रिका को लेकर विवाद खडा किया जिसमें मूर्तिपूजक समाज की निन्दा की गई। आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी वहा पर थे। उपधान चलता था, पूर्णाहुति पर सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद व मणिसागरजी को पन्यास पद दिया गया। स्थानकवासियों की ओर से आचार्य श्री के पास पुस्तक का उत्तर मांगा गया तो शान्तमूर्त्ति आचार्य महाराज ने मणिसागरजी की ओर साभिप्राय देखा। उन्होंने दूसरे ही दिन विज्ञप्ति निकालकर शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया, पर निर्धारित मिती से पूर्व ही मुनि चौथमल जी अपने शिष्य सहित विहार कर गये। मणिसागरजी चुप न बैठे उन्होंने आगम प्रमाण सह 'आगमानुसार मुँहपत्ति का निर्णय और जाहिर उद्घोषणा न० १-२-३ पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवा दी।

वर्तमान काल मे हिन्दी भाषा में जैनागमों के प्रकाशन से जनता का विशेष उपकार हो सकता है, इस उद्देश्य से आपने कोटा में जैन प्रिण्टिंग प्रेस की स्थापना करवाई और इसके द्वारा ७-८ आगमो के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाये। गुरुजी की वृद्धावस्था और प्रकाशनादि के लिए आप १४ वर्ष तक कोटा के आस-पास रहे। प्रकाशन व्यवस्था आदि बन्धन उनके त्यागी जीवन के लिये बाधक था, अत सब कुछ छोडकर निकल पडे और केशरियाजी यात्रा करके आबू में योगिराज शांतिविजयजी महाराज के पास गये। ये उनके पास एक वर्ष रहे, रात्रि में घण्टों एकान्त वार्तालाप करते, गुप्त साधना करते। योगिराज ने आपको उपाध्याय पद से अलकृत किया। मणिसागरजी मे यह विशेषता थी कि प्रति-पक्षियों की कड़ी आलोचना करते हुए भी शिष्ट भाषा

और प्रेम व्यवहार रखते थ। योगिराज ने आपकी योग्यता, विद्वत्ता, निराभिमानीपन आदि का वड़ा आदर किया।

आवू से विहार कर मणिसागरजी लोहावट पधारे। श्रीहरिसागरजी महाराज और आपके गुरु महाराज एक ही गुरु के शिष्य थे अत: छोटे होने पर भी वे काका गुरु थे। दोनों का कभी परस्पर मिलना नही हुआ परन्तु आचार्यश्री इन्हें गच्छ का 'प्राण' समझते थे और वर्षों से वुलाते थे, अतः लोहावट जाकर आचार्य महाराज से वड़े प्रेम पूर्वक मिले। श्रावकों के आग्रह से फलोदी पधारे। फलोदी चातुर्मास में कई वालक आपके पास धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने आते थे उनमे से वस्तीमल श्रावक ने मित्रों के वीच दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा कर ली और वह दीक्षा मणिसागरजी से ही लेने के कृतप्रतिज्ञ थे। मणिसागरजी ने कभी किसी को दीक्षित नहीं किया था पर वस्तीमल के निश्चय के आगे उनको दीक्षा देकर मुनि विनयसागर वनाना पडा। आचार्य महाराज और वीरपुत्र आनंदसागरजी के पारस्परिक मतभेद को मिटा कर गच्छ मे ऐक्य स्थापित करने के लिये आपने सत्प्रयत्न करके फलोदी में एक वृहत्सम्मेलन वुला कर सगठन किया।

कँवलागच्छीय मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने एक पुस्तक लिखी—'क्या पुरुषों की परिषद् में जैन साध्वी व्याख्यान दे सकती है?' इसे पढकर आपकी शास्त्रार्थ-प्रवृत्ति जाग उठी और 'जैनध्वज मे' 'हाँ!' साध्वी को व्याख्यान देने का अधिकार है" शीर्षक लेखमाला २० अकों मे निकाली जो "साध्वी व्याख्यान निर्णय" नामक पुस्तक के रूप मे भी प्रकाशित हुई।

आपने उपधान तप की आवश्यकता महसूस कर छ उपधान कराये थे। सं० २००० मे वीकानेर मे पौष कृष्णा १ को उपधान कराया और मालारोपण के अवसर पर स्वनामधन्य जैनाचार्य श्रीजिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने आपको आचार्य पदसे अलंकृत किया। यद्यपि आपको पद-लालसा लेशमात्र भी नहीं थी। सम्मेतशिखर तीर्थ रक्षा के समय २२ वर्ष की उम्र में कलकत्ता सघ ने आचार्य पद देना चाहा तो आपने सर्वथा अस्वीकार कर दिया था पर वीकानेर मे संघ के आग्रह और आचार्य महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य करना पड़ा।

सं० २००३ कोटा चातुर्मास मे आपने गुणचंद्र, भक्तिचन्द्र और गौतमचन्दजी को दीक्षित किया। आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी, उपाध्याय लब्धिमुनिजी आदि के साथ चतुर्मास कर अन्यान्य स्थानो मे विचरण करने लगे। मालवाड़ा में आपने उपधान तप करवाया और मालारोपण महोत्सव पर विनयसागरजी को उपाध्याय पद दिया। इसके डेढ महीने वाद ता० ६ फरवरी १९५१ को वे स्वर्गवासी हो गये।

आप वडे गीतार्थ, सरल और आत्मार्थी थे। २२ घंटे तक का मौन धारण करते और १५-१६ घटे जप-ध्यान में विताते थे। विनय-वेयावच्च का अद्भुत गुण था, अपने गुरुमहाराज की तो सेवा की हो पर साथियों द्वारा त्यक्त इतर साधुओं की महीनों सेवा की। मलमूत्र उठाया। आप साध्वी और श्राविका समाज से कम परिचय रखते। विहार में आरम्भ आदि न हो इसलिए रसोइया आदि साथ नही रखते। जैनों का घर न होता तो मार्गदर्शक के पास खाखरे आदि लेकर गाँव-गोठ मे छाछ आदि लेकर विहार करते रहते। विहार में गरम पानी आदि की व्यवस्था-आरम्भ से वचकर लौंग-त्रिफलादि के प्राशुक जल से संयम साधना करते थे। आपको नाम का मोह नहीं था। लम्बे जीवन में हजारों ग्रन्थ आये, अध्ययनकर ज्ञानभंडार आदि में दे दिये पर अपने नाम से कोई ज्ञानभंडार आदि संस्था नहीं खोली। निस्पृह, शान्त और साधुता की मूर्त्ति मणिसागरजी वास्तव में एक मणि ही थे। उनका आदर्श जीवन साधकों के लिए प्रेरणासूत्र वने।

खरतरगच्छ के साहित्यसर्जक श्रावकगण

[लेखक—अगरचन्द नाहटा]

जैनधर्म महान् तीर्थङ्करों की एक साधना परम्परा है। साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ-तीर्थ की स्थापना तीर्थङ्कर करते हैं। साधना के दो मुख्य मार्ग उन्होंने बतलाये हैं, अणगार धर्म और सागार धर्म। साधु-साध्वी अणगार धर्म का व श्रावक श्राविका आगार धर्म का पालन करते हैं अर्थात् साधु-साध्वी पचमहाव्रतधारी होते हैं और श्रावक-श्राविका सम्यक्त्व तथा बारह व्रतों के धारक होते हैं। साधु-साध्वी की आवश्यकताए सीमित होने से उनका अधिकाश समय स्वाध्याय ध्यान और तप सयम मे व्यतीत होता है अत उन्हें अपनी ज्ञान-वृद्धि, साधु-साध्वियों को वाचना प्रदान, श्रावक-श्राविकादि भव्यों को धर्मोपदेश देनेके साथ-साथ ग्रन्थ-निर्माण और लेखन के लिए काफी समय मिल जाता इसलिए अधिकाश जैनसाहित्य जैनाचार्यों व मुनियो द्वारा रचित प्राप्त है। पर श्रावक समाज अपनी आजीविका व गृह-व्यापार मे अधिक व्यस्त रहता है इसलिए उनके रचित साहित्य अल्प परिमाण में प्राप्त होता है। खरतरगच्छ में भी आचार्यों व मुनियों का जितना विशाल साहित्य उपलब्ध है, उसके अनुपात मे श्रावकों का रचित साहित्य बहुत ही कम है। फिर भी समय-समय पर जिन विद्वान एव कवि श्रावकों ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्र श राजस्थानी-गुजराती-हिन्दी आदि में जो रचना की है उनका यथाज्ञात विवरण यहा प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य वर्द्धमानसूरि और उनके विद्वान शिष्य जिनेश्वरसूरि से खरतरगच्छ को विशिष्ट परम्परा प्रारम्भ होती है। स० १४२२ में खरतरगच्छ के रुद्रपल्लीय शाखा के सोमतिलकसूरि रचित सम्यक्त्व सप्ततिका वृत्ति के अनुसार ग्यारहवी शताब्दी के सुप्रसिद्ध तिलकमजरी नामक अप्रतिम कथा ग्रन्थ के प्रणेता महाकवि धनपाल के पिता जिनेश्वरसूरि के मित्र थे और धनपाल के भ्राता शोभन (चतुर्विंशति के प्रणेता) जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। इस प्रवाद के अनुसार खरतरगच्छ के प्रथम श्रावक कवि धनपाल माने जा सकते हैं। महाकवि धनपाल की तिलकमजरी के अतिरिक्त ऋषभपचाशिका, सचउरीय महावीर उत्साह, जिनपूजा व श्रावक-विधि प्रकरण आदि रचनाए प्राप्त है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श तीनों भाषाओं मे प्राप्त ये रचनाए प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीजिनदत्तसूरिजी के उल्लेखानुसार श्रीजिनवल्लभसूरिजी कालीदास के सदृश विशिष्ट कवि थे। उनकेभक्त नागोर निवासी धनदेव श्रावक के पुत्र पद्मानद सस्कृत भाषा के अच्छे कवि थे। उनके रचित वैराग्य शतक प्रकाशित हो चुका है।

श्रीजिनदत्तसूरिजी के श्रावक पल्हकवि रचित जिनदत्तसूरि स्तुति की ताडपत्रीय प्रति जेसलमेर भडार में प्राप्त है। यह स्तुति हमारे 'ऐतिहासिक जैनकाव्य-सग्रह' में प्रकाशित है। जिनदत्तसूरिजी के अन्य श्रावक कपूरमल ने ब्रह्मचर्य परिकरणम् (गा० ४५) मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी के समय मे बनाया था जिसे हम 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' की प्रथमावृत्ति में प्रकाशित कर चुके हैं। मणिधारीजी के श्रावक ' लखण ' कृत 'जिनचन्द्रसूरि अष्टक' उपर्युक्त ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति में प्रकाशित है।

वादि-विजेता जिनपतिसूरिजी ने मरोट के नेमिचन्द भडारी को सं० १२५३ मे प्रतिवोध दिया। भडारीजी के पुत्र ने जिनपतिसूरिजी से दीक्षाग्रहण की वे उनके पुत्र जिनेश्वरसूरि बने। श्रीनेमिचन्द्र भंडारी अच्छे विद्वान थे, उनका प्राकृत भाषा में रचित "षष्टिशतक प्रकरण" श्वेताम्बर समाज मे ही नही, दिगम्बर समाज तक मे मान्य हुआ। उसकी कई टीकाए और वालाववोध विद्वान मुनियों द्वारा रचित उपलब्ध और प्रकाशित है। भंडारीजी को दूसरी रचना जिनवल्लभसूरि गुणवर्णन (गा० ३५) है और हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह मे प्रकाशित हो चुकी है। इनके अतिरिक्त एक ९ गाथा का पार्श्वनाथ स्तोत्र जेसलमेर भंडार मे मिला है।

जिनपतिसूरिजी के दो भक्त श्रावक साह रयण और कविभत्तउ ने २० गाथाओं के "जिनपतिसूरि धवल गीत बनाये जो हमारे ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह में प्रकाशित हैं।

जिनेश्वरसूरि के समय श्रावककवि भगडूने "सम्यक्त्व माई चौपाई" स० १३३१ मे वनाई जो वडोदा से प्रकाशित "प्राचीन गूर्जर काव्य सचय में छप चुकी है।

श्रीजिनकुशलसूरिजी के गुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के श्रावक लखमसीह रचित जिनचन्द्रसूरि वर्णनारास (गा० ४७) जेसलमेर भडार से प्राप्त हुआ है, प्रतिलिपि हमारे सग्रह में है।

उपर्युक्त श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के समय मे ठक्कुर फेरू नामक वहुत बड़े ग्रन्थकार खरतरगच्छ में हुए। उनकी प्रथम रचना "युगप्रधान चतुष्पदिका" सं० १३४७ में रची गई उक्त रचना को हमने सस्कृत छाया व हिन्दी अनुवाद सहित 'राजस्थान भारती' में प्रकाशित की थी। ठक्कुर फेरू कन्नाणा निवासी थे यह चतुष्पदिका अपभ्रंश के २९ पद्यों मे राजशेखर वाचक के सानिध्य में माघ महीने मे रची गई। ये फेरू, श्रीमाल धांधिया चन्द्र के सुपुत्र थे, आगे चलकर दिल्ली सम्राट अलाउद्दीनखिलची के कोश और टंकशाल के अधिकारी बने और अपने विविधविषयक अनुभव के आधार से रत्नपरीक्षा स० १३७२ में पुत्र हेमपाल के लिए गा० १३२ मे रचा, जिसको हिन्दी अनुवाद और अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ हमने अपने "रत्नपरीक्षा" ग्रन्थ में प्रकाशित किया है। वास्तुशास्त्र संबन्धी वस्तुसार नामक रचना भी प्राकृत की २०५ गाथाओं में है जो कन्नाणापुर में स० १३७२ विजयादशमी को रची गई और हिन्दी अनुवाद सह पंडित भगवानदासजी ने इसे प्रकाशित कर दी है। ज्योतिष विषयक गा० २४३ का ज्योतिषसार ग्रन्थ भी सं० १३७२ मे रचा। गणित विषयक गणितसार नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ ३११ गाथा का रचा। आपकी अन्य महत्वपूर्ण रचना धातोत्पत्ति गा० ५७ की है इसे भी हमने अनुवाद सहित यू० पी० हिस्टोरीकल जर्नल मे प्रकाशित करवा दिया है।

भारतीय साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ-द्रव्यपरीक्षा मुद्राशास्त्र सम्वन्धी है जो १४९ गाथाओं में सं० १३७५ में रचा गया। इसमे भारतीय प्राचीन 'सिक्कों का वहुत हो महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विवरण दिया है जिससे अनेक महत्वपूर्ण नवीनतथ्य प्रकाश मे आते हैं। उन सिक्कों का माप तौल भी सही रूप में दिया गया है क्योंकि वे स्वयं अलाउद्दीन वादशाह की टकशाल मे अधिकारी रहे थे। अत: उसमे अलाउद्दीन के समय तक की मुद्राओं का विशद विवरण दिया गया है। ठक्कुर फेरू के ग्रन्थों की एकमात्र प्रति हमने कलकत्ते के नित्य मणि जीवन जैन लाइब्रेरी के ज्ञानभडार में खोज के निकाली थी। इन महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम हमने विश्ववाणी में लेख प्रकाशित किया था। स्वर्गीय मुनि कान्तिसागरजी के भी विशाल-भारत में लेख प्रकाशित हुए थे। प्राप्त सभी ग्रन्थों का सकलन करके हमने पुरातत्त्वाचार्य मुनिजिनविजयजी द्वारा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से "रत्नपरीक्षादि-सप्त-ग्रन्थ संग्रह"

नाम से प्रकाशित करवा दिया है। स्व० मुनि कान्ति-सागरजी ने इनके एक अन्य ग्रन्थ भूगर्भप्रकाश (श्लोक ५१) का उल्लेख किया है पर हमें अभी तक कहीं से प्राप्त नहीं हो सका है।

चौदहवीं शताब्दी के श्रावक कवि समधर रचित नेमि-नाथ फागु गा० १४ का प्रकाशित हो चुका है। पन्द्रहवीं शताब्दी के जिनोदयसूरि के श्रावक विद्धणु की ज्ञानपंचमी चौपई सं० १४२१ भा० शु० ११ गुरु को रची गई। कवि विद्धणु ठक्कुर माहेल के पुत्र थे, इसकी प्रति पाटण के संघ भडार में उपलब्ध है।

खरतरगच्छ के महान् संस्कृत विद्वान श्रावक कवि मण्डन मांडवगढ में रहते थे और आचार्य श्रीजिनभद्रसूरिजी के परम-भक्त थे। इन्होंने ठक्कुर फेरू को भांति इतने अधिक विषयों पर संस्कृत ग्रन्थ बनाये हैं जितने और किसी श्रावक के प्राप्त नही है। मंत्री मडन श्रीमाल वाहड के पुत्र थे इनके जीवनी के सबन्ध मे इनके आश्रित महेश्वर कवि ने "काव्य मनोहर" नामक काव्य रचा है। मुनि जिनविजयजी ने विज्ञप्ति-त्रिवेणी में मत्री मडन सबन्धी अच्छा प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—"ये श्रीमाल जाति के सोनिगिरा वश के थे। इनका वश बडा गौरवपूर्ण व प्रतिष्ठावान् था। मत्री मडन और धनदराज के पितामह का नाम 'झझण' था। मंडण वाहड़ का छोटा पुत्र था व धनदराज देहड का एक मात्र पुत्र था इन दोनों चचेरे भाइयो पर लक्ष्मीदेवी की जैसी प्रसन्न दृष्टि थी वैसे सर-स्वती देवी की पूर्ण कृपा थी अर्थात् ये दोनों भाई श्रीमान् होकर विद्वान भी वैसे ही उच्चकोटि के थे।"

"मडन ने व्याकरण, काव्य, साहित्य, अलकार और सगीत आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर मडन शब्दाङ्कित अनेक ग्र थ लिखे हैं। इनमे से ६ ग्रंथ तो पाटण के वाड़ी पार्श्व-नाथ भंडार मे स० १५०४ लिखित उपलब्ध है: जो ये है—१ काव्यमडन (कौरव पाडव विषयक) २ चम्पूमडन (द्रौपदी विषयक) ३ कादम्बरी मडन (कादम्बरी का सार) ४ शृंगार मंडन ५ अलंकार मंडन ६ सगीत मडन ७ उपसर्ग मंडन ८ सारस्वत मडन (सारस्वत व्याकरण पर विस्तृत विवेचन) ९ चद्रविजय प्रबन्ध।" इनमें से कई ग्रंथ तो मडन ग्र थावली के नाम से दो भागों मे "हेमचद्र सूरि ग्रंथमाला" पाटण से प्रकाशित हो चुके है।

"मडन की तरह धनराज या धनद भी बडा अच्छा विद्वान था। इसने 'धनद त्रिशती' नामक ग्र थ भर्तृहरि की तरह शतकत्रयी का अनुकरण करने वाला लिखा है। यह काव्यत्रय निर्णयसागर प्रेस काव्यमाला १३ वें गुच्छक मे छप चुका है। इन ग्र थों मे इनका पाण्डित्य और कवित्व अच्छी तरह प्रगट हो रहा है।

मडन का वश और कुटुम्ब खरतरगच्छ का अनुयायी था। इन भ्राताओं ने जो उच्च कोटि का शिक्षण प्राप्त किया था वह इसी गच्छ के साधुओं की कृपा का फल था। इस समय इस गच्छ के नेता जिनभद्रसूरि थे इस लिये उनपर इनका अनुराग व सद्भाव स्वभावत ही अधिक था। इन दोनों भाइयों ने अपने अपने ग थों में इन आचार्य की भूरि भूरि प्रशसा की है। इनने जिनभद्रसूरि के उपदेश से एक विशाल सिद्धान्त कोष लिखाया था। वह ज्ञानभडार माडवगढ का विध्वश होने से विखर गया पर उसकी कई प्रतियां अन्यत्र कई ज्ञानभडारों में प्राप्त है।

प्रगट-प्रभावी श्रीजिनकुशलसूरिजी के दिव्याष्टक, जिसकी रचना जिनपद्मसूरिजी ने की थी, पर धरणीधर को अवचूरि प्राप्त है पर कवि का विशेष परिचय और समय की निश्चित जानकारी नही मिल सकी। सोलहवीं शताब्दी के श्रावक कवि लक्ष्मीसेन वीरदास के पौत्र एव हमीर के पुत्र थे। उन्होंने केवल सोलह वर्ष की आयु मे जिन वल्लभसूरि के सघपट्टक जैसे कठिन काव्य की वृत्ति स० १५११ के श्रावण मे बनाई।

जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार सातवें ग्रन्थाक के रूप में उ० हर्षराज की लघु वृत्ति एव साधुकीर्ति की अवचूरि सह प्रकाशित हो चुकी है।

सतरहवीं शताब्दी मे हिन्दी जैन कवियों में कविवर बनारसीदास सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते है। वे श्रीमाल जाति के खडगसेन बिहोलिया के पुत्र और जौनपुर के निवासी थे। खरतरगच्छ की श्रीजिनप्रभसूरि शाखा के विद्वान भानुचन्द्रगणि से आपने विद्याध्ययन और धार्मिक अभ्यास किया था। बनारसीदासजी के लिये भानुचन्द्रजी ने मृगांक-लेखा चौपाई स० १६६३ मे जौनपुर मे बनाई। बनारसी-दासजी ने अपनी नाममाला आदि रचनाओं मे अपने विद्यागुरु भानुचन्द्र का सादर स्मरण किया है। आगे चलकर ये व्यापार के हेतु आगरा आये और समयसार, गोमट्टसार आदि दिगम्बर ग्रन्थों के अध्ययन से इनका झुकाव दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर हो गया। उनके साथी कु वरपाल चोरडिया भी 'सिंदुरप्रकर के' पद्यानुवाद में सहयोगी रहे है और भी कई व्यक्ति आपकी अध्यात्मिक चर्चा से प्रभावित हुए और बनारसीदासजी का मत अध्या-त्ममती या बनारसीमत नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुलतान आदि दूरवर्त्ती खरतरगच्छ के ओसवाल भी अध्यात्ममत से प्रभावित हुए और वहाँ जो भी श्वेताम्बर कवि एव विद्वान गए उन्हें भी अध्यात्मिक रचना करने के लिये प्रेरित किया। बनारसीदासजी का वह अध्यात्म-मत अब दिगम्बरों मे तेरहपथ नाम से प्रसिद्ध है और लाखों व्यक्ति दिगम्बर सम्प्रदाय मे उस तेरहपथी सम्प्रदाय के अनुयायी है। मूलत: कविवर बनारसीदासजी खरतरगच्छ के ही विशिष्ट कवि थे। उपाध्याय मेघविजय ने भी अपने युक्ति-प्रबोध नाटक मे इनके खरतर गच्छानुयायी होने का उल्लेख किया है। बनारसीदासजी की प्रारम्भिक रचनायें श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है।

बनारसीदासजी का अर्द्धकथानक नामक हिन्दी की पहला पद्यबद्ध आत्मचरित हिन्दी साहित्य में अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ है। समयसार, बनारसी-विलास, नाममाला आदि आपकी रचनाए पर्याप्त प्रसिद्ध है और प्रकाशित है।

सतरहवीं शताब्दी के अत मे लखपत नामक खरतर-गच्छ के एक श्रावक कवि हुए है जो सिन्धु देश के सामुही नगर के कूकड चोपडा तेजसी के पुत्र थे। इनकी प्रथम रचना तिलोयसुंदरी मगलकलश चौ० स० १६९१ के आ० सु० ७ थट्टानगर में बुहरा अमरसी के कथन से रचित है। १२ पत्रों की प्रति का केवल अतिम पत्र ही तपागच्छ भडार जेंसलमेर में हमारे अवलोकन में आया था। कवि की दूसरी रचना मृगांकलेखा रास स १६९४ श्रा० सु० १५ बुधवार को जिनराजसूरि-जिनसागरसूरि के समय में रची गई। २५ पत्रो के अन्तिम २ पत्र ही तपागच्छ भडार जेंसलमेर मे हमारे देखने में आये।

१८वी शताब्दी में कवि उदयचन्द मथेन बीकानेर में हुए, जो महाराजा अनूपसिंह से आदर प्राप्त थे। अनूपसिंह के नाम से इन्होंने हिन्दी मे अनूप श्रृंगार नामक ग्रन्थ स० १७२८ मे बनाया, जिसकी एक मात्र प्रति अनुप सस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में है। इसकी रचना स० १७६५ में हुई। उदयचन्द मथेन का तीसरा ग्रन्थ पांडित्य-दर्पण प्राप्त है।

मलूकचन्द रचित पारसी वैद्यकग्रन्थ तिव्वसहावी का हिन्दी पद्यानुवाद 'वैद्यहुलास'नाम से प्राप्त है। कवि ने अपना विशेष परिचय या रचनाकालादि नही दिए पर इसकी कई हस्तलिखित प्रतियां खरतरगच्छ के ज्ञानभडारो में देखने मे आई अत इसके खरतर गच्छीय होने की सभावना है।

१९वीं शताब्दी मे अजीमगंज-मकसूदाबाद के श्रावक सबलसिंघ अच्छे कवि हुए जिन्होंने सं० १८६१ में चौबीस

जिन स्तवनो और विहरमान बीसो की रचना की। इन्होंने अपनी रचना मे श्रीजिनहर्षसूरि के प्रसाद से रचे जाने का उल्लेख किया है।

२०वी शताब्दी मे नाथनगर मे श्री अमरचन्द जी बोथरा खरतरगच्छ के कट्टर अनुयायी और सुकवि थे। इनके रचित दो चौवीसियां प्रकाशित हो चुकी है। ये पहले तेरापथी थे श्रीजिनयश:सूरिजी महाराज के अजीमगज पधारने पर अनेक वादविवाद के पश्चात् ये खरतरगच्छानुयायी मन्दिर-मार्गी बने। खरतरगच्छ को आचरणाओं आदि के विषय में आपका गहरा अध्ययन व चिन्तन था। श्रीमद् देवचन्द्रजी की रचनाए आपको अत्यन्त प्रिय थी।

उपर्युक्त खरतर गच्छ के श्रावक कवियो के अतिरिक्त कतिपय छोटे मोटे और भी अनेक कवि हुए हैं जिनके जिनभद्रसूरि गीत आदि रचनाए हमारे अवलोकन में आई है। खोज करने पर और कई खरतरगच्छीय कवियो की रचनाए प्राप्त होगी। बीसवी शताब्दी में तो हिन्दी गद्य-पद्य लेखक, कई कवि हो गए है जिनमें से राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। खरतर गच्छीय यति रायचन्द जी ने इनके खानदान के राजा डालचन्द के लिये सं० १८३८ में कल्पसूत्र का पद्यानुवाद किया था। उन्होने विचित्र मालिका और अवयदी शकुनावली की रचना की। राजाशिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' के बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है उनकी दादी रत्नकुंवरि बीवी लखनऊ के राजा बच्छराज नाहटा की पुत्री थी। उसने स० १८४४ मे माघ वदि ५ को प्रेमरत्ननामक हिन्दी काव्य बनाया। कवियित्री रत्नकुंवरि बहुत बडी पडिता थी और उसका झुकाव कृष्ण-भक्ति की ओर दिखाई देता है। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की लड़की गोमती बीबी जैनधर्म की अच्छी जानकार थी। यहखानदान खरतरगच्छीय है।

स्वयं ग्रन्थ रचना करने के अतिरिक्त खरतरगच्छ के बहुत से श्रावको ने विद्वान यतिमुनियो से अनुरोध कर अनेकों रचनाए करवायी थी। उनसब का विवरण देखने से खरतर गच्छीय श्रावकों के साहित्य प्रेम का अच्छा परिचय मिल जाता है।

ज्ञानभडारों की स्थापना और अभिवृद्धि मे तो श्रावक समाज का महत्वपूर्ण योग रहा है। हजारों प्रतिया उन्होंने प्रचुर द्रव्य व्यय कर लिखवायी। कविजनो को समय समय पर पुरष्कार आदि देकर प्रोत्साहित किया। कई श्रावक अच्छे विद्वान थे, पर साहित्य निर्माण का उन्हें सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। विद्वानों का सत्सग, स्वाध्याय प्रेम उन्हें बहुत रुचिकर रहा है। समय समय पर विद्वान मुनियो सेउन्होने गम्भीर विषयो पर प्रश्न उपस्थित कर उनसे समाधान किया जिसका उल्लेख कई प्रश्नोत्तर ग्रन्थों मे पाया जाता है।

खरतर गच्छ को कई सस्थाओं ने विद्वान बनाने की योजना बनाई थी पर खेद है कि वह योजना सफल नही हो पायी। आज भी इस बात की बडी आवश्यकता प्रतीत होती है कि उचित व्यवस्था करके उच्चस्तरीय अध्ययन कर जिज्ञासु विद्यार्थियों को विद्वान बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय। खरतरगच्छ के साहित्य के सपादन प्रकाशन, नवीन साहित्य निर्माण मे विद्वान श्रावकों की अत्यन्त आवश्यकता है।

अपभ्रंशकाव्यत्रयी : एक अनुशीलन

[ले०—डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री]

युगप्रधानाचार्य जिनवल्लभसूरिजी के पट्टधर, खरतरगच्छ के परमगुरु एव बहुश्रुत विद्वान् कवि श्रीजिनदत्तसूरि खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य थे। यत· --

एतत्कुले श्रीजिनवल्लभाख्यो गुरुस्तत श्रीजिनचन्द्रसूरिः।
सुपूर्वसूरिस्तदनुक्रमेण बभूव वर्यो बहुलैस्तपोभिः॥

—अपभ्रंशकाव्यत्रयी, पृ० ३५

उन्होंने केवल सस्कृत और प्राकृत भाषा में ही नहीं अपभ्रंश भाषा में भी अनेक ग्रन्थों की रचना कर भारतीय साहित्य के भाण्डार को अत्यन्त समृद्ध किया। उनका जन्म गुर्जर देश मे धवलक्कपुर में वि० सं० ११३२ में हुआ था। वे हूमड जाति के वणिक् थे। वि० स० ११४१ में उन्होंने दोक्षा धारण की थी और वि० स० ११६९ मे वे सूरि-पद को प्राप्त हुए थे। अपभ्रंश भाषा मे रची हुई उनकी तीन काव्य-कृतियाँ परिलक्षित होती है। ये तीनों रचनाएं टीका सहित 'अपभ्रंशकाव्यत्रयी' मे—सकलित है। अपभ्रंशकाव्यत्रयी का सम्पादन बड़ोदा के प्रसिद्ध जैनपण्डित श्रीलालचन्द्र भगवानदास गांधी ने सुयोग्य रीति से किया और जिसका प्रकाशन सन् १९२७ में ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदा मे ग्रन्थ क्रमांक ३७ के अन्तर्गत गायकवाड ओरियण्टल सीरिज में हो चुका है।

अपभ्रंश भाषा मे रचे गये श्रीमज्जिनदत्तसूरि के ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. चर्चरी २. उपदेशरसायनरास ३. कालस्वरूपकुलकम्

चर्चरी ४७ पद्यों की लघु तथा सुन्दर रचना है। लोकभाषा तथा शैली मे यह रचना नृत्यपूर्वक गान करने के लिए पूज्य गुरु श्रीजिनवल्लभसूरि के गुणों की स्तुति के निमित्त रची गई। श्रीजिनपालोपाध्याय के द्वारा विहित वृत्ति से यह स्पष्ट है कि इस चर्चरी की रचना वाग्जडदेश के प्रमुख भ० धर्मनाथ के जिनालय व्याघ्रपुर में श्रीजिनदत्तसूरि द्वारा की गयी थी। श्रीजिनवल्लभसूरि का स्मरण दो विशेषणो के साथ किया गया है—

जुगपवरागमसूरिहि गुणिगणदुल्लहह।

युगप्रवर तथा आगमसूरि श्रीजिनवल्लभसूरि का स्मरण बहुविध किया गया है। वस्तुत· अपभ्रंश लोकभाषा होने के कारण गुरु-स्तुतियाँ इस भाषा में लिखी जाती थी। अपभ्रंश मे चर्चरी या गीत लिखे जाने के दो मुख्य कारण थे—लोक प्रचलित शैली में भावों की अभिव्यक्ति तथा जन साधारण की समझ में आने वाली बोली का प्रयोग। अभी खोज करते समय लेखक को चित्तौडगढ़ से श्रीजिनवल्लभसूरि के गीत अपभ्रंश भाषा में लिखे हुए मिले हैं। इस रचना से यह भी पता चलता है कि श्रीजिनदत्तसूरि की कवित्वशक्ति गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। उनका कथन है—लोक मे कवि कालिदास की रचनाओं का वर्णन किया जाता है। किन्तु वह तभी तक है जब तक कवि जिनवल्लभ को नही सुना। इसी प्रकार सुकवि वाक्पतिराज की अत्यत प्रसिद्धि है, किन्तु वह भी जिनवल्लभ के आगे फीकी पड जाती है। अन्य अनेक सुकवि उनके काव्यामृत के लोभी इनकी समता नहीं कर पाते। जो सिद्धान्त के जानकार है वे उनका नाम सुनकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये लोकप्रवाह से बचकर कुमार्ग को छोड कर सत्मार्ग में लगना चाहिये। यथा—

परिहरि लोयपवाहु पयट्टिउ विहिविसउ
पारतंति सहु जेण निहोडि कुमग्गसउ।
दसिण जेण दुसंघ-सुसंघह अतरउ
वद्धमाणजिणतित्थह कियउ निरन्तरउ ॥१०॥

दूसरी रचना उपदेश (धर्म) रसायनरास है। इस पर भी श्रीजिनपालोपाध्याय की वृत्ति मिलती है। यह पद्धड़ियाबन्ध रचना है। वृत्ति से स्पष्ट है कि कवि ने लोकप्रवाह के विवेक को जाग्रत करने के हेतु सद्‌गुरु स्वरूप, चैत्यविधिविशेष, तथा धर्मरसायनरास की रचना की। सद्‌गुरु के सम्बन्ध मे उसके लक्षणों का निर्देश करता हुआ कवि कहता है—

सुगुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ
परपरिवायि नियरु जसु नासइ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ
मुक्खु मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥

अर्थात् जो सच बोलता है उसे सुगुरु कहते हैं। जिस के वचनों को सुनकर अन्य वादियों का भय नष्ट हो जाता है, सभी जीवों की रक्षा अपनी रक्षा की भांति करने लगते हैं और मोक्ष-मार्ग के पूछने पर जो सभी को बतलाता है वह सुगरु है। तथा—

जो जिनवचनों को ज्यों का त्यों जानता है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को भी जानता है और उनके अनुसार वर्तन भी कराता है तथा उन्मार्ग में जाते हुए लोगों को रोकता है (वह सुगुरु है)।

जो जिणवयणु जहट्ठिउ जाणइ
दव्वु खित्तु कालु वि परियाणइ।
जो उस्सग्गववाय वि कारइ
उम्मग्गिण जणु जतउ वारइ ॥५॥

इस रचना में कुल ८० पद्य हैं। कवि के युग में माघमाला जलक्रीड़ा, लगुडरास तथा विविध नृत्य-गानों का चैत्यगृहों में विशेष प्रचार था। मन्दिरों में नाटक भी खेले जाते थे। तालरासक एवं विविध वाद्य-ध्वनियों का भी वादन होता था। विविध प्रकार से लोग अपने भक्ति-भावों को प्रदर्शित करते थे। कवि का कथन है—जिन मन्दिरों मे उचित स्तुति और स्तोत्र पढे जाते थे, जो जिनसिद्धान्तों के अनुकुल होते थे। श्रद्धाभरित होने पर भी रात मे तालरासक प्रदर्शित नहीं होता था। दिन मे भी महिलायें पुरुषों के साथ लगुडरास नहीं खेलती थीं।

उचिय थुत्ति थुयपाढ पढिज्जहिं
जे सिद्ध तिहिं सहु संधिज्जहिं।
तालारासु वि दिंति न रयणिहिं
दिवसि वि लउडारसु सहुँ पुरिसिहिं ॥३६॥

धार्मिक लोग केवल नाटको में नृत्य करते थे और चक्रवर्ती भरत तथा सगर के अभिनिष्क्रमण का एव अन्य चक्रवर्ती चरितो का प्रदर्शन करते थे।

धम्मिय नाडय पर नच्चिज्जहिं
भरहसगरनिक्खमण कहिज्जहिं।
चक्कवट्टिबलरायह चरियइ
नच्चिवि अंति हुति पव्वइयइ ॥३७॥

इस प्रकार कवि ने यह बताया है कि इन विविध रासो, नृत्य-गानों का अभिप्राय मनोरजन न होकर अन्त में वैराग्य-भावना की अभिव्यंजना रही है। अतएव माघमाला जलक्रीड़ा तथा झूला-पालना तीनों जिनालय मे करना निषिद्ध है। घर पर किये जाने वाले कार्य भी जिन-मदिर में करना उचित नहीं है।

माहमाल - जलकोलदोलय
तिवि अजुत्त न करति गुणालय।
बलि अत्थमियइ दिणयरि न घरहिं
घरकज्जइ पुण जिणहरि न करहिं ॥३९॥

लोकव्यवहार के सम्बन्ध मे उन के विचार थे—कि जो बेटा-बेटियों को परणाते है वे समानधर्म वाले घरों में विवाह रचते हैं। क्योंकि यदि विमत वालों के घर

सम्बन्ध किया जाता है तो निश्चय से सम्यक्त्व की हानि होती है। आचार्य श्री का यह भी कथन है कि अल्प धन से ही ससार के सावद्य कार्य सम्पन्न हो जाते है। धन केवल मनुष्य के कुटुम्ब के निर्वाह का साधन है। अतएव धार्मिक कार्यों में धन का सदुपयोग कर सम्यक्त्व की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये। सम्यक्त्व की प्राप्ति प्रतिक्रमण, वन्दना, नवकार की सज्झाय आदि से होती है। उनके ही शब्दो में—

पडिकमणह वदणइ आउल्ली
चित धरति करेइ अभुल्ली
मणह मज्झि नवकारु वि ज्झायइ
तासु सुट्ठु सम्मतु वि रायइ ॥११॥

अपभ्रंश की तीसरी रचना कालस्वरूपकुलकम् है। यद्यपि यह बत्तीस छन्दो मे निबद्ध लघु रचना है, किन्तु विषय और भावों की दृष्टि से यह सशक्त रचना है। जन सामान्य के लिए यह रचना अत्यन्त उपयोगी है। रचना सरल और भावपूर्ण है। इसपर सूरप्रभ उपाध्याय की लिखी हुई वृत्ति भी साथ में प्रकाशित है।

मनुष्य जन्म के सफल न होने का कारण बताता हुआ कवि कहता है—यह जन मोह की नींद मे सो रहा है, कभी जागता ही नहीं है। मोहनींद में से उठे बिना यह शिव-मार्ग मे नहीं लग सकता। यदि किसी सुखकर उपाय से कोई गुरु उसे जगाता है तो उसके वचन उसे अच्छे नहीं लगते।

मोहनिद् जणु सुत्तु न जग्गइ
तिण उट्ठिवि सिवमग्गि न लग्गइ।
जइ सुहत्थु कु वि गुरु जगावइ
तु वि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥

जिस प्रकार हिन्दी भाषा में निर्गुण सन्तों ने सिर मुडा लेने मात्र का निषेध किया है उसी प्रकार आचार्य जिनदत्तसूरि भी कहते हैं कि लोक मे बहुत से साधु सन्यासी मुण्डित दिखलाई पडते है, किन्तु उनमे राग द्वेष भरपूर विलसित है। इसी प्रकार बहुत से शास्त्र पढते है, उनका निर्वचन तथा व्याख्यान करते है, किन्तु परमार्थ नहीं जानते हैं। उनके शब्द हैं—

बहु य लोय लुंचियसिर दीसहिं
पर रागद्दोसिहिं सहुँ विलसहिं।
पढहिं गुणहि सत्थइ वक्खाणहि
परि परमत्थु तित्थु सु न जाणहि ॥७॥

कवि का यह कथन कितना सुन्दर है कि यह ससार धतूरे के उस सफेद फूल के समान सुन्दर तथा आकर्षित करने वाला है, जो पौधे मे लगा हुआ मनोहर लगता है। किन्तु जब उसका रस पिया जाता है तब सब सूना लगता है। मनुष्य का आयुष्य थोडा है। अतएव गुरुभक्ति कर मनुष्यजन्म सफल बनाना चाहिए।

जहिं घरि बंधु जुय जुय दीसइ
त घरु पडइ बहतु न दीसइ।
ज दढबंधु गेहु तं बलियउ
जडि भिज्जतउ सेसउ गलिउ ॥२६॥

अर्थात् जिस घर मे बान्धव अलग-अलग दिखलाई पडते है वह घर नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार से बन्धु-बान्धवों के एक घर से अलग-अलग हो जाने पर वह घर फूट जाता है उसी प्रकार सयमी जनों से रहित घर भी विनष्ट हो जाता है। दृढबन्ध होने पर भी जिस घर की नींव मे पानी हो वह गल कर नष्ट हो जाता है। अतएव लौकिक समृद्धि प्राप्त करना हो तो घर को बुहारी की भाँति बाँधना चाहिए। यदि बुहारी का एक-एक तिनका अलग-अलग कर दिया जाये तो फिर उससे कैसे बुहारा जा सकता है ?

कज्जउ करइ बुहारी बद्धी
सोहइ गेहु करेइ समिद्धी।
जइ पुण सा वि जुय जुय किज्जइ
ता किं कज्ज तीए साहिज्जइ ॥२७॥

युगप्रवर आचार्य जिनदत्तसूरिजी के पट्टधर शिष्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि के अष्टमशताब्दी समारोह के शुभ सन्देश के रूप मे आज भी उनके वे वचन अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्रेरणादायक है कि हम सबको (सभी सम्प्रदायों को) अब एक जुट होकर बुहारी की भाँति जिनशासन के एक सूत्र मे बध जाना चाहिए, ताकि मानवता एव धर्म की अधिक से अधिक सेवा हो सके।

पता—
डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, एम० ए०,
पी-एच० डी०,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नीमच (मन्दसौर) म० प्र०

खरतरगच्छ परम्परा और चित्तौड़

[रामवल्लभ सोमानी]

मेवाड का जैनधर्म से सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से था। वडली के वीर स० ८४ के लेख में मध्यमिका नगरी का उल्लेख है[१]। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यहां कई उल्लेखनीय साधु हुये हैं। इनमें सिद्धसेन दिवाकर, और हरिभद्रसूरि बडे प्रसिद्ध हुये हैं। ६वीं शताब्दी मे कृष्णर्षि[२] नामक एक जैन साधु बडे विख्यात हुए हैं। इन्होंने चित्तौड में कई श्रावकों को जैन धर्म में दीक्षित किया, इस समय चित्तौड मे श्वेताम्बरों के साथ-साथ दिगम्बरो का भी प्रावल्य था। महारावल अल्लट के शासनकाल मे श्वेताम्बरो को राज्याश्रय मिलना शुरु हुआ था। इस समय कई श्वेताम्बर मन्दिरबने जिनकी प्रतिष्ठा सडेरगच्छ के यशोभद्रसूरि ने की थी[३]। उस समय चैत्यवासियो का वडा प्रवल प्रचार था।

खरतरगच्छ के साधुओं का प्रारम्भ मे जालोर, गुजरात आदि क्षेत्रों में अच्छा प्रचार था। उस समय ये चन्द्र-गच्छीय कहलाते थे। मेवाड के चित्तौड मे सबसे अधिक सम्पर्क इस गच्छ के जिनवल्लभसूरिका हुआ। ये प्रारम्भ मे चैत्यवासी थे और आसिकादुर्ग के कुर्चपुरीय गच्छ के जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। ये पाटण मे अभयदेवसूरि के पास शिक्षार्थ आये थे। इन्होंने चैत्यवासियो की शास्त्र विरोधी प्रक्रियाओ से अप्रसन्न होकर उसे त्यागकर अभय-देवसूरि से फिर से दीक्षा ग्रहण की थी। यह घटना वि० स० ११३८ के बाद सम्पन्न हुई थी क्योंकि इस सवत् मे लिखी "विशेषावश्यक टीका" की प्रशस्ति मे जिनवल्लभसूरि ने अपने आपको जिनेश्वरसूरि का शिष्य वर्णित किया है[४]। ये घूमते-घूमते चित्तौड आये। यहां चैत्यवासियों के विरोध के कारण ये चण्डिका के मठ मे ठहरे। ये कई शास्त्रो के ज्ञाता थे। अतएव शीघ्र ही इनकी बडी प्रसिद्धि हो गई। इनके कई उपासक भी हो गये। इनमें श्रेष्ठि बहुदेव साधारण, वीरक, रासल मानदेव आदि थे। जो कुछ धर्कटजाति के और कुछ खडेल-वाल थे। इन्ही श्रेष्ठियो के सहयोग से जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड मे विधिचैत्य[५] की स्थापना की। इस समय एक विस्तृत प्रशस्ति भी खुदाई जिसका नाम "सप्तसतिका" रक्खा गया है। इसमे ७७ श्लोक हैं। इसकी प्रतिलिपि आदरणीय नाहटाजी की कृपा से मुझे प्राप्त हुई है। इस प्रशस्ति में चित्तौड, नागौर आदि कई स्थानो पर सम्भवत खुदाया गया था।

खरतरगच्छ परम्परा के अनुसार एक वार नरवर्मा के दरवार में एक समस्या पूर्त्ति हेतु आई। इसकी नरवर्मा के पंडितगण पूर्ति नही कर सके तब चित्तौड मे इसे जिनवल्लभ-सूरि के पास भेजी। इन्होने तत्काल पूर्ति करके भिजवा दी। कालान्तर मे जब वे घूमते-घूमते धारानगरी पहुँचे

---

(१) पूर्णचन्द्र नाहर-जैन लेख सग्रह भाग १ पृ० ६७

(२) अगरचन्द्र नाहटा-शोधपत्रिका वर्ष १ अक १ मे लेख

(३) लेखक द्वारा लिखित 'महाराणा कुम्भा' पृ० १६६

(४) ,, वीरभूमिचित्तौड पृ० ११६। (अपभ्रशकाव्य-त्रयी की भूमिका ४)।

(५) ,, चित्रकूट नरवर नागपुर मरुपुरादि सम्वन्धिनि सुप्रशस्तिषु लिखित्वा च निदर्शितानि..." (अपभ्रश-काव्यत्रयी मे प्रकाशित चर्चरी गाथा १२१)

तो नरवर्मा ने इनका बडा सम्मान किया और इन्हें काफी दान देने की इच्छा प्रकट की। इन्होने इसे अस्वीकार करते हुये केवल इतना ही कहा कि वे चित्तौड मे निर्मित विधि-चैत्य को पूजा के निमित्त व पारुत्य मुद्राओं की व्यवस्था चित्तौड की मडपिका से करवा देवें[६]। तदनुसार व्यवस्था करादी गई। इनका देहावसान चित्तौड़ में वि० स० ११६७ कार्त्तिक वदि १२ को हुआ था। इसके कुछ समय पूर्व ही इनका पाटोत्सव चित्तौड में ही सम्पन्न कराया गया था। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों मे सघपट्टक, धर्मशिक्षा, पिंडविशुद्धि, द्वादशकुलक प्रकरण आदि प्रसिद्ध हैं।

जिनदत्तसूरि जिनवल्लभसूरि के बाद आचार्य बने। इनका पाटोत्सव चित्तौड मे वि० स० ११६९ वैशाख सुदि ६ को हुआ। इनका प्रारम्भ का नाम सोमचन्द्र था और आचार्य बनने पर इन्हें जिनदत्त नाम दिया गया था। चैत्यवासियों का बडा प्रचार चित्तौड़ में चल रहा था। जब ये चित्तौड में प्रवेश कर रहे थे तब एक साँप और एक नकटी औरत को इनके सामने भेजा ताकि अपशुकुन हो जाये किन्तु ज्ञानादित्य जिनदत्तसूरि ने कहा कि यह अपशुकुन[७] नहीं है। इसका फल वे लोग ही भोगेंगे। इस प्रकार बडे ही समारोह पूर्वक इन्होने चित्तौड मे प्रवेश किया था।

श्रेष्ठि राल्हा का उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार मिलता है। इसने जिनेश्वरसूरि के उपदेश से वि० सं० १२८८ मे चित्तौड मे बड़ा महोत्सव किया। इसमे अजितसेन, गुणसेन, अमृतमूर्ति, धर्ममूर्ति, राजमती, हेमावली कनकावली, रत्नावली आदि को दीक्षा दी। इसी वर्ष आषाढ़वदि २ को चित्तौड में नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव आदि की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी की। इसमें ८००० रु० श्रेष्ठि लक्ष्मीधर ने और शेष राशि श्रेष्ठि राल्हा ने व्यय की। जैसलमेर भंडार में सगृहीत "कर्मविपाक" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति से पता चलता है कि राल्हा ने वि० स० १२८९ में शत्रुंजय आदि तीर्थों की यात्रा उक्त आचार्य के उपदेश से की थी। वि० स० १२९५ में उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि करवाई थी।[८] सम्भवत उस समय जिनेश्वरसूरि धारा मे थे और राल्हा उनके दर्शनार्थ वहां गया हुआ था।

मेवाड मे महारावल जैतसिंह, तेजसिंह और समरसिंहका शासनकाल बड़ा महत्वपूर्ण था। इस काल मे जैन धर्म की बड़ी उन्नति हुई। चित्तौड़ से बड़ी सख्या मे शिलालेख और ग्रन्थ प्रशस्तिया इस काल की मिली है। खरतरगच्छ परम्परा के अनुसार वि० सं० १३३४ मे जिन-प्रबोधसूरि यहां आये थे। फाल्गुन सुदि ५ को प्रतिष्ठा मुहूर्त्त हुआ। इनमें मुनिसुव्रतस्वामी, युगादिदेव, अजितनाथ, वासुपूज्य, महावीर स्वामी, समवसरणपट्टिका आदि की प्रतिमा शांतिनाथ चैत्यालय मे स्थापित की थी। इस उत्सव के समय महारावल समरसिंह, राजकुमार अरिसिंह आदि भी उपस्थित थे। इस समय श्रेष्ठि आल्हक और धांधल प्रमुख श्रावक थे। श्रेष्ठिधाधल और उसके पुत्रों का उल्लेख कई ग्रन्थ प्रशस्तियों मे भी है। वि० सं० १३४३ की जैसलमेर भडार की चन्द्रदूताभिधान की प्रशस्ति में भी इसका उल्लेख है[९]। इस परिवार ने लाखों रुपये सार्वजनिक कार्यो के लिये व्यय किये थे। फाल्गुन सुदि

---

(६) ,, चित्रकूट मण्डपिकातस्तत् शाश्वतदान भविष्यतीति कृतम्" युगप्रधान गुर्वावली पृ० १३।

(७) शोधपत्रिका वर्ष १ अंक ३ में प्रकाशित श्रीनाहटाजी का लेख। वीरभूमि चित्तौड़ पृ० १५७।

(८) वरदा वर्ष ६ अक ३ पृ० ६-७ में प्रकाशित मेरा लेख और उक्त पत्रिका के वर्ष ६ अक ४ में प्रकाशित डा० दशरथ शर्मा की टिप्पणी। वीरभूमि चित्तौड पृ० १५७।

(९) युगप्रधान गुर्वावली पृ० ५६, (वीरभूमि चित्तौड़ पृ० १५६)

१४ वि० सं० १३३४ में श्रेष्ठि आल्हाक ने चित्तौड मे पार्श्वनाथ चैत्यालय का जीर्णोद्वार कराया था, इस समय चित्तौड में खरतरगच्छ के अतिरिक्त चैत्रगच्छ वृहद्गच्छ और भर्तृपुरीयगच्छ के साधु भी कार्य कर रहे थे। प्रसिद्ध शृंगार चंवरी का निर्माण भी इसी काल में हुआ था।

अल्लाउद्दीनखिलजी के आक्रमण से चित्तौड के कई मन्दिर विध्वंश हो गये थे किन्तु महाराणा हमीर के राज्यारोहण के वाद स्थिति में वड़ा परिवर्तन हुआ। प्रसिद्ध मत्री रामदेव नवलखा खरतरगच्छ का श्रावक था। इसने करेडा जैन मन्दिर में वडा प्रसिद्ध दीक्षा महोत्सव कराया था। यह वि० सं० १४३१ मे सम्पन्न हुआ था। और इसका विज्ञप्ति लेख भी प्रकाशित हो गया है। इस परिवार ने कई खरतरगच्छके आचार्यों की मूर्तियां भी देलवाडा (देवकुल पाटक) मे वनवाई। इसकी पत्नी मेलादेवी ने भी कई ग्रथ लिखवाये। उस समय देलवाड़ा मे इस परिवार ने एक ग्रन्थ भडार भी स्थापित किया था[१०]। रामदेव के २ पुत्र थे (१) सहणा और (२) सारंग। महणा के वि० सं० १४९१ के तीन मूर्ति लेख मिले हैं[११] जिनमें खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि के शिष्य जिनसागरसूरि द्वारा प्रतिमाओं को प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। वि० स० १४९४ के नागदा के मूर्ति लेख मे और वि० सं० १५०१ के शृंगार चंवरी चित्तौड के शिलालेख मे कई आचार्यों के नाम हैं[१२] यथा—जिनराजसूरि, जिनवर्धन, जिनचन्द्र, जिनसागर, जिनसुन्दर, जिनहर्ष आदि जिनराज का जन्म वि० स० १४३३ और मृत्यु वि० स० १४६१ मे हुई। इनकी मूर्ति देलवाडा मे स्थापित की गई थी। इनके समय की वि० स० १४५० मे लिखी "आचारांग चूर्णि" पुस्तिका मिली है जिसकी प्रतिलिपि मेरुनन्दन उपाध्याय ने की थी। जिनवर्द्धन के समय की लिखी वि० स० १४७१ की प्रशिस्त वाली तात्पर्य परिशुद्धि पुस्तक मिली है। इन्होंने देलवाड़ा मे समाचारी मिमामिली है। इस समय खरतरगच्छ के जयसागर नामक एक प्रसिद्ध पडित हुये थे। इसी प्रकार मेरुसुन्दर नामक एक उपाध्याय का भी उल्लेख मिलता है जिसने कई "वालाववोध" लिखे थे[१३]।

महाराणा कुम्भा के शासन काल मे शृंगारचवरी का वि० सं० १५०५ का भडारी वेला का शिलालेख वड़ा प्रसिद्ध है। इसी मदिर में वि० स० १५१२ और १५१३ के ४ शिलालेख और लग रहे हैं जिनमे जिनसुन्दरसूरि द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। वि० स० १५३८ का एक और लेख "रामपोल" पर लगा रहा है। इसमे खरतरगच्छ जिनहर्पसूरि का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त जयकीर्ति महोपाध्याय, हर्षकुजरगणि रत्नशेखरगणि ज्ञानकुजरगणि आदि का भी उल्लेख है[१४]। वि० स० १५३८ के एक मूर्ति के लेख में भडारी भोजा का उल्लेख है। इसकी प्रतिष्ठा जिनहर्पगणि ने की थी। खरतरगच्छ का एक वृहद् शिलालेख वि० स० १५५६ का है। यह वृहद् शिलाओं पर उत्कीर्ण था। इसमे से एक शिला श्लोक स० ८३ से १२८ का ही अश वाला मिला है। इसमे महाराणा रायमल के राज्य का उल्लेख है।[१५] इसमे जिनहर्पगणि जयकीर्ति उपाध्याय आदि का उल्लेख है। वि० स० १५७३ की महाराणा सोगा केसमय लिखी "खडन विभक्ति" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति देखने को मिली। इसे खरतरगच्छ के कमलसयमोपाध्याय ने लिखा था। यह ग्रन्थ अब पाटण भडार मे है।[१६]

महाराणा वणवीर के समय श्रेष्ठि सूरा का उल्लेख मिलता है। उस समय विभिन्न चैत्य-परिपाटियों मे खरतरगच्छ के शातिनाथ के मन्दिर का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार दीर्घ काल तक चित्तौड खरतरगच्छ का केन्द्र रहा है।

---

(१०) महाराणा कुम्भा पृ० ३०५ ३३०-३३२
(११) उक्त पृ० ३७०-७१
(१२) उक्त पृ० ३७१ ७२
(१३) उक्त पृ० २१५-१६
(१४) वीरभूमी चित्तौड पृ० २४६
(१५) उक्त पृ० २४६-४७
(१६) उक्त पृ० २५७

खरतरगच्छ की भारतीय संस्कृति को देन

[लेखक–रिषभदास रांका]

भारत में जैन मन्दिरो की व्यवस्था और स्वच्छता बहुत अच्छी समझी जाती है क्योंकि जैन मन्दिर की व्यवस्था किसी ऐसे सन्त-महन्त के हाथ मे नहीं होती जिसमें उनका स्वार्थ या सत्ता जुड़ी हो। जिन धर्म या सम्प्रदायो में मन्दिर या मठो की व्यवस्था सन्त-महन्तो की होती है वहाँ क्या होता है इसके किस्से अखबारो में छपते है और उनमे चलनेवाले दुराचार या विलासिता की कहानियाँ पढने या देखने को मिलती हैं। कई इतिहासज्ञो का कहना है कि बौद्धों का इस देश से निष्काल या प्रभाव कम होने के कारणो मे राजाओ की कृपा तथा विहारों की विलासिता और दुराचार भी एक कारण था। बौद्धों की तरह जैनियों मे यह विकृति न आई हो ऐसी बात नही। ८वीं शताब्दी मे वे भी पतन को ओर तेजी से बढ रहे थे। आचार्य हरिभद्रसूरि ने लिखा है कि "कई जैन साधु मन्दिरों में रहने लग गये थे, मन्दिरों के धन का अपने भोग-विलास में उपयोग करते, मिष्टान्न ताबूलादि से जिह्वा को तृप्त करते, नृत्य सगीत का आनन्द लूटते। केश-लुँचन का त्याग कर दिया था। स्त्री-सग को वे सर्वथा त्याज्य नहीं मानते, धनिको का आदर करते और ऐसी बहुत सी बातें जो जैनाचार के विपरीत थी उसे करने लग गये थे। धनिकों तथा राजाओं पर उनका अत्यन्त प्रभाव था उसका उपयोग वे अपना सम्मान बढाने तथा सुखोपभोग में करते। हाथियों पर सवारी और छत्र-चामर आदि द्वारा राजाओं की तरह उनका मान-सम्मान होता था।

श्री हरिभद्राचार्य जैसे प्रतापी तथा प्रभावशाली आचार्य ने इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, कुछ सफलता भी प्राप्त हुई, उनके बाद भी वह सघर्ष चलता रहा। उस काल में चैत्यवासियों का बहुत प्रभाव था। जो चावडा तथा चौलुक्य वश के गुरु थे। जैन धर्म को पतन के गर्त से बचाने तथा प्राचीन श्रमण परम्परा और आचार की प्रतिष्ठापना करने का काम प्रभावशाली ढग से जिन महापुरुष ने किया, जिन्होने 'खरतरगच्छ' की पदवी प्राप्त कर खरतरगच्छ की परम्परा चल ई। वे थे श्रीजिनेश्वरसूरि और उनकी परम्परा के आचार्य जिनवल्लभ, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि। इन्होंने चैत्यवास का विरोध एवं पुन कठोर जैन श्रमण आचार की प्रतिष्ठापना की। जैन श्रमण सस्था को विशुद्ध सयमयुक्त तथा तेजस्वी बनाने का प्रयास किया। विशुद्धि से समाज में आई हुई चैत्यवास की विकृति को दूर करने के प्रबल प्रयास किये।

खरतरगच्छ ने जो जैन सस्कृति की सेवा की है उसका ठीक मूल्याकन जैन समाज में भी नहीं हो पाया। कारण अनेक है उसमे से एक कारण गच्छ और सम्प्रदाय का अभिनिवेश है। जब सम्प्रदाय या गच्छों में विचारो की भिन्नता रहते हुऐ भी एक दूसरे के गुणो और विशेषताओं से लाभ उठाया जाता है तब ये गच्छ अथवा सम्प्रदाय एक दूसरे के लिये लाभदायक होते है पर इसके स्थान में उनमें जब प्रतिस्पर्धा या ईर्ष्या का भाव निर्माण होता है तब एक दूसरे से लाभ लेना तो दूर, वे एक दूसरे की हानि पहुँचाने मे भी कसर नहीं छोडते। इस साम्प्रदायिक अभिनिवेश ने जैन समाज को बहुत हानि पहुँचाई है। हम न तो अपना निष्पक्ष और ठीक इतिहास ही लिख पाये हैं, न

ऐतिहासिक भूलों से शिक्षा ही ले सके हैं और न पूर्वजों की विशेषताओं से लाभ ही उठा सके है ।

खरतरगच्छ की स्थापना के समय के भारत के इतिहास का गहराई से अध्ययन होना आवश्यक है । वह समय भारत के इतिहास में इसलिये महत्वपूर्ण है कि उस समय भारत में आपसी झगडे और द्वेष वढकर छोटे-छोटे राजा अपने अहंकार के प्रदर्शन के लिये एक दूसरे का नाश करने पर तुले हुए थे । जव देश मे धर्म रूढ़िगत आचार वन जाता है, और उसे साम्प्रदायिक लोग महत्व देकर चरित्र-धर्म एव नैतिकता को भूल जाते है तव प्रजा अनैतिक वनती है, उसमे दुर्वलता आती है । धर्म के ऊँचे सिद्धान्तों की पूजा तो होती है लेकिन वे जीवन से लुप्त हो जाते है । मनुष्य स्वार्थी वनकर धर्म का उपयोग भौतिक सुख प्राप्ति मे करने लगता है । उसके गुण या विशेषतायें दुर्गुण वन जाती हैं । साधु-सन्तों की विद्या, शक्ति, भावना विकृत वनती है । राजाओं का शौर्य व शक्ति भी आत्मनाश का कारण वनती है । वे समाज और राष्ट्र को दुर्वल बनाते हैं । इसलिये ऐसे समय मे राष्ट्र के चरित्र निर्माण का प्रश्न महत्वपूर्ण वन गया था । यदि राष्ट्र मे फिर से नैतिकता प्रतिष्ठित नहीं होती और हम उदार तथा व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाते तो राष्ट्र को विदेशियों के आक्रमण से वचा नही पावेंगे, ऐसी दृष्टिवाले जो कुछ दीर्घ-द्रष्टा थे उनमें से खरतरगच्छ की स्थापना करने वाले आचार्य वर्द्धमानसूरि थे । जिन्होंने सयम धर्म को अपना कर उसका प्रचार करने का प्रवल प्रयत्न किया और चैत्यवासियों को सयम और विहित धर्मपालन की तरफ आकृष्ट करने लगे ।

प्रारम्भ मे यह काम वहुत कठिन था । क्योंकि चैत्यवासियो के पास साधन और सत्ता का वल था । और श्रमण सस्कृति को विशुद्ध और तेजस्वी वनाने वालों के पास तो आध्यात्मिक त्याग और सहन की शक्ति के सिवाय भौतिक साधन थे ही नहीं, पर आहिस्ता-आहिस्ता परिस्थिति वदली और उनके प्रवल प्रयत्नों का यह परिणाम आया कि जैन-मन्दिर चैत्यवासियो के प्रभाव से मुक्त हुए । इतना ही नही, मन्दिरों का द्रव्य, देव-द्रव्य समझा जाकर उसका उपयोग मन्दिरों की व्यवस्था, सुरक्षा और पुनर्निर्माण में ही होने लगा । फलस्वरूप जैन मन्दिरों की सुव्यवस्था हो सकी, वे सुरक्षित रह सके । आज हमारी प्राचीन वास्तुकला को जिस रूप मे हम देखते है उसका कारण चैत्यवासियों के प्रभाव से जैन मन्दिरों को मुक्त कराना है और इस महान कार्य को खरतरगच्छ के आचार्यों ने कर जैनधर्म और भारतीय सस्कृति की वहुत वडी सेवा की ।

मदिरो, मठों, विहारों को चरित्रहीन व्यक्तियो के प्रभाव से वचाने का काम कितना महत्वपूर्ण था यह जब हम अन्य सम्प्रदाय के उपासना-स्थलों व मदिरों की वातें सुनते है तव पता चलता है । हसा दामोदरलालजी के विवाह जैसी अनेक घटनाए घटती हैं । मदिरों का करोडो रुपया जव इन धर्मगुरुओं के भोग-विलास या वडप्पन के दिखावे में खर्च होता है तव धर्मस्थान धर्म साधना के नही पर भ्रष्टाचार के स्थान वन जाते है ।

खरतरगच्छ के इस कार्य ने जैन साधुओं को फिर से सयमधर्म की ओर मोडा और जैनधर्म को वौद्धधर्म की तरह भारत से लुप्त होने से वचाया । इतना ही नहीं, जैन समाज को एक और वहुत वडी सेवा ओसवाल जाति को प्रतिवोध देकर उन्हें जैनधर्म में दीक्षित करके की थी । उस ओसवाल जाति ने जैन समाज की ही नही, भारत तथा भारतीय सस्कृति के विविध क्षेत्रों मे जो सेवा की उस विषय में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुनि जिनविजयजी ने जो कहा वह यहां देने जैसा है :—

'श्वेताम्वर जैन सघ जिस स्वरूप मे आज विद्यमान है, उस स्वरूप के निर्माण मे खरतरगच्छ के आचार्य, यति, और श्रावक समूह का वहुत वडा हिस्सा है । एक तपा-

गच्छ को छोडकर दूसरा और कोई गच्छ इसके गौरव की बरावरी नही कर सकता। कई वातों मे तो तपागच्छ से भी इस गच्छ का प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारत के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली राजपूताने की वीरभूमि का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास, ओसवाल जाति के शौर्य, औदार्य, बुद्धि-चातुर्य और वाणिज्य व्यवसाय-कौशल आदि महद् गुणों से प्रदीप्त है और उन गुणों का जो विकास इस जाति में इस प्रकार हुआ है वह मुख्यतया खरतरगच्छ के प्रभावान्वित मूल पुरुषों के सदुपदेश तथा शुभाशीर्वाद का फल है। इसलिए खरतरगच्छ का उज्ज्वल इतिहास यह केवल जैनसघ के इतिहास का ही एक महत्वपूर्ण प्रकरण नहीं है, वलिक समग्र राजपूताने के इतिहास का एक विशिष्ट प्रकरण है।"

भारतीय संस्कृति और इतिहास में खरतरगच्छ के आचार्यो ने महत्त्वपूर्ण काम किया, उसका महत्व खरतरगच्छ और ओसवाल समाज के लिए तो और भी अधिक हो जाता है। ओसवाल समाज को जैनधर्म मे दीक्षित कर उच्च परम्परा की देन दी है, इसलिए ओसवाल समाज का इस परम्परा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना स्वाभाविक है और वैसा ओसवाल समाज ने किया भी है। उनको प्रतिवोध देनेवाले दादा जिनदत्तसूरिजी की स्मृति ताजा रहे, इसलिए दादावाडियों का जगह-जगह निर्माण किया है। एक तरह से ये दादावाड़ियाँ समाज के मिलन का स्थान और दादा जिनदत्तसूरिजी के प्रति कृतज्ञता के सुन्दर प्रतीक है। जहाँ उनके चरणों की स्थापना कर पूजा की जाती है। उनके गुणों और कार्यो की याद की जाती है।

लोगों में मान्यता है कि उन्होने केवल अपने जीवनकाल मे ही कल्याण नहीं किया था पर वे आज भी उनके भक्तों के संकट दूर करते हैं। चूकि हम किसी महापुरुष की पूजा, भक्ति कामना-भाव से करना जैन तत्वों की दृष्टि से प्रतिकूल मानते है इसलिए इस वात को हम उत्तेजन देना उचित नहीं समझते किन्तु उनके गुणों से लाभ उठाकर पुरुषार्थ युक्त परिश्रम को अधिक महत्व देते हैं, वही आत्मविकास की दृष्टि से श्रेयस्कर भी है। उस दृष्टि से खरतरगच्छ के महान आचार्यों ने जो कार्य किया उसका महत्व इतना अधिक है कि जैन समाज ही नही पर भारतीय संस्कृति के उपासक उनके कार्यों का ठीक मूल्यांकन करे। वैसा सम्यक् मूल्यांकन तभी हो सकेगा जब हम उनके द्वारा लिखे गये साहित्य का गहराई से अनुशीलन व अध्ययन करेंगे। इस विषय में भी मुनिजिनविजयजी के शब्द उद्धृत किये विना नहीं रहा जाता, मुनिजी कहते है :—

"खरतरगच्छ मे अनेक वड़े-वड़े प्रभावशाली आचार्य, वडे-वड़े विद्यानिधि उपाध्याय, वड़े-वड़े प्रतिभाशाली पंडित मुनि और वड़े-वड़े मांत्रिक, तांत्रिक, ज्योतिर्विद, वैद्यक विशारद आदि कर्मठ यति-जन हुए जिन्होने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा वढाने में वडा योग दिया है। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष के सिवा खरतरगच्छ के अनुयायियों ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश एव देशी भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमें भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरूपण करनेवाली छोटी वड़ी सैंकड़ों हजारों ग्रन्थ-कृतिया जैन भडारों मे उपलब्ध हो रही हैं। खरतरगच्छीय विद्वानों की की हुई यह उपासना न केवल जैनधर्म की दृष्टि से ही महत्व वाली है, अपितु समुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतना ही महत्व रखती है।"

खरतरगच्छ द्वारा चैत्यवास का उन्मूलन सयम मार्ग को पुनः प्रतिष्ठा का ही परिणाम है। लेकिन पिछले दो सौ वर्षो मे इस कार्य मे कुछ शिथिलता आई है। कारण स्पष्ट है, हमने पार्थिव शरीर या रूढ आचारों का तो महत्त्व दिया पर उसके पीछे जो समाज कल्याण की भावना और साधना थी, वह नही रही। फिर उन युगपुरुषो ने

मंत्र, तंत्र, ज्योतिष, चिकित्सा आदि विद्याओं का उपयोग किया था, वह विशुद्ध समाजहित की भावना से किया था। कहीं अपने व्यक्तिगत प्रभाव बढाने या स्वार्थ के लिए नहीं किया। परन्तु वह परम्परा आगे नहीं चली। उल्टे हम उन उत्तम, महापुरुषों की भक्ति अपने व्यक्तिगत भौतिक सुखों की प्राप्ति और दुःख-विमुक्ति के लिये करने लगे। इस कामनिक भक्ति ने हमे भिखारी या दीन बनाया, हमारे पुरुपार्थ और सुप्त आत्मिक शक्ति का विकास होने में बाधा पहुँचायी। फलस्वरूप हमारा तेज नष्ट हुआ और हम उन युगप्रधान आचार्यों की परम्परा निभा नहीं सके।

आज ऐसे महान प्रभावशाली आचार्य मणिधारी जिनचन्द्रसूरि की ८ वी शताब्दी के अवसर पर हम सब खरतरगच्छ के साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविकाए गहराई से चिन्तन कर हमारे तेजस्वी और प्रभावशाली आचार्यो के गुण और कार्यों का अनुसरण कर, गच्छ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराने का प्रयत्न करें तभी हमारा जयन्ती मनाना सार्थक होगा। नहीं तो बडे बडे जुलूस, सभा, भाषण, साहित्य प्रकाशन, स्वामी-वत्सल आदि मे लाखों का खर्च करके भी विशेष लाभ नही उठा पावेंगे। आशा यह करनी चाहिये कि हमारे बन्धु इस विषय में चिन्तन कर ऐसा मार्ग अपनावेंगे जिससे समाज, राष्ट्र और मानव कल्याण मे खरतरगच्छ महत्त्वपूर्ण योगदान दे। महा प्रभावी पुरुषों की शताब्दियों या जयन्तियों के मनाने की परम्परा और हमारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करना तभी उपयोगी हो सकेगा।

हमे आशा ही नहीं पर पूर्ण विश्वास है कि खरतर-गच्छ सघ उस दिशा में अवश्य ही सही कदम उठावेगा और युग के अनुकुल समाज व सघ के हित के कार्य करेगा।

स० १६११ मे सुमतिधीर (अकबर प्र० श्रीजिनचन्द्रसूरि, आचार्य पद से पूर्व) मुनि की हस्तलिपि

जेसलमेर के महत्त्वपूर्ण ज्ञानभंडार

[आगम प्रभाकर मुनिश्रीपुण्यविजय जी]

[जैसलमेर के ज्ञानभण्डारों में श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार ही प्राचीन एव प्रमुख है। जैसलमेर को सुरक्षित व जैन समाज का केन्द्र समझकर अन्य स्थानों की प्राचीन प्रतियाँ भी मगवा कर वही सुरक्षित की गई और श्रीजिन-भद्रसूरिजी ने सैकडों नवीन प्रतियाँ भी लिखवायी इस भण्डार का समय-समय पर अनेक विद्वानों ने निरीक्षण किया। इस ज्ञानभण्डार के महत्त्व से आकृष्ट हो विदेशी विद्वान भी यहाँ कष्ट उठाकर पहुचे। वड़ोदा सरकार ने पं० ची० डा० दलाल के भेजकर सूची बनवायी जो ला० भ० गांधी द्वारा सपादित होकर प्रकाशित की। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी हरिसागरसूरिजी ने इस ज्ञानभण्डार का उद्धार करवाया मुनिजिनविजय ने भी अनेक ग्रन्थो की प्रेस कापियां ६ मास रह कर करवायी इसे वर्त्तमान रूप देने मे मुनिपुण्यविजयजी ने सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्य किया उन्ही के गुजराती लेख कासार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

सम्पादक]

जेसलमेर अपने प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ज्ञानभंडार के लिये विश्व-विश्रुत है। कहा जाता है कि अब से डेढसौ वर्ष पूर्व वहां जैनों के २७०० घर थे। जेसलमेर के किले मे खरतरगच्छीय जैनों के बनवाये हुए भव्य कलाधाम रूप आठ शिखरवद्ध मन्दिर है। इनमे अष्टापद, चिन्तामणि पार्श्वनाथ का युगल मन्दिर और दूसरे दो मन्दिर तो भव्य शिल्प स्थापत्य के उत्कृष्ट नमूने है। विशेषत: मन्दिर मे प्रवेश करते ही तोरण में विविध भावों वाली भव्याकृतिया शालभञ्जिकाए आदि दर्शनीय हैं।

जेसलमेर मे सब मिलाकर दस ज्ञानभण्डार थे। जिनमें से तपागच्छ और लौंकागच्छ के दो ज्ञानभडारों को छोड़कर सभी खरतरगच्छ की सत्ता और देखरेख में है। जेसलमेर के भडारों मे ताडपत्र की चारसौ प्रतियां है। दो मन्दिरों के बीच के गर्भ में जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार सुरक्षित है जिसमें प्राचीनतम ताडपत्रीय एव कागज की प्रतियां विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

जेसलमेर के ताड़पत्रीय ज्ञानभंडार मे काष्ठ चित्र-पट्टिकाएं एवं स्वर्णाक्षरी रौप्याक्षरी एव सचित्र प्रतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ताडपत्रीय प्रतियो मे ऐसे बहुत से ग्रन्थ है जिनकी अन्यत्र कही भी प्रतियां प्राप्त नहीं हैं। प्राचीनतम और महत्त्वपूर्ण प्रतियो का सशोधन की दृष्टि से वड़ा महत्त्व है।

यहा के ज्ञानभडारों मे चित्रसमृद्धि और प्राचीन काष्ठपट्टिकाए आदि विपुल परिमाण मे संगृहीत हैं। १३वीं से १५वी शताब्दी तक की चित्रित काष्टपट्टिकाए व सचित्र प्रतियों मे तीर्थकरो के जीवन-प्रसङ्ग, प्राकृतिक दृश्य व अनेक प्राणियों की आकृतियां देखने को मिलती है। १३वीं की चित्रित एक पट्टिका में जिराफ का चित्र है जो भारतीय प्राणी नही है। इन चित्र पट्टिकाओ के रङ्ग इतने जोरदार हैं कि पांच-सातसौ वर्ष बीत जाने पर भी फीके और मेले नही हुए। ताडपत्रीय प्रतियों में भी तीर्थकरों, जैनाचार्य और श्रावकों आदि के चित्र हैं वे आज भी ज्यों के त्यो देखने को मिलते हैं। ताड-पत्रीय प्रतियोंमे काली स्याही से चक्र, कमल आदि सुशोभन रूप चित्राङ्कित हैं।

प्राचीन ताडपत्रीय प्रतियो की संख्या की दृष्टि से पाटण के भडार बढे-चढे हैं पर जैसलमेर के भण्डारों मे कई ऐसी विशेषताएं हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं हैं। जिनभद्रसूरि ज्ञानभडार मे जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेषावश्यक महाभाष्य को प्राचीनतम ताडपत्रीय प्रति नौवीं दसवी शताब्दी का है। इतना प्राचीनतम और कोई भी प्रति किसी भी जैनभण्डार में नहीं है। अतः यह प्रति इस भडार के गौरव की अभिवृद्धि करती है। प्राचीन लिपियों के अभ्यास की दृष्टि से भी प्राचीन प्रतियों का विशेष महत्त्व है।

ताडपत्रीय प्राचीन प्रतियों के अतिरिक्त कागज पर लिखी हुई विक्रम सं० १२४६-१२७८ आदि की प्रतियाँ विशेष महत्वपूर्ण है। अब तक जैन ज्ञानभण्डारों मे कागज पर लिखी हुई इतनी प्राचीन प्रतियाँ कहीं नहीं मिली। इस प्रकार यह ज्ञानभण्डार साहित्य संशोधन को दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

व्याकरण, प्राचीन काव्य, कोश, छद, अलकार, साहित्य, नाटक आदि विषयों की अलभ्य विशाल सामग्री यहा है। केवल जैनग्रन्थों की दृष्टि से ही नही वैदिक और बौद्ध साहित्य सशोधन के लिए भी यहां अपार और अपूर्व सामग्री है। बौद्ध दार्शनिक तत्व-सग्रह ग्रन्थ को बारहवीं के उत्तरार्द्ध की प्रति यहा है, उसकी टीका और धर्मोत्तर पर मल्लवादी की व्याख्या की प्राचीन और शुद्ध प्रति भी यहीं है। आगम साहित्य मे दशवैकालिक की अगस्त्यसिंह स्थविर की चूर्णि भी यहाँ है जो अन्य किसी भी ज्ञानभडार मे नहीं है। पादलिप्तसूरि के ज्योतिष करण्डक टीका की अन्यत्र अप्राप्त प्राचीन प्रति भी इसी भंडार मे है। जयदेव के छद शास्त्र और उस पर लिखी हुई टोका तथा कइसिट्ठ सटीक छंद ग्रथ भी यही है। वक्रोक्तिजीवित और प्राकृत का अलङ्कारदर्पण, रुद्रट काव्यालंकार, काव्यप्रकाश की सोमेश्वर की अभिधावृत्ति, मातृका, महामात्य अम्बादास की काव्यकल्पलता और सकेत पर की पल्लवशेष व्याख्या की सम्पूर्ण प्रति भी इसी भण्डार में सुरक्षित है। इस प्रकार यह ग्रन्थ-भण्डार साम्प्रदायिक दृष्टि से ही नही व्यापक दृष्टि से भी बडे महत्व का है। यहाँ के ग्रन्थों के अन्त मे लिखी पुष्पिकाएं भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बडे महत्त्व की है। इनमे से कई प्रशस्तियों और पुष्पिकाओं में प्राचीन ग्राम-नगरो का उल्लेख है जैसे मल्ल-धारी हेमचन्द्र की भव-भावनाप्रकरण की स्वोपज्ञ टीका स० १२४० की लिखी हुई है उसमें पादरा, वासद आदि गावों का उल्लेख है। इस तरह अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री जेसलमेर के ज्ञानभण्डारों मे भरी पडी है, इसीलिए देश-विदेश के जैन जैनेतर विद्वानों के लिए ये आकर्षण केन्द्र हैं।

खरतरगच्छ की महान् विभूतिदानवीर सेठ मोतीशाह

[लेखक—चाँदमल सीपाणी]

मूर्तिमान धर्मरूप संघपति स्व० सेठ मोतीशाह ने धार्मिक संस्कार के बल पर प्राप्त की हुई लक्ष्मी का उपयोग रग-राग में या ससार के क्षण-भंगुर विलासों मे नही करके, आत्म श्रेय के अपूर्व साधन सम, स्वपर का एकांत कल्याण करनेवाले मार्ग पर उपयोग किया। स्व० मोती शाह ने गृहस्थ जीवन मे जैन शासन की प्रभावना के तथा जीवदया आदि के अनेक सुन्दर कार्य अपने अमूल्य मानव जीवन में पुरुषार्थ पूर्वक आत्मा का ऊर्ध्वीकरण कर अपने जीवन को सफल किया।

बम्बई के श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ तथा गोडीजी पार्श्वनाथ के मदिरों को देखकर, सहसा मोतीशाह सेठ को धन्यवाद दिये विना नहीं रहा जाता। इसके सिवा प्रति वर्ष कार्तिकी-चैत्रीपूर्णिमा पर सम्पूर्ण बम्बई की जैन जनता भायखला के श्रीआदिनाथ मदिर पर जाती है। यह देवालय व दादावाड़ी सेठ मोतीशाह ने ही बनवाये और इसके आसपास की विशाल जगह जैन समाज को दे गये। इसी प्रकार बम्बई पांजरापोल के आद्य प्रेरक-आद्य सस्थापक और मुख्य दाता थे। उनका नाम आज भी लोग दयावीर और दानवीर के रूप मे स्मरण करते हैं। पांजरापोल को तन, मन और धन से सहयोग देकर अमर आत्मा सेठ मोतीशाह आज भी जीवित हैं। उस विशाल पांजरापोल का प्रत्येक पत्थर और ईट उनके जीते जागते नमूने हैं।

केवल बम्बई मे हो नही सम्पूर्ण भारतवर्ष के आबाल वृद्ध नर-नारी और विदेश से आनेवाले पर्यटक जिसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं ऐसी श्री शत्रुंज्य पर की ''मोतीशाह सेठ' की टूंक यहाँ याद आये विना नहीं रहती। शाश्वतगिरि पर गहरी खाई को पूरकर, जिस मङ्गल धाम का निर्माण किया वह लाखों आत्माओं को आत्म कल्याण को-जीवन-सफल करने को-लक्ष्मी मिली हो तो ऐसे प्रशस्त मार्ग पर खर्च करने को प्रेरणा देने को मौजूद है। इसको देखकर कहे विना नही रहा जाता कि सेठ मोतीशाह चाहे देह रूप में न हो, परन्तु ऐसी अद्भुत कृति के सर्जकरूप में अमर है।

सेठ मोतीशाह मे दान का गुण असाधारण था। विक्रम को उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध में बम्बई के जैन समाज मे जो जागृति व प्रभाव फैला उसमे उनके यश का बहुत बडा श्रेय इन्हीं को है। कर्जदार के रूप में जीवन यात्रा को शुरू करनेवाले व संवत् १८७१ में सारे कुटुम्ब में अकेले रह जानेवाले जिस व्यक्ति ने दानवीरता के जो अनेक शुभ कार्य किये है, उसकी राशि अटठाईस लाख से भी ऊपर जाती है। इसमें सबसे बड़ा काम जिनमे उन्होंने धन व्यय किया वह है पालीताना के शत्रुंजय पर्वत पर मोतीवसहि टूक का काम। इस कार्य के निर्माण मे ग्यारह लाख एवं उनकी आज्ञा इच्छा के अनुसार प्रतिष्ठा महोत्सव मे सात लाख सात हजार मिलकर कुल अठारह लाख सात हजार खर्च हुआ। दो लाख रुपया बम्बई की पांजरापोल के लिये खर्च किये। इनके सिवा नीचे का वर्णन खास ध्यान देने लायक है। यह सब उनकी धर्म भावना, अहिंसा-मय हृदय और तत्कालीन जनता को आवश्यकताओ पर उनकी तत्परता को बताते हैं।

भूलेश्वर—मुंभार टुकडा के चितामणी पार्श्वनाथ देहरासर की प्रतिष्ठा सं० १८६८ के दूसरे वैशाख सुद ८ शुक्रवार के दिन सेठ नेमचन्द भाई ने कराई और उसके लिये रु० ५००००/- दिये।

भीडो बाजार :—शान्तिनाथ महाराज के देहरासर की प्रतिष्ठा सं० १८७६ माह सुद १३ के रोज हुई, उसके लिये रु० ४००००/- दिये।

कोट वोरा बाजार :—शान्तिनाथ महाराज के देहरासर की प्रतिष्ठा सं० १८६५ माह वद ५ के दिन हुई उनकी प्रतिष्ठा के लिये और देहरासर के निर्माण हेतु उनके कुटुम्ब ने दो लाख रुपये खर्च किये। सेठ अमोचन्द जिस जगह रहते थे और जिसके पास शान्तिनाथजी का मन्दिर है वह वास्तव में उपाश्रय था जिसे उनके बड़े भाई नेमचन्द ने तीन हजार रुपये खर्च कर बनवाया था। पीछे और जगह लेकर वहाँ नेमचन्दभाई ने एक लाख और खर्च कर मन्दिर बनवाया। प्रतिष्ठा और निर्माण में कुल दो लाख खर्च हुए।

मदरास की दादावाड़ी की जमीन खरीदने और निर्माण हेतु रु० ५००००/- सं० १८८४ में दिया।

पालीताना की धर्मशाला के निर्माण में रु० ८६,०००/- खर्च हुए।

भायखला की दादावाडी - मन्दिर को जमीन, निर्माण व प्रतिष्ठा में० (स० १८८५ मगसर सुद ६) दो लाख रुपये खर्च किये।

बम्बई गोडीजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा स० १८६८ के वैसाख सुद १० के दिन हुई जिसमें पचास हजार रुपये दिये।

पायधुनी के आदीश्वरजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा सं० १८८२ के ज्येष्ठ सुद १० के दिन हुई। उसको उछामणि में पचास हजार को वोली वोली।

कर्जदारों को छूट-अत समय नजदीक आया जान जिन कई अशक्त लोगों मे रुपया लेना था उनको कर्ज मुक्त करने के लिये एक लाख रुपया छोड दिया।

इन सब का योग २८,०८,००० अट्ठाइस लाख आठ हजार होता है।

इस मोटी रकम के अलावा छोटी-छोटी रकमें तो कई थी जिनका कोई हिसाब नहीं। बम्बई की कोई चन्दा-पानडी ऐसी नही होती थी जिसमे उनका नाम न होता हो। इस प्रकार की रकम भी कई लाख है। आप प्राय: सब दान सेठ अमोचन्द साकरचन्द के नाम से ही देते थे और इसी मे अपना गौरव समझते थे।

इनका रहन-सहन बिलकुल साधारण नही था। सिर पर सूरती पगडी और शरीर पर बालाबधी केडियू लम्बो कडचलो वाला पहनते थे।

स० १८५५ मे सेठ मोतीशाह के पिता की मृत्यु के बाद उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इसके बाद सारे जीवन में धन सम्बन्धी दुःख तो इन्होने देखा नही। उनके ग्रह स० १८८० से तो और भी बलवान हो गये। कुंतासर के तालाब को पूरने के समय से लेकर के अंतिम तक दिनोंदिन बलवान ही होते रहे।

मोतीशाह सेठ का अपने मुनीमों के साथ सम्बन्ध कुटुम्बी जनों के समान था। उनको यही इच्छा रहती थी कि उनके मुनीम भी उनके जैसे धनी बने। मुनीमों को अच्छे बुरे अवसरों पर उदारता पूर्वक मदद करते। सेठ मोतीशाह के मुनीम लक्षाधिपति हुए हैं, इसके कई उदाहरण मौजूद हैं। उनको टूंक में उनके मुनीमों ने मन्दिर बनवाये है। उनके यहा अधिक कार्यकर्त्ता जैन थे। इसके अलावा हिन्दू व पारसी भी थे। सेठ मोतीशाह का जैन, हिन्दू व पारसी व्यापारियों व कुटुम्बों के साथ भी अच्छा सम्बन्ध था। इनमे सम्बन्धित जैनो ने मोतीशाह टूक में देहरासर बनाये। हिन्दू व पारसी कुटुम्ब भी इनके प्रत्येक कार्य में हर प्रकार की सलाह एव मदद देने को तैयार रहते थे। जिस समय उनके पुत्र खेमचन्द भाई ने पालीताणा का सघ निकाला तब सर जमशेदजी ने एक लाख रुपया खर्च किया यह उल्लेखनीय एव महत्वपूर्ण घटना है। इससे ज्ञात होता है कि परस्पर सहकार व सम्बन्ध किसप्रकार हृदय की भावना से निभाया जाता था। यही कारण था कि सेठ की मृत्यु के बाद पालीताणा संघ व प्रतिष्ठा के अवसर पर अनेक लोगों ने सहयोग दिया। उनके पुत्र खेमचन्द भाई तो एक राजा की तरह रहे।

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दरजी की हस्तलिपि

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि लिखापित कागज की प्राचीनतम ध्वन्यावलोकलोचन का अन्तिमपत्र
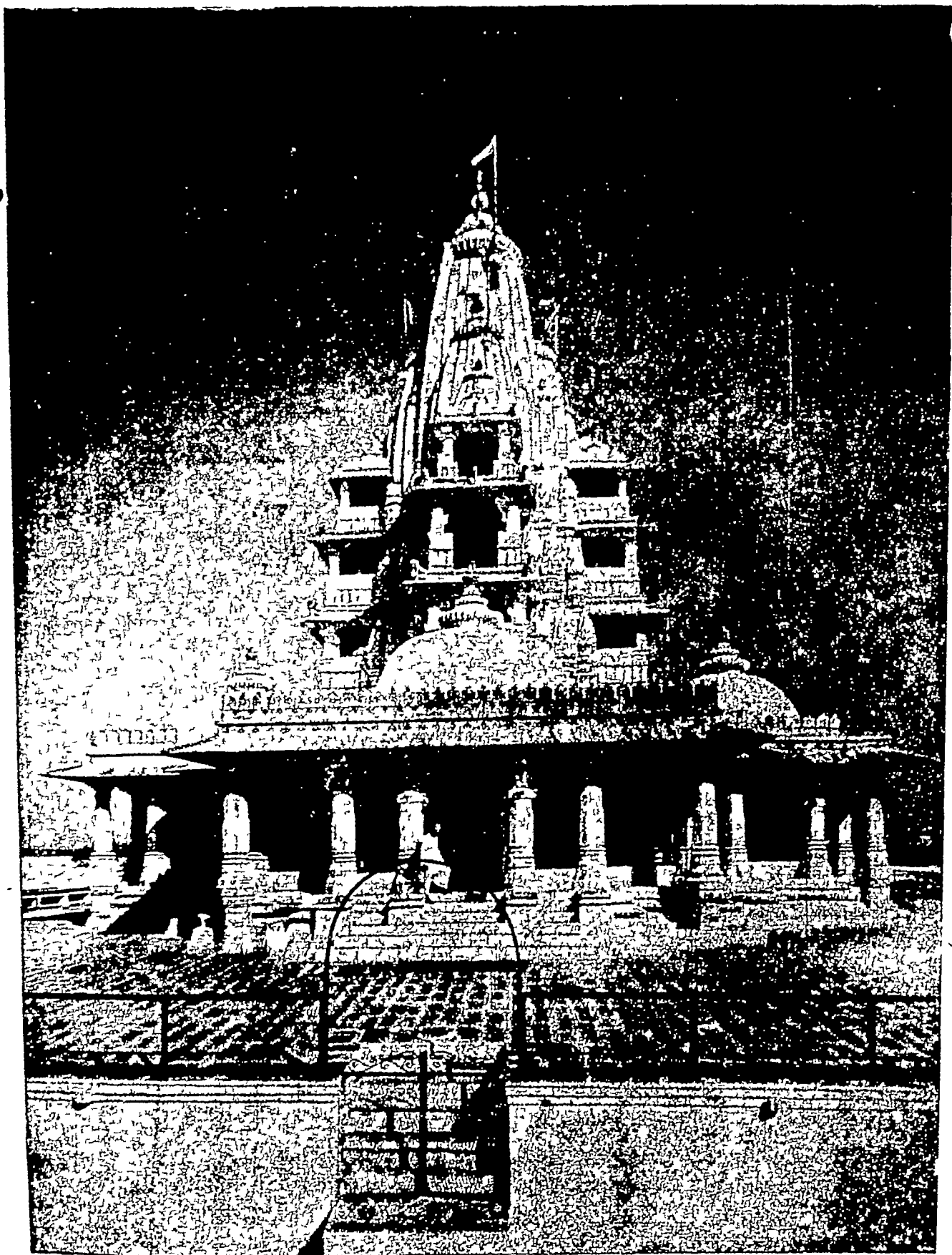
श्रीभानाजी भण्डारी कारित पार्श्वनाथ जिनालय, कापरड़ाजी

खरतर गच्छाचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित स्वयंभू पार्श्वनाथ, कापरड़ा तीर्थ
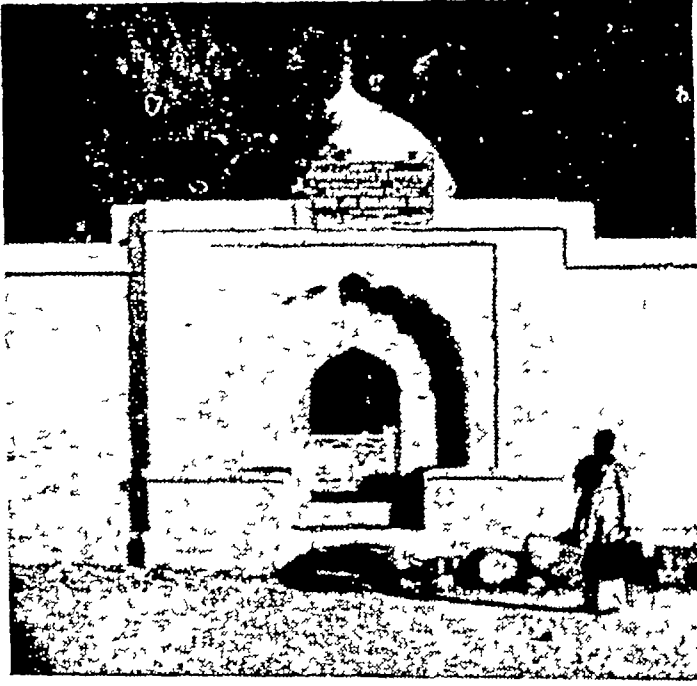
प्रवेश द्वार, दादावाड़ी महरोली

मणिधारी पूजा स्थान, महरोली

मुनि श्री उदयसागरजी, प्रभाकरसागरजी

प्रवर्त्तिनीजी श्री प्रमोदश्रीजी

विदुषी आर्याश्री सज्जनश्रीजी आदि

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि चित्र (चन्द्रपुर जिनालय)

उ० श्रीसुखसागरजी, शि० मुनि मंगलसागरजी
व कान्तिसागरजी

श्रीजिनदत्तसूरि व जिनकुशलसूरि मूर्ति
व चरण, अजमेर दादावाड़ी

खरतरगच्छ-साहित्य सूची

संकलन कर्त्ता—अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा

संपादक—महोपाध्याय विनयसागर, साहित्याचार्य, दर्शनशास्त्री, साहित्यरत्न, शास्त्रविशारद

भगवान महावीर के, महान् और पवित्र शासन मे समय-समय पर अनेक गण, कुल, गच्छादि प्रगट हुए। कल्पसूत्र की स्थविरावली में प्राचीन गण एव कुलो का अच्छा विवरण प्राप्त होता है। आगे चल कर वज्रशाखा व चन्द्रकुल में जो चौरासी गच्छ हुए उनमें खरतर गच्छ का मूर्धन्य स्थान है। लगभग एक हजार वर्ष से इस गच्छ के महान् आचार्यो ने जैन शासन की जो विशिष्ट सेवा की है, वह स्वर्णाक्षरो मे लिखे जाने योग्य है। मध्यकाल में जो चैत्यवास की विकृति छा गई थी उसका प्रबल परिहार इस गच्छ के महान् ज्योतिर्धरो ने अपने दीर्घकालीन विशिष्ट प्रयास द्वारा करके जैनधर्म की उन्नति में चार चाद लगा दिये। लाखों अजैनो को जैनधर्म का प्रतिबोध देकर उन्हें एक संगठित जाति और गोत्र मे प्रतिष्ठित किया, इस महान् उपकार और विशिष्ट देन को जैन समाज कभी भुला नहीं सकता।

खरतर गच्छ के महान् आचार्यो और साधु-साध्वियों ने जैन धर्म के प्रचार का खूब प्रयत्न किया। भारत के कोने-कोने मे उन्होंने भगवान् महावीर का सन्देश राजमहलों से लेकर झोंपडियो तक प्रसारित किया। उनके उपदेश से प्रभावित होकर श्रावक-श्राविकाओं ने हजारों विशाल जिनालय और लाखों प्रतिमाए प्रतिष्ठित करवायीं। ताडपत्र और कागज पर लाखों प्रतियां लिखवाकर अनेक स्थानों मे बडे-बडे ज्ञानभण्डार स्थापित किये, जिनमे जैन साहित्य ही नही, अनेकों जैनेतर ग्रन्थों की भी अन्यत्र अप्राप्य, अज्ञात एव प्राचीनतम प्रतियाँ भी पायी जाती हैं। इस गच्छ के विद्वान मुनियों ने स्वय भी हजारों प्रतियाँ लिखकर साहित्य के सरक्षण मे बडा भारी योग दिया है। इधर-उधर से कोई भी अच्छा ग्रन्थ उन्हें प्राप्त हो गया तो उसे बडी सावधानी से अपने ज्ञानभण्डारों मे सभाल के रखा और किसी भी विषय के किसी भी अच्छे ग्रन्थ के मिलते ही स्वय उसकी प्रतिलिपि करके या करवाके अपने ज्ञानभण्डार को समृद्ध किया।

साहित्य निर्माण में खरतर गच्छ के आचार्यो, साधु-साध्वियो और श्रावकों का भी बहुत बडा और विशिष्ट योग रहा है। ग्यारहवीं शती के वर्द्धमानसूरिजी से लेकर आज तक साहित्य सर्जन की वह अखण्ड धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही है। इसके फलस्वरूप हजारों उल्लेखनीय रचनाए प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, सिन्धी आदि भाषाओ मे प्रत्येक विषय की प्राप्त हैं। गाव-गाव, नगर-नगर मे साधु-साध्वी विहार करते थे, यतिजन रहते थे, अतः उस साहित्य का बिखराव इतना अधिक हो गया कि उसका पूरा पता लगाना भी असभव हो गया है। असुरक्षा, उपेक्षा आदि अनेक कारणों से गत सौ वर्षो में बहुत बडे परिमाण मे वह साहित्य नष्ट एव इतस्तत हो गया फिर भी जो कुछ बच गया है, उसकी एक सूची बनाने का प्रयत्न हम गत चालीस वर्षों से निरन्तर करते रहे हैं। भारत के प्रायः सभी प्रदेशों और सैकडों गाव-नगरों मे जाकर तथा प्रकाशित-अप्रकाशित सूचियों द्वारा जो भी जानकारी हमे अब तक मिल सकी है, उसे अपने साहित्य सूची की पुस्तक मे बराबर नोंध (नोट) करते रहे है। हमने यह सूची प्राय. सवतानुक्रम और लेखक के नामानुसार तैयार की थी। वर्षो से उसे सुसपादित कर प्रकाशित करने का विचार रहा पर अब तक वैसा सुयोग प्राप्त नहीं हो सका। अभी मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के अष्टम शताब्दी स्मारक ग्रन्थ की योजना बनने पर हमारा वह चिरमनोरथ पूर्ण होते देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

खरतर गच्छ के मान्य विद्वान आचार्य श्री मणिसागरसूरिजी का जब बीकानेर के हमारे शुभविलास में चातुर्मास हुआ तो उनके अन्तेवासी श्री विनयसागरजी मे साहित्य और इतिहास की रुचि जागृत की गई और योग्यतम विद्वान बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया। तब से आज तक उन्होंने साहित्य के सग्रह, सरक्षण, सूची-निर्माण, सम्पादन, प्रकाशन आदि में पर्याप्त श्रम किया है। खरतर गच्छ के कई छोटे-बड़े ग्रन्थों को उन्होंने सुसंपादित कर प्रकाशित करवाया और महान् विद्वान आचार्य श्रीजिनवल्लभसूरि पर "वल्लभ-भारती" नामक शोध-प्रबन्ध लिखकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से "महोपाध्याय" उपाधि प्राप्त की। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर द्वारा आपके सम्पादित छद शास्त्रीय "वृत्तमौक्तिक" ग्रन्थ तो बहुत ही महत्वपूर्ण है। जिनपालोपाध्याय का सनत्कुमार चरित महाकाव्य भी आपके सम्पादित वहीं से प्रकाशित हुआ है। और भी आपके सम्पादित कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं व हो रहे है।

खरतर गच्छ की साहित्य-सूची जब अष्टम शताब्दी स्मारक ग्रन्थ मे प्रकाशन की योजना बनी तो महो० विनयसागरजी को उसके सम्पादन का भार दिया गया। उन्होंने बड़े परिश्रम व लगन से हजारों चिट बना के विषय वार और अकारादिक्रम से ग्रन्थ नामों को व्यवस्थित करके अपनी नई जानकारी के साथ यह सूची सम्पादित की है इसके लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। उनके सत् सहयोग से ही इतने थोडे समय में तैयार होकर यह प्रकाशित की जा रही है।

इस सूची के अतिरिक्त उन्होंने खरतर गच्छ के स्तोत्रों, स्तवनों, सज्झायों, ऐतिहासिक गीतों आदि लघु रचनाओं की सूची भी बडे परिश्रम से तैयार की है जिसे इस ग्रन्थ की सीमित पृष्ठ संख्या में देना सम्भव नहीं हुआ। इस सूची के अनेक परिशिष्ट भी ग्रन्थकार नाम व ग्रन्थों की अकारादि सूची आदि को देना बहुत आवश्यक है उन सबका प्रकाशन यथावसर किया जायगा।

यह सूची अपने ढग की एक ही है। अभी तक किसी भी गच्छ के साहित्य की ऐसी शोधपूर्ण सूची न तो किसी ने तैयार की है और न प्रकाशित ही हुई है। इस सूची द्वारा खरतर गच्छ की महान् साहित्य-सेवा का भलीभांति परिचय मिल जाता है। इसमे कई ऐसे ग्रन्थ है जो विश्व और भारतीय साहित्य मे बेजोड़ व अद्वितीय है। उदाहरणार्थ कविवर समयसुन्दर रचित अष्टलक्षी, ठक्कुर फेरु रचित द्रव्य-परीक्षा, जिनपालोपाध्यायादि की युगप्रधानाचार्य गुर्वावली, जिनप्रभसूरिजी का विविध तीर्थकल्प आदि के नाम लिये जा सकते है। आगम प्रकरणादि की टीकाओं के अतिरिक्त जैनेतर ग्रन्थों की टीकाएँ भी सर्वाधिक खरतर गच्छ के विद्वान मुनियों ने बनायी हैं। उपाध्याय श्रीवल्लभ ने जिस उदारभाव से तपागच्छ के आचार्य श्री विजयदेवसूरि सम्बन्धी 'विजयदेव माहात्म्य' काव्य की रचना की, वह तो अन्य गच्छ-सम्प्रदायों के लिए बहुत ही प्रेरणादायक व अनुकरणीय है। एक एक विषय के अनेकों महत्वपूर्ण ग्रन्थ और विशिष्ट ग्रन्थकारों के सम्बन्ध में महो०विनयसागरजी एक अध्ययनपूर्ण भूमिका लिखने वाले हैं जो समयाभाव से इस कृति के साथ नहीं दी जा सकी है।

इस सूची में आए हुए ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी बहुत सी रचनाए खरतर गच्छ की है जिनकी प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने में हम प्रयत्नशील है। अन्य जिन सज्जनों को एतद्विषयक नवीन जानकारी प्राप्त हो वे कृपया हमें सूचित कर इस साहित्यिक महायज्ञ में सहयोग दें।

खरतर गच्छ-साहित्य सूची

आगम-टीकाएं

क्रमाङ्क	ग्रन्थ नाम	कर्त्ता	रचना संवत् तथा स्थान	मुद्रित अमुद्रित प्राप्ति स्थान
१	अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वी	मु०
२	,, हिन्दी अनुवाद	जिनमणिसागरसूरि	२०वीं	मु०
३	अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वी	मु०
४	,, हिन्दी अनुवाद	जिनमणिसागरसूरि	२०वी	मु०
५	आचारागसूत्र टीका 'आचार-चिन्तामणि'	जिनचन्द्रसूरि, आद्यपक्षीय	१८वी	अ० राप्राविप्र० जोधपुर मु० कुछ अश
६	आचारांगसूत्र टीका 'दीपिका'	जिनहंससूरि	१५७२ बीकानेर	मु०
७	उत्तराध्ययन सूत्र टीका 'सर्वार्थसिद्धि'	कमलसंयमोपाध्याय	१५४४,	मु०
८	,, ,, दीपिका	चारित्रचद्र P/ जयरग	१७२३ रिणी	अ० विनय० कोटा
९	,, ,, लघुवृत्ति	तपोरत्न	१५५०	अ० लींबडी
१०	,, ,, मकरदोद्धार'	धर्ममंदिर P/ दयाकुशल	१७५०	अ० ,,
११	,, ,,	P/. मतिकीर्ति	१७वी	अ० अभय० बीकानेर
१२	,, ,,	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/	१८वी	मु०
१३	,, ,,	वादी हर्षनन्दन P/ समयसुदर	१७११ बीकानेर	अ० बडा भडार बीकानेर
१४	उत्तराध्ययनसूत्र 'बालावबोध'	अभयसुदर P/. समयराजोपाध्याय	१७वी	अ० सेठिया बीकानेर (१३ वा अध्ययन)
१६	,, ,,	कमललाभ P/ अभयसुदर	१६७४-१६९९ के मध्य	अ० विनय ३६१
१७	उपासकदशाङ्गसूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
१८	,, बालावबोध	हर्षवल्लभ P जिनचन्द्रसूरि	१६९२ राजनगर	अ० अभय बीकानेर
१९	,, हिन्दी अनुवाद	विनयश्री P/ हुल्लासश्री	२०वी	मु०
२०	औपपातिकसूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वी	मु०
२१	,, हिन्दी अनुवाद	जिनहरिसागरसूरि	२०वी	अ० हरि० लोहावट
२२	कल्पसूत्रटीका 'कल्पसुबोधिका'	कीर्त्तिसुदर P/. धर्मवर्द्धन	१७६१	अ० बाल० चित्तौड़

२३	कल्पसूत्र टीका 'पर्युषणा कल्पसूत्र'	केशरमुनि	२०वीं	मु०
२४	,, संदेहविषौषधि'	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१३६४ अयोध्या	मु०
२५	,, (चतुर्दशस्वप्नानां)	राजसोम P/. जयकीर्त्ति, जिनसागरसूरिशाखायां	१७०६	अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
२६	कल्पसूत्र टीका 'कल्पद्रुमकलिका'	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय	१८वीं	मु० बालचित्तौड़ ८६, १७२६ लि०
२७	,,	लब्धिमुनि उपाध्याय	२०वी	अ०
२८	,, (समाचारी)	विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक	१७वीं	अ० धर्म आगरा
२९	,, कल्पलता	समयसुन्दरोपाध्याय	१६८५ रिणी	मु० विनय ८२८,
३०	,, कल्पमंजरी	सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन	१६८५	अ० ख० कोटा विनय ५७३
३१	,, कल्पचन्द्रिका	सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय	१८वीं	अ० केशरिया जोधपुर बद्रीदास
३२	कल्पसूत्र बालावबोध	गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम	१७वी	अ० बद्रीदास कलकत्ता
३३	,, ,,	चन्द्र P/. देवधीर	१६०८ अजयदुर्ग	अ० ,, कलकत्ता
३४	,, ,,	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड	१८वी	अ० डूंगर जेसलमेर
३५	,, ,,	रत्नजय P/. रत्नराज	१८वी	अ० महिमा बीकानेर
३६	,, ,,	राजकीर्त्ति P/. रत्नविमल	१९वी	अ० गोपाल मथेरण बीकानेर
३७	,, ,,	रामविजय (रूपचन्द्र) P/. दयासिंह	१८१९ बीदासर	अ०
३८	,, ,,	शिवनिधानोपाध्याय	१६८० अमरसर	अ० अभय बीकानेर
३९	,, ,,	समयराजोपाध्याय P/. जिनचद्रसूरि	१७वी	अ० अभय बीकानेर
४०	(चतुर्दश स्वप्नानां)	साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य	१७वीं	राप्राजोधपुर २५४७२
४१	,, ,,	सुमविहस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय	१८वी	अ० जैनरत्न पुस्तकालय
४२	,, ,,	P/ अमरमाणिक्य	१७वीं	अ० अभय बीकानेर
४३	कल्पसूत्र स्तवक	विद्याविलास P/. कमलहर्ष	१७२९	अ० अभय बीकानेर
४४	,, ,,	कमलकीर्त्ति P/. कल्याणलाभ	१७०१ मरोट	अ०
४५	कल्पसूत्र हिन्दीपद्यानुवाद	रायचन्द्र	१८३८ बनारस	मु०
४६	कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि	२०वीं	मु०
४७	,, ,,	जिनकृपाचन्द्रसूरि	२०वीं	मु०

४८	कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद	जिनमणिसागरसूरि	२०वीं	मु०
४६	कल्पसूत्रगत वचनिकाम्नाय	जिनसागरसूरि, जिनसागरसूरिशाखायां	१७वीं,	उल्लेख जिनरत्नकोष,
५०	कल्पान्तर्वाच्य	जिनसमुद्रसूरि, बेगड,	१८वी	अ० वृद्धि० जेसलमेर
५१	,,	जिनहससूरि P/. जिनसमुद्रसूरि	१६वीं	अ० डूंगर, जेसलमेर
५२	,,	भक्तिलाभोपाध्याय P/ रत्नचन्द्र	१६वीं	अ० विनय, कोटा ४५३५६६
५३	चतु शरणप्रकीर्णक वालावबोध	मुनिमेरु	१७वी	अ० तपाभडार, जेसलमेर
५४	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका	पुण्यसागरोपाध्याय P/ जिनहससूरि	१६४५ जेसलमेर	अ० हरि, लोहावट
५५	ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वीं,	मु०
५६	,, ,,	कस्तूरचन्द्र P/. भक्तिविलास,	१८६६ जयपुर	अ० सेठिया बीकानेर विनय, कोटा
५७	ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र स्तवक	रत्नजय P/. रत्नराज	१८वी	अ० पालणपुर
५८	दशवैकालिकसूत्र टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	१६६१ खंभात	मु०
५६	,, पर्याय (४ अध्याय मात्र)	,,	१७वीं	अ० अभय, बीकानेर
६०	,, वालाववोध	राजहस P/. हर्षतिलक	१६वी	अ०
६१	,, स्तवक 'दीपिका'	चारित्रचन्द्र P/. जयरग लघुखरतर	१७२३	अ० विनय ५८५
६२	,, स्तवक	विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक	१६५२	अ० हरि, लोहावट
६३	,, ,,	सहजकीर्त्ति (यतीन्द्र ?) P/. हेमनन्दन	१७११	अ०
६४	,, हिन्दी अनुवाद	जिनमणिसागरसूरि	२०वी	मु०
६५	दशाश्रुतस्कन्व सूत्र टीका 'सुबोध'	मतिकीर्त्ति P/· गुणविनयोपाध्याय	१६६७	अ० जैन स्थान० लुधियाना
६६	निशीथसूत्र अर्थ	सहजकीर्त्ति P/, हेमनन्दन	१७वीं	अ० जैन भवन, कलकत्ता
६७	नन्दीसूत्र मलयगिरि टीकोपरिटीका	श्रीजिनचारित्रसूरि P/	२०वीं	श्रीपूज्यजी, बीकानेर
६८	पञ्चनिर्ग्रन्थी टीका (प्रज्ञापना तृतीयपद सग्रहणो)	अभयदेवसूरि	१२वी	मु०
६६	,, वालाववोध	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति	१६वी	अ० नाहर, कलकत्ता १६४५ लि०
७०	पाक्षिकसूत्र वालाववोध	विमलकीर्त्ति P/ विमलतिलक	१७वीं	अ०
७१	प्रतिक्रमणसूत्र स्तवक	रत्नजय P/. रत्नराज	१८वी	अ० दान० वीकानेर
७२	,, ,,	विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक	१७वीं	अ० आचार्य बीकानेर केशरिया जोधपुर
७३	,, बालावबोध (वन्दित्तुसूत्र)	सहजकीर्त्ति	१७०४	अ० हरि, लोहावट

७४	प्रतिक्रमण (वन्दित्तुसूत्र) स्तबक	विद्यासागर P/. सुमतिकल्लोल	१७वीं	अ० आचार्य बीकानेर
७५	प्रश्नव्याकरण सूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
७६	वृहत्कल्पसूत्र अर्थ	सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन	१७वीं	उल्लेख-स्वकृत निशीथसूत्र अर्थ
७७	वृहत्कल्पादि छेदग्रन्थ लघु भाष्यादि टिप्पण	साधुरंगोपाध्याय P/. सुमतिसागर	१७वीं	उल्लेख-देवचन्द्र कृत विचारसावर टीका
७८	भगवती सूत्र टीका	अभयदेवसूरि	११२८ पाटण	मु०
७९	,, ,, (शतक ९ उद्देशक २२-२३ मात्र)	जिनराजसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१७वीं	अ० चंपालाल वैद भीनासर पुण्य अहमदावाद
८०	विपाकसूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
८१	,, हिन्दी अनुवाद	वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि	२०वीं	मु०
८२	व्यवहारसूत्र अर्थ	सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन	१७वीं	उल्लेख-स्वकृत निशीथसूत्र अर्थ
८३	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र वाला०	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति	१६वीं	अ० महर, बीकानेर
८४	षडावश्यकसूत्र प्रणिधानावचूर्णिः	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४वीं	अ० ख० जयपुर
८५	षडावश्यकसूत्र बालावबोध	जयकीर्त्ति P/. वादी हर्षनन्दन	१६९३ जेसलमेर	अ० अभय, बीकानेर
८६	,, ,,	तरुणप्रभसूरि	१४११ पाटण	अ० हरि लोहावट विनय ८०९
८७	,, ,,	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति	१५२५ माण्डवगढ	अ० भावनगर भंडार
८८	षडावश्यकसूत्र बालावबोध	विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक	१६७१	अ० अभय, बीकानेर
८९	,, ,,	समयसुन्दरोपाध्याय	१६८३ जेसलमेर	अ० अभय, बीकानेर
९०	समवायाङ्ग सूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
९१	साधुप्रतिक्रमणसूत्र वृत्ति	जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१३६४ अयोध्या	अ० अभय, बीकानेर
९२	साधु समाचारी व्याख्यान	गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम	१७वीं	अ० चारित्र, राप्राविप्र बीकानेर
९३	साधु समाचारी बालावबोध	धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान	१६९९ बीकानेर	अ०
९४	,, ,,	समयराजोपाध्याय	१६६२	अ० धर्म, आगरा अभय बीकानेर
९५	सूत्रकृताङ्गसूत्र टीकादीपिका	साधुरंग P/ भुवनसोम आद्यपक्षीय	१५९९ वरलू	मु० विनय ५९४
९६	,, बालावबोध	जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि बेगड	१८वीं	अ० डूगर-जेसलमेर
९७	स्थानाङ्गसूत्र टीका	अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
९८	,, ,,	जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१७वीं	अनुपलब्ध उ० श्रीसार कृत रास में
९९	स्थानाङ्गसूत्र गाथागतवृत्ति	वादी हर्षनन्दन तथा सुमतिकल्लोल	१७०५	अ० हंस, बड़ौदा

सैद्धान्तिक-प्रकरण

क्र.	ग्रन्थ	कर्त्ता	समय	स्थान
१	अध्यात्म अनुभव योगप्रकाश	चिदानन्द द्वि०	१९५५ जावद	मु०
२	अध्यात्मप्रबोध	देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचन्द्र	१८वी	अ० हितविजय भं० घाणेराव, नकल अभय बीकानेर
३	अध्यात्मशान्तरसवर्णन,	,,	,, ,,	अ०
४	अनुयोग चतुष्क गाथा	जिनप्रभसूरि P/, जिनसिंहसूरि	१४वीं,	,,
५	अनेक शास्त्रसार समुच्चय	सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन	१७वी,	उल्लेख-जैन साहित्यनो स० इतिहास देशाई
६	अल्पाबहुत्वगर्भितस्तव स्वोपज्ञटीकासह	समयसुन्दरोपाध्याय P/	१७वी	मु०
७	अष्टकर्मविचार	रामचन्द्र P/ शिवचन्द्रोपाध्याय	१९वी,	अ० हरि लोहावट
८	आगम अष्टोत्तरी	अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि	१२वीं,	मु०
९	आगमसार (देवचन्द्रीय अनुवाद)	चिदानन्द द्वि०	२०वी,	मु०
१०	,,	देवचन्द्रोपाध्यायP/, दीपचन्द्र	१७७६ मरोट	मु० विनय १५५, पाल १३७'
११	आगमिकवस्तुविचारसार प्रकरण (षडशीति)	जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि	१२वीं,	मु०
१२	,, टिप्पणक	रामदेवगणि P/ जिनवल्लभसूरि	,,	अ० हरि लोहावट, जेसलमेर
१३	ईर्यावही मिथ्यादुष्कृत—बालावबोध	राजसोम P/. जयकीर्त्ति (जिनसागरसूरिशाखा)	१८वीं,	आचार्यशाखा बीकानेर
१४	उदयस्वामित्व पचाशिका	देवचद्रोपाध्याय P/ दीपचद्र	१८वी,	अ० ख० जयपुर विनय कोटा
१५	उदययन्त्र	सुमतिवर्द्धन P/ विनीतसुन्दर	१९वी	विनय ३०६
१६	एकविंशतिस्थानकप्रकरण	अवचूरि धर्ममेरुP/ चरणधर्म	१६७६ पूर्व	अ० जैनरत्न पुस्तकालय
१७	,, स्तवन	विमलकीर्त्ति P/ विमलतिलक	१७वीं,	अ० महरचद भ, बीकानेर
१८	कर्मग्रन्थ (तृतीय) विवरण	जिनकीर्त्तिसूरि (जिनसागरसूरिशाखा)	१९वीं,	अ० आचार्यशाखा, बीकानेर
१९	कर्मग्रन्थ पञ्चक स्तबक	देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचद्र	१८वीं,	मु०
२०	कर्मग्रन्थ स्तवक	साधुकीर्त्ति P/ अमरमाणिक्य	१७वीं,	अ० नाहर कलकत्ता, आचार्य शाखा बीकानेर,
२१	कर्मग्रन्थ चतुष्टय-स्तवक	साधुकीर्त्ति P/.	,,	अ० विनय ६८८

२२ कर्मग्रन्थादि यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वीं, अ० ख जयपुर, हरि लोहावट,

२३ कर्मवन्धविचार (पन्नवणानुसार) रामचन्द्र P/, शिवचन्द्रोपाध्याय १८०७ ग्वालियर अ०

२४ कर्मविचारसार प्रकरण साधुरंग P/. भुवनसोम आद्यपक्षीय १६वीं अ० राप्राविप्र जोधपुर २८४३ गुटका

२५ कर्मविपाक, कर्मस्तव स्तवक सुमति P/ जयकीर्त्तिपिप्पलक १७वीं अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

२६ कर्मसम्वेध देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं मु० ख० जयपुर

२७ कर्मस्तव स्वोपज्ञ टीकासह, जिनवल्लभसूरि P/ अभयदेवसूरि १२वीं उल्लेख, पाइअभाषा अने साहित्य पृ० १६०, मूल मुद्रित

२८ „ भाष्य रामदेव गणि P/ जिनवल्लभसूरि १२वीं अ० अभय बीकानेर,

२९ „ विवरण कमलसंयमोपाध्याय १५४९ अ० पुण्य अहमदावाद, भांडाकर पूना

३० कल्पप्रकरण वालाववोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ०

३१ कायस्थिति प्रकरण बालाववोध साधुकीर्त्ति P/ अमरमाणिक्य १६२३ महिमनगर अ० धरणेन्द्र, जयपुर

३२ कालचक्रकुलक जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वीं अ० अभय बीकानेर

३३ कालस्वरूपकुलक जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

३४ „ टीका जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३वीं मु०

३५ क्षुल्लकभवावलिका स्तोत्र जिनचन्द्रसूरि P/ जिनहर्षसूरि, पिप्पलक, १७वीं डूँगर जेसलमेर,

३६ क्षेत्रसमास प्रकरण वालाववोध उदयसागर P/ सहजरत्नपिप्पलक १६५६ उदयपुर मु०

३७ „ „ क्षमामाणिक्य P/ १९वीं अ० वर्द्धमान भं, वीकानेर

३८ क्षेत्रसमास प्रकरण वालाववोध क्षेम P/ रत्नसमुद्र १७वीं अ० महिमा वीकानेर वृद्धि जेसलमेर उदयचन्द जोधपुर, वाल २७२

३९ „ „ श्रीदेव P/ ज्ञानचन्द्र १८वीं अ० नाहर कलकत्ता, विनय कोटा

४० „ यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/, विनीतसुन्दर १९वीं अ० उदयचन्द जोधपुर, खजान्ची बीकानेर

४१ गणधरवाद वालाववोध क्षमामाणिक्य P/. १८३८ अ० वर्द्धमान भ० वीकानेर,

४२ गत्यादिमार्गणा स्वोपज्ञ टीका देवचन्द्रोपाध्याय P/, दीपचंद्र नूतनपुर१७८२ मु०

४३ गाथासहस्री समयसुन्दरोपाध्याय १६६८ मु० विनय ६२५, वाल ३५८

४४ गुणस्थानक अधिकार देवचन्द्रोपाध्याय P/, दीपचन्द्र १८वीं मु०

४५ गुणस्थानक्रमारोह बालाववोध श्रीसारोपाध्याय P/, रत्नहर्ष १६९८ महिमावती अ० फतहपुर भंडार

४६ गुणस्थान प्रकरण वालाववोध शिवनिधानोपाध्याय १६९२ सांगानेर अ० केशरिया, जोधपुर,

४७ गुणस्थान शतक स्वोपज्ञटीका देवचंद्रोपाध्याय P/, दीपचद्र १८वीं मु०

४८ गुरुगुणषट्त्रिंशिका स्तबक „ „ मु०

४९ चतुरशीतिराशातनास्थान वि० जिनप्रभसूरि P/, जिनसिंहसूरि १४वीं अ० संघ भंडार पाटण

५० 'चत्तारि परमंगाणि' टीका समयसुन्दरोपाध्याय १६८७ पत्तन अ०

५१ चरणसत्तरी करणसत्तरी भेद गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १७वी अ०

५२ चैत्यवन्दनक जिनेश्वरसूरि P/ वर्द्धमानसूरि १०८० जालोर अ० थाहरू जेसलमेर, जिनविजय सं०

५३ चैत्यवन्दन कुलक जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

५४ चैत्यवन्दन कुलक वृत्ति जिनकुशलसूरि P/ जिनचंद्रसूरि १३८३ बाडमेर मु०

५४A ,, ,, टिपणक लब्धिनिधानोपाध्याय P/. जिनकुशलसूरि १४वीं मु०

५५ चैत्यवन्दनभाष्य वृत्ति 'तत्त्वार्थ दीपिका' धर्मप्रमोद P/ कल्याणधीर, १६६४ अ० बडा भंडार बीकानेर

५६ चैत्यवन्दन भाष्य यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/ विनीतसुंदर १९वी अ० ख० जयपुर, हरि लोहावट

५७ चैत्यवन्दनस्थान विवरण जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वी अ० सघ भंडार पाटण

५८ चावीस दण्डक विचारकुलक लक्ष्मीवल्लभोपा० P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वी अ० दिगंवर भंडार, जयपुर

५९ जिनसत्तरीप्रकरण जिनभद्रसूरि P/, जिनराजसूरि १५वी अ० नाहर कलकत्ता, अभय बीकानेर

६० जीवविचारप्रकरण टीका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/ अमृतधर्म १८५० बीकानेर मु० अभय क्षमा बीकानेर पाल ४२४

६१ ,, ,, रत्नाकरोपाध्याय P/ मेघनन्दन १६१० अ०वि० कोटा ६११, ६१२ अ० बी०

६२ ,, बालावबोध विमलकीर्ति P/. विमलतिलक १७वीं अ० ,, ६०९

६३ ,, स्तवक महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १७वी अ० फतहपुरभण्डार, कान्तिसागरजी

,, ,, साधुकीर्ति P/. १७वी विनय ८८२

६४ ,, यन्त्र सुमतिवर्द्धनP/ विनीतसुन्दर १९वी अ० ख०' जयपुर

६५ जीवविचारादि प्रकरण स्तवक जिनकृपाचन्द्रसूरि २०वी मु०

६६ जीवविभक्ति जिनचन्द्रसूरि P/ जिनेश्वरसूरि १२वीं अ० पाटण भंडार

६७ जैनतत्त्वसार स्वोपज्ञ टीका सूरचन्द्रोपाध्याय १६७९ अमरसर मु०

६८ ज्ञानसारकी ज्ञानमञ्जरी टीका देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचन्द्र १७९६ नवानगर मु०

६९ ज्ञानार्णव भाषा लब्धिविमल P/ लब्धिरंग १७२८ अ० फतहपुर भंडार

६९A ,, ,, ध्यानदीपिका देवचन्द्र P/ दीपचन्द्र १८वी मु०

७० तत्त्वाववोध देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं उल्लेख-स्वकृत विचारसारस्तवक

७१ तिथि पयन्नादि अभयदेवसूरि P/ जिनेश्वरसूरि १२वी अ० अभय बीकानेर

७२ दर्शनकुलक जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

७३ द्रव्यप्रकाश देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचन्द्र १७६७ बीकानेर मु०

७४ द्रव्यसंग्रह बालावबोध हंसराज P/ पिप्पलक १७वी अ० स्टेट लायब्रेरी

७५ द्रव्यानुभव रत्नाकर चिदानन्द द्वि० १९५२ फलौदी मु० विनय १००३

७६ द्वादशाङ्गीप्रमाणकुलक जिनभद्रसूरि P/ जिनराजसूरि १५वी अ० अभय बीकानेर

७७ नयचक्रसार देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचन्द्र १८वी मु० विनय २५१

७८ नवकार यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/, विनीतसुन्दर १९वीं अ० उदयचन्द जोधपुर

७९	नवतत्वप्रकरणशब्दार्थवृत्ति	समयसुन्दरोपाध्याय	१६९८ अमदावाद	अ०
८०	,, बालावबोध	जिनोदयसूरि (जिनसागरसूरि शा०)	१८वी	अ० आचार्य शाखा बीकानेर
८१	,, ,,	रत्नलाभ P/. विवेकरत्नसूरि पिप्पलक	१६वीं	अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
८२	,, ,,	विमलकीर्ति P/ विमलतिलक	१७वी	अ० ,, विनय ६०९
८३	,, ,,	हर्षवर्द्धन	१७८५	अ० अभय बीकानेर
८४	,, स्तवक	जिनराजसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१७वी	अ० विनय कोटा हरि लोहावट
८५	,, ,,	रामविजयोपाध्यायP/ दयासिंह	१८३९ अजीमगंज	अ० हीराचन्द्रसूरि बनारस
८६	,, भाषाबन्ध	लक्ष्मीवल्लभोपा० P/. लक्ष्मीकीर्ति	१७४७ हिसार	अ०
८७	,, स्वरूपयन्त्र	सुमतिवर्द्धन P/ विनीतसुन्दर	१९वी	अ०ख० जय० बद्रीदासकल० खजाची बीका०
८८	नवपदप्रकरण भाष्य	अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि	१२वी	अ० जेसलमेर भण्डार
८९	नवपदप्रकरण अभिनववृत्ति	देवेन्द्रसूरि P/. संघतिलकसूरि रुद्रप०	१४५२	उल्लेख जिनरत्नकोष
९०	निगोदषट्त्रिंशिका	अभयदेवसूरि P/ जिनेश्वरसूरि	१२वी	अ०
९१	निर्युक्ति स्थापन	मतिकीर्ति P/ गुणविनयोपाध्याय	१६७६	अ० बडा भ० बीकानेर डूगर जेसलमेर
९२	पाचचारित्रके ३६ द्वार भाषा	रामचन्द्र P/ शिवचन्द्रोपाध्याय	२०वी	अ० वृद्धि जेसलमेर
९३	पचलिङ्गी प्रकरण	जिनेश्वरसूरि P/ वर्धमानसूरि	११वीं	मु०
९४	,, टीका	जिनपतिसूरि P/ मणि० जिनचन्द्रसूरि	१३वी	मु०
९५	,, लघुटीका	सर्वराजगणि		अ० तपा भ० जेसलमेर
९६	,, टिप्पणक	जिनपालोपा० P/ जिनपतिसूरि	१२९४	मु०
९७	पच समवाय विचार	ज्ञानसारP/. रत्नराज	१९वी	अ० अभय बीकानेर
९८	पचाशक टीका	अभयदेवसूरि P/ जिनेश्वरसूरि	१२वीं	मु०
९९	पन्नावणा २ गाथा के २० द्वार यत्र	ज्ञानसार	१९वी	अ० डूगर जेसलमेर
१००	परमात्माप्रकाश हिन्दीटीका	धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष	१७६२	अ० दिगंबरभ० अजमेर
१०१	परसमयसारविचारसग्रह	क्षमाकल्याणोपाध्याय P। अमृतधर्म	१९वीं	अ०
१०२	पिण्डविशुद्धिप्रकरण	जिनवल्लभसूरि P। अभयदेवसूरि	१२वी०	मु०
१०३	पुद्गलषट्त्रिंशिका	अभयदेवसूरि P।. जिनेश्वरसूरि	१२वी०	अ०
१०४	परममुखद्वात्रिंशिका (तत्त्वावबोध)	जिनप्रभसूरि P। जिनसिहसूरि	१४वीं०	अ० अभय बीकानेर
१०५	प्रतिक्रमणहेतव	क्षमाकल्याणोपाध्याय P/ अमृतधर्म	१९ वी० बीकानेर	अ० खजय० अभय क्षमा बीका०
१०६	प्रतिलेखनाकुलक	जिनवर्द्धनसूरि P/ जिनराजसूरि	१५ वी०	अ०
१०७	प्रत्याख्यानप्रमुखविचार	समयसुन्दरोपाध्याय	१७ वीं०	उल्लेख जिनरत्नकोश
१०८	प्रत्याख्यानस्थानविवरण	जिनप्रभसूरि P जिनसिंहसूरि	१४ वीं०	अ० सघभडार पाटण
१०९	प्रवचनविचारसार	नयकुञ्जर P/ जिनराजसूरि	१६ वी०	अ०
११०	प्रवचनसारोद्धार बालावबोध	पद्ममन्दिर P/. विजयराज	१६५१	अ० चारित्रराप्राविप्रबीकानेर

११	प्रवचनसारोद्धार बाला०	सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन	१६६१	अ० तेरापथीसभा सरदारशहर
११२	प्रव्रज्याविधानकुलकबाला०	जिनेश्वरसूरि वेगड	१७ वीं०	अ० जेसलमेर भंडार
११३	बृहद्वन्दनकभाष्य	अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि	१२ वीं०	मु०
११४	बृहत्संग्रहणी बालावबोध	गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम	१७ वीं०	अ० अनतनाथ ज्ञान भं० बंबई
११५	भाषाविचार प्र० स्वोपज्ञअव०	चारुचन्द्र P/ भक्तिलाभ	१६ वीं०	अ० आचार्यशाखा बीकानेर
११६	भाष्यत्रय स्तवक	मतिकीर्त्ति P/. गुणविनयोपाध्याय	१७ वीं०	अ० झंडियालागुरु भंडार
११७	महादण्डक	अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि	१२ वीं०	अ० अभय बीकानेर
११८	लोकतत्त्वबालावबोध	नयविलास P/. जिनचन्द्रसूरि	१७ वीं०	अ० अभय बीकानेर चारित्र-राप्राविप्र बीकानेर विनय ८६२
११९	लोकनालवार्त्तिक	उदयसागर P/. सहजरत्न पिप्पलक	१७ वीं०	अ० अभय बीकानेर
१२०	वन्दनकस्थानविवरण	जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१४ वीं०	अ० संघभंडार पाटण
१२१	विचारषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ टीका०	गजसारगणि P/. धवलचन्द्र	१५८१ पाटण	मु० विनय ८८५
१२२	,, टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	१६६६ अमदाबाद	अ०
१२३	,, बालावबोध	आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र	१८८० अजीमगंज	अ० दान भं० बीकानेर
१२४	,, ,,	देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र	१८०३ नवानगर	अ० अभय बीकानेर
१२५	,, ,,	विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक	१७ वीं०	अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
१२६	,, अर्थ (पद्यानुवाद) ज्ञानसार		१९ वीं०	मु० ख जयपुर
१२७	,, प्रश्नोत्तर	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड	१७२४	अ० विनयचन्द्रज्ञान भं० जयपुर
१२८	,, यन्त्र	सुमतिवर्द्धन P/ विनीतसुन्दर	१९ वीं०	अ० ख० जयपुर
१२९	विचारषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ अर्थसह (१ से ३६ तक की वस्तुओं)	हीरकलश P/ हर्षप्रभ	१७ वीं०	अ० नाहर कलकत्ता
१३०	विचारसारस्तवक	देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र	१७९६ नवानगर	मु०
१३१	विंशिका	जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि	१२ वीं०	मु०
१३२	शुद्धदेवअनुभवविचार	चिदानन्द द्वि०	१९५२	मु०
१३३	श्रावकधर्मविधि	जिनेश्वरसूरि P/ जिनपतिसूरि	१३१३ पालणपुर	मु०
१३४	,, बृहद्वृत्ति	लक्ष्मीतिलकोपाध्याय P/	१३१७ जालोर	अ० जेसलमेर भंडार हंसवडोदा
१३५	श्रावकमुखवस्त्रिकाकुलक (मुखवस्त्रिका स्थापनप्रकरण)	वर्द्धमानसूरि	११ वीं०	अ० हंसवडोदा, अभय बीकानेर
१३६	श्रावकविधिदिनचर्या	जिनचन्द्रसूरि P/ जिनेश्वरसूरि	१२ वीं०	अ०
१३७	षट्स्थान प्रकरण	जिनेश्वरसूरि P/ वर्द्धमानसूरि	११ वीं०	अ०
१३८	,, भाष्य	अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि	१२ वीं०	मु०

१३९ षट्स्थान प्रकरण टीका जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १२६२ श्रीमालपुर मु०

१४० षष्टिशतकप्रकरण नेमिचन्द्रभण्डारी पिता जिनेश्वरसूरिद्वि० १३वीं० मु०

१४१ ,, टीका गजसार P/, धवलचन्द्र १६वीं० अ० दानवी०राप्राविप्र जोध०

१४२ ,, ,, तपोरत्न P/. १५०१ मु० विनयकोटा ६३३

१४३ ,, ,, राजहंस P/. हर्षतिलक लघुखरतर १५७९ सिकंदरपुर दि० भण्डारसूचीभाग ४

१४४ ,, टिप्पणक भक्तिलाभ P/. जिनचन्द्र १५७२ अ० दि०भण्डार सूचीपत्र भाग ४

१४५ ,, बालावबोध जिनसागरसू० P/. जिनेश्वरसूरि पिप्पलक १४९१ अ०

१४६ ,, ,, धर्मदेव P/. क्षान्तिरत्न १५१५ अ० विजयेन्द्रसूरि सं० आ० क० पेढी

१४७ ,, ,, मेरुसुन्दरोपाध्याय P/ रत्नमूर्त्ति १६वीं मु०

१४८ ,, ,, विमलकीर्ति P/. विमलतिलक १७वीं० अ० सेठिया बीकानेर

१४९ षोडशकप्रकरण टीका (हारि०) अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं० अ० केशरिया जोधपुर

१५० सग्रहणी अवचूरि साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५११ मांडवगढ अ० जेसलमेर भण्डार

१५१ ,, टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं० अ० अनतनाथ ज्ञानभं० बंबई

१५२ ,, बालावबोध आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८८० अजीमगज अ० ज्ञानभण्डार बीकानेर

१५३ ,, ,, शिवनिधानोपाध्याय १६८० अमरसर अ० ख० जयपुर राप्राविप्र जोधपुर

१५४ ,, यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वीं० अ० ख० जयपुर, विनय ४२४

१५५ सदेह दोलावली प्रकरण जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि १२वीं० मु०

१५६ ,, बृहद्वृत्ति प्रबोधचन्द्रगणि P/. जिनेश्वरसूरि १३२० प्रल्हादनपुर मु०

१५७ ,, लघुटीका जयसागरोपाध्याय १४९५ अ० अभय बीकानेर, विनय ६०२

१५८ ,, पर्याय समयसुन्दरोपाध्याय १६९३ अ०

१५९ सप्ततिका भाष्य अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं० अ०

१६० ,, टिप्पणक रामदेवगणि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं० अ० हरिलोहावट

१६१ सप्ततिशतप्रकरण बालाबोध धर्मकीर्ति P/. धर्मनिधान १७वीं० अ० क्षमा बीकानेर

१६२ सम्बोध अष्टोत्तरी ज्ञानसार १८५८ अ० क्षमाबीकानेर, अभयबीकानेर

१६३ सम्बोधसप्तति टीका गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६५१ मु० विनय ६३२

१६४ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं० अ० डूंगरजेसलमेर, ख० जयपुर

१६५ सम्यकत्वकुलक बालावबोध मतिकीर्ति P/. गुणविनयोपाध्याय १७वीं० अ० महरचद भं० बीकानेर

१६६ सम्यक्त्वभेद क्षमामाणिक्य P/ १८३४ राजपुर अ० वर्द्धमान भं० बीकानेर

१६७ सम्यक्त्वविचारस्तवबालावबोध चारित्रसिंह १६३३ भर्भरपुर अ० डूंगरजेसलमेर, अभय बीकानेर विनय ७४२

१६८ सम्यक्त्वसप्तति टीका संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १४२२ सारस्वत मु० पत्तन

१६९ सम्यकत्वस्तवावचूरि गजसार P/. धवलचन्द्र १६वीं० अ० ख जयपुर

१७०	सर्वजीवशरीरावगाहनास्तव	जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि	१२वीं०	अ० विनयवल्लभभारती
१७१	सामायिककुलक	जिनकीर्त्तिसूरि जिनसागरसूरिशाखा	१९वीं०	अ० अभय बीकानेर
१७२	सिद्धिसप्तशतिका	शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील	१९वीं	अ० बालराप्राविप्रचित्तोड़
१७३	सिद्धान्तबोल	ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर	१७वीं०	अ०
१७४	सिद्धान्तसारोद्धार	कमलसयमोपाध्याय	१६वीं०	अ० हरिलोहावट, अनूपबीकानेर
१७५	सूक्ष्मार्यविचारसारोद्धार प्र०	जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि	१२वीं०	मु०
१७६	,, टिप्पणक	रामदेवगणि P/ जिनवल्लभसूरि	१२वीं०	उ०-गणधरसार्द्ध० वृहद्वृत्ति
१७७	स्यण्डिलके १०२४ भांगे	पद्मराज P/ पुण्यसागरोपाध्याय	१७वीं०	अ० ख० जयपुर
१७८	स्याद्वादानुभवरत्नाकर	चिदानन्द द्वि०	१९५० अजमेर	मु०

औपदेशिक प्रकरण

१	अष्टकप्रकरण टीका (हारिभ०)	जिनेश्वरसूरि P/ वर्द्धमानसूरि	१०८० जालोर	मु०
२	आत्मप्रबोध	जिनलाभसूरि	१८३३ मिनरावदर	मु०
३	,, हिन्दी अनुवाद	पद्मोदय (पन्नालाल)	२० वीं०	मु०
४	आत्मभावना	लब्धिमुनि उ०	२० वीं०	मु० विनय १००४
५	आत्मानुशासनम्	जिनेश्वरसूरि P/ जिनपतिसूरि	१३ वीं०	अ० जेस० भ० हरिलोहावट
६	इन्द्रियपराजयशतक टीका	गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम	१६६४	अ०
७	ईसरशिक्षा	जिनसमुद्रसूरि P/ जिनचन्द्रसूरि बेगड	१८ वीं०	अ० अभयबीकानेर
८	उत्तमपुरुषकुलक	जिनरत्नसूरि	१४ वीं०	अ० जेसलमेरभडार
९	उपदेशकुलक	जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि	१२ वीं०	मु०
१०	,,	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४ वीं	अ० जेसलमेरभडार
११	उपदेशकोष	जिनेश्वरसूरि P/ वर्द्धमानसूरि	११ वीं	अ० हरिलोहावट, अ० बी०
१२	उपदेशपद टीका	वर्द्धमानसूरि	१०५५	अ० हरिलोहावट
१३	उपदेशमणिमाला	जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि	११ वीं०	अ० अभयबीकानेर
१४	उपदेशमालावृहद्वृत्ति (धर्मदासीय)	वर्द्धमानसूरि	११ वीं०	अ० जेसलमेरभडार
१५	उपदेशमाला-संस्कृतप० तथा स्तवक	शिवनिधानोपाध्याय	१६९० जोधपुर	अ० वृद्धि जेसलमेर
१६	उपदेशमाला बालावबोध	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/ रत्नमूर्ति	१६ वीं०	अ०
१७	उपदेशमालास्तवक	विमलकीर्ति P/. विमलतिलक	१६६९	अ० जेसलमेरभडार
१८	उपदेशरसायन	जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि	१२ वीं०	मु०
१९	,, टीका	जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि	१२९२	मु०

२० उपदेशसप्ततिका स्वोपज्ञटीका सह क्षेमराज P/. सोमध्वज १५४७ हिसार मु०

२१ ऋषिमण्डलप्रकरण अवचूरि गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७ वीं० अ०

२२ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६६२ सांगानेर अ०

२३ ,, टीका पद्ममन्दिर १५५३ जेसलमेर मु० विनय ३६८

२४ ,, ,, वादी हर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७०५ अ० वड़ा भडार बी० विनय ६६६

२५ ,, बालावबोध ,, ,, १७ वी० अ० बडाभडार जेसलमेर

२६ कर्पूरप्रकर टीका जिनसागरसूरि P/. जिनवर्द्धनसूरि पिप्पलक १६ वी अ० चारित्रराप्राविप्र बी० कान्तिछाणी

२७ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्ति १५३४ अ० वृद्धि जेसलमेर

२८ क्षपकशिक्षाप्रकरण (धर्मोपदेशकाव्य) जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२ वी० मु०

२९ गणधरसप्तति (सुगुरुगुणसथवसत्तरिया) जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२ वी मु०

३० गणधरसार्द्धशतक प्रकरण जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२ वी मु०

३१ ,, बृहद्वृत्ति सुमतिगणि P/. जिनपतिसूरि १२९५ अ० जेसलमेरभडार बडाभडार बीकानेर पुण्य अहमदाबाद

३२ गणधरसार्द्धशतकप्रकरण-लघुवृत्ति सर्वराजगणि P/. जिनेश्वरसूरि द्वितीय अ० तपाभडार जेसलमेर, उदयचद जोधपुर कांतिछाणी विनय ४३३

३३ ,, ,, पद्ममन्दिर P/. विजयराज १६४६ जेसलमेर मु० ख० जयपुर

३४ ,, स्तवक विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १७वी० अ० कांतिसागरजी १६८०लि०प्रति

३५ गणधरसार्द्धशतकान्तर्गतप्रकरण चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १७वी मु०

३६ गुणमाला प्रकरण रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८१७ जेसलमेर अ० ख जयपुर वालचित्तोड़ १२४ अभय बीकानेर, विनय ६०५

३७ गुणविलास ऋद्धिसार (रामलाल) कुशलनिधान २०वी० अ०

३८ गुणानुरागकुलक जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वी० अ० लीबडीभडार, पाटणभडार

३९ गौतमकुलक टीका ज्ञानतिलक P/ पद्मराज १६६० मु० विनय ८४

४० ,, ,, सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७१ अ० नाहर स कलकत्ता

४१ गौतमपृच्छा—भाषा नयरग १७वी० अ० अभय बीकानेर ख० जयपुर क्षमा बीकानेर

४२ गौतमपृच्छा टीका मतिवर्द्धन P/ सुमतिहंस आद्यपक्षीय १७३८ जैतारण अ० अभय बीकानेर ख० जयपुर चरित्रराप्राविप्र बीकानेर

४३ ,, ,, श्रीतिलक P/. देवभद्रसूरि रुद्रपल्लीय १५वी० अ० चारित्रराप्राविप्र बीकानेर कान्तिसागरजी राप्राविप्र जोधपुर

४४ ,, बालावबोध शिवसुन्दर /. क्षेमराज १५६६ खीमसर अ० अभय बीकानेर

४५ चर्चरी	जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि	१२वीं	मु०	
४६ ,, टिप्पणक	जिनपालोपाध्याय P/ जिनपतिसूरि	१२६४	मु० विनय ४१८	
४७ जिनवचनरत्नकोप	राजहस P/ ज्ञानतिलक लघुखरतर	१५७२	अ० आहोर भडार	
४८ जीवप्रबोधप्रकरण भापा	विद्याकीर्त्ति P/ जिनतिलकसूरि लघुखरतर	१५०५ हिसार	अ० चारित्रराप्राविप्र बीकानेर	
४९ जैनदिग्विजयपताका	ऋद्धिसार (रामलाल) P/ कुशलनिधान	२०वीं०	मु०	
५० ज्ञानानन्दप्रकाश	पुण्यशील P/ रामविजय	१९वीं०	अ० बाल राप्राविप्र चित्तोड	
५१ दानोपदेशमाला	दिवाकराचार्य P/ सघतिलकसूरि रुद्रपल्ली	१५ वीं०	अ० ख० जयपुर प्रतिलिपि विनय कोटा	
५२ ,, (टी० दिवाकरीय)	देवेन्द्रसूरि P/ सघतिलकसूरि	१४१८	अ० ख ज० अ० भ० कातिबडौदा	
५३ द्वादशकुलक	जिनवल्लभसूरि P/ अभयदेवसूरि	१२वीं०	मु०	
५४ ,, टीका	जिनपालोपाध्याय P/ जिनपतिसूरि	१२९३	मु०	
५५ द्वादशभावनाकुलक	जिनेश्वरसूरि P/ जिनपतिसूरि	१३वी	अ० खजाची बीकानेर	
५६ धर्मरत्नकरण्डक स्वोपज्ञ टीका	वर्द्धमानसूरि P/ अभयदेवसूरि	११७२ दायिकाकूप	अ० हरिलोहावट वृद्धि जेस०	
५७ धर्मविलास	मतिनन्दन P/ धर्मचन्द्र पिप्पलक	१६वीं०	मु०	
५८ धर्मशिक्षाप्रकरण	जिनवल्लभसूरि P/ अभयदेवसूरि	१२वीं०	मु०	
५९ ,, टीका	जिनपालोपाध्याय P/ जिनपतिसूरि	१२९३	अ० विनय कोटा	
६० धर्माधर्मप्रकरण	जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१४वीं०	अ०	
६१ धर्मोपदेश	साधुरग P/ सुमतिसागर	१७वीं०	अ०	
६२ पञ्चपरमेष्ठिनमस्कारफलकुलक	जिनचन्द्रसूरि P/ जिनेश्वरसूरि	१२वीं०	मु०	
६३ पर्युपणव्याख्यानपद्धति	समयराजोपाध्याय P/ जिनचन्द्रसूरि	१६६२	अ० धर्म आगरा	
६४ पुष्पमालाप्रकरण टीका (मल०हेमचन्द्रीय)	साधुसोम P/ सिद्धान्तरुचि	१५१२ अह०	ख० जयपुर विनयकोटा ६०४	
६५ पुष्पमाला प्रकरण बालावबोध	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/ रत्नमूर्ति	१५२२	अ० अभय, चारित्र राप्राविप्र बीकानेर	
६६ प्रश्नोत्तररत्नमाला टीका	देवेन्द्रसूरि P/ सघतिलकसूरि (रुद्र०)	१४२९	अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर	
६७ ,, लेखन प्रशस्ति:	देवमूर्ति P/. जिनेश्वरसूरि द्वि०		अ० जेसलमेर भडार,	
६८ प्रश्नोत्तररत्नमालिका बालावबोध	जिनराजसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१७वी	अ० वृद्धि जेसलमेर,	
६९ ,, स्तवक	जिनरगसूरि P/ जिनराजसूरि	१८वी	अ० पाटण भडार,	
७० प्रास्तविक अष्टोत्तरी	ज्ञानसार	१८८० बीकानेर	मु०	
७१ बलिराम आनन्दसार सग्रह	लाभोदय P/. भुवनकीर्त्ति	१७वी	अ० पुण्य अहमदाबाद	
७२ ब्रह्मचर्यपरिकरण	कपूरमल्ल	१२वी	मु०	
७३ भावनाकुलक	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४वीं	अ०	

७४ भावनाप्रकाश शिवचन्द्रोपाध्याय P/. रामविजय १६वी अ० वाल राप्राविप्र चित्तौड
७५ भावनाविलास लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७२७ अ० अभय बीकानेर, हरिलोहावट
७६ भावपदविवेचन गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वी अ०
७७ मध्याह्नव्याख्यानपद्धति वादी हर्षनन्दन, P/. समयसुन्दर १६७४ पाटण अ० बडाभंडार बी० हरिलोहावट
७८ मातृकाक्षर धर्मोपदेश स्वोपज्ञ टीका लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७४५ अ० हरिलोहावट
७९ रत्नकरण्ड अभयचन्द्र P/. आणदराज, लघुखरतर १६वी अ० अभय बीकानेर
८० रूपकमाला पुण्यनन्दी P/. समयभक्ति १६वी अभय बीकानेर विनय ६७५
८१ ,, अवचूरि समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र १६६३ बी० अ० थाहरु जेसलमेर
८२ ,, टीका चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १६४३ अ० अंबाला भं० गधैया सं० सरदारशहर
८३ ,, वालाववोध रत्नरंगोपाध्याय १५८२ अ० आचार्यशाखा बीकानेर
८४ वादीकुलक जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वी अ० पाटण भंडार
८५ विंशतिपदप्रकाश शिवचन्द्रोपाध्याय P/ पुण्यशील १६वीं अ० वाल राप्राविप्र, चित्तौड
८६ शिक्षाकुलक जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि १२वी अ० पाटण भंडार
८७ शीलकल्पद्रुमम‌ञ्जरी चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १७वी अ० पंजाब भंडार अंबाला
८८ शीलोपदेशमाला टीका गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १७वी अ० आत्मानन्द सभा भावनगर
८९ , , ललितकीर्त्ति १६७८ लाटद्रह अ० विनय ६०० कोटा ख० जयपुर, चारित्र, बीका०
९० ,, , (शीलतरंगिणी) सोमतिलकसूरि P/. संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १३९२ मु०
९१ ,, वालाववोध क्षमामूर्त्ति P/. मतिवर्द्धन पिप्पलक १७वी अ० कृपा भंडार बिकानेर
९२ ,, ,, मेरुसुन्दरोपाध्याय P/ रत्नमूर्त्ति १५२५ मांडवगढ अ० ख० ज० रा० जोधपुर विनय २२,
९३ श्राद्धदिनकृत्य वालाववोध आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८८२ अजीमगंज मु०
९४ सज्ज्ञानचिन्तामणि ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान २०वीं मु०
९५ समयसार वालाववोध रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १७९२ जालोर अ०
९६ संवेगकुलक धनेश्वरसूरि (जिनभद्रसूरि) १२वी अ० प्रतिलिपि विनय कोटा
९७ संवेगमञ्जरी देवभद्रसूरि P/ सुमतिवाचक १२वी अ० पाटण भंडार
९८ संवेगरंगशाला जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं मु०
९९ सर्वतीर्थमहर्षिकुलक जिनेश्वरसूरि P/ जिनपतिसूरि १३वी मु०
१०० सिन्दूरप्रकरण टीका चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराजलघुखरतर १५०५ अ०
१०१ ,, ,, धर्मचन्द्र P/. जिनसागरसूरि पिप्पलक १५१३ अ०
१०२ ,, वालाववोध राजशील P/. साधुहर्षोपाध्याय १६वी अ० जैनरत्नपुस्तकालय, संस्कृत लाइब्रेरी
१०३ स्वधर्मीवात्सल्यकुलक अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वी मु०
१०४ ,, स्तवक समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६६१ वीरमपुर अ० अभय बीकानेर

१०५ स्वप्नप्रदीप	वर्द्धमानसूरि P/. रुद्रपल्लीय	१५वीं मु०	
१०६ स्वप्नफलविवरण	जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि	१३वीं अ० प्रेसकापी विनय कोटा	
१०७ स्वप्नविचारभाष्यवृत्ति	,, ,, ,,	,, अ० ,, ,,	
१०८ स्वप्नसप्ततिका	जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि	१२वी अ० विनय 'वल्लभभारती'	
१०९ स्वप्नसप्ततिका टीका	सर्वदेवसूरि	१२८७ अ० कान्ति छाणी	
११० स्वात्मसम्बोध (ज्ञानसारप्रकाश)	धर्मचन्द्र P/. जिनसागरसूरि पिप्पलक	१६वीं अ० देशाई संग्रह	
१११ हितशिक्षा भाषा	भद्रसेन	१७वी अ०	
११२ हितोपदेशप्रकरण	प्रभानन्दसूरि P/. देवभद्रसूरि	१२वी अ० जेसलमेर भंडार	

वैधानिक, सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तर एवं चार्चिक ग्रंथ

१ अविधिकुलक	जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि	११वीं	अ० कान्ति छाणी
२ अष्टोत्तरीस्नात्रविधि	जयसोमोपाध्याय	१७वीं लाहोर	अ० ह० लोहावट
३ आगमानुसार मुंहपत्ति निर्णय	जिनमणिसागरसूरि P/ सुमतिसागरजी	२०वीं	मु०
४ आचारदिनकर	वर्द्धमानसूरि P/. रुद्रपल्लीय	१४६८ जालधर नंदनवनपुर	मु० विनय कोटा ७०३
५ आत्मभ्रमोच्छेदनभानु	चिदानन्द	१९५२ नागोर	मु०
६ आरात्रिकवृत्तानि	जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि	१२वीं	मु०
७ आराधना	जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि	१२वीं	अ० प्रतिलिपि रमणीकवि अहमदाबाद
८ आराधनाप्रकरण	अभयदेवसूरि P/ जिनेश्वरसूरि	१२वी	अ० जेसलमेर भंडार १२६५ लि०
९ आलोचनाविधिप्रकरण	,, ,,	,,	अ० प्रतिलिपि विनय कोटा
१० इच्छापरिमाण टिप्पणक	समयराजोपाध्याय P/. जिनचन्द्रसूरि	१६६०	अ० महतावसिंह संग्रह बीकानेर
११ ईर्यापथिकी षट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ टीका	जयसोमोपाध्याय	१६४० टी० १६४१	मु०
१२ उपधानविधिपचाशक प्रकरण	अभयदेवसूरि		खंभात भंडार ताडपत्रीय प्रति
१३ उत्सूत्रोद्घाटनकुलक	जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि	१२वीं	मु०
१४ ,, (कुमतिमतखंडन)	गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम	१६६५ नवानगर	मु०
१४A एक सौ अडतीस वक्तव्य	,, ,, ,,	१७वीं	अ० विनय ७८०
१५ कल्याणकपरामर्श	बुद्धिमुनि P/. केशरमुनि	२०वी	मु०
१६ कुमतकुलिंगोच्छेदनभास्कर (जैनलिंगनि०)	चिदानन्द द्वि०	१९५५ जीरण	मु० कोटा भंडार
१७ कुम्भस्थापना भाषा	देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचन्द	१८वी	अ० ख० जयपुर
१८ क्या पृथ्वी स्थिर है ?	जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी	२०वी	मु०
१९ चर्चाप्रश्नोत्तर	तिलोकचन्द लूणिया प्रश्नकर्ता	१९वीं अजमेर	अ० हंस बड़ौदा

२०	चैत्रीपूर्णिमा देववन्दनविधि	क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म	१९वीं	अ० हु० लोहावट
२१	जिनपूजाविधि	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४वीं	मु०
२२	जिनप्रतिमास्थापितग्रन्थ प्रश्नोत्तर	ज्ञानसार	१८७४	अ० क्षमा बीका, ला० द० अह०
२३	जिनाज्ञाविधिप्रकाश	चिदानन्द द्वि०	१९५१ अजमेर	मु०
२४	तपागच्छचर्चा	गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम	१७वीं	अ० आत्मानन्द सभा भावनगर
२५	तपोटमतकुट्टनम्	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४वीं	अ० अभय बीकानेर जैसलमेर भं०
२६	तेरापंथी नाटक	प्रेमचन्द यति	१९६५ रतनगढ	मु०
२७	दयानन्दमतनिर्णय (आर्यसमाजभ्रमोच्छेदनकुठार)	चिदानन्द द्वि०	१९४७	अ० विनय कोटा ९०४
२८	दिगम्बर ८४ बोलविसंवाद	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड	१८वीं	अ०
२९	देवद्रव्यनिर्णय	जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी	२०वीं	मु०
३०	देवार्चन एक दृष्टि	जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी	२०वीं	मु०
३१	द्वादशव्रतटिप्पणिका	क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म	१९वीं	अ० ख० जयपुर
३२	नवकार अनुपूर्वी	क्षेमराज P/. सोमध्वज	१६वीं	अ० ख० जयपुर
३३	निर्णयप्रभाकर	बालचन्द्रसूरि	१९२०	अ० विनय कोटा ५८७
३४	पदव्यवस्था	जिनदत्तसूरि P/ जिनवल्लभसूरि	१२वीं	मु०
३५	पर्युषणापरामर्श	बुद्धिमुनि P/. केशरमुनि	२०वीं	मु०
३६	पिण्डकद्वात्रिंशिका	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४वीं	अ० पालणपुर भंडार
३७	पिण्डालोचनविधानप्रकरण	,, ,,	,,	,, ,,
३८	पूजाष्टकवार्त्तिक	कमललाभ P/ अभयसुन्दर	१७वीं	अ० चंपालाल बैद भीनासर
३९	पौषधविधिप्रकरण	जिनवल्लभसूरि P/ अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
४०	,, टीका	जिनचन्द्रसूरि P/ जिनमाणिक्यसूरि	१६१७ पाटण	अ० बड़ा भंडार बीकानेर
४१	पौषधषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ टीका	जयसोमोपाध्याय	१६४३ टी० १६४५	मु० विनय ९६०
४२	प्रतिक्रमण समाचारी	जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि	१२वीं	मु०
४३	,, स्तवक	विमलकीर्त्ति P/ विमलतिलक	१७वीं	अ० आचार्यशाखा बीकानेर
४४	प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि	देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र	१८वीं	मु०
४५	प्रबोधोदयवादस्थल	जिनपतिसूरि P/. मणिधारीजिनचन्द्रसूरि	१३वीं	अ० जे० भ० वि० को० ४९७ क्षमा बी०
४६	प्रश्नपद्धति	हरिश्चन्द्रगणि P/. अभयदेवसूरि	११११ (?) पाटण	मु० पाटण भंडार
४७	प्रश्नोत्तर	जयसोमोपाध्याय	१७वीं	अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
४८	,, २६	,,	,, लाहोर	अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
४९	,, १४१	,,	,,	मु०
५०	,,	जिनसुखसूरि	१७६७ पाटण	अ० जयचन्द्र राप्राविप्र बीकानेर

५१	प्रश्नोत्तरग्रन्थ	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति	१५३५	अ० महिमा बीकानेर
५१A	,, ,,	ज्ञानसार P/. रत्नराज	१९वी	
५२	प्रश्नोत्तरमाला	चिदानन्द (कपूरचन्द्र)	१९०६ भावनगर	मु०
५३	प्रश्नोत्तरशतक	उम्मेदचन्द्र P/ रामचन्द्र	१८८४ जयपुर	अ० वर्द्धमान भ० बीकानेर
५४	प्रश्नोत्तरसारसग्रह	समयसुन्दरोपाध्याय	१७वी	अ० कान्ति बडोदा
५५	प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक	क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म	१८५१ जेसलमेर	मु० हरि लोहावट, अभय बीकानेर
५६	प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक भाषा	,, ,,	१८५३ बीकानेर	अ० हरि लोहावट, विनय २५२, ३९७
५७	बारहव्रत की टीप	हर्षकल्याण	१९२०	अ० ख० जयपुर, स्वय लि०
५८	बारहव्रत टिप्पण	मेघ P/. जिनमाणिक्यसूरि	१६०९	अ०
५९	,, ,,	सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन	१६८८	अ० अभय बीकानेर
६०	बृहत्पर्युषणानिर्णय	जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी	२०वी	मु०
६१	मूर्त्तिमण्डनप्रकाश (कु०)	सुमतिमडन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द	२०वी	अ० हरि लोहावट
६२	यतिश्राद्धालोचन	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१४वी	अ० सुराणा लायब्रेरी चूरू
६३	यत्याराधना	समयसुन्दरोपाध्याय	१६८५ रिणी	अ० ख० जयपुर
६४	लखमसीकृत २१ प्रश्नोत्तर	मतिकीर्त्ति P/. उ०गुणविनय	१७वी	अ० बडा भंडार बीकानेर हृ० लोहावट
६५	लवुतपोटविचारसार	उ०गुणविनय P/ जयसोम	१७वी	अ० चारित्र राप्राविप्र कोटा
६६	लघुविधिप्रपा	शिवनिधानोपाध्याय	१७वीं	अ०
६७	वादस्थल	उ०अभयतिलक P/. जिनेश्वरसूरि	१४वीं	अ० अभय बीकानेर
६८	विचार आलावा	गुणरत्नसूरि P/. कीर्त्तिरत्नसूरि	१६वीं	अ० जेसलमेर भडार
६९	विचाररत्नसंग्रह (हुडिका)	उ०गुणविनय P/. जयसोम	१६५७ सेरूणा	अ० बडा भडार बीकानेर
७०	विचाररत्नसार	देवचन्द्रोपाध्याय P/ दीपचन्द्र	१८वी	मु० ख० जयपुर अभय बीकानेर
७१	विचारशतक	समयसुन्दरोपाध्याय	१६७४ मेडता	अ० विनय ९८८
७२	,, वीजक	क्षमाकल्याणोपाध्याय P/ अमृतधर्म	१९वी	अ० ख० जयपुर
७३	विचारादि	रामचन्द्र P/. शिवचन्द्रोपाध्याय	१९वीं	
७४	विधिकन्दली स्वोपज्ञ टीका	नयरंग	१६२५ वीरमपुर	अ० हरि लोहावट, चारित्रराप्राविप्र बी०
७५	विधिमार्गप्रपा	जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१३६३ कोसलानगर	मु० बाल ३६१
७६	विविधप्रश्नोत्तर, न० १, २	ज्ञानसार P/. रत्नराज	१९वीं	
७७	विशेषशतक	समयसुन्दरोपाध्याय	१६७२ मेड़त	मु०
७८	,, भाषा	आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र	१८८१ वालूचर	अ० अभय बीकानेर
७९	विशेषसंग्रह	समयसुन्दरोपाध्याय	१६८५	अ० ख० जयपुर विनय ६८३
८०	विसम्वादशतक	,,	१७वी	अ० अभय बीकानेर हरि लोहावट

८१ वीरायु ७२ वर्ष स्पष्टीकरण रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८३७ मेड़ता अ०
८२ व्यवस्थाकुलक मणिधारी जिनचन्द्रसूरि P/. जिनदत्तसूरि १३वीं मु०
८३ शान्तिपर्वविधि जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वी अ० थाहरू जेसलमेर
८३A शास्त्रीयप्रश्नोत्तर वालचन्द्राचार्य १६२५ अ० विनय ४४१
८४ शुद्धसमाचारीमण्डन चिदानन्द द्वि० २०वीं अ० हरि लोहावट
८५ श्रावकव्रतकुलक जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं अ० विनय 'वल्लभभारती'
८६ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६८३ वीकानेर मु०
८७ श्रावकविधिप्रकाश क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३८ जेसलमेर मु० विनय ३७०, ३६६, वालचित्तोड़ ४१
८८ श्रावकाराधना समयसुन्दरोपाध्याय १६६७ उच्चानगर अ० अभय वीकानेर ख० जयपुर
८६ ,, भाषा राजसोम P/. जयकीर्त्ति जिनसागरसूरिशाखा १७१५ नोखा अ० वालचित्तोड़ ५५४
६० पट्कल्याणकनिर्णय जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी २०वीं मु०
६१ सक्षिप्तपौषधविधि जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३वीं अ० प्रतिलिपि अभय वीकानेर
६२ सङ्घपट्टक जिनवल्लभसूरि P/ अभयदेवसूरि १२वी मु०
६३ ,, वृहद्वृत्ति जिनपतिसूरि P/. मणिधारीजिनचन्द्रसूरि १३वीं मु० विनय ७६३
६४ ,, टीका लक्ष्मीसेन S/. हम्मीर १५१३ मु० विनय कोटा ७६२
६५ ,, ,, साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १६१६ मु०
६६ ,, ,, हर्षराज P/. अभयसोम १६वी मु० विनय ७६१
६७ ,, पंजिका P/. ज्ञानचन्द्र १८वीं अ० आचार्यशाखा वीकानेर
६८ ,, वालाववोध ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १६६७ अ०
६६ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अ० अवीर वीकानेर
१०० सद्रत्नसार्द्धशतक चारित्रनन्दी P/ नवनिधि १६०६ इन्दोर अ० आचार्यशा० वी० मुनि कांतिसागरजी
१०१ समाचारी जिनपतिसूरि P/. मणिधारीजिनचन्द्रसूरि १३वीं मु० अभय वीकानेर
१०२ समाचारीशतक समयसुन्दरोपाध्याय १६७२ मेड़ता मु०
१०३ सम्वेगी मुखपटाचर्चा जयचन्द्र P/. कपूरचन्द्र १६वीं अ० महरचंद भडार वीकानेर
१०४ साधुप्रायश्चित्तविधि क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १६वी वालूचर अ० ह० लो० ख० ज० वि० को० बाल ५७४
१०५ साधुविधिप्रकाश ,, ,, १८३८ मु०
१०६ ,, भाषा चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन १८६६ नागोर अ० केशरिया जोधपुर
१०७ साध्वाचारषट्त्रिंशिका रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १६वीं अ० ख० जयपुर
१०८ साध्वीव्याख्याननिर्णय जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी २०वीं मु०
१०६ सिद्धमूर्तिविवेकविलास ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान २० वीं मु०
११० सिद्धान्तवोल ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर १७वीं अ०

१११ स्थापनाषट्त्रिंशिका जयसोमोपाध्याय १७वीं अ०
११२ स्नात्रपूजा पच०(शुभशीलीय) बालावबोध जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७६३ अ० पाटण भंडार, खजाची बीकानेर
११३ स्नात्रविधि कुमारगणि P/ जिनेश्वरसूरि द्वि० १४वीं अ० विनय कोटा, अभय बीकानेर
११४ स्फुट प्रश्नोत्तर समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ०
११५ ,, देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं अ०
११६ हुण्डिकाचौरासी बोल (तकराणामुपरि) नयरंग १६२५ वीरमपुर अ० अभय बीकानेर
११७ हुण्डिका १२५ बोल (लुँकोपरि) ,, ,, ,, अ० उदयचंद जोधपुर

काव्य-साहित्य तथा टीकादि ग्रंथ

१ अप्रगल्भ्येति पद्यस्यषोडशार्थी मुनिमेरु १७वीं अ० बड़ा भ० बी० ख० बी०
२ अभयकुमारचरित महाकाव्य चन्द्रतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३१२ खंभात मु० विनय ५४७
३ अभयकुमारचरितप्रशस्ति कुमारगणि P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३१३ वीजापुर मु०
४ अमरूशतक बालावबोध रामविजय (रूपचन्द्र) P/. दयासिंह १७९१ अ० बालचित्तोड १९०
५ अरजिनस्तव (चित्रकाव्य) स्वोपज्ञ टीकासह श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमलो० १७वीं मु० विनयसागर
६ अविदपदशतार्थी विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १७वीं अ०
७ अष्टलक्षी (अनेकार्थरत्नमजूषा) समयसुन्दरोपाध्याय १६४९ लाहोर मु०
८ अष्टसप्ततिका (चित्रकूटीयवीरचैत्यप्रशस्ति) जिनवल्लभसूरि ११६३ चित्तोड अ० विनय वल्लभभारती
९ अष्टार्थीश्लोकवृत्ति सूरचन्द्रोपाध्याय १७वीं अ० यतिऋद्धिकरण चूरू
१० आर्द्रय वलविर्ते श्लोकव्याख्या सूरचन्द्रोपाध्याय १७वीं अ० पुण्य० अहमदाबाद
११ आचारदिनकर-लेखनप्रशस्ति वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वीं अ०
१२ उद्गच्छत्सूर्यविम्बाष्टक समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०
१३ उपकेश शब्दव्युत्पत्ति श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १६५५ बीकानेर अ० बड़ा भंडार बीकानेर
१४ कर्पूरमञ्जरी-सट्टक टीका (राजशेखरीय) धर्मचन्द्र P/. जिनसागरसूरि पिप्पलक १६वीं अ० रॉयल एशि० सो० द०
१५ कर्मचन्द्रवंशप्रवन्ध जयसोमोपाध्याय १६५० लाहोर मु०
१६ ,, टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५६ तोसामपुर मु०
१७ कल्पसूत्र-लेखनप्रशस्ति साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५१७ पाटण अ० भावनगर भंडार
१८ कादम्बरीमण्डन मन्त्रि-मण्डन P/. वाग्भट (वाहड) १५वीं मडवगढ मु०
१९ कामोद्दीपन (जयपुरप्रतापसिंहवर्णन) ज्ञानसार १८५६ जयपुर अ० अभय बीकानेर
२० काव्यमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. वाग्भट (वाहड) १५वीं मु०
२१ कुमारसम्भव महाकाव्य (कालिदासीय) टीका क्षेमहंस १६वीं उल्लेख-स्वकृत रघुवंश टीका

२२ कुमार संभव चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज लघुखरतर १६वीं मु० हेमचन्द्र भंडार बीकानेर
२३ ,, ,, जिनभद्रसूरि ? १५वीं अ०
२४ ,, ,, जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि लघुखरतर १६वीं अ० डेक्कन कॉलेज
२५ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७२१ सूरत अ० महिमा बी० हु० लो० वि० ६०१
२६ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ०
२७ कृष्णरुक्मिणीवेली टीका श्रीसार P/. रत्नहर्ष १७०३ अ० गोविन्द पुस्तकालय बीकानेर
२८ ,, बालावबोध कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १६९६ अ० बड़ा भंडार बीकानेर
२९ ,, ,, जयकीर्त्ति P/. हर्षनन्दन १६८६ बीकानेर अ० अभय बीकानेर
३० ,, ,, लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अ० पुण्य अहमदाबाद, १७५० लि०
३१ ,, स्तवक दानधर्म P/. कमलरत्न १७२७ अ० महिमा बीकानेर
३२ ,, ,, शिवनिधानोपाध्याय १६८६ अ० सेठिया बीकानेर
३३ 'खचराननपश्य सखे खचर' काव्यअर्थत्रयी श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं उल्लेख निघटुशेष टीका भूमिका
३४ खण्डप्रशस्ति (हनुमत्कृता) टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४१ फलवर्द्धि मु० संपादक विनयसागर
३५ गायत्रीविवरण जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं मु०
३६ गीतासार टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं उल्लेख-'नलचम्पू' प्रस्तावना-नन्दकिशोर
३७ गौतमीयमहाकाव्य रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८०७ जोधपुर मु० विनय ५५१, बाल ३३८
३८ ,, टीका उ० क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म १८५२ जेसलमेर मु० विनय ५५१, बाल ३३८
३९ चंद चौपाई समालोचना (मोहनविजयकृता) ज्ञानसार P/ रत्नराज १८७७ बीकानेर अ०
४० चन्द्रदूतम् विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १६८१ मु० अभय बीकानेर विनय ८
४१ चन्द्रविजय मंत्रि-मण्डन P/. वाहड १५वीं मु०
४२ चम्पूमण्डन ,, ,, मु०
४३ चाणिक्यनीति-स्तवक लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १८वीं अ० बालापुर भंडार
४४ जयन्तविजयमहाकाव्य अभयदेवसूरि रुद्रपल्लीय १२७८ मु०
४५ जिनसिंहसूरिपदोत्सवकाव्य समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० प्रतिलिपि अभय बीकानेर
(रघुवंशद्वितीयसर्गपादपूर्त्ति.)
४६ तत्वप्रबोधनाटक जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरिबेगड १७३० अ०
४७ तृणाष्कम् समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०
४८ दमयन्तीकथाचम्पू टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४६ सेरुणा अ० राजाविश जोधपुर प्रेसकॉपी विनय
४९ द्वयाश्रय महाकाव्य स्वोपज्ञ टीकासह जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १३५६ अ० जेसलमेर, हरि लोहावट
५० द्वयाश्रयमहाकाव्य टीका हेमचन्द्रीय (संस्कृत) अभयतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३१२ पालनपुर मु०
५१ द्वयाश्रयमहाकाव्य टीका हेमचन्द्रीय (प्राकृत) पूर्णकलश P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३०७ मु०

५२ नलवर्णनमहाकाव्य विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १९वी उल्लेख-स्वकृत अविदपदशतार्थी

५३ नीतिशतकम् धनराज S/. देहड १४९० मंडपदुर्ग मु०

५४ नीतिशतक भाषा (भर्तृहरि) नैनसिंह P/. जशशील १७८६ बीकानेर अ०

५५ नेमिनाथ महाकाव्य कीर्त्तिरत्नसूरि १४९५ मु०

५६ नेमिदूतम् विक्रम P/. सांगण १४वीं मु० विनय ७५६, ७९६,

५७ ,, टीका गुणविनय P/. जयसोम १६४४ मु० खजाची बी० स्वयं लि० वि० ५३२

५८ नेमिसन्देशकाव्य हंसप्रमोद P/. हर्षचन्द १७वीं अ० दिगंबर भंडार अजमेर

५९ नैषधचरितमहाकाव्य टीका चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १५११ अ०

६० ,, , जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १७वी अ० भांडारकर पूना विनय ३६० कोटा

६१ पदैकविंशति सूरचन्द्र १७वी अ०

६२ पासदत्त प्रति प्रेषितपत्र रघुपति १९वी अ० अभय बीकानेर

६३ 'प्रणम्य' पदम्यार्थ सूरचन्द्र १७वीं अ० अभय बीकानेर

६४ प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्यवचनिका ज्ञानसार P/ रत्नराज १९वीं ,,

६५ प्रद्युम्नलीलाप्रकाश शिवचन्द्रोपाध्याय P/ पुण्यशील १८७९ जयपुर अ० वाल राप्राविप्र चित्तोड ३७०

६६ प्रत्येकबुद्धचरितमहाकाव्य लक्ष्मीतिलकोपाध्या P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३११ पालणपुर अ० हरिलोहावट हस वडोदा

६७ प्रशस्ति लब्धिनिधानोपाध्याय P/. जिनकुशलसूरि १४वीं अ० जेसलमेर

६८ प्रश्नप्रबोधकाव्यालङ्कार स्वोपज्ञ टोकासह विनयसागर P/. सुमतिकलश १६६७ दिल्ली अ० कांति वडोदा-स्वय लिखित

६९ प्रश्नमय काव्य धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष १८वीं मु०

७० प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतककाव्यम् जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

७१ ,, अवचूरि कमलमन्दिर P/. जिनगुणप्रभसूरि १६२७ अ० अभय बीकानेर

७२ ,, टीका पुण्यसागरोपाध्याय १६४० बीकानेर अ० विनय कोटा ७९०

७३ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ माहात्म्यमहाकाव्य सहजकीर्त्ति P/ हेमनन्दन १७वीं मु०

७४ मातृकाप्रथमाक्षरदोधक पृथ्वीचन्द्र P/. अभयदेवसूरिरुद्रपल्लीय १३वीं मु०

७५ मातृकाश्लोकमाला श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १६५५ बीकानेर अ० पुण्य अहमदाबाद

७६ मानमनोहर कल्याणचन्द्र P/. कीर्त्तिरत्नसूरि १५१२ अ०

७७ मूलराजगुणवर्णनसमुद्रबद्धकाव्य शिवचन्द्रोपाध्याय पुण्यशील १८६१ जेसलमेर अ० वाल चित्तोड ३९२

७८ मेघदूत (कालीदासीय) अवचूरि कनककीर्त्ति P/. जयमन्दिर १७वीं अ० विनय कोटा चारित्र रा० बीकानेर

७९ ,, ,, विनयचन्द्र P/ सागरचद्र शाखा १६६४ राडद्रह अ०

८० ,, टीका क्षेमहंस अ० विनय कोटा ८००

८१ ,, ,, 'पंजिका' गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १७वी अ० मोहनलाल भंडार सूरत

८२ ,, ,, चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १६वीं मु० विनय ९६०

८३ मेघदूत ,, महिमसिंह (मानकवि) P/ शिवनिधानोपाध्याय १६९३ अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

८४ ,, ,, सुमतिविजय P/. विनयमेरु १८वी अ० भांडारकरपूना दि० भ० आमेर

८५ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वी अ० विश्वेश्वरानंद शो० सं० होशियारपुर

८६ मेघदूत प्रथमपद्यस्य त्रयोऽर्थ समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० डूग० जेसलमेर अभय बीकानेर

८७ रघुवंश महाकाव्य (कालीदासीय) टीका क्षेमहंस १६वीं अ० राप्राविप्र जोधपुर

८८ ,, ,, सुबोधिनी गुणरत्न P/ विनयसमुद्र १६६७ जोधपुर अ० जेसलमेर भंडार

८९ ,, ,, गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४६ बीकानेर अ० रा० जो० व० भं० बी० विन ९७३

९० ,, ,, शिष्यहितैषिणी चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १५०७ मु० विनय ५११

९१ ,, ,, जिनसमुद्रसूरि P/, जिनचन्द्रसूरिलघुखरतर १६वीं अ० अभय बीकानेर

९२ ,, ,, धर्ममेरु P/. चरणधर्म १७वीं अ० रा० जो० दि० भ० आं० ऑ० कॉ ला

९३ ,, ,, पुण्यहर्ष P/. ललितकीर्त्ति (?) १८वी दिगम्बर जयपुर सूची भाग ४

९४ ,, ,, अर्थलापनिका समयसुन्दरोपाध्याय १६९२ खंभात अ० डूंगर जे०-स्व० लि० रा० जो० वि० ५१

९५ ,, ,, सुमतिविजय P/ विनयमेरु १६९८ वी० अ० जयकरणफतेपुर अभय बीकानेर

९६ रघुवंशसर्गाधिकार जयसागरोपाध्याय १५वीं अ० तपा भंडार जेसलमेर

९७ रजोष्टकम् समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०

९८ राक्षसकाव्य टीका विनयसागर P/ सुमतिकलशपिप्पलक १७वीं उल्लेख-स्वकृत अविदपदशतार्थी

९९ राघवपाण्डवीयकाव्य टीका चारित्रवर्द्धन P/ कल्याणराज १६वीं अ०

१०० ,, ,, विनयसागर P/, सुमतिकलशपिप्पलक १७वीं उल्लेख-स्वकृत अविदपदशतार्थी

१०१ राजगृहप्रशस्तिः भुवनहिताचार्य १४१२ मु०

१०२ रामेअष्टादशार्थाः धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष १८वीं मु०

१०३ विचित्रमालिका (व्रजविलासकासार) रायचन्द्र १९वीं अ० प० रघुनाथराय बनारस १८३४ लि०

१०४ विजयदेवमहात्म्यमहाकाव्य श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वी मु०

१०५ विज्ञप्तिपत्रम् (महादण्डकस्तुतिगर्भ) समयसुन्दरोपाध्याय १८वी मु०

१०६ विज्ञप्तित्रिवेणी जयसागरोपाध्याय १४८४ मलिकवा० मु०

१०७ विज्ञप्तिपत्र ज्ञानतिलक P/. विजयवर्द्धन १८वीं मु० अभय बीकानेर

१०८ ,, ,, ,, मु०

१०९ विज्ञप्तिमहालेख-लोकहिताचार्यप्रति मेरुनन्दन P/. जिनोदयसूरि १४३१ पत्तन मु०

११० विज्ञानचन्द्रिका क्षमाकल्याणोपाध्याय १८५९ जेस० अ० ख० जयपुर चारित्र राप्राविप्र जोधपुर

१११ विद्वत्प्रबोधकाव्यम् श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं मु० अभय बीकानेर विनय ७

११२ विषमकाव्य-अवचूरि जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वी अ० धर्म आगरा

२१ पदानां म प्रा० अपभ्रंशभाषायां षट्पदीनां टीका)

११३ वैराग्यशतकम् धनराज S/. देहड १४९० मंडपदुर्ग मु०

११४ ,, पद्मानन्द S/. धनदेव १२वीं मु०

११५ ,, सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १७वीं अ० अभय बीकानेर

११६ वैराग्यशतक टीका (प्राकृत) गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६४७ मु०

११७ ,, ,, ज्ञानसागर P/ क्षमालाभ १८वी अ० केशरिया भडार जोधपुर

११८ ,, ,, सर्वार्थसिद्धि मणिमाला जिनसमुद्रसूरि P/ वेगड जिनचन्द्रसूरि १७४० अ० अभय बीकानेर

११९ शतकत्रयभर्तृहरि बालावबोध अभयकुशल १७५५ सिणली अ० यति प्रेमसुन्दर फलौदी

१२० ,, ,, रामविजयोपाध्याय P/ दयासिंह १७८८ सोजत अ० रा० जो० वि० ७९ बा० चि० १९३-१९५

१२१ शतकत्रयस्तवक (भर्तृ०) लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अ० खजांची बीका० पजाब भ० सूची

१२२ शतकत्रय हिन्दी पद्यानुवाद भाषाभूषण विनयलाभ P/. विनयप्रमोद १८वी १७२७ अ० अभय बीकानेर

१२३ शत्रुञ्जयतीर्थोद्धारकल्प महिमसुन्दर P/ साधुकीर्त्ति १६६९ जे० अ० अभय बी०

१२३A शत्रुंजयोद्धारलहरी स्वरूपचन्द्र P/. हितप्रमोद २०वी अ० सुमेरमल भीनासर

१२३B शत्रुंजयोत्पत्ति सुमतिकल्लोल P/ १७वीं अ० विनय २०८

१२४ शान्तिलहरी सूरचन्द्र P/ वीरकलश १७वीं अ० प्रेसकापी-विनय को० आमेट भ०

१२५ शिशुपालवधमहाकाव्य टीका चारित्रवर्द्धन P/ कल्याणराज १६वीं अ० स्टेट लायब्रेरी

१२६ ,, ,, धर्मरुचि P/ मुनिप्रभ १७वीं अ० विनय कोटा

१२७ ,, ,, 'संदेहध्वान्तदीपिका' ललितकीर्त्ति १७वीं अ० विनयकोटा राप्राविप्र जोधपुर ९८१

१२८ ,, ,, (तृतीयसर्ग) समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० सुराणा चूरू-स्वयलिखित

१२९ शृङ्गरमण्डन मन्त्रि-मण्डन १५वी मु०

१३० शृङ्गाररसमाला सूरचन्द्र P/. वीरकलश १६५९ नागोर अ० जयकरण

१३१ शृङ्गारवैराग्यतरगिणी टीका नन्दलाल १८वीं मु० विनय ९८९

१३२ शृङ्गारशतकम् जिनवल्लभसूरि १२वीं अ० विनय 'वल्लभभारती'

१३३ ,, धनराज P/. देहड १४९० मडपदुर्ग मु०

१३४ शृङ्गारादिसंग्रह सोदाहरण श्लोक सूरचन्द्र P/. वीरकलश १७वी अ० बडोदा इस्टीट्यूट

१३५ सघपतिरूपजीवंशप्रशस्ति श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १७वीं मु० सपादक-विनयसागर

१३६ सनत्कुमारचक्रिचरित महाकाव्य जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३वी मु० ,,

१३७ ,, स्वोपज्ञटीका ,, ,, उल्लेख-गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति

१३८ संदेशरासक टीका लक्ष्मीचन्द्र P/. देवेन्द्रसूरि रुद्रपल्लीय १४६५ मु०

१३९ समुद्रबद्धचित्रकाव्य दुर्गादास P/. विनयाणद १७८० कर्णगिरि अ० बाल चितौड

१४० सयोगद्वात्रिंशिका मान P/ सुमतिमेरु १७३१ अ० अभय बीकानेर

१४१ सव्वत्थशब्दार्थसमुच्चय गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं मु०

१४२ सारङ्गसार टीका हंसप्रमोद P/. हर्षचन्द्र १६६२ अ० हरिलोहावट

१४३ सूक्तिमुक्तावली जिनवर्द्धमानसूरि पिप्पलक १७३६ उदयपुर अ० सरस्वती भंडार उदयपुर

१४४ सूक्तिरत्नावली स्वोपज्ञ टीका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८४७ मकसूदावाद ख० जयपुर

१४५ स्थूलिभद्रगुणमाला महाकाव्य सूरचन्द्र P/ वीरकलश १६८० संग्रामनगर सांगानेर अ० वेश० जोध० घाणेराव

१४६ स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्रलेखनप्रशस्ति शिवसुन्दर P/. क्षेमराज १६वी मु० नाहर कलकत्ता

१४७ ,, ,, साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५२४ पाटण अ० तपा भंडार जेसलमेर

१४८ सभाकुतूहल कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १८वी अ० आचार्यशाखा भडार बीकानेर

१४९ समस्यापूर्त्तिश्लोकादिपद्य १८ समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०

१५० समस्यापूर्त्तिस्फुटपद्याः धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं मु०
(सस्कृत ३८, भाषा ३५ पद्य)

१५१ समस्याष्टकम् समयसुन्दरोपाध्याय १७वी मु०

काव्य-कथा-चरित्र

१ अञ्जनासुन्दरी कथा मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वी अ० सिद्धक्षेत्र सा०म० पालीताणा २०४६

२ ,, चरित्र गुणसमृद्धिमहत्तरा १४०६ जेस० अ० जेसलमेर भडार

३ अतिमुक्तक चरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १२८२ मु०

४ अम्बडचरित्र क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८५४ पाली० मु० विनय कोटा ३६४

५ आदिनाथचरित्र वर्द्धमानसूरि P/. अभयदेवसूरि ११६० खभात अ० हरि लोहावट

६ ,, (कल्पसूत्रान्तर्गत) ज्ञाननिधान P/ मेघकलश १८वी अ० अभय बीकानेर

७ ,, जिनसागरसूरि पिप्पलक १५वीं अ० विनय ६७५

७A आदिनाथ व्याख्यान वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वी अ० ,, ,,

८ आरामशोभा कथा जिनहर्षसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि पिप्पलक १५३७ ,, लींबडी भडार

९ ,, मलयहस P/. जिनचन्द्रसूरि पिप्पलक १६वीं अ० कान्ति छाणी

१० उत्तमकुमार चरित्र चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १६वी अ० अ० वी० स० १५७१ स्वलि० विनय ३०१

११ ,, सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १६वीं अ० हरि लोहावट

१२ उपमितिभवप्रपञ्चकथासमुच्चय वर्द्धमानसूरि ११वीं मु०

१३ कथाकोष समयसुन्दरोपाध्याय १६६७ मरोट अ० विनय कोटा अपूर्ण

१३A ,, ,, अ०

१४ कथाकोषप्रकरण स्वोपज्ञ टीका जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि ११०८ डीडवाणा मु०

१५ कथारत्नकोष देवभद्रसूरि P/. सुमतिवाचक ११५८ भरुच मु०

१६ कन्यानयन (कन्नाणा) तीर्थकल्प सोमतिलकसूरि P/. सघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १४वीं मु०
१७ कालिकाचार्य कथा कनकनिधान P/. चारुदत्त १८वीं अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
१८ ,, कनकसोम P/ १६३२ जेस० अ०
१९ ,, कमलसयमोपाध्याय १६वी अ० ख० जयपुर
२० ,, कल्याणतिलक P/ जिनसमुद्रसूरि १६वीं अ० अभय बीकानेर
२१ ,, जयकीर्त्ति P/. वादीहर्षनन्दन १७वी अ० बाल राप्राविप्र चित्तोड ७६४
२२ ,, जिनदेवसूरि P/. जिनप्रभसूरि १४वीं मु०
२३ ,, ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर १७वीं अ० बाल राप्राविप्र चित्तोड जोध० २१९२०
२४ ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अ० ख० जयपुर
२५ ,, शिवनिधानोपाध्याय १७वीं अ० वृद्धि जेसलमेर
२६ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६६६ वीरमपुर मु० बाल चित्तोड ६६
२७ ,, सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७१२ अ० यति सूर्यमल सग्रह
२८ कुन्थुनाथ चरित्र विबुधप्रभसूरि १३वी उल्लेख-बृहट्टिप्पनिका
२९ कुमारपालप्रबन्ध सोमतिलकसूरि P/. सघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १४२४ मु० केशरिया जोधपुर कांतिश्वाणी
३० कृतपुण्यचरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १३०५ अ० जेसल्मेर भडार, बढवाणकॅप भडार
३१ गुणदत्तकथा अभयचन्द्र P/. आणदराजलघुखरतर १६वीं अ०
३२ गुणसागरप्रवोधचन्द्रयुद्धप्रकाश जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड १८वीं अ० जेसलमेर भंडार
३३ चन्द्रप्रभचरित्र जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं मु०
३४ ,, टीका ,, साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १६वीं अ० आचार्यशाखा भडार बीकानेर
३५ ,, जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वीं अ० प्रेसकॉपी विनय कोटा
३६ जयसेनचरित्र रत्नलाभ P/. विवेकरत्नसूरि पिप्पलक १८वीं अ० पालणपुर भडार
३७ जिनकुशलसूरि चरित्र लब्धिमुनि उ० २०वीं अ०
३८ जिनकृपाचन्द्रसूरिचरित नयसागरसूरि ,, मु०
३९ जिनचन्द्रसूरिचरित (मणिधारी) लब्धिमुनि उ० ,, मु०
४० ,, ,, (युगप्रधान) ,, ,, मु०
४१ जिनदत्तसूरिचरित लब्धिमुनि उ० २०वीं अ०
४२ जिनयश सूरिचरित ,, ,, अ०
४३ जिनरत्नसूरिचरित ,, ,, अ०
४४ जिनवल्लभीय (आदि-शान्तिनेमि-पार्श्व-महावीरचरित प० टीका कनकसोम १७वीं अ० ख० बी० १६१५ स्वलिखित
४५ ,, ,, टीका साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५१९ अ० आ० शा० भ० बी० म० च० वि० ८०१
४६ ,, ,, बालावबोध कमलकीर्ति १६९८ जेस० अ०

४७ जिनवल्लभीय आदिनाथचरित जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं मु०
४८ ,, शान्तिनाथचरित ,, ,, ,, ,,
४९ ,, नेमिनाथ ,, ,, ,, ,, ,,
५० ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,, ,, ,,
५१ ,, महावीर ,, ,, ,, ,, ,,
५२ ,, ,, ,, टीका समयसुन्दरोपा० १६८४ लूण० अ० क्षमा वीकानेर ख० जयपुर
५२A ,, ,, ,, वालाववोध ,, १६६९ अ० स्वलिखित वि० २५६०९
५३ ,, ,, ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८१३ अ०
५४ ,, ,, ,, ,, विमलरत्न P/. विजयकीर्त्ति १७०२ सा० अ० व० भं० वी० ख० वी० जैनर
५५ ,, ,, ,, स्तवक रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८१३ वी० अ० वा० राप्राविप्र वित्तौड़ डूं० जेस०
५६ ,, ,, ,, सुमति P/. जयकीर्त्ति पिप्पलक १५वीं अ० महिमा वीकानेर
५७ जैनरामायण (भाषा) जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १७वीं अ० ख० कोटा
५८ थावच्चा सुकोशलचरित्र कनकसोम १६५५ नागोर अ० आचार्यशाखा भंडार वीकानेर
५९ दश आश्चर्यकाणि पद्मलाभ १८वीं अ० अभय वीकानेर
६० जिनवल्लभीय महावीरचरित वालाववोध नयमेरु P/. १६७८ अ० विनय ७१५ स्वयलिखित
६१ दशदृष्टान्तकथानक वालाववोध अभयधर्म १५७९ अ० सस्कृतालय कलकत्ता १२३
६२ दश श्रावकचरित्र पूर्णभद्रगणि P/ जिनपतिसूरि १२७५ अ० जेसलमेर भंडार
६३ देवदिन्न चरित्र जयनिधान P/. राजचन्द्र १७वीं अ०
६४ देवदूष्यवस्त्रार्पण कथानक समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ०
६५ द्रौपदीसहरण ,, ,, अ० खजांची वीकानेर
६६ धन्यशालिभद्रचरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १२८५ जेस० मु०
६७ धूर्त्ताख्यान संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १५वी मु०
६८ नरवर्मचरित्र विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६६९ अ० हिम्मत राप्राविप्र वीकानेर
६९ ,, विनयप्रभोपाध्याय P/. जिनकुशलसूरि १४१२ खंभात मु० विनय ६७३
७० ,, विवेकसमुद्रोपाध्याय १३२० खंभात अ० धर्म आगरा
७१ निर्वाणलीलावतीकथा जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि १०९२ आशापल्ली अनुपलब्ध
७२ निर्वाणलीलावतीकथासार जिनरत्नसूरि १३४० अ० जेसलमेर भडार
७३ पञ्चकुमारकथा लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७४६ रिणी अ० केशरिया जोध० चा० राप्राविप्र० बीकानेर
७४ परमहंससम्वोधचरित्र नयरग १६२६ वाल० मु० विनय कोटा ९०३
७५ पर्वरत्नावली जयसागरोपाध्याय १४७८ पाटण अ० ख० जयपुर विनय ९०७
७६ पार्श्वनाथ चरित्र देवभद्रसूरि P/. सुमतिवाचक ११६८ भरुच मु० जेसलमेर भडार
७७ पार्श्वनाथदशभव वालाववोध पद्मनन्दिर P/. विनयराज १६वीं अ० जेसलमेर भंडार

७८ पार्श्व-नेमिचरित भाषा वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वी अ० आत्मानन्द सभा भावनगर

७९ पुण्यसारकथानक विवेकसमुद्रोपाध्याय १३३४ जेस० मु०

८० पृथ्वीचन्द्र चरित्र जयसागरोपाध्याय १५०३ पालणपुर अ० ख० जयपुर

८१ प्रत्येकवुद्ध चरित्र जिनवर्द्धनसूरि १५वीं अ० हीराचन्द्रसूरि वनारस

८२ प्रदेशी चरित्र चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९१३ खभात अ० पुण्य अहमदावाद

८३ बकनालिकेर कथानक पंचाख्याने हीरकलश १६४९ अ० अभय

८४ भुवनभानुकेवली चरित्र प्राकृतगद्य लक्ष्मीलाभ लघुखरतर १७वी अ० जिनदत्तसूरि ज्ञानभडार सूरत

८५ ,, (लक्ष्मीलाभीय का सस्कृतानुवाद) तत्वहस १८०१ अ० जैनानन्दपुस्तकालय सूरत

८६ मदननरिंदचरित्र दयासागर P/. उदयसमुद्र तिलक १६१९ जालोर अ० वर्द्धमान भडार उदयपुर

८७ मनोरमाचरित्र वर्द्धमानसूरि P/. अभयदेवसूरि ११४० अ० ते० सभा सरदार० भावहर्ष वालोतरा

८८ महावीरचरित देवभद्रसूरि P/ सुमतिवाचक ११३९ मु०

८८A महावीर चरित्र अभयदेवसूरि अ० खभात ताडपत्रीय

८९ महावीर २७ भव कथानक रगकुशल P/. कनकसोम १६७० अ० आचार्य उपासरा, वीकानेर

९० ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ०

९१ ,, बालाववोध रत्ननिधानोपाध्याय P/ जिनचद्रसूरि १७वीं० अ० आचार्य शाखा वीकानेर

९२ मुनिसुव्रतचरित्र पद्मप्रभसूरि P/. विबुधप्रभसूरि १२९४ अ०

९३ मूँछ मांखण कथा अमरविजय P/ उदयतिलक १७७५ राहसर अ० अभय वीकानेर

९४ मोहजीतचरित्र क्षेमसागर १९३९ कोटा मु०

९५ यशोधरचरित्र क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३९ जे०, अ० विनय कोटा ४२८ वा० चि० १३८

९६ यशोधरसम्बन्ध सहजकीर्त्ति P/ हेमनन्दन १७वीं० अ० धरणेन्द्र जयपुर, अभय वी०

९७ रणसिंहनरेन्द्रकथा मुनिसोम P/, सिद्धान्तरुचि १५४० शितपत्र मु० अभय वी०, विनय १०१२

९८ रत्नसेनपद्मावती कथा जिनसमुद्रसूरि P/ जिनचन्द्रसूरि वेगड १८वीं० अ० अभय वीकानेर

९९ रूक्मिणी चरित्र ,, ,, ,, ,, ,,

१०० वर्द्धमानदेशना राजकीर्त्ति P/. रत्नलाभ १७वीं० मु०

१०१ वाग्विलासकथा सग्रह कीर्त्तिसुन्दर P/ धर्मवर्द्धन १८वीं० अ० जेसलमेर भ०, वृद्धि जेसलमेर

१०२ विविधतीर्थकल्प जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १३८९ दिल्ली मु०

१०३ वीरचरितम् जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं० अ० विनय 'वल्लभभारती'

१०४ वैतालपच्चीसी हेमाणद P/, हीरकलश १६४९ अ०

१०५ शीतवसन्तराजकथा लक्ष्मीचन्द्र P/ वाल्चन्द्रसूरि १६६० काशी अ० हीराचन्द्रसूरि वनारस

१०६ शीलवतीकथा आज्ञासुन्दर P/. आणंदसुन्दर रुद्रपल्लीय १५६२ काडिउपुर अ० तपा भंडार जेसलमेर

१०७ श्रीपालचरित्र (रत्नशेखरीय) टीका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/ अमृतधर्म १८६९ बीकानेर मु० विनय ७०२

१०८ श्रीपालचरित्र बालावबोध मनसोम १७२५ ?

१०९ श्रीपालचरित्र चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९०८ अ० कान्ति वडौदा १९१० स्वयं लि०

११० ,, जयकीर्त्ति १८६८ जेसलमेर मु० विनय ७१२

१११ ,, (प्राकृत का स्तवक) जिनकृपाचन्द्रसूरि २०वीं० मु०

११२ ,, लब्धिमुनि उ० २०वीं० मु०

११३ ,, भाषा देवमुनि १९०७ अ० अभय बी०, क्षमा बी० हरि लोहावट, विनय १८

११४ ,, ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९५७ अ० विनय कोटा ९८

११५ ,, हिन्दीअनुवाद वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि १२वीं० मु०

११६ समरादित्यकेवलीचरित्र पूर्वार्द्ध क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९वीं० अ०

११७ ,, उत्तरार्द्ध सुमतिवर्द्धन १८७४ अजमेर अ० वर्द्ध० बी०, पुण्यश्री जयपुर, हस वडौदा

११८ शत्रुञ्जय लघुमाहात्म्य जिनभद्रसूरि P/. जिनराजसूरि १५वीं० अ० जेसलमेर भंडार

११९ शिवरात्रिकथा मुनिराज P/. गुणसागर पिप्पलक १६८४ मांडवगढ अ० हरि लोहावट

१२० सिंहासनबत्तीसी हीरकलश १६३६ अ० अभय बीकानेर ख० जयपुर

१२१ सुमित्रचरित्र हर्षकुंजरोपाध्याय P/. जयकीर्त्ति पिप्पलक १५३५ ज्यायहपुरी अ० तपा भ० जे०, वि० ३१६

१२२ सुरसुन्दरीचरित्र धनेश्वरसूरि (जिनभद्रसूरि) १०९५ चन्द्रावती मु०

१२३ सुसढचरित्र लब्धिमुनि उ० २०वीं० अ०

१२४ स्वप्नाधिकार राजलाभ P/. राजहर्ष १७६५ केला अ०

पर्व-व्याख्यान

१ द्वादशपर्वकथा लब्धिमुनि उ० २०वीं० अ०

२ द्वादश पर्वव्याख्यान हिन्दी अनुवाद, वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि २०वीं० मु०

३ अष्टाह्निकाव्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८६० जेसलमेर मु०

४ ,, नन्दलाल १७६९ अ० दान बी० अभय बी० हीराचदसूरि बनारस

५ ,, भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८७३ अ० जैनभवन कलकत्ता

६ ,, ,, मतिमन्दिर १८८२ अ० खजांची बी०, यतिजयकरण बी० आचार्य शाखा भ० बी०

७ ,, ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९४९ अ० खजांची बीकानेर

८ अक्षयतृतीयाव्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९वीं० मु०

९ ,, भाषा चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन १९०१ अ० बद्रीदास सं० कलकत्ता

१० कार्तिकपूर्णिमाव्याख्यान जयसार १८७३ जेसलमेर मु० खजांची बीकानेर

११ चातुर्मासिक व्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३५ पाटोदी मु०
१२ ,, शिवनिधानोपाध्याय १७वीं० अ० चारित्र राप्राविप्र, खजांची, आचार्य शाखा बी०
१३ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६६५ अमरसर मु० विनय कोटा
१४ ,, नूरचन्द्र १७वीं० अ० क्षमा बी०, चारित्र राप्राविप्र बी०
१५ ,, भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८७३ अ० जैनभवन कलकत्ता
१६ चैत्रीपूर्णिमाव्याख्यान जीवराज P/ भवानीराम जिनसागरसूरि शाखा १९वीं० मु०
१७ ज्ञानपञ्चमीव्याख्यान (सौभाग्यपंचमी) बालचन्द्रसूरि २०वीं० अ० हीराचन्दसूरि बनारस
१८ ,, बालावबोध जिनहर्ष
१९ ,, भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८७३ अ०
२० दीपमालिका व्याख्यान उम्मेदचन्द्र P/. रामचन्द्र १८८६ अजीमगंज मु०
२१ दीपमालिकाकल्प (जिनसुन्दरीय) बाला० जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५१ पाटण अ०
२२ ,, ,, जिनहर्षसूरि P/. पिप्पलक १८२८ अ० विनय ४८१
२३ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६८२ अ० आचार्यशाखा बी० खजाची बी०
२४ पौषदशमी व्याख्यान जीवराज P/. भवानीराम जिनसा०शाखा १९वीं मु० चा० राप्राविप्र आचार्यशाखा बी०
२५ मेरुत्रयोदशी व्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय १८६० बीकानेर मु०
२६ ,, भाषा चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन १९०९ अ० बद्रीदास स० कलकत्ता
२७ मौनैकादशी व्याख्यान जीवराज P/. भवानीराम (जिनसागर शा०) १८४७ बीकानेर अ० डूगर जेसलमेर
२८ ,, शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील १८८४ जेसलमेर अ० बालराप्राविप्र जोधपुर
२९ ,, बालावबोध जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १८वीं अ० राप्राविप्र० जोधपुर
३० ,, भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १९वीं अ०
३१ ,, ,, चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन १९०९ अ० बद्रीदास स० कलकत्ता
३२ रोहिणी व्याख्यान भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८७३ अ०
३३ होलिका व्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय १९वी मु०
३४ ,, ,, भाषा आनन्दवल्लभ P/ रामचन्द्र १८७३ अ०

पट्टावली एवं गीत

१ खरतरगच्छ पट्टावली क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३० जीर्णगढ मु०
२ ,, ,, उ० लब्धिमुनि १९७० अ० अभय बीकानेर
३ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र १६९० खंभात अ० प्रेसकापी अभय बीकानेर
४ खरतरगच्छालङ्कारयुगप्रधानाचार्यगुर्वावली जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३०५ मु०

५	गुरुपट्टावली	गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम	१७वी	अ०
६	गुरुपर्वक्रम	जयसोमोपाध्याय	१९वी	अ० केशिरिया जोधपुर, पूना
७	पट्टावली	राजलाभ P/. राजहर्ष	१८वीं	अ०
८	वच्छावत वंशावली	समयसुन्दरोपाध्याय लि०	१७वी	अ० विनय २५६
९	महाजनवंश मुक्तावली	ऋद्धिसार (रामलाल) P/ कुशलनिधान	१९६०	मु०
१०	वर्द्धमानसूरि आदि प्राकृत प्रवन्ध	राजहंस P/. हर्षतिलक, लघु खरतर	१६वीं	मु०

गुर्वावली गीतादि

११	खरतरगच्छगुर्वावली(गुरुपरम्परा गीत)	गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम	१९वी	अ० पद्य ३१ 'प्रणमुं पहिली श्रीवर्द्धमान'
१२	खरतरगच्छ पट्टावली (खरतर गुर्वावली)	सोमकुंजर	१५वीं	मु० 'घण घण जिनशाशन' प० ३०
१३	खरतर गुरु गुणवर्णन छप्पय	अभयतिलकोपाध्याय, आदि	१४वीं १५वी	मु० 'सो गुरु सुगुरु जु छविह जीव'
१४	खरतर गुरुपट्टावली	समयसुन्दरोपाध्याय P/ सकलचन्द	१७वी	मु० प्रणमी वीर जिनेश्वर' ८
१५	गुर्वावली	चारित्रसिंह P/. मतिभद्र	१७वी	मु० 'सिवसुखकर रे पास जिनेसर' प० २१
१६	गुर्वावली	नयरंग	१७वी	मु० 'भारति भगवति रे तु वसि मुखकजें' प० ४
१७	गुर्वावली गीत	समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र	१७वीं	मु० उद्योतन वर्द्धमान जिणेसर'३
१८	गुर्वावली फाग	खेनहंस	१६वीं	मु० पणमवि केवललच्छिवरं १६
१९	गुर्वावली रेलुआ	सोममूर्त्ति P/. जिनेश्वरसूरि	१४वीं	अ० अभय
२०	जिनप्रभसूरि परम्परा गुर्वावली		१५वीं	मु० 'वंदे सुहम्म सामिं' १४
२१	पिप्पलक खरतर पट्टावली चौपई	राजसुन्दर P/. जिनचन्द्रसूरि पिप्पलक	१६६६	मु० 'समरुं सरसति गौतम पाय' १९
२२	वेगड खरतरगच्छ गुर्वावली			मु० 'पणमिय वीर जिनंदचन्द'७
२३	सुगुरु वंशावली	कुशलधीर P/. कल्याणलाभ	१७वी	मु० 'भट्टारक जिनभद्र खरउ' २

योग

१	ध्यानशतक वालाववोध	सुगनचन्द्र P/ जयरंग	१७३६ जेसलमेर	अ० सूर्यमल यति संग्रह, जैनरत्नपुस्तकालय
२	योगप्रकाश वालाववोध	मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति	१६वीं	अ० उ० जैन ग्र० क०
३	योगशास्त्र वालाववोध (हेमचन्द्रीय)	,, ,,	१६वी	अ० महिमा वीकानेर
४	,, स्तवक	शिवनिधानोपाध्याय	१७वी	अ० तपा भण्डार जेसलमेर

दर्शन

१	प्रमाण प्रकाश	देवभद्रसूरि P/. प्रसन्नचन्द्राचार्य सुमतिवाचक	१२वीं	मु०
२	प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञ टीकासह	जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि	११वीं	मु०
३	षड्दर्शन स० टीका(हरि०)	सोमतिलकसूरि P/.सघतिलकसूरिरुद्रपल्लीय	१३९२ आदित्यवर्द्धनपुर	मु० राप्राविप्र० जोधपुर
४	षड्दर्शनसमुच्चय (हरि०) वालाववोध	कस्तूरचन्द्र	१८९४ वीकानेर	अ० मुक्नजी वीकानेर
५	स्याद्वादपुष्पकलिका प्रकाश स्वोपज्ञटीकासह	चारित्रनन्दी	१९१४	अ० सिद्धक्षेत्र साहित्यमंदिर पालीताणा

न्याय

१ तत्वचिन्तामणि टिप्पणक सुमतिसागर P/ पुण्यप्रधान १७वी उल्लेख-देवचन्द्रकृत विचारसार टीका
२ तर्कभाषा 'प्रकाश' व्याख्या तर्कतरङ्गिणी (गोवर्द्धनीय) गुणरत्न P/. विनयसमुद्र१७वी अ० बडौदाइन्स्टीट्यूट. त्रि०म्यु०
३ तर्कसंग्रह फक्किका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८५४ मु०
४ ,, पदार्थबोधिनी टीका कर्मचद P/. दीपचद्र १८२२ नागपुर उ० जैन स० सा०इ०
५ न्यायसार चूर्णि भक्तिलाभ P/. रत्नचन्द्र १६वी अ० जैन भवन कलकत्ता
६ न्यायरत्नावली दयारत्न P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १६२६ अ० भ० पूना तेरापथी सरदारशहर
७ न्यायसिद्धान्तदीप शश० टिप्प० (मगलवाद) गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १७वी अ० स्टेट लाइब्रेरी बीकानेर
८ न्यायालङ्कार टिप्पणक उ० अभयतिलक P/. जिने०द्वितीय १४वी अ० जेसलमेर भण्डार
९ पञ्जिकाप्रबोध जिनप्रबोधसूरि P/ जिने० द्वितीय १४वी उल्लेख ख० यु० गुर्वावली पृ० ५७
१० बौद्धाधिकार विवरण ,, ,, ,, ,, ,,
११ मङ्गलवाद समयसुन्दरोपाध्याय १६५३ इलादुर्ग अ० जेसलमेर भण्डार
१२ सप्तपदार्थी टीका जिनवर्द्धनसूरि P/ जिनराज १४७४ मु० अभय बी० हरिलाहावट वि० कोटा
१३ ,, ,, भावप्रमोद P/ भावविनय १७३० वेनातट अ०

व्याकरण

१ अनिट्कारिका समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० अभय बीकानेर
२ अनिट्कारिका अवचूरि क्षमामाणिक्य १९वी० जालधर अ० चारित्रराप्रा।विप्र बीकानेर
३ उक्तिरत्नाकर साधुसुन्दर P/. साधुकीर्त्ति मु० चारित्र राप्राविप्र बी० विनय ७९८
४ उक्तिसमुच्चय जयसागरोपाध्याय १५वीं० अ० अभय बीकानेर
५ उपसर्गमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. बाहड १५वी० मडपदुर्ग मु०
६ ऋजुप्राज्ञव्याकरण सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १७वी अ० जेसलमेर भ० क्षमा बीकानेर
७ एकादिशतपर्यन्तशब्दसाधनिका , ,, १९वी० अ० यतिरामलाल भीनासर यति विष्णुदयाल फतहपुर
८ कातन्त्रदुर्गपदप्रबोधटीका जिनप्रबोधसूरि P/ जिनेश्वरसूरि द्वितीय १३२८ अ०
९ कातन्त्रविभ्रमवृत्ति जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १३५५ दिल्ली अ० विनय कोटा ८०२
१० कातन्त्रविभ्रमावचूरि चारित्रसिह P/. मतिभद्र १६३५ धवलकपुर अ० विनय कोटा राप्राविप्र जोध०वाल ४०८
११ गुणकित्वषोडशिका मतिकीर्त्ति P/ गुणविनय १७वीं० अ० ख० जयपुर, प्रेसकॉपी विनयकोटा
१२ चतुर्दशस्वरवादस्थल श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १७वी० अ० अभय बीकानेर
१३ धातुरत्नाकर 'क्रियाकल्पलता' स्वोपज्ञटीका साधुसुदर P/. साधुकीर्ति १६८० अ० बडा भ० चा० बी० कान्ति छाणी
१४ पञ्चग्रन्थीव्याकरण (शब्दलक्ष्मलक्षण) बुद्धिसागरसूरि १०८० जालोर अ० जेसलमेर भडार

१५ पदव्यवस्था विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १७वीं० अ० अनूप बीकानेर भं० पूना

१६ „ टीका उदयकीर्त्ति P/. साधुसुन्दर १६८१ „ „

१७ प्रक्रियाकौमुदी टीका विशालकीर्त्ति P/ ज्ञानप्रमोद १८वीं० अ० चारित्रराप्राविप्र बी० अ० बी०

१८ प्राकृतशब्दसमुच्चय तिलकगणि १५६६ अ०

१९ बालशिक्षाव्याकरण (जयानन्दसूरिकृत शब्दानुसारत) भक्तिलाभ अ० जेसलमेर भडार

२० भूधातुवृत्ति उ० क्षमाकल्याण P/ अमृतधर्म १८२९ राजनगर अ० ख० जयपुर प्रेसकॉपी विनयकोटा

२१ रुचादिगणवृत्ति जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १३७६ अ० लीबडी भं०, अभय बी० राप्रा० जो

२२ वेट्थपदविवेचन समयसुन्दरोपाध्याय १६८४ बीकानेर अ०

२३ व्याकरणकठिनशब्दवृत्ति श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १७वीं० अ० वडा भडार बीकानेर

२४ शब्दार्णवव्याकरण धातुपाठ) सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १७वीं० अ० धर्म आगरा

२५ षट्कारक जयसागर P/. जिनसागरसूरि १८वीं० अ० धरणेन्द्र, जयपुर

२६ सारस्वतधातुपाठ (धातुमुक्तावली) जिनसमुद्रसूरि P/ जिनचन्द्रसूरि बेगड १८वीं० अ०

२७ सारस्वतप्रयोगनिर्णय श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १७वीं० अ० अभय बीकानेर

२८ सारस्वतमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. वाहड १५वी मडपदुर्ग अ० विनयकोटा ५२९ स्टेटलायब्रेरी

२९ सारस्वतरहस्य समयसुन्दरोपाध्याय १७वी० अ० वडा भं० बी० प्रेसकॉपी वि०कोटा ४९६

३० सारस्वतव्याकरण टीका 'क्रियाचन्द्रिका' गुणरत्न १६४१ अ०

३१ सारस्वत टीका विशालकीर्त्ति P/. ज्ञानप्रमोद १७वीं० अ० गधैया स० सरदारशाहर

३२ „ „ समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ०

३३ „ „ सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६८१ अ० चारित्रराप्राविप्र बीकानेर

३४ „ बालावबोध (पंचसन्धिपर्यन्त) राजसोम १८वीं० अ० आचार्यशाखा बीकानेर

३५ „ „ श्रीसारोपा० P/. रत्नहर्ष १७वी० अ० जेसलमेर भडार

३६ „ भाषाटीका आनन्दनिधान P/ मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १८वी० अ० बहादुरमलबांठिया भीनासर

३७ सारस्वतानुवृत्त्यवबोधक ज्ञानमेरु (नारायण) P/. महिमसुन्दर १६६७ डीडवाणा अ० अनूपसंस्कृत ला० बी०

३८ सारस्वतीय शब्दरूपावली समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ० पूनमचन्ददूधेरिया छापर स्वयलिखित

३९ सिद्धहेमशब्दानुशासनलघुवृत्ति जिनसागरसूरि पिप्पलक १६वीं० अ० हीराचन्द्रसूरि बनारस

४० सिद्धहेमशब्दानुशासन टीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं० अ० धर्म आगरा

४१ सिद्धान्तचन्द्रिका टीका ज्ञानतिलक P/ विजयवर्द्धन १८वीं० अ० महिमा-अबीर बी० ख० जयपुर

४२ „ „ पूर्वार्द्ध रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८वीं० अ० दान बी०, बाल चि० २५८ वि० ७३७

४३ „ „ सदानन्द P/. भक्तिविनय १७९९ मु० ख० जयपुर, बाल २६०-२६१

४४ सिद्धान्तरत्नावली P/. जिनहेमसूरि जिनसागरसूरिशाखा १८९७ जयपुर अ०

४५ „ टीका नन्दलाल १८वीं अ० दान बीकानेर

४६ हैमलिङ्गानुशासन अवचूर्णि समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ० आचार्य भ० बीकानेर
४७ हैमलिङ्गानुशासन दुर्गपदप्रबोधटीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १६६१ जोधपुर मु० ख० जयपुर
४८ सिद्धान्तरत्निका व्याकरण जिनचन्द्रसूरि मु० विनय १२

कोष

१ अनेकार्थसग्रह (हेमचन्द्रीय) टीका जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वीं० अ० पाटण भडार
२ अभिधानचिन्तामणि नाममाला (हेमचन्द्रीय) टीका 'दीपिका' चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १७वी० अ० मोहन भ० सूरत
३ ,, ,, सारोद्धार श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १६६७ जोधपुर अ० राप्राविप्र जोधपुर
४ ,, ,, सारोद्धारस्य स० (श्रीवल्लभीय) रत्नविशाल P/. गुणरत्न १७वीं० राप्राविप्र० जोधपुर ४३०५
५ ,, भाषाटीका रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८२२ कालाऊना अ० डूंगर जे० वाल चितौड ११७,३५०
६ ? अमरकोष टीका धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं० अ० हरिलोहावट
७ पञ्चवर्गपरिहारनाममाला (अपवर्गनाममाला) जिनभद्रसूरि P/. जिनप्रियोपाध्याय १३वीं० अ० प्रेसकॉपी वि०कोटा
८ विशेषनाममाला साधुकीर्त्युपाध्याय P/. अमरमाणिक्य १७वीं० अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
९ शब्दप्रभेद टीका ज्ञानविमलोपाध्याय P/. भानुमेरु १६५४ बीकानेर अ० बडाभडार बीकानेर ख० जयपुर
१० शब्दरत्नाकर (शब्दप्रभेदनाममाला) साधुसुन्दर P/. साधुकीर्त्ति १७वीं० मु०
११ शिलोञ्छनाममाला जिनदेवसूरि P/. जिनप्रभसूरि १४वीं० मु०
१२ ,, टीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १६४५ नागोर अ० चारि० जेठी बाईबी० प्रेकॉ० वि०
१३ शेषसग्रह (हेमचन्द्रीय) टीका ,, ,, १६५४ बी० अ० विनयकोटा ७७७
१४ ,, ,, जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं० अ० खजाची बीकानेर
१५ सिद्धशब्दार्णव नामकोष सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन १७वीं० मु० डेक्कनकॉलेज पूना हरि० लो०
१६ हैमनिघण्टुकोष टीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १७वीं० मु०

छन्दःशास्त्र

१ छन्दोनुशासन जिनेश्वरसूरि प्रथम ११वीं जेस० ज्ञानभं० प्रेसकॉपी विनय कोटा
२ छन्दोरहस्य धनसागर P/. गुणवल्लभोपाध्याय १६वीं अ० राप्राविप्र जोधपुर २१४३२
३ छन्दोऽवतंस लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १८वी अ० राप्रा० चि० आ०शा०बीका० बाल ४१५
४ छन्दस्तत्त्वसूत्रम् धर्मनन्दन वाचक १६वीं अ० राप्राविप्र जोधपुर १७३०२
५ छन्द शास्त्र बुद्धिसागरसूरि ११वी उल्लेख-देवभद्रीय महावीरचरित्रप्रशस्ति
६ पिङ्गलशिरोमणि कुशललाभ १५७५ जेस० मु० विनय कोटा ५०५
७ मालापिंगल ज्ञानसार १८७६ बीका० मु० अभय बीकानेर

८ वृत्तप्रबोध जिनप्रबोधसूरि P/. जिनेश्वरसूरि द्वितीय १४वीं उल्लेख-खरतरगच्छ गुर्वावली पृ० ५७

९ वृत्तरत्नाकर टिप्पण क्षेमहंस १६वीं अ० राप्रा विप्रजोधपुर हेमचन्द्रसूरि पु० बीं०

१० ,, टीका समयसुन्दरोपाध्याय १६९४ जालोर अ० विनय कोटा ७३२, ७३३ अभय बीका०

११ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ० राप्रा० जोध० गधैया सं० सरदारशहर

लक्षण-ग्रंथ

१ अनूपशृङ्गार उदयचन्द्र १७२८ अ० स्टेट लायब्रेरी

२ अलङ्कारमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. वाहड १५वीं मडपदुर्ग मु०

३ कविमुखमण्डन ज्ञानमेरु (नारायण) P/. महिमसुन्दर १६७२ फतहपु० अ० दिगंबर भंडार जयपुर

४ काव्यप्रकाश टीका (मम्मटीय) गुणरत्न P/ विनयसमुद्र १६१० अ० दान बीकानेर

५ ,, ,, नवमोल्लासस्य क्षमामाणिक्य १८८४ राजपुर अ० बड़ा भंडार बीकानेर

६ चतुरप्रिया कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्नआद्यपक्षीय १७०४ अ० राज० शोधसंस्थान चौपासनी

७ पाण्डित्यदर्पण उदयचन्द्र १७३४ अ० हरि लोहावट

८ भावशतक समयसुन्दरोपाध्याय १६४१ अ० प्रेसकॉपी अभय बीकानेर

९ रसमञ्जरी महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १७वीं अ० अभय बीकानेर

१० रसिकप्रिया टीका (संस्कृत) समयमाणिक्य (समरथ) १७५५ जालिपुर० अ० दान, चारित्र बीकानेर

११ रसिकप्रिया भाषा टीका कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२४ जो० अ० अभय बीकानेर

१२ वाग्भटालङ्कार टीका उदयसागर P/. सहजरत्न पिप्पलक १७वीं अ० सरस्वती भंडार उदयपुर

१३ ,, ,, क्षेमहंस १६वीं उल्लेख-स्वकृत वृत्तरत्नाकर विनय ५२४ टीका

१४ ,, ,, जिनवर्द्धनसूरि P/. जिनराजसूरि १५वीं अ० विनय कोटा ६९५, ७२६ राप्राविप्र जो०

१५ ,, ,, ज्ञानप्रमोद १६८१ अ० बड़ाभंडार बी० अ० बीका० रा० जोधपुर

१६ ,, ,, राजहंस P/. जिनतिलकसूरि लघुखरतर १४८६ तेजपुर अ० भंडारकर पूना

१७ वाग्भटालंकार टीका समयसुन्दरोपाध्याय १६९२ अ० बीका०

१८ ,, ,, साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १७वीं अ०

१९ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय १५३५ अ० स्टेट लायब्रेरी जोधपुर

२० विदग्धमुखमण्डन अवचूरि जिनप्रभसूरि P/. (जिनसिंहसूरि) १४वीं अ० विनय कोटा ५४४, ५५५

२१ ,, टीका विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १६६९ तेज० अ०वृद्धि जेस०ज० राप्राविप्र बी०वि० को०

२२ ,, ,, 'सुबोधिका' शिवचन्द्र P/. लब्धिवर्द्धन पिप्पलक १६९९ अल० अ० डू० जे० चा० ख० रा०बी० तथा जो०

२३ ,, ,, 'दर्पण' श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं अ० अभय बीकानेर

२४ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ० कोटडी भंडार जोधपुर

संगीत

१ सङ्गीतमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/ वाहड १५वीं मण्डपदुर्ग अ० पाटण भंडार

वास्तुशास्त्र

१ वास्तुसार प्रकरण ठक्कुर फेरु S/ चन्द्र १३७२ कन्नाणा मु०

मुद्रा-रत्न-धातु

१ द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र) ठक्कुरफेरु S/ चन्द्र १३७५ मु०
२ धातूत्पत्ति ,, ,, १४वीं ,,
३ भूगर्भप्रकाश ,, ,, १४वीं अ०
४ रत्नपरीक्षा ,, ,, १३७२ मु०
५ रत्नपरीक्षा हिन्दी तत्त्वकुमार P/ दर्शनलाभ १८४५ राजगज मु० अभय बीकानेर कांतिसागरजी

मन्त्र

१ महाविद्या पूर्णकलश P/ जिनेश्वरसूरि १४वीं ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन व्यावर
२ बृहत्सूरिमन्त्रकल्प विवरण जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वी मु०
३ बृहत्ह्रींकारकल्प विवरण ,, ,, ,, मु०
४ वर्द्धमानविद्यापट्ट भक्तिलाभ P/. रत्नचन्द्र १६वीं मु०
५ ,, कल्प सघतिलकसूरि, रुद्रपल्लीय १५वीं अ०
६ सूरिमन्त्रकल्प जिनभद्रसूरि १५वी अ० धरणेन्द्र जयपुर
७ सूरिमन्त्रचूलिका जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं मु०

आयुर्वेद

१ कविप्रमोद मान P/. सुमतिमेरु १७४६ राप्रा० जोधपुर चा० राप्राविप्र बीकानेर
२ कविविनोद मान P/. ,, १७४५ लाहोर ,,
३ गुणरत्नप्रकाशिका गुणविलास P/. सिद्धिवर्द्धन १७७२ आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
४ तिब्बसहावी भाषा-वैद्यहुलास मलूकचन्द १८वी अभय बीकानेर
५ पथ्यापथ्यनिर्णय दीपचन्द्र P/ दयातिलक १७९२ जय० राप्राविप्र जोधपुर अभय बीकानेर
६ पथ्यापथ्य स्तवक चैनरूप १८३५ दान बीकानेर
७ बालतन्त्र-बालावबोध दीपचन्द्र P/. दयातिलक १७९२ जयपुर अभय बीकानेर
८ भोजनविधि रघुपति P/. विद्यानिधान १८वीं अभय बीकानेर
९ माधवनिधान-ज्वराधिकार टीका कर्मचन्द्र P/ चौथजी १८वीं हीराचन्दसूरि बनारस

१०	माधवनिधान-स्तवक	ज्ञानमेरु P/ महिमसुन्दर	१७वीं	दान बीकानेर
११	मूत्रलक्षण	हंसराज पिप्पलक	१८वीं	ख० जयपुर
१२	योगचिन्तामणि बालावबोध	रत्नजय P/ रत्नराज	१८वीं	महिमा बीकानेर भाडारकर पूना
१३	रामविनोद वैद्यक	रामचन्द्र P/. पद्मरंग	१७२० मु०सक्कीनगर	हरि लोहावट
१४	वातगितम्	चारुचन्द्रसूरि रुद्रपल्लीय	१५वीं	उल्लेख-पुरातत्त्ववर्ष २ पृ० ४१८
१५	वैद्यक ग्रन्थ	दीपचन्द्र P/ दयातिलक	१८वीं	आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
१६	वैद्यजीवन स्तवक	चैनसुख P/. लाभनिधान	१९वीं	फतहपुर भंडार
१७	,, ,,	सुमतिधीर	१९वीं	चूरू भंडार १८४१ लिखित
१८	वैद्यदीपक	ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान	२०वीं	मुद्रित
१९	शतश्लोकी स्तवक	चैनसुख P/. लाभनिधान	१८२०	फतहपुर भंडार
२०	,, ,,	रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह	१८३१ पाली	बाल राप्राविप्र चित्तोड़ ३९
२१	सन्निपातकलिका स्तवक	,, ,,	१८३१ पाली	
२२	,, ,,	हेमनिधान	१७३३	चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
२३	सारंगधर चापाई-वैद्यविनोद	रामचन्द्र P/. पद्मरंग	१७२६ मरोट	अ०
२४	समुद्रप्रकाश	जिनसमुद्रसूरि P/ जिनचन्द्रसूरि वेगड	१८वीं	जेसलमेर भडार

ज्योतिष-गणित

१	अङ्कप्रस्तार	लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष	१७६१ गूढा	मु०
२	अवयदी शकुनावली	रायचन्द्र P/.	१८१७ नागपुर	अभय बीकानेर
३	अनलसागर	मुनिचन्द्र लघुखरतर		राप्राविप्र जो० २५८०७
४	उदयविलास	जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि वेगड	१८वीं०	डूगर जेसलमेर
५	करणराजगणित	मुनिसुन्दर P/. जिनसुन्दरसूरि रुद्रपल्लीय	१६५५	स्याणवीश्वरपुर स्टेट लायब्रेरी बी०
६	कालज्ञानभाषा	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/ लक्ष्मीकीर्त्ति	१७४१	अभय बी० वि० १६२ बाल २८७
७	खेटसिद्धि	महिमोदय P/. मतिहंस	१८वीं०	राप्राविप्र जोधपुर
८	गणित नाठिसो	,,	१७३३	अभय बीकानेर
९	गणितसार	ठ० फेरु S/ चन्द्र	१४वीं०	मुद्रित
१०	ग्रहलाघवसारिणी टिप्पण	राजसोम P/	१८वीं०	धरणेन्द्र जयपुर
११	ग्रहायु	पुण्यतिलक P/ हर्षनिधान	१८वीं०	अभय बीकानेर
१२	चमत्कारचिन्तामणि टीका	अभयकुशल P/ पुण्यहर्ष	१८वीं०	चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
१३	,, स्तवक	मतिसार P/	१८वीं	फरीदकोट दान बीकानेर
१४	जन्मपत्रीपद्धति	महिमोदय P/. मतिहंस	१८वीं०	अभय बीकानेर

१५ जन्मपत्री पद्धति — रत्नजय P/ रत्नराज — १८वीं० — मानमल कोठारी बीकानेर

१६ ,, — लब्धिचन्द्र P/ कल्याणनिधान — १७५१ — महिमा बीकानेर

१७ जन्मपत्री विचार — श्रीसारोपाध्याय P/. — १७वीं० — आचार्यशाखा भ० बीकानेर

१८ जन्मप्रकाशिका ज्योतिष — कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय — १७वीं० — मेडता वृद्धि जेसलमेर

१९ जोइसहीर (ज्योतिसार) — हीरकलश P/ हर्षप्रभ — १६२१ — प० भगवानदास जयपुर, नाहर क०

२० ज्योतिषचतुर्विंशिका अवचूरि साधुराज P/ — १६वीं० — अभय बीकानेर

२१ ज्योतिषरत्नाकर — महिमोदय P/ मतिहंस — १७२२ अ०

२२ ज्योतिषसार — ठ० फेरु S/ चन्द्र — १३७२ — मुद्रित

२३ दीक्षाप्रतिष्ठाशुद्धि — समयसुन्दरोपाध्याय — १६८५ लूणकरणसर

२४ नरपतिजयचर्या टीका — पुण्यतिलक P/ हर्षनिधान — १८वीं० — हरिलोहावट

२५ पञ्चाङ्गानयनविधि — महिमोदय P/ मतिहंस — १७२३ — महरचन्द भ० बीकानेर

२६ प्रेमज्योतिष — ,, ,, — १८वीं० — राप्राविप्र जोधपुर

२७ भुवनदीपक बालावबोध — रत्नधीर P/ ज्ञानसागर — १८०६ — प० भगवानदास जयपुर

२८ ,, ,, — लक्ष्मीविनय P/ अभयमाणिक्य — १७६७ अ०

२९ मुहूर्त्तमणिमाला — रामविजयोपाध्याय P/ दयासिंह — १८०१ — बालोतरा भंडार

३० भौवरी ग्रहसारणी — भूधरदास P/ रंगवल्लभ जिनसागरसूरि शाखा — १८२७ अभय बीकानेर

३१ लघुजातक टीका — भक्तिलाभ P/ रत्नचन्द्र — १५७१ बीकानेर — महिमा बीकानेर

३२ विवाहपटल अर्थ — विद्याहेम — १८३० — वर्द्धमान भ० बीकानेर

३३ ,, बालावबोध — अमर P/ सोमसुन्दर — १८वीं — अभय बीकानेर

३४ ,, भाषा — अभयकुशल P/ पुण्यहर्ष — १८वीं० — अभय बीकानेर हरिलोहावट

३५ ,, ,, — रामविजयोपाध्याय P/ दयासिंह — १७वीं० — अभय बीकानेर

३६ जातकपद्धति व्याख्या — जिनेश्वरसूरि P — वडोदा इन्स्टीट्यूट २८०५

३७ शकुनरत्नावली-वर्द्धमानसूरि P/. अभयदेवसूरि — १२वीं — उ०-जैं० सा० बृ० इ० भाग ५ पृ० १९८

३७A शकुनविचार दोहा — P/ लक्ष्मीचन्द्र — १८वीं — डूंगर जेसलमेर

३८ षट्पञ्चाशिका वृत्ति बालावबोध महिमोदय P/. मतिहंस — १८वीं — चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

३९ सामुद्रिक भाषा — रामचन्द्र P/ — १७२२ अ०

४० स्वरोदय — चिदानंद (कपूरचन्द्र) P/ चुन्नीजी — १९०७ — मु० सेठिया बीकानेर

४१ स्वरोदय भाषा — लाभवर्द्धन (लालचन्द) शान्तिहर्ष — १७५३ — महिमा-रामलालजी बीकानेर

४२ होरकलश (जोइसहीर) — हीरकलश P/. हर्षप्रभ — १६५७ — मु० भावहर्ष भंडार

४३ होरावबोध — लब्धोदय P/. ज्ञानराज — १८वीं — अभय बीकानेर

४४ सईकी — जयचन्द P/. विनयरंग — १७७१ — मुद्रित कांतिसागरजी

कक्क-फागु-वेलि-विवाहलो-संधि-चौपई-रासादि

१ अग फुरकण चौपई हेमाणद P/ हरिकलश १६३६ अभय वीकानेर

२ अचलमत स्वरूपवर्णन चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७४ मालपुरा थाहरू जेसलमेर

३ अजनासुन्दरी चौपई क्मलहर्ष P/. मानविजय १७३३ आचार्यशाखा भडार वीकानेर

४ ,, ,, जिनोदयसूरि P/ जिनसुदरसूरि वेगड १७७३ डूँगर, जेसलमेर

५ ,, प्रवन्व गुणविनयोपाध्याय P/, जयसोम १६६२ खंभात अभय वोका० चा०राप्रावि वी०स्व०लि०

६ ,, रास पुण्यभुवन (जिनरगोय) १६८४ (?) उदयपुर राणा जगतसिंह राजकोट

७ ,, ,, भुवनकीर्त्ति P/. ज्ञानमन्दिर १७०६ उद० अभय वीकानेर

८ अतरग फाग रगकुशल P/. कनकसोम १७वीं केशरिया जोवपुर

९ अगड़दत्त चौपई पुण्यनिधान P/ विमलोदय भावहर्षीय १७०३ वैरागर पाटण वाड़ी०

१० ,, प्रवन्व श्रीमुन्दर P/. हर्षविमल १६६६ भाणवड० अभय वी० झडियाला गुरु भडार

११ ,, रास कुशललाभ १६२५ वीरमपुर

१२ ,, ,, गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १७वीं अभय वीकानेर

१३ ,, ,, ललितकीर्त्ति १६७९ भुजनगर उ० जै० गु० क०

१४ अघटकुमार चौपई मतिकीर्त्ति P/. गुणविनयोपाध्याय १६७४ आगरा ,,

१५ अघटित राजर्षि चौपई भुवनकीर्त्ति P/. ज्ञानमन्दिर १६६७ लवेरा ख० जयपुर

१६ अजापुत्र चौपई पद्मरत्न P/. विजयसिंह आद्यपक्षीय १६६५ मेडता झूँझणू

१७ ,, ,, भावप्रमोद P/ भावविनय १७२६ बीकानेर सेठिया बीकानेर

१८ ,, ,, रूपभद्र P/. उदयहर्ष १७६८ देवीकोट केशरिया जोधपुर

१९ अजितसेन कनकावती रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५१ पाटण क्षमा वीकानेर सेठिया वीकानेर

२० अध्यात्म रास रगविलास P/. (जिनचन्द्रसूरि जिनसागरसूरिशाखा) १७७७ मु०

२१ अनाथी सन्धि विमलविनय P/ नयरग १६४७ कसूरपुर अभय वीकानेर ख० जयपुर

२२ अभयंकर श्रीमतो चौपई लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मोकीर्त्ति १७२५ बद्रीदास कलकत्ता जिनविजयजी

२३ अभयकुमार चौपई पद्मराज P/. पुण्यसागरोपाध्याय १६५० जे० ख० जयपुर अभय वीकानेर

२४ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५८ पाटण

२५ ,, ,, लक्ष्मीविनय P/. अभयमाणिक्य १७६० मरोट

२६ अभयकुमार जयसाधु रास कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन १७५९ जयतारण० अभय वीकानेर

२७ अमरकुमार रास लक्ष्मीवल्लभ P/ लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं क्षमा वीकानेर

२८ अमरतेज धर्मवुद्धि रास रत्नविमल P/. कनकसागर १९वी राप्राविप्र जोधपुर

२९ अमरदत्त मित्रानन्द रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४९ पाटण

३० अमरदत्त मित्रानन्द रास यशोलाभ १८वीं अभय बीकानेर
३१ ,, ,, ,, लक्ष्मीप्रभ P/. कनकसोम १६७६
३२ अमरसेन जयसेन रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ पाटण मुद्रित
३३ अमरसेन जयसेन चौपई धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक १६वीं अभय बीकानेर हरि लोहावट
३४ अमरसेन वयरसेन चौपई जयरग (जैतसी) P/ पुण्यकलश १७१७ जेसल० अभय बीकानेर
३५ ,, ,, ,, दयासार P/. धर्मकीर्त्ति १७०६ शीतपुर क्षमा बीकानेर
३६ ,, ,, ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७२४ सरसा ,,
३७ ,, ,, ,, पुण्यकीर्त्ति P/. हसप्रमोद १६६६ सांगानेर फूलचंदजी भावक फलौदी
३८ ,, ,, ,, राजशील P/. साधुहर्ष १५६४
३९ ,, ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४४ पाटण
४० ,, ,, सधि रंगकुशल P/. कनकसोम १६४४ सांगानेर अभय बीकानेर
४१ अयवंतीसुकुमाल चौढालिया कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन १७५७ मेडता
४२ ,, ,, रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७४१ राजनगर अभय बीका० क्षमा बीकानेर वाल ४५८
४३ अरहदास चौपई खुश्यालचद P/. जयराम १९वी सेठिया बीकानेर, पार्श्वनाथ जैनपुस्तकालय सूरतगढ
४४ अरहन्नक चौपई राजहर्ष P/. ललितकीर्त्ति १७३२ दंतवासपुर क्षमा बीकानेर
४५ ,, , सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७१२ बुरहानपुर दि० भट्टारक भडार नागोर
४६ ,, प्रवन्ध नयप्रमोद P/. हीरोदय १७१३
४७ ,, रास आनन्दवर्द्धन P/ महिमसागर १७०२ अभय बीकानेर
४८ ,, ,, विमलविनय P/. नयरग १७वी अभय-मुकनजी-बीकानेर चारित्र राप्रा० वी०
४९ ,, ,, समयप्रमोद P/ ज्ञानविलास १६५७ धरणेन्द्रसूरि जयपुर
५० अर्जुनमाली चौपई विद्याविलास P/. कमलहर्ष १७३८ हरिलोहावट
५१ ,, सधि नयरग P/. १६२१ वीरमपुर वद्रीदास कलकत्ता
५२ अर्हद्दास चौपई हीरकलश P/. १६२४ विनय ५८२
५३ अर्हद्दास सवन्ध महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १६७५ झूठापुर वद्रीदास कलकत्ता
५४ अशनादिविचार चौपई राजसोम P/ जयकीर्त्ति जिनसागरसूरिशाखा १७२९ आचार्यशाखा भडार बीकानेर
५५ अष्टमद चौपई यु० जिनचन्द्रसूरि P/ जिनमाणिक्यसूरि १७वीं प्र०
५६ आणद सधि श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६८४ मु० पुष्करणी अभय बीकानेर विनय कोटा
५७ आतमकरणी सवाद (रसरचना चतुष्पदिका) जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १७११ मुलतान डूंगर जेसलमेर
५८ आत्ममतप्रकाश चौपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १८वीं
५९ आराधना चौपई हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६२३ नागोर
६० आरामनन्दन पद्मावती चौपई दयासार P/. धर्मकीर्त्ति १७०४ मुलतान कातिसागरजी

६१	आरामशोभा चौपई	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७६१ पाटण
६२	,, ,,	दयासार P/. धर्मकीर्त्ति	१७०४ मुलतान राप्राविप्र जोधपुर
६३	,, ,,	राजसिंह P/. विमलविनय	१६८७ वाडमेर
६४	,, ,,	समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास	१६५१ वीकानेर अभय वीकानेर
६५	आर्द्रकुमार धमाल	कनकसोम	१६४४ अमरसर अभय वीकानेर
६६	आषाढभूति धमाल	कनकसोम	१६३२ खंभात अभय वीकानेर विनय ४११
६७	,, प्रबंध	साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य	१६२४ दिल्ली क्षमा वीकानेर
६८	इक्षुकार सिद्ध ? चौपई	अमर P/. सोमसुन्दर	१८वीं सेठिया वीकानेर
६९	इक्षुकारी चौपई	क्षेमराज P/ सोमध्वज	१६वीं अभय क्षमा वीकानेर विनय ६४
७०	इलापुत्र ,,	दयासार P/. धर्मकीर्त्ति	१७१० सुहावानगर ,, ,, ,,
७१	,, रास	गुणनन्दन P/. ज्ञानप्रमोद	१६७५ विहारपुर अभय वीकानेर धरणेन्द्र जयपुर
७२	,, ,,	दयाविमल P/. कनकसागर	१८६६ राजनगर
७३	इलायचीकुमार चौपई	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड	१७५१ जीवातरोग्राम डूंगर जेसलमेर
७४	उदर रासो	राजसोम	१८वी महिमा वीकानेर
७५	उत्तमकुमार चौपई	जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि वेगड	१७०८ जेसलमेर डूंगर जेसलमेर
७६	,, ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७४५ पाटण मुद्रित
७७	,, ,,	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड	१७३२ जेसलमेर भंडार
७८	,, ,,	महिमसिंह (मानकवि) P/ शिवनिधान	१६७२ महिम भट्टारक भडार नागोर
७९	,, ,,	महीचन्द्र P/ कमलचन्द्र लघुखरतर	१५६१ जवणपुर दान-जयचद भडार बीकानेर
८०	,, ,,	तत्त्वहस	१७३१ मडाहुडा नगर विनयचन्द भडार जयपुर विनय ६८४
८१	,, ,,	विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक (जिनसागरसूरिशाखा)	१७५२ पाटण मुद्रित
८२	उद्यम-कर्म सवाद	कुशलधीर P/ कल्याणलाभ	१६९६ किसनगढ अभय वीकानेर
८३	,, ,,	वादी हर्षनन्दन P/. समयसुन्दर	१७वी तेरापथी सभा सरदारशहर
८४	उपमितिभवप्रपच कथारास	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७४५ पाटण
८५	ऋषभदत्त चौपई	रत्नवर्द्धन P/. रत्नजय	१७३३ शखावती
८६	ऋषभदत्त रूपवती चौपई	अभयकुशल P/. पुण्यहर्ष	१७३७ महाजन खजाची वीकानेर
८७	ऋषिदत्ता चौपई	क्षमासमुद्र P/. जिनसुन्दरसूरि वेगड	१८वी जेसलमेर भडार
८८	,, ,,	गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम	१६६३ खंभात अभय वीकानेर स्वयं लिखित
८९	,, ,,	जिनसमुद्रसूरि P/ जिनचन्द्रसूरि वेगड	१६९८ जेसलमेर भडार, अभय बीकानेर
९०	,, ,,	ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर	१७वी मुलतान जैनभवन कलकत्ता, अभय बीकानेर
९१	,, ,,	प्रीतिसागर P/. प्रीतिलाभ जिनरगीय	१७५२ राजनगर नाहर कलकत्ता

९२ ऋषिदत्ता चौपई जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १६९८ जेसलमेर भंडार, अभय बीकानेर
९३ ,, ,, रगसागर P/. भावहर्षसूरि भावहर्षी १६२६ जोधपुर अभय बीकानेर हरिलोहावट
९४ ,, रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७४९ पाटण
९५ एकादशी प्रबन्ध अमर P/ सोमसुन्दर १७११ वर्द्धमान भडार बीकानेर
९६ ओसवाल (गोत्र) रास रामविजयोपाध्याय P/ दयासिंह १९वी,मु० अभय बीकानेर
९७ कनकरथ चौपई कनकनिधान P/. चारुदत्त १८वी कातिसागरजी
९८ कयवन्ना चौढालिया जिनोदयसूरि P/ जिनतिलकसूरि भावहर्षीय १६६२ हुवड म० भडार मण्डन उदयपुर
९९ , चौपई ज्ञानसागर P/ क्षमालाभ १७६४ सेठिया बीकानेर
१०० कयवन्ना चौपई विनयमेरु P/. हेमधर्म १६८९ बुरहानपुर राप्राविप्र जोधपुर
१०१ ,, ,, समयप्रमोदP/ ज्ञानविशाल १६६३ सेत्रावा अभय बीकानेर
१०२ ,, रास जयरंग(जैतसी)P/. पुण्यकलश १७२१ बीकानेर अभय-सेठिया बीकानेर हरिलो०, विनय ६३, बाल २५३
१०३ ,, ,, जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १६८९ बुरहानपुर राप्राविप्र जोधपुर
१०४ ,, ,, लाभोदय P/. भुवनकीर्त्ति १७वी ख० जयपुर, जैनभवन कलकत्ता
१०५ ,, सधि गुणक्नियोपाध्याय P/ जयसोम १६५४ महिम
१०६ करसवाद ,, अभयमोम P/ सोमसुन्दर १७४७ अभय बीकानेर
१०७ करमचन्द वशावली रास गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६५५ तोसामनगर मुद्रित
१०८ कलावती चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७३ सागानेर पादरा ज्ञानभडार
१०९ ,, ,, रगविनय P/. जिनरगसूरि जिनरगीय १७०६ खभात अभय बीकानेर
११० ,, ,, विद्यासागर P/ सुमितकल्लोल १६७३ नागोर
१११ ,, ,, सहजकीर्त्ति P/ हेमनन्दन १६६७ चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
११२ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ पाटण बाल राप्राविप्र चित्तोड
११३ कामलक्ष्मीकथा चौपई प्रबन्ध जयनिधान P/. राजचन्द्र १६७९ (?४९) जेसलमेर भडार
११४ कालासवेलि चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७९७ राजपुर जयचन्द भ० बीकानेर
११५ कीर्तिधर सुकोशल चौढालिया आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १७३६ बगडी केशरिया जोधपुर
११६ ,, ,, प्रबन्ध महिमसिंह (मानकवि) P/ शिवनिधान १६७० पुष्कर
११७ कुवेरदत्ता चौपई नयरग १६२१ थाहरु जेसलमेर
११८ कुमतिकदली कृपाणिका चौपई कमलसयमोपाध्याय १६ वीं हस वडोदा
११९ कुमति-विध्वसन चौपई हीरकलश P/ हर्षप्रभ १६१७ कर्णपुरी, नाहर कलकत्ता
१२० कुमारपाल रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७४२ पाटण मुद्रित, विनय ४३७, बाल चित्तोड २२२
१२१ कुमारमुनि रास पुण्यकीर्त्ति P/. हसप्रमोद १७ वीं
१२२ कुरुध्वजकुमार चोपई आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १७३४ सोजत कांतिसागरजी

१२३ कुलध्वजकुमार चौपई   कमलहर्ष P/. मानविजय   १८वीं आचार्य शाखा भं० बीकानेर

१२४ „ „   विद्याविलास P/. कमलहर्ष   १७४२ लूणकरणसर सुमेरमल भीनासर

१२५ „ रास   उदयसमुद्र P/. कमलहर्ष पिप्पलक   १८वी अहमदाबाद

१२६ „ „   धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक   १५८४ सेठिया बीकानेर

१२७ „ „   राजसारP/. धर्मसोम   १७०४ हाजीखानदेरा

१२८ कुलध्वज रास-रसलहरी उदयसमुद्र P/ कमलहर्ष   १७२८ अहमदाबाद डूंगर जेसलमेर

१२९ कुसुमश्री महासती चौपई   जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७०७ अभय बीकानेर

१३० कुर्मापुत्र चौपई   जयनिधान P/. राजचन्द्र   १६७२ देरावर जयचन्द म० बीकानेर

१३१ कृतकर्म रास   लब्धिकल्लोल P/. विमलरंग   १६५२ बावेरापुर जयकरण बीकानेर हरिलोहावट

१३२ केशी गौतम चौढालिया   गुमानचद P/. खुस्यालचन्द   १८६७ दशपुर आचार्य शाखा भ० बीकानेर

१३३ केशी चौपाई   अमरविजय P/. उदयतिलक   १८०६ गारबदेसर

१३४ केशी प्रदेशी संधि   नयरग   १७वीं   अभय बीकानेर

१३५ „ „ प्रबंध   समयसुन्दरोपाध्याय   १६६६ अहमदाबाद मुद्रित

१३६ क्षुल्लककुमार चौपई   महिमसिंह (मानकवि)P/. शिवनिधान   १७वीं   अभय बीकानेर

१३७ „ „   मेघनिधान P/. रत्नसुन्दर भावहर्षीय १६८८ तिमरी बालोतरा भंडार झडियालागुरु भंडार

१३८ „ प्रबंध   पद्मराजP/. पुण्यसागरोपाध्याय १६६७ मुलतान   अभय बीकानेर

१३९ „ मुनि प्रबंध   जिनसिंहसूरि P/ यु० जिनचन्द्रसूरि १७वीं०   हरि लोहावट

१४० „ रास   श्रीसुन्दर P/ हर्षविमल   १७वी   भट्टारकभडार नागोर

१४१ „ „   समयसुन्दरोपाध्याय   १६६४ जालौर   मुद्रित

१४२ खन्धकमुनि चौढालिया   उदयरत्न P/ विद्याहेम   १८८३ देशणोक   महिमाभक्ति खजाँची बीकानेर

१४३ खापरा चोर चौपई   अभयसोम P/. सोमसुन्दर   १७२३ सिरोही   विनय २८, २०५

१४४ गजभजन कुमार चौपई   मुनिप्रभ P/. जिनचन्द्रसूरि   १६४३ बीकानेर   „

१४५ गजसिंह चरित्र चौपई   जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७०८   खजांची बीकानेर

१४६ „ नरिंद „   नन्दलाल   १८वीं   „

१४७ गजसुकुमाल चौपई   जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष   १७१४   डूंगर जेसलमेर

१४८ „ „   पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल   १७८६   अनंतनाथज्ञान भं० बम्बई

१४९ „ „   भुवनकीर्ति P/. ज्ञानमन्दिर   १७०३ खम्भात   आचार्य शाखा भ० बीकानेर

१५० „ „   लावण्यकीर्ति P/. ज्ञानविलास   १७वीं   के० जोधपुर, नाहर कलकत्ता

१५१ „ रास   जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि   १६९९ अहमदाबाद   मुद्रित से० बीकानेर हरिलो०

१५२ गुणकरड गुणावली चौपई   ज्ञानमेरु (नारायण,P/. महिमसुदर १६७६ विगयपुर   अभय बीकानेर विनय २९

१५३ „ „ रास   जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७५१ पाटण   „

१५४	गुणधर्म कुमार चौपई	ज्ञानविमल P/. लब्धिरग	१७१६ भुभनू	हरि लोहावट
१५५	गुणसुन्दर ,,	जिनसुन्दरसूरि वेगड	१८वी	
१५६	,,	गुणविनय P/. जयसोम	१६६५	चारित्रराप्राविप्र बीकानेर
१५७	गुणसुन्दरी ,,	कुशललाभ P/. कुशलधीर	१७४८	दिगम्बर ज्ञा० भ० कोटा
१५८	,, ,,	जिनोदयसूरि P/. जिनसुदर० वेगड	१७५३ सकतीपुर	जेसलमेर भण्डार
१५९	,, ,,	विनयमेरु P/. हेमधर्म	१६६७ फतेपुर	ख० जयपुर
१६०	गुणस्थानकविचार चौपई	साधुकीर्ति P/. अमरमाणिक्य	१७वी	
१६१	गुणस्थानविवरण चौपई	कनकसोम	१६३१	धर्मआगरा खजाची बी०
१६२	गुणावली चौपई	अभयसोम P/. सोमसुन्दर	१७४२ सोजत	उदयचन्द जोधपुर
१६३	,, ,,	जिनोदयसूरि P/. जिनसुदरसूरि वेगड	१७७३	जेसलमेर भडार
१६४	,, ,,	लब्धोदय P/. ज्ञानराज	१७४५ उदयपुर	
१६५	गौडी पार्श्वनाथ चौपई	सुमतिरग P/. चन्द्रकीर्ति	१८वीं	बडौदा इस्टीच्यूट
१६६	गोतमपृच्छा चौपई	समयसुन्दरोपाध्याय P/ सकलचद्र	१६६५ चाद्रेड	अभय बीकानेर
१६७	गौतम स्वामी ,,	लक्ष्मीकीर्ति	१८वीं	ख० जयपुर
१६८	,, छन्द	मेरुनन्दन P/ जिनोदयसूरि	१५वी	अभय
१६९	,, रास	जयसागरोपाध्याय	१५वी	,,
१७०	,, ,,	विनयप्रभोपाध्याय	१४१२ खम्भात	मुद्रित
१७१	,, ,,	लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति	१८वीं	कान्ति० लावण्यकीर्ति गुटका
१७२	चन्दन रास	करमचन्द P/ गुणराज	१६८७ कालधरी	मुद्रित
१७३	चन्दनवाला रास	आसिगु	१३वीं	प्र०
१७४	चन्दन मलयगिरि चौपई	कल्याणकलश	१६६३ मरोट	केशरिया जोधपुर
१७५	,, ,,	क्षेमहर्ष P/ विशालकीर्त्ति	१७०४ मरोट	महिमा बीकानेर
१७६	,, ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७०४	अभय सेठिया बीकानेर
१७७	,, ,,	,, ,,	१७४४ पाटण	
१७८	,, ,,	भद्रसेन	१७वीं	अभय बीकानेर
१७९	,, ,,	सुमतिहस P/. जिनहर्ष० आद्य०	१७११	खजाची बीकानेर प्र०
१८०	,, रास	यशोवर्द्धन P/. रत्नवल्लभ	१७४७ रतलाम	अ० बी० विनय ४८३,७५६
१८१	चन्द्रप्रभ जन्माभिषेक	वीरप्रभ	१४वी	अभय बीकानेर
१८२	चन्द्रलेहा चौपई	मतिकुशल P/ मतिवल्लभ	१७२८ पचियाख	अ०-क्ष० बी० ख० जयपुर विनय ८०, ४८३
१८३	चन्द्रोदयकथा ,,	अभयसोम P/ सोमसुन्दर	१७२० नवसर	अभय बीकानेर
१८४	चंपक ,,	रगप्रमोद P/. ज्ञानचन्द्र	१७१५ मुलतान	

१८५ चंपकमाला चौपई जगनाथ P/. इलासिंधुर १८२२ माचोर घेवर पुस्तकालय

१८६ चंपक श्रेष्ठि ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६९५ जालोर अ० क्षमा वी० हरिलो वि० ६६

१८७ चंपकसेन ,, जिनोदयसूरि P/. जिनतिलकसूरि भावहर्षीय १६६६ वीरमपुर से० वी० जैनरत्न पु० जोधपुर

१८८ चतु शरणप्रकीर्णक संधि चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १६३१ जेसलमेर दान बीकानेर

१८९ चारकषाय संधि विद्याकीर्ति P/. पुण्यतिलक १७वीं अभय बीकानेर

१९० चार प्रत्येकबुद्ध रास समयसुन्दरोपाध्याय १६६५ आगरा राप्राविप्र जोधपुर अ० वी० विनय २८१

१९१ चारित्र मनोरथ माला क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं अभय

१९२ चित्तोड आदिनाथ फाग शिवसुन्दर P/. क्षेमराज ,, अभय बीकानेर

१९३ चित्रलेखा चौपई दयासागर P/. जीवराज पिप्पलक १६६६ दिल्ली स्थानक० पुस्तकालय जोधपुर

१९४ चित्रसंभूति रास ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर १७वीं क्षमा बीकानेर

१९५ ,, संधि जिनगुणप्रभसूरि-वेगड १७वीं जेसलमेर जेसलमेर भंडार

१९६ ,, ,, नयप्रमोद P/ हीरोदय १७१६ जेसलमेर खजाँची बीकानेर

१९७ चित्रसेन पद्मावती चौपई उदयरत्न P/. जिनसागरसूरि (शा०) १६६७ हरिलोहावट, स्टेट लाइब्रेरी

१९८ ,, ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १८वीं हरि लोहावट

१९९ ,, ,, ,, भावसागर १८वीं अभय बीकानेर

२०० ,, ,, ,, यशोलाभ ,, ,,

२०१ चित्रसेन पद्मावती चौपई रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८१४ बीकानेर अभय बीकानेर

२०२ ,, ,, रास विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १७ वीं

२०३ चौदह स्वप्न चौपई अवीरजी २० वीं जैनभवन कलकत्ता

२०४ चौदह स्वप्न भाषा धवल विनयलाभ P/ विनयप्रमोद १८ वीं चतुर्भुज बीकानेर

२०५ चौपर्वी चौपई समयप्रमोद P/ ज्ञानविलास १६७३ जूठाग्राम दान-चतुर्भुज बीकानेर

२०६ चौबोली चौपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२४ विनय १९७

२०७ चौबोली ,, कीर्त्तिसुन्दर P/ धर्मवर्द्धन १७६२ थाणलेनगर भ० बीकानेर

२०८ ,, वार्ता ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १८वीं मु० जेसलमेर भंडार

२०९ जम्बु स्वामी चौढालिया जगरूपP/ दुर्गादास १७६३ बद्रीदास कलकत्ता

२१० ,, ,, दुर्गादास P/ विनयाणद १८६३ वाकरोद अभयबीकानेर

२११ ,, चौपई उदयरत्न P/ जिनसागरसूरि जिनसागरसूरि शाखा १७२० आचार्य शाखाभ० बीकानेर

२१२ ,, ,, P/. जिनेश्वरसूरि वेगड १८वीं - जेसलमेर भंडार

२१३ ,, ,, भुवनकीर्त्ति P/ ज्ञाननंदिर १६६१ खंभात दान बीकानेर

२१४ ,, ,, रामचन्द्र P/ पद्मरंग १८वीं उल्लेख-मिश्रबन्धुविनोद

२१५ ,, ,, सुमतिरंग P/. चन्द्रकीर्त्ति १७२६ मुल० चारित्र राप्राविप्र जोधपुर

२१६ जंबूस्वामी चौपई हीरकलश P/ हर्षप्रभ १६३२ महिमा बीकानेर
२१७ ,, फाग विजयतिलक P/. विनयप्रभ १४३० प्र०
२१८ ,, रास गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६७० वाडमेर अभय बीकानेर
२१९ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७६० पाटण
२२० ,, ,, पद्मचन्द्र P/. पद्मरग १७१४ सरसा खजाची बीकानेर
२२१ ,, ,, यशोवर्द्धन P/. रत्नवल्लभ १७५१ अभय बीकानेर
२२२ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं
२२३ जयती सधि अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२१ विनय कोटा २८८
२२४ जयविजय चौपई धर्मरत्न P/. कल्याणधीर १६४१ आगरा
२२५ ,, ,, श्रीसारोपाध्याय P/ रत्नहर्ष १६८३ अभय बीकानेर
२२६ जयसेन ,, धर्मसमुद्र P/ लेखन १६१० विनय ३१५
२२७ जयसेन , सुखलाभ P/. सुमतिरग १७४८ जेसलमेर रामचन्द्र भडार बीकानेर
२२८ ,, प्रबधरास पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल १७६२ वाली अनन्तनाथ ज्ञान भडार बम्बई
२२९ ,, लीलावती रास सुमतिहस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १६६१ जोधपुर अभय बीकानेर
२३० (२४) जिनचतुष्पदिका मोदमन्दिर १४वी अभय
२३१ जिनगुणरस वेणीदास (विनयकीर्त्ति) P/ दयाराम आद्यपक्षीय १७९९ पीपाड
२३२ जिनपाल जिनरक्षित चौढालिया रगसार P/ भावहर्षसूरि भावहर्षीय १६२१ मानमल कोठारी बीकानेर
२३३ जिनपालित जिनरक्षित चौपई क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वी कातिसागरजी
२३४ ,, ,, रास उदयरत्न P/. विद्याहेम १८६७ बीकानेर खजाची चतुर-वद्धमान भडार बीकानेर
२३५ जिनपालित जिनरक्षित रास कनकसोम १६३२ नागोर अभय बीकानेर
२३६ ,, ,, ,, ज्ञानचन्द्र P/ सुमतिसागर १७वीं क्षमा बीकानेर
२३७ ,, ,, ,, पुण्यहर्ष P/ ललितकीर्त्ति १७०९
२३८ ,, , संधि कुशललाभ १६२१ महिमा बीकानेर
२३९ जिनप्रतिमा वृहद रास P/ नयसमुद्र १६वीं तपा भडार जेसलमेर १६३२ लि० प्रति
२४० जिनप्रतिमा मडन रास कमलसोम P/ धर्मसुन्दर १७वीं खजाची बीकानेर
२४१ जिनप्रतिमा हुडो रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७२५ अभय बीकानेर हरिलोहावट ख० जयपुर
२४२ जिनमालिका सुमतिरग P/ चन्द्रकीर्त्ति १८वीं भुवनभक्ति बीकानेर
२४३ जीभदांत सवाद हीरकलश P/ हर्षप्रभ १६४३ बी० अभय बीकानेर
२४४ जीवदया रास आसिगु १२५७ प्र०
२४५ जीवस्वरूप चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६६४ राजनगर भंडारकर पूना अभय बीकानेर
२४६ ज्ञानकला चौपई सुमतिरग P/. १७२२ मुलतान विनय ६६१ बाल २११

२४७ ज्ञानदीप कुशललाभ १७वीं पुण्य अहमदाबाद
२४८ ज्ञानपचमी चौपई विद्धणु S/ ठ० माहेल १४२३ सघ भडार पाटण
२४९ ज्ञानसुखडी धर्मचन्द्र P/ पद्मचन्द्र वेगड १७६७ थट्टा भुवनभक्ति-सेठिया बीकानेर
२५० ढढणकुमार चौपई रत्नलाभ P/ क्षमारग १६५६ जयतारण
२५१ ढुढकरास हेमविलास P/ ज्ञानकीर्त्ति १८७९ कुचेरा अभय
२५२ ढोला मारवण चौपई कुशललाभ १६१७ मुद्रित वाल २३४, ४६६
२५३ तपा ५१ बोल चौपई सटीक गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७६ राडद्रह देशाई अभय चा० रा० वि० बी०
२५४ तपोट चतुष्पदिका ,, ,, १७वीं हरि लोहावट
२५५ तिलकसुन्दरी प्रवन्ध लब्धोदय P/. ज्ञानराज १८वीं वाल राप्राविप्र चित्तोड
२५६ तेजसार चौपई रत्नविमल P/. कनकसागर १८३९ वावडीपुर
२५७ ,, रास कुशललाभ १६२४ वीरम० अभय बीकानेर हरि लोहावट
२५८ तेतलीपुत्र चौपई क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं कांतिसागरजी
२५९ त्रिविक्रम रास जिनोदयसूरि P/ जिनलब्धिसूरि १४१५
२६० थावच्चा चौपई क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म १८४७ महिमपुर अभय-क्षमा-बीकानेर
२६१ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६९१ खभात अभय-सेठिया-वीकानेर बाल २३५
२६२ ,, मुनि सधि श्रीदेव P/ ज्ञानचन्द्र १७४९ जेसलमेर
२६३ ,, सुत चौपई राजहर्ष P/. ललितकीर्त्ति १७०३ (१७०७) बीकानेर आचार्यशाखा भं० बी० सुमेर भीनासर
२६४ डंभक्रिया चौपई धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७४४ प्र०
२६५ दयादीपिका ,, धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७४० मुलतान अनूप
२६६ दश दृष्टान्त ,, वीरविजय P/. तेजसार १७वीं केशरिया जोधपुर
२६७ दशार्णभद्र इन्द्र सवाद छद आणंद P/ कनकसोम १६६८ बीकानेर अभय बीकानेर
२६८ दशार्णभद्र चौपई धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष १७५७ मेडता मुद्रित
२६९ ,, नवढालिया समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६६०
२७० ,, भास हेमाणद P/ हीरकलश १६५८ अभय
२७१ दानादि चौढालिया समयसुदरोपाध्याय १६६६ सगानेरप्र० अभय बीकानेर विनयकोटा, राप्राविप्र० जोधपुर
२७२ दामनक चौपई गुणनन्दन P/ ज्ञानप्रमोद १६९७ सरसा अभय बीकानेर
२७३ दामनक ,, ज्ञानधर्म P/ राजसार १७३५ आचार्य शाखा बीकानेर
२७४ ,, ,, ज्ञानहर्ष P/. सुमतिशेखर १७१० नोखा अभय बीकानेर
२७५ दुमुह प्रत्येकबुद्ध ,, गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १७वीं रामलालजी बीकानेर
२७६ दुर्गा सातसी ,, कुशललाभ १७वीं स्टेट लाइब्रेरी बीकानेर
२७७ दुर्जन दमन-चौपई ज्ञानहर्ष P/. सुमतिशेखर १७०७ पूगल सुराणा-लाइब्रेरी चूरू

२७८ देवकी छ पुत्र रास लावण्यकीर्ति P/. ज्ञानविलास १७वी अभय बीकानेर

२७६ देवकी रास मतिवर्द्धन P/. सुमतिहस आद्यप० १८ वीं ख० जयपुर, चारित्र राप्राविप्र० वीकानेर

२८० देवकुमार चौपई लालचद P/. हीरनन्दन १६७२ खजांची बीकानेर यति सूर्यमल

२८१ देवराज वच्छराज चौपई आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १७४८ सोजत महिमा वीकानेर

२८२ ,, ,, ,, कनकविलास P/ कनककुमार १७३८ जेसलमेर

२८३ ,, ,, ,, परमाणंद P/. जीवसुन्दर १६७५ मरोट आचार्यशाखा भं० वीकानेर

२८४ ,, ,, ,, मतिकुशल P/. मतिवल्लभ १७२६ तलवाड उदयचन्द जोधपुर

२८५ ,, ,, ,, सत्यरत्न १६वीं मुकनजी वीकानेर

२८६ ,, ,, ,, सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७२ खीमसर खजांची वीकानेर वाल चित्तोड २१८

२८७ ,, ,, प्रवध विनयमेरु P/ हेमधर्म १६८४ रिणी ,, ,

२८८ रोहा कथा चौपई विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक ? १८वीं अभय वीकानेर

२८६ द्रौपदी चौपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि वेगड १६६८ जेसलमेर ,,

२६० ,, ,, विनयमेरु P/. हेमधर्म १६६८ यति प्रेमसुन्दर

२६१ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७०० अहमदावाद

२६२ पचसती ,, ,, हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६५६ —

२६३ ,, रास कनककीर्त्ति P/. जयमदिर १६६३ वीकानेर अभय-क्षमा-वीकानेर विनय ७६५

२६४ धनंजय रास भुवनसोम P/. धनकीर्त्ति १७०३ नवानगर केशरिया जोधपुर

२६५ धनदत्त चौपई समयसुन्दरोपाध्याय १६६६ अहमदावाद अभय वीकानेर हरिलोहावट

२६६ धन्ना ,, कमलहर्ष P/. मानविजय १७२५ सोजत

२६७ ,, ,, जिनवर्द्धमानसूरि पिप्पलक १७१० खभात रामलालजी वीकानेर

२६८ ,, चरित्र ,, पुण्यकीर्त्ति P/. हसप्रमोद १६८८ वीलपुर

२६६ धन्य ,, ,, राजसार P/ धर्मसोम १७०६

३०० धन्ना चौपई हितधीर P/. कुशलभक्ति १८२६ पार्श्वनाथ पुस्तकालय सूरतगढ

३०१ ,, रास (सधि) कल्याणतिलक P/ जिनसमुद्रसूरि १६वीं जेसलमेर अभय वीकानेर

३०२ ,, ,, दयातिलक P/. रत्नजय १७१७

३०३ धन्ना शालिभद्र चौपई गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६७४ महिमा वीकानेर

३०४ ,, ,, ,, यशोरग P/ हीररत्न १७३४ पूनमचन्द दूधेडिया छापर

३०५ ,, ,, ,, राजलाभ P/. राजहर्ष १७२६ वणाड दान वीकानेर

३०६ ,, ,, रास जिनराजसूरि P/ जिनसिंहसूरि १६७८ अभय वीकानेर विनय ३० कोटा मुद्रित

३०७ धर्मदत्त चन्द्रधवल चौपई क्षमाप्रमोद P/ रत्नसमुद्र १८२६ जेसलमेर वृद्धि जेसलमेर स्वय लिखितप्रति

३०८ धर्मदत्त चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १८१३ राहसर जयचन्द भंडार वीकानेर

३०९ धर्मदत्त चौपई जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि १७३७ किसनगढ कांतिसागरजी
३१० धर्मदत्त धनपति रास जयनिधान P/. राजचन्द्र १६५८ अहमदाबाद क्षमा बीकानेर
३११ धर्मबुद्धि चौपई कुशललाभ P/. कुशलधीर १७४८ नवलखी अभय बीकानेर
३१२ धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई चन्द्रकीर्त्ति P/. हर्षकल्लोल १६८२ घडसीसर केशरिया जोधपुर
३१३ ,, ,, ,, प्रीतिसागर P/. प्रीतिलाभ जिनरंगीय १७६३ उदयपुर प्रेमसुन्दरयति विनयचन्द ज्ञान भं० जयपुर
३१४ ,, ,, रास लाभवर्द्धन P/ शान्तिहर्ष १७४२ सरसा दान-अभय-बीकानेर
३१५ ,, मत्री चोपई विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६७२ बीकानेर अभय बीकानेर
३१६ ,, रास मतिकीर्त्ति P/. गुणविनय १६९७ राजनगर
३१७ धर्ममंजरी चौपई समयराजोपाध्याय P/ जिनचन्द्रसूरि १६६२ बीकानेर खजांची जयपुर अभय बीकानेर
३१८ धर्मसेन ,, यशोलाभ १७४० नापासर सेठिया बीकानेर
३१९ ध्यानदीपिका चौपई देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १७६६ मुलतान प्र०
३२० ध्वजभगकुमार चौपई लब्धिसागर (लालचन्द) P/. जयनन्दन जिनरंगीय १७७० चूहाग्राम उदयचन्द जोधपुर
३२१ नदन मणिहार सधि चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १५८७ आचार्य भंडार जेसलमेर हरिलोहावट
३२२ नदिषेण चौपई दानविनय P/. धर्मसुन्दर १६६५ नागोर अभय बीकानेर
३२३ ,, ,, रघुपति P/. विद्याविलास १८०३ केसरदेसर क्षमा बीकानेर
३२४ ,, फाग ज्ञानतिलक P/. पद्मराज १७वीं
३२५ नमि राजर्षि चौपई क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वी कांतिसागरजी
३२६ ,, ,, ,, साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १६३६ नागोर
३२७ ,, ,, संबंध गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६६० घनेरापुर पुण्य अहमदाबाद
३२८ नरदेव चौपई सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६८२ पाली केशरिया जोधपुर
३२९ नरवर्म चतुष्पदी विद्याकीर्त्ति P/ पुण्यतिलक १६६९ हिम्मत राप्राविप्र बीकानेर
३३० नर्मदासुन्दरी चौपई भुवनसोम P/. धनकीर्त्ति १७०१ नवानगर
३३१ ,, रास जिनहर्ष P/ शांतिहर्ष १७६१ पाटण
३३२ नल दमयती चौपई ज्ञानसागर P/. क्षमालाभ १७५८ अभय बीकानेर
३३३ ,, ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६७३ मेडता अभय बीकानेर ख० जयपुर हरिलोहावट विनय २११
३३४ ,, ,, प्रबंध गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६६५ नवानगर अभय बीकानेर
३३५ नवकार महात्म्य चौपई जिनलब्धिसूरि P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७५० जयतारण खजाची बीकानेर
३३६ नवकार रास धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १८वीं अभय बीकानेर
३३६A ,, ,, विजयमूर्त्ति P/. १७५५ विनय ७६८
३३७ नागश्री चौपई श्रीदेव P/. ज्ञानचन्द्र ,,
३३८ नारद चौपई लब्धिरत्न P/. धर्ममेरु १६७६ नवहर खजांची बीकानेर

३३९ नेमिनाथ कलश नयकुँजर P/. जिनराजसूरि १५वी
३३९A ,, छन्द शिवसुन्दर P/ क्षेमराज १६वीं अभय बीकानेर
३४० नेमिनाथ धमाल ज्ञानतिलक P/. पद्मराज १७वीं अभय बीकानेर
३४१ ,, फाग कनकसोम १७वीं रणथभोर
३४१A ,, ,, कल्याणकमल १७वीं आचार्यशाखा भडार बीकानेर
३४२ ,, ,, जयनिधान P/. राजचन्द्र ,, चारित्र रा॰प्रा॰वि॰प्र बीकानेर
३४२A ,, ,, जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १६९८ साचोर
३४३ ,, ,, महिमामेरु P/ सुखनिधान ,, नागोर केशरिया जोधपुर
३४४ ,, ,, राजहर्ष P/. ललितकीर्त्ति १८वीं अभय बीकानेर
३४५ ,, फागु समधरु १४वीं
३४६ ,, रास कनककीर्त्ति P/. जयमदिर १६९२ बीकानेर
३४७ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७७९ (?) पाटण
३४८ ,, ,, दानविनय P/. धर्मसुन्दर १७वीं कातिसागरजी १६८७ लिखितप्रति
३४९ ,, ,, धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान १६७५ बडोदा इन्स्टीस्यूट
३५० ,, ,, सुमतिगणि P/. जिनपतिसूरि १३वी जेसलमेर भडार
३५१ ,, राजीमती ,, समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६६३ जिनविजयजी
३५२ ,, विवाहलो जयसागरोपाध्याय, जिनराजसूरि १५वी
३५३ ,, ,, महिमसुन्दर P/. साधुकीर्त्ति १६६५ सरस्वतीपत्तन महिमा कातिसागर १६६९ ज्ञानमेरु लि॰
३५४ पदमण रासो गिरधरलाल १८३२ जोधपुर वडा भडार बीकानेर
३५५ पद्मरथ चौपई स्थिरहर्ष P/ मुनिमेरु १७०८ शेरगढ दान बीकानेर
३५६ पद्मावती चतुष्पदिका जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वी प्र॰
३५७ पद्मिनी चौपई लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७०६-७ उदयपुर मुद्रित वाल ४५७
३५८ परमात्मप्रकाश चौपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७४२ जेसलमेर विनय १६५ कोटा क्षमा बीकानेर
३५९ पवनाभ्यास चौपई आनदवर्द्धनसूरि (धनवर्द्धनसूरि) भावहर्षीय १६७८
३६० पाण्डवचरित्र चौपई लाभवद्धन P/. शान्तिहर्ष १७६७ वील्हावास अभय सेठिया बीकानेर हरिलोहावट वि॰ १५६
३६१ ,, ,, रास कमलहर्ष P/. मानविजय १७२८ मेडता हुबड मदिर भडार उदयपुर
३६२ पार्श्वनाथ धवल भुवनकीर्त्ति P/ ज्ञानमन्दिर १६९२ जेसलमेर कांतिसागरजो लावण्यकीर्त्ति लिखित गुटका
३६३ पार्श्वनाथ फाग समयध्वज P/ सागरतिलक लघुखरतर १७वी अभय बीकानेर
३६४ ,, रास जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १७१३ गाजीपुर जेसलमेर भडार
३६५ ,, ,, श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६८३ जेसलमेर
३६६ पाल्हणपुर वासुपूज्य बोली जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं

३६७ पुंजाऋषि रास समयसुन्दरोपाध्याय १६९८ मुद्रित

३६८ पुडरीक कडरीक संधि राजसार P/. धर्मसोम १७०१ अहमदाबाद अभय बीकानेर हरिलोहावट

३६९ पुण्यदत्त सुभद्रा चौपई पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल १७८६ धरणावास अनंतनाथ ज्ञान भंडार बम्बई

३७० पुण्यपाल श्रेष्ठि चौपई क्षेमहर्ष P/. विशालकीर्त्ति १७०४ तपागच्छ भंडार सिरोही

३७१ पुण्यरग चौपई लब्धिसागर (लालचद) P/. जयनंदन जिनरगीय १७६४ अभय बीकानेर

३७२ पुण्यसार चौपई लक्ष्मीप्रभ P/. कनकसोम १७वीं जिनविजयजी

३७३ ,, रास पुण्यकीर्त्ति P/. हसप्रमोद १६६२ सांगानेर अभय बीकानेर विनय ११३

३७४ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६७२ अभय सेठिया बीकानेर हरिलोहावट

३७५ पुरदर चौपई रत्नविमल P/. कनकसागर १८२७ कालाऊना खजाँची बीकानेर

३७६ पुरुषोदय धवल लावण्यकीर्त्ति P/. ज्ञानविलास १७वीं तेरापथी सभा सरदारशहर

३७७ प्रतिमा रास जयचन्द्र P/. कपूरचन्द्र १८७८ आगोलाई महरचन्द बीकानेर

३७८ प्रतिमा स्थापन रास शिवमन्दिर १६०५ जेसलमेर भंडार

३७९ प्रदेशी चौपई अमरसिंधुर P/. जयसार १८९२ बम्बई धरणेन्द्र जयपुर

३८० ,, ,, ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर १७वीं अभय-खजांची बीकानेर विनय ११७

३८१ ,, संधि कनकविलास P/. कनककुमार १७४२ बाडमेर अभय बीकानेर

३८२ ,, सबध तिलकचद P/. जयरग १७४१ जालोर अभय बीकानेर

३८३ प्रभाकर गुणाकर चौपई धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक १५७३ अजिलाणा

३८४ प्रवचन रचनावेली जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १८वीं जेसलमेर भडार

३८५ प्रश्नोत्तर चौपई जिनसुन्दरसूरि वेगड १७६२ आगरा

३८६ प्रश्नोत्तरमालिका (पार्श्वचन्द्रमतदलन) चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७३ सांगानेर ख० ज० थाहरु जेस०

३८७ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ रास क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं अभय बीकानेर

३८८ बारह भावना संधि जयसोमोपाध्याय १६४६ बीकानेर अभय बीकानेर

३८९ बारहव्रत रास आनन्दकीर्त्ति P/. हेममन्दिर १६८० धर्मआगरा

३९० ,, ,, कमलसोम P/. धर्मसुन्दर १६२० सारगपुर अभय-बडा भडार बीकानेर

३९१ ,, ,, गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५५ सघभंडार पाटण

३९२ ,, ,, जयसोमोपाध्याय १६४७ तथा १६५० अभय बीकानेर

३९३ ,, ,, विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १६७९

३९४ बारहव्रत रास । समयसुन्दरोपाध्याय १६८५ लूणकरणसर मुद्रित

३९५ ,, ,, P/. यु० जिनचन्द्रसूरि १६३३

३९६ बुड्ढा रास फकीरचन्द १८३६ महर-चतुर-महिमा बीकानेर

३९७ ब्रह्मसेन चौपई दयामेरु १८८० भागनगर जयचन्द भंडार बीकानेर

३९८ भद्रनंद संधि राजलाभ P/ राजहर्ष १७२५ चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
३९९ भरतसंधि पद्मचन्द्र P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १८वी वृद्धि जेसलमेर
४०० भरत बाहुबली रास भुवनकीर्त्ति P/ ज्ञाननंदि १६७५ जेसलमेर अ०
४०१ भवदत्त भविष्यदत्त चौपई दयातिलक P/. रत्नजय १७४१ फतेहपुर अभय बीकानेर
४०२ भीमसेन चौपई जिनसुन्दरसूरि वेगड १७५८ सवालख कुंडपारा ग्राम
४०३ ,, ,, विद्यासागर P/. सुमतिकल्लोल १७वीं आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
४०४ भुवनानन्द ,, सुमतिधर्म P/. श्रीसोम १७२५ आसनीकोट दान बीकानेर
४०५ भृगुपुरोहित ,, जयरंग P/. नेमचन्द १८७२ लखनऊ अभय बीकानेर
४०६ भोज चरित्र ,, हेमाणद P/. हीरकलश १६५४ भदाणइ
४०७ भोज चौपई कुशलवीर P/ कल्याणलाभ १७२९ सोजत विनय ४८९
४०८ भोसउ रासो खेता P/. दयावल्लभ १७५७ अभय-आचार्यशाखा भडार बीकानेर
४०९ मंगलकलश चौपई जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७१४ अभय बीकानेर हरिलोहावट विनय २३६
४१० ,, ,, रगविनय P/ जिनरगसूरि जिनरगीय १७१४ अभयपुर पाटोदी दि० भडार जयपुर
४११ ,, ,, रत्नविमल P/. कनकसागर १८३२ वेनातट अभय बीकानेर
४१२ ,, ,, लखपत S/. तेजसी १६९१ थट्टा तपा भडार जेसलमेर
४१३ ,, रास कनकसोम १६४९ मुलतान अभय बीकानेर विनय १६७
४१४ मणिरेखा चौपई हर्षवल्लभ P/. जिनचन्द्रसूरि १६६२ महिमावती
४१५ मतिमूर्त्तिमडन चौढालिया हेमविलास P/ ज्ञानकोर्त्ति १९वी हरिलोहावट
४१६ मतिसागर (रसिकमनोहर) चौपई विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६७३ सरसा अभय बीकानेर
४१७ मत्स्योदर चौपई पुण्यकीर्त्ति P/ हसप्रमोद १६८२ वीलपुर ,,
४१८ ,, ,, लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७०२ वाल राप्राविप्र चित्तोड
४१९ ,, ,, समयमाणिक्य (समरथ) P/. मतिरत्न १७३२ नागोर
४२० ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७१८ वाडमेर सेठिया बीकानेर
४२१ मयणरेहा ,, विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक ? १८वी
४२२ मलयसुन्दरी चौपई लब्धोदय P/ ज्ञानराज १७४३ गोघूदा अभय बीकानेर क्षमा बीकानेर
४२३ महाबल मलयसुन्दरी रास चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १६वीं अभय बीकानेर
४२४ ,, ,, ,, जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७५१ पाटण अभय सेठिया बीकानेर वाल २२५
४२५ महाराजा अजितसिंहजी री नीसाणी लाभवर्द्धन P/ ,, १७६३ केशरिया जोधपुर
४२६ महावीर रास अभयतिलकोपाध्याय P/ जिनेश्वरसूरि द्वि० १३०७ मुद्रित जेसलमेर भडार
४२७ महावीर विवाहलो कीर्त्तिरत्नसूरि १५वीं
४२८ महाशतक श्रावक सधि धर्मप्रमोद P/. कल्याणधीर १७वीं

४२९ महीपाल चरित्र चौपई कमलकीर्त्ति P/. कल्याणलाभ १६७६ हाजी खानदेरा

४३० मांकड रास कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन १७५७ मेडता प्र०

४३१ माताजी री वचनिका जयचन्द P/. चतुरभुज १७७६ कुचेरा मुद्रित

४३२ माधवानल कामकंदला रास कुशललाभ १६१६ जेसलमेर मुद्रित

४३३ मानतुग मानवती चौपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२७ अभय वीकानेर चारित्र राप्राविप्र वीकानेर

४३४ ,, ,, ,, जिनसुन्दरसूरि वेगड १७५० मरुधर छठोपाटण जैनरत्नपुस्तकालय जोधपुर

४३५ ,, ,, रास पुण्यविलास P/. पुण्यचन्द्र १७८० लूणकरणसर विनयचन्द ज्ञानभडार जयपुर

४३६ मुनिपति चौपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७२५ पाटण अभय-सेठिया वीकानेर विनय १८३

४३७ ,, ,, नयरग १६१५ डूँगर जेसलमेर

४३८ ,, ,, हीरकलश P/ हर्षप्रभ १६१८ वीकानेर

४३९ मुनिमालिका चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १६३६ रिणी अभय-क्षमा-वीकानेर खजांची जयपुर

४४० ,, पुण्यसागरोपाध्याय P/ जिनहससूरि १७वीं अभय वीकानेर

४४१ मूलदेव चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७३ सागानेर मुकनजी वीकानेर

४४२ ,, ,, रामचन्द्र P/. पद्मरंग १७११ नवहर झडियाळा गुरु भंडार

४४३ मृगध्वज ,, पद्मकुमार P/. पूर्णचन्द्र १७वीं मुकनजी वीकानेर जिनविजयजी

४४४ मृगांक पद्मावती चौपई धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान १६९१ सोवनगिरी अभय वीकानेर

४४५ मृगांकलेखा चौपई भानुचन्द्र लघुखरतर १६६३ जौनपुर दिगवर भडार अजमेर

४४६ ,, ,, सुमनिधर्म P/. श्रीसोम १८वीं अभय वीकानेर

४४७ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४८ पाटण

४४८ ,, ,, लखपत S/. तेजसी कूकड़ चोपडा १६९४ तपा भडार जेसलमेर

४४९ मृगापुत्र चौपई श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६७७ वीकानेर विनय कोटा ७७९

४५० ,, सधि जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७१५ साचोर चतुरभुज वी ख० जयपुर

४५१ ,, ,, सुमतिकल्लोल १६७१ महिमनगर अभय वीकानेर

४५२ ,, ,, कल्याणतिलक P/. जिनसमुद्रसूरि १५५० ,,

४५३ ,, ,, लक्ष्मीप्रभ P/. कनकसोम १६७७ मुलतान खजांची वीकानेर

४५४ मृगावती रास समयसुन्दरोपाध्याय १६६८ मुलतान अभय-सेठिया वीकानेर हरिलोहावट विनय ६१, ६८१

४५५ मेघकुमार चौढालिया अमरविजय P/. उदयतिलक १७७४ वगसेऊ अभय वीकानेर

४५६ ,, ,, कविकनक १७वीं अभय-क्षमा वीकानेर हरि लोहावट

४५७ ,, ,, जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १८वीं खजांची जयपुर मुद्रित

४५८ ,, चौपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनरगसूरि जिनरगीय १७२७

४५९ ,, ,, सुमतिहस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १६८६ पीपाड

४६० मेघकुमार रास कनकसोम P/. १७वीं विनय २२६
४६१ मेतार्य ऋषि चौपई महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १६७० पुष्कर
४६२ ,, मुनि , अमरविजय P/. उदयतिलक १७८६ सरसा जयचन्द भडार बीकानेर
४६३ ,, , , उदयहृष P/. हीरराज १७०८ अभय बीकानेर
४६४ ,, ,, ,, क्षेमराज P/ सोमध्वज १६वीं कातिसागरजी
४६५ मोती कपासिया छद श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६८७ फलोधी अभय क्षमा बीकानेर
४६६ ,, , सवाद हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६३२ स्टेट लायब्रेरी
४६७ मोहविवेक रास धर्ममदिर P/ दयाकुशल १७४१ मुलतान अभय बीकानेर ख० जयपुर हरिलोहावट
४६८ ,, , (ज्ञानशृगार चौपई) सुमतिरग P/ चन्द्रकीर्त्ति १७२२ मुलतान अभय-क्षमा बीकानेर
४६९ मौन एकादशी चौपई आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १७२७ जाघ० जय० भडार बीकानेर विनय २०७
४७० ,. , ,, आलमचद P/ आसकरण १८१४ मकसूदावाद अभय क्षमा बीकानेर
४७१ ,, ,, ,, कनकमूर्त्ति P/. गजानद १७६५ जेसलमेर अभय बीकानेर
४७२ यशोधर रास जयनिधान P/ राजचन्द्र १६४३ अभय बीकानेर वरणेन्द्र जयपुर
४७३ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४७ पाटण
४७४ ,, ,, विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १६६५ अमरसर
४७५ यामिनी भानु मृगावती चौपई चन्द्रकीर्त्ति P/ हर्षकल्लोल १६८६ वाडमेर नाहर कलकत्ता
४७६ युगप्रधान चतुष्पदिका ठ० फेरु S/ चन्द्र १३४७ कन्नाणा मुद्रित
४७७ युवराज चौपई शोभाचन्द्र P/ विनयकीर्त्ति (वेणीदास) आद्य० १८२२ मेडता कोटडी भंडार जोधपुर
४७८ योगशास्त्रभाषा चौपई सुमतिरग P/. चन्द्रकीर्ति १७२४ कृपा०
४७९ रतिसार केवली चौपई चारुचन्द्र P/ भक्तिलाभ १६वीं अभय बीकानेर
४८० रत्नकुमार चतुष्पदिका सुमतिकल्लोल १६७९ मुलतान हुबड म० भडार उदयपुर
४८१ रत्नकेतु चौपई सुमतिमेरु P/ हेमधर्म १६६८
४८२ रत्नचूड ,, हीरकलश P/ हर्षप्रभ १६३६ तपा भडार जेसलमेर
४८३ ,, रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७५७ पाटण
४८४ ,, मणिचूड चौपई लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७१९ उदयपुर
४८५ ,, व्यवहारी रास कनकनिधान P/. चारुदत्त १७२८ अभय बीकानेर विनय ३
४८६ रत्नपाल चौपई गुणरत्न P/ विनयसमुद्र १६६२ महिमावती तपाभडार जेसलमेर
४८७ ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८१९ कालू क्षमा बीकानेर
४८८ ,, ,' रत्नविशाल P/. गुणरत्न १६६२ महिमावती अभय बीकानेर
४८९ रत्नशेखर रत्नावती रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ अ० वाल चित्तोड २५१
४९० रत्नसार नृप रास ,, ,, ,, १७५९ पाटण

४६१ रत्नसिंह राजर्षि रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४१ पाटण
४६२ रत्नहास चौपई यशोवर्द्धन P/ रत्नवल्लभ १७३२
४६३ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७१५ सेठिया बीकानेर
४६४ रमतियाल शिष्य प्रवध बालावबोध रत्नाकर P/ मेघनंदन १७वीं अभय बीकानेर
४६५ रसमंजरी चौपई समयमाणिक्य (समरथ) P/. मतिरत्न १७६४ अभय बीकानेर
४६६ राजप्रश्नीय उद्धार चौपई सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७६ हीराचंदसूरि बनारस
४६७ ,, सूत्र चौपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि बेगड १७०६ सक्कीनगर बन्नूदेश जेसलमेर भंडार
४६८ राजर्षि कृतवर्म चौपई कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२८ सोजत
४६९ राजसिंह चौपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि बेगड १६८७ जेसलमेर भंडार
५०० राठौड वंशावली (अनूपसिंहवर्णनादि) सवैयाबद्ध जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड यतिइन्द्रचंद बाडमेर
५०१ रात्रिभोजन चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७८७ नापासर जयचन्द भंडार बीकानेर
५०२ ,, ,, कमलहर्ष P/ मानविजय १७५० लूणकरणसर सेठिया बीकानेर
५०३ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७३८ बीकानेर अभय-सेठिया बीकानेर
५०४ ,, ,, सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७१० जयतारण अभय बीकानेर छतीबाई उपाश्रय बीकानेर
५०५ ,, ,, (हंसकेशव चौपई) जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७२८ राधनपुर बद्रीदास कलकत्ता
५०६ रामकृष्ण चौपई लावण्यकीर्त्ति P/ ज्ञाननन्दी १६७७ बीकानेर अभय ख० जयपुर हरिलो० बाल ४६३
५०७ रामायण चौपई विद्याकुशल–चारित्रधर्म P/ आनन्दनिधान, आद्यपक्षीय १७११ [illegible]
५०८ रिपुमर्दन भुवनानन्दरास ज्ञानसुन्दर P/. १७०८ सुराणा लायब्रेरी चूरू
५०९ ,, ,, लब्धिकल्लोल P/ विमलरंग १६४९ पालनपुर जेसलमेर भण्डार अभय बी०
५१० रुक्मिणी चरित्र चौपई जिनसमुद्रसूरि P/ जिनसमुद्रसूरि बेगड १८वीं जेसलमेर
५११ रुघरास रघुपति P/. विद्यानिधान १८वीं
५१२ रूपसेन राज चौपई पुण्यकीर्ति P/ हंसप्रमोद १६८१ मेडता आचार्य भ० जेसलमेर फूलचन्द झावक फ०
५१३ रूपसेन राज चतुष्पदी लालचन्द P/. हीरनन्दन १६९३ मेडता मेडता भण्डार
५१४ ललितांग रास मतिकीर्ति P/ गुणविनय १७वीं अभय बीकानेर
५१५ लीलावती रास कुशलधीर P/ कल्याणलाभ १७२८ सोजत
५१६ ,, ,, लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७२८ सेत्रावा केशरिया जोधपुर विनय २०१
५१७ ,, गणित ,, ,, १७३६ बीकानेर अभय बीकानेर
५१८ लुपकमततमोदिनकर चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७५ सांगानेर हरि लो०, ख० ज० बडा० भ० बी०
५१९ लुंपकमतनिर्लोठनरास शिवसुन्दर P/. क्षेमराज १५९५ अभय बीकानेर
५२० वंकचूल चौपई जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि बेगड १७८० यति ऋद्धिकरण जैनरत्न पुस्तकालय जोधपुर
५२१ ,, रास गंगदास १६७१ पाली ख० जयपुर

५८४ शीलवती रास कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२२ साचोर अभय बीकानेर
५८५ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५८
५८६ ,, ,, दयासार P/. धर्मकीर्त्ति १७०५ फतेपुर केशरिया जोधपुर
५८७ शीलरास धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष १८वी बीकानेर मुद्रित अभय बीकानेर ख० जयपुर १७७७ लि०
५८८ ,, सिद्धिविलास P/. सिद्धिवर्द्धन १८१० लाहोर आचार्यशाखा भडार बीकानेर
५८९ शुकराज चौपई जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७३७ पाटण
५९० ,, ,, सुमतिकल्लोल १६६२ बीकानेर खजांची बीकानेर विनय ५८३
५९१ श्रावकगुणचतुष्पदिका समयराजोपाध्याय P/. जिनचन्द्रसूरि १७वीं केशरिया जोधपुर पाटण भडार
५९२ श्रावकविधि चौपई क्षेमकुशल P/ क्षेमराज १५४१ अभय बीकानेर
५९३ श्रावकविधि चौपई क्षेमराज P/ सोमध्वज १५४६ अभय क्षमा बीकानेर ख० जयपुर
५९४ श्रीपाल चौपई जिनहर्ष P/. शांतिहर्ष १७४० पाटण मुद्रित विनय ६७
५९५ ,, ,, गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १७वी राप्राविप्र जोधपुर
५९६ ,, ,, तत्त्वकुमार P/. दर्शनलाभ १९वी मु०
५९७ ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८०६ घडसीसर
५९८ ,, ,, रामचन्द्र P/. पद्मरंग १७३५ वीकमनयर
५९९ ,, रास (लघु) जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४२ पाटण
६०० ,, ,, महिमोदय P/. मतिहस १७२२ जहाणावाद हीराचद्रसूरि बनारस
६०१ ,, ,, रत्नलाभ P/. क्षमारग १६६२
६०२ ,, ,, लालचंद (लावण्यकमल) P/. रत्नकुशल १८१७ अजीमगज अभय बीकानेर
६०३ श्रीमती चौढालिया धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष १८वीं मुद्रित
६०४ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७६१ पाटण रामलालजी बीकानेर
६०५ श्रेणिक चौपई जयसार P/. युक्तिसेन १८७२ जेसलमेर बद्रीदास कलकत्ता धरणेन्द्र विनयचन्द ज्ञान भडार जयपुर
६०६ ,, ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७१९ चंदेरीपुर हरि लोहावट
६०७ ,, रास भुवनसोम P/. धनकीर्त्ति १७०२ अजार केशरिया जोधपुर
६०८ षट्स्थान० प्रकरण सधि चारित्रसिंह P/ मतिभद्र १६३१ जेसलमेर
६०९ सम्प्रति चौपई आलमचंद P/ १८२२ मकसूदाबाद विनय ७०४
६१० सप्रति चौपई चारित्रसुन्दर P/ १९वीं चतुर्भुज बीकानेर
६११ सत्यविजयनिर्वाण रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७५६ पाटण मुद्रित
६१२ सयति संधि गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १६३० डूंगर जेसलमेर अभय बीका०
६१३ सघपति सोमजी वेलि समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मुद्रित बीकानेर
६१४ सदयवच्छ सावलिगा चौपई कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय १६९७ मु०

६१५ सनत्कुमार चौपई कल्याणकमल P/. १७वीं सुमेरमलजी भीनासर
६१६ ,, ,, यशोलाभ P/. १७३६ अभय बीकानेर
६१७ ,, रास पद्मराज P/. पुण्यसागरोपाध्याय १६६६
६१८ सम्मेतशिखर रास बालचन्द्र (विजयविमल) P/. अमृतसमुद्र १९०७ अजीमगंज मु० अभय बीकानेर
६१९ ,, ,, सत्यरत्न १८८० क्षमा बीकानेर खजांची जयपुर विनय ४८६
६२० सम्यक्त्व कौमुदी जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १८वीं ख० जयपुर
६२१ ,, ,, चौपई आलमचंद P/. आसकरण १८२२ मकसूदाबाद हरि लोहावट
६२२ ,, ,, रास हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६२४
६२३ सम्यक्त्वमाइ चौपई जगडू १३३१ मु०
६२४ सव्वत्थवेलि साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १७वीं अभय बीकानेर
६२५ सहज बीठल दूहा मतिकुशल १८३२ अभय बीकानेर
६२६ साधुगुणमाला कल्याणधीर P/. जिनमाणिक्यसूरि १७वीं
६२७ साधुवंदना जयसोमोपाध्याय १७वीं अभय बीकानेर
६२८ ,, जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १८वीं जेसलमेर भंडार
६२९ ,, ,, देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं अभय बीकानेर
६२९१ ,, पुण्यसागरोपाध्याय १७वीं विनय ७५८
६३० ,, भावहर्षसूरि भावहर्षीय १६२६ जोधपुर केशरिया जोधपुर
६३१ ,, श्रीदेव P/. ज्ञानचन्द्र १८वीं अ० विनय १०८
६३२ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६९७ अभय बीकानेर कांतिसागरजी
६३३ सागरसेठ चौपई सहजकीर्त्ति P/. हेमनंदन १६७५ बीकानेर ,, विनय ६६४, ७६४
६३४ सिंहलसुत प्रियमेलक रास समयसुन्दरोपाध्याय १६७२ ,, मु० विनय कोटा २१७
६३५ सिंहासन बत्तीसी चौपई विनयलाभ P/. विनयप्रमोद १७४८ फलोदी ,, .
६३६ सिद्धाचल रास जिनमहेन्द्रसूरि P/. जिनहर्षसूरि मंडोवरा २०वीं ,,
६३७ सीताराम चौपई समयसुन्दरोपाध्याय १६७७ मेड़ता मु० ,, विनय कोटा ४९० बाल २२६
६३८ सीता सती ,, समयध्वज P/. सागरतिलक लघुखरतर १६११ कांति बड़ोदा
६३९ सीमंधर बीनती चौढालिया अगरचन्द P/. हर्षचन्द्र १८९४ राजपुर विनय कोटा
६४० सुकमाल चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७९० आगरा ताराचन्द तातेड़ हनुमानगढ
६४१ सुकोशल ,, ,, ,, १७९० आगरा
६४२ सुख दु ख विपाक संधि धर्ममेरु P/ चरणधर्म १६०४ बीकानेर खजांची जयपुर
६४३ सुखमाला सती रास जीवराज P/. राजकलश १६६३
६४४ सुदर्शन चौपई कीर्त्तिवर्द्धन (केसव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय १७०३ कांतिसागरजी

५२२ वच्छराज चौपई महिमाहर्ष P/. जिनसमुद्रसूरि बेगड १८वीं सेठिया बीकानेर
५२३ ,, देवराज ,, कल्याणदेव P/. चरणोदय १६४३ बीकानेर
५२४ ,, ,, ,, विनयलाभ P/. विनयप्रमोद १७३० मुलतान
५२५ वन राजर्षि चौपई कुशललाभ P/. कुशलधीर १७५० भटनेर अभय बीकानेर
५२६ वयरस्वामी चौपई जयसोमोपाध्याय १६५९ जोधपुर खजांची बीकानेर दान बीकानेर
५२७ वयरस्वामी चौपई जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ धरणेन्द्र जयपुर
५२८ ,, रास जयसागरोपाध्याय १४८९ जूनागढ विनय ४१६ अतिमपत्र
५२९ वल्कलचीरी रास समयसुन्दरोपाध्याय १६८१ जेसलमेर अ० बी० हरिलोहावट, वाल ५९३
५३० वसुदेव चौपाई जिनसमुद्रसूरिP/. जिनचन्द्र बेगड १८वीं जेसलमेर भण्डार
५३१ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७६२ पाटण
५३२ वस्तुपाल तेजपाल रास अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२९
५३३ ,, ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६८२ तिमरी मुद्रित
५३४ विक्रमचरित्र लीलावती चौपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२४ अभय बीकानेर
५३५ विक्रमादित्य चौपई दयातिलक P/ रत्नजय १८वीं
५३६ ,, ,, विजयराज P/. ललितकीर्ति १७वी ख० जयपुर
५३७ विक्रमादित्य खापरा चोर चौपई राजशील P/ साधुहर्ष १५६३ चित्तौड़ बड़ोदा इन्सस्टीच्यूट
५३८ ,, ,, ,, ,, लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७२३ जयतारण अभय बीकानेर
५३९ विक्रमादित्य ९०० कन्या चौपई ,, ,, १७२३ क्षमा बीकानेर
५४० विक्रमादित्य पचदण्ड चौपई ,, ,, १७३३ सेठिया बीकानेर
५४१ ,, ,, रास लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७२८ अ० बी० ख० जयपुर विनय ५३
५४२ विजयसेठ चौपई राजहस P/. कमललाभ १६८२ मुलतान अभय बीकानेर
५४३ ,, रास गगविनय P/. यशोवर्द्धन १७८१ अभय बीकानेर
५४४ विजयसेठ विजया चौपई उदयकमल P/. रत्नकुशल १८२१ कमालपुर
५४५ ,, ,, प्रबन्ध ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर १६६५ सरसा अभय बीकानेर
५४६ विजयसेन राजकुमार चतुष्पदिका सुमतिसेन P/.रत्नभक्ति जिनर० १७०७ पचायती मंदिर दिल्ली
५४७ विद्याविलास चौपई जिनोदयसूरि P/. जिनतिलक०भावह० १६६२ मुकनजी, खजाची बीकानेर
५४८ ,, रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७११ सरसा अ०बी० जैन भ० कलकत्ता
५४९ ,, ,, जिनसमुद्रसूरि P/.जिनचन्द्र बेगड १८वीं विनय २५३
५५० ,, ,, यशोवर्द्धन P/ रत्नवल्लभ १७५८ बेनातट ख० जयपुर
५५१ ,, ,, राजसिंह P/. विमलविनय १६७९ चपावती
५५२ विद्यानरेन्द्र (विद्याविलास) चौपई आज्ञापुन्दर जिनवर्द्धन पिप्प० १५१६ आ० भ० जै० ज० बी० विनय ३८५

५५३ बीजलपुर वासुपूज्य बोलो जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं

५५४ वीर जन्माभिषेक ,, ,, ,, जिनहर्ष भंडार बीकानेर

५५५ वीरभाण उदयभाण चौपई कुशलसागर P/. लावण्यरत्न (केशवदास) १७४२ नवानगर जैनरत्नपुस्तकालय जोधपुर

५५६ वीसस्थानक-पुण्यविलास रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४८ पाटण मुद्रित

५५७ वृद्धदत्त शुद्धदंत (केसरो) रास जिनोदयसूरि P/. जिनतिलकसूरि भावहर्षीय १८वीं गोकुलदासलालजी राजकोट

५५८ वैदर्भी चौपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७११

५५९ ,, ,, सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि १७१३ जयतारण अभय-रामलालजी बीकानेर

५६० वैद्यविरहिणो प्रवध उदयराज S/. भद्रसार श्रावक भावहर्षीय १८वीं अभय बीकानेर

५६१ शकुनदीपिका चौपई लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७७० तपाभंडार जेसलमेर बाल चित्तोड ६४१

५६२ शकुन्तला रास धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक १६वीं मुद्रित

५६३ शत्रुञ्जय रास पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल १७६० अनंतनाथ ज्ञानभंडार बवई

५६४ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६८२ नागोर मुद्रित

५६५ ,, उद्धार ,, भोमराज P/. गुलाबचन्द जिनसागरसूरिशाखा १८१६ सूरत

५६६ ,, माहात्म्य ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५५ पाटण मुद्रित क्षमावीकानेर हरिलोहावट बाल २३३

५६७ ,, ,, ,, सहजकीर्त्ति P/. हेमनंदन १६८४ आसनीकोट अभय बीकानेर

५६८ ,, यात्रा ,, कुशललाभ P/. १७वीं अभय बीकानेर ख० जयपुर

५६९ ,, ,, विनयमेरु P/. हेमधर्म १६७६ जालोर अभय बीकानेर

५७० शान्तिनाथ कलश रामचन्द्र १४वी पुण्य-अहमदावाद

५७१ ,, बोली जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं अभय बीकानेर राप्राविप्र जोधपुर १०१६७

५७२ ,, रास रंगसार P/. भावहर्षसूरि भावहर्षीय १६२०

५७३ ,, देव ,, लक्ष्मीतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि १४वीं

५७४ ,, प्रबध ,, लब्धिविमल P/. लब्धिरंग १८वीं झूंझनू भंडार

५७५ ,, विवाहलो सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७८ वालसीसर तेरापंथी सभा सरदारशहर

५७६ शाव प्रद्युम्न चौपई समयसुन्दरोपाध्याय १६५९ खभात अभय-क्षमा बीकानेर

५७७ शालिभद्र कक्क कवि पद्म १४वीं

५७८ ,, रास राजतिलक P/. जिनेश्वरसूरि १४वीं मुद्रित

५७९ ,, सिलोको सिंह P/. कनकप्रिय १७८१ मुद्रित

५८० शीलनववाड रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७२९ मु० क्षमावीकानेर हरिलोहावट विनय २१२

५८१ शील फाग लब्धिराज P/. धर्ममेरु १६७६ नवहर खजांची रामलालजो बीकानेर

५८२ शील रास सहजकीर्त्ति P/. हेमनंदन १६८६ अभय बीकानेर

५८३ शीलवती चौपई देवरत्न P/. देवकीर्त्ति, १६९८ वालसीसर खजांची-चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

६४५ सुदर्शन चौपई सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६६१ वगडीपुर ...वि० उ० अहमदावाद भंडार
६४६ ,, रास धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह, पिप्पलक १६वी अभय बीकनेर
६४७ ,, सेठ चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७९८ नापासर
६४८ ,, ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४९ पाटण
६४९ सुदर्शन चौपई विनयमेरु P/. हेमधर्म १६७८ सोघपुर अभय बीकानेर
६५० सुप्रतिष्ठ चौपई अमरविजय P/ उदयतिलक १७९४ मरोट
६५१ सुबाहु संधि पुण्यसागरोपाध्याय P/ जिनहंससूरि १६०४ अभय-सेठिया बीकानेर ख० जयपुर, विनय ७००
६५२ सुभद्रा चौपई जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७वीं, हरि लोहावट
६५३ ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८२५ तोलियासर क्षमा बीकानेर
६५४ ,, ,, विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६७५ जैनशाला भंडार, खभात
६५५ ,, ,, हेमनन्दन १६४५ ख० जयपुर,
६५६ सुमंगल रास अमरविजय P/ उदयतिलक १७७१ जयचन्दजी भ० बीकानेर,
६५७ सुमति नागिला सम्बन्ध चोपई धर्ममन्दिर P/ दयाकुशल १७३९ बीकानेर
६५८ सुमित्रकुमार रास धर्मसमुद्र P/ विवेकसिंह पिप्पलक १५६७ जालोर,
६५९ सुरप्रिय चौपई दीपचन्द्र P/. धर्मचद्र, वेगड १७८१ जयचन्द भ० बीकानेर
६६० ,, रास जयनिधान P/. राजचन्द १६६५ मुलतान केशरिया जोधपुर
६६१ सुरसुन्दरी अमरकुमार रास जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि वेगड़ १७६९
६६२ सुरसुन्दरी चौपई मतिकुशल P/. मतिवल्लभ १७३१ धरणेन्द्र जयपुर
६६३ ,, रास धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७३६ वेनातट अभय-क्षमा-बीकानेर विनय ५५,१६९
६६४ सुसढ चौपई समयनिधान P/. राजसोम जिनसागरसूरि शाखा १७३१ अकबराबाद सेठिया बीकानेर
६६५ ,, रास राजसोम P/. जयकीर्त्ति, जिनसागरसूरि शाखा १८वीं, आचार्य शाखा भ० बीकानेर
६६६ सोमचन्द राजा चौपई विनयसागर P/ सुमतिकलश पिप्पलक १६७० जौनपुर
६६७ सोलह स्वप्न चौढालिया अमरसिन्धुर P/ जयसार १९वीं तपा-भंडार जेसलमेर
६६८ सौभाग्यपचमी चौपई जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि १७३८ जयचन्द भंडार बीकानेर
६६९ स्तम्भन पार्श्वनाथ फाग मुनिमेरु P/. १७वी केशरिया जोधपुर
६७० स्थूलिभद्र चौपई चारित्रसुन्दर P/ १८२४ अजीमगज जयचन्द भं० बीकानेर
६७१ ,, छन्द मेरुनन्दन P/ जिनोदयसूरि १५वीं
६७२ ,, फागु जिनपद्मसूरि P/. जिनकुशलसूरि १४वीं मुद्रित
६७३ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ पाटण क्षमा बीकानेर
६७४ ,, ,, रंगकुशल P/ कनकसोम १६४४ जिनविजयजी
६७५ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं महावीर विद्यालय बंबई

६७६	स्थूलिभद्र चौपई	साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य	१७वीं	वर्द्धमान भं० बीकानेर
६७७	हसराज वच्छराज चौपई	महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान	१६७५ कोटड़ा	
६७८	,, ,, प्रबन्ध	विनयमेरु P/ हेमधर्म	१६६६ लाहोर	अभय बीकानेर
६७९	,, ,, रास	जिनोदयसूरि P/. जिनतिलक० भावहर्ष०	१६८०	अभय बी०ख० जयपुर वि०१२०, २२८
६८०	हरिकेशी सधि	कनकसोम	१६४० वैराट	
६८१	,, ,,	सुमतिरग P/. कनककीर्त्ति	१७२७ मुलतान	
६८२	,, साधु ,,	सुखलाभ P/ सुमतिरग	१७२७	बड़ौदा इन्स्टीच्यूट
६८३	हरिबल चौपाई	चारूचन्द्र P/ भक्तिलाभ	१५८१	जयचन्द भं० बीकानेर
६८४	,, ,,	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचंद्र० वेगड	१७०१	जेसलमेर भडार
६८५	,, ,,	दयारत्न P/ हर्षकुशल आद्यपक्षीय	१६६१ जोधपुर	नाहर कलकत्ता
६८६	,, ,,	पुण्यहर्ष P/. ललितकीर्त्ति	१७३५ सरसा	खजांची बीकानेर
६८७	,, ,,	राजशील P/. साधुहर्ष	१५९९	हरि लेहावट
६८८	,, ,,	लावण्यकीर्ति P/. ज्ञानविलास	१६७१ जेसलमेर	यति नेमिचंद वाडमेर
६८९	,, मच्छी चौपई	राजरत्नसूरि P/. विवेकरत्नसूरि पिप्पलक	१५९९	खजांची बीकानेर
६९०	,, ,, रास	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७४६ पाटण	मुद्रित
६९१	,, सधि	कनकसोम	१७वीं	
६९२	हरिवाहन चौपई	P/. जिनसिंहसूरि	१७वीं	महिमा बीकानेर
६९३	हरिश्चन्द्र रास	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७४४ पाटण	
६९४	,, ,,	लालचन्द P/. हीरनन्दन	१६७९ गगाणी	
६९५	,, ,,	सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन	१६९७	अभय बीकानेर, विनय ७६३

बीसी, चौबीसी, पचीसी, बत्तीसी, छत्तीसी, बावनी सित्तरी बारहमासा आदि

१	विहरमान बीसी	जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१७वीं	मुद्रित विनय ३८३ स्वयलिखित
२	,,	जिनसागरसूरि P/. ,,	,,	अभय बीकानेर सेठिया बीकानेर
३	,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७२७	मुद्रित
४	,,	,, ,,	१७४५	मुद्रित
५	,,	देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र	१८वीं	,,
६	,,	राजलाभ P/. राजहर्ष	,,	जयकरण जी बीकानेर
७	,,	रामचन्द्र P/. कीर्त्तिकुशल जिनसागर	,,	आचार्य शाखा भं० बीकानेर
८	,,	लालचन्द P/. हीरनन्दन	१६९२ पालडी	अभय बीकानेर
९	,,	विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक जिनसागर	१७५४ राजनगर	मुद्रित

१० विहरमान वीसी सबलसिंह श्रावक १८११ मकसूदावाद महिमा बीकानेर
११ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६९७ अहमदावाद-मुद्रित
१२ ,, हर्षकुशल १७वीं अभय बीकानेर
१३ ,, ज्ञानसार १८७८ बीकानेर मुद्रित

चौवीसी

१ चौवीसी आनन्दवर्द्धन P/. महिमासागर १७१२ अभय बीकानेर
२ ,, कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२६ सोजत जेसलमेर भंडार
३ ,, गुणविलास P/. सिद्धिवर्द्धन १७९२ जेसलमेर अभय बीकानेर
४ ,, चारित्रनन्दी P/. नवनिधि २०वीं खजांची जयपुर
५ ,, जयसागरोपाध्याय P/. जिनराजसूरि १५वीं अभय बीकानेर
६ ,, जिनकीर्त्तिसूरि जिनसागरसूरिशाखा १८०८ बीकानेर
७ ,, जिनमहेन्द्रसूरि मंडोवरा P/. जिनहर्षसूरि १८९८ धरणेन्द्र जयपुर
८ ,, जिनरत्नसूरि P/. जिनराजसूरि १८वीं अभय बीकानेर
९ ,, जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १७वीं मुद्रित
१० ,, (वड़ी) जिनलाभसूरि P/ जिनभक्तिसूरि १९वी अभय बीकानेर
११ ,, (छोटी) ,, ,, ,, ,,
१२ ,, जिनसुखसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि १७६४ खभात ,,
१३ ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७३८ मुद्रित
१४ ,, ,, ,, १८वीं ,,
१५ ,, दयासुन्दर P/. दयावल्लभ १७४३ विनय कोटा
१६ ,, बालावबोध सह देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र १७९८ मुद्रित
१७ ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७७१ जेसलमेर मुद्रित
१८ ,, अमरचन्दबोथरा २०१८ मुद्रित
१९ ,, ,, ,, ,, ,,
२० ,, राजसुन्दर P/ राजलाभ १७७२ महिमा बीकानेर
२१ ,, लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वी अभय बीकानेर
२२ ,, विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक जिनसागरसूरिशाखा १७५५ राजनगर मुद्रित अभय बीकानेर हरिलोहावट
२३ ,, सबलसिंहश्रावक १८६१ मकसूदाबाद अजीमगंग बडामन्दिर
२४ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६५८ अहमदावाद मुद्रित
२५ ,, सिद्धितिलक P/. सिद्धिविलास १७९६ जेसलमेर आचार्यशाखाभंडार बीकानेर

२६	चौवीसी	सिद्धिविलास P/. सिद्धिवर्धन	२०वीं ,, ,,
२७	,,	सुमतिमण्डन P/. धर्मानन्द	२०वीं
२८	,,	सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि, आद्यपक्षीय	१६९७ मेडता
२९	,,	हीरसागर P/. जिनचन्द्रसूरि, पिप्पलक	१८१७ पीपलिया उदयचन्द जोधपुर,
३०	,,	क्षेमराज P/. सोमध्वज	१६वीं थाहरु जेसलमेर
३१	,,	ज्ञानचन्द्र P/ सुमतिसागर	१७०१ मुकनजी बीकानेर
३२	,,	ज्ञानसार	१८७५ बीकानेर मुद्रित
३३	अतीतचौवीसी के २१ स्तवन	देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र	१८वी, मु० ख० जयपुर,
३४	ऐरवत क्षेत्रस्थ चौवीसी	समयसुन्दरोपाध्याय	१६९७ मुद्रित
३५	सवैया चौवीसी	लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति	१८वीं
३६	सैंतालीस बोलगर्भित चौवीसी	ज्ञानसार P/ रत्नराज	१८५८
३७	बावीसी	आनदघन (लाभानंद) १७वीं–१८वीं	मु०

सोलही

१	मूर्खसोलही	लाभवर्द्धन P/ शान्तिहर्ष	१८वीं

पच्चीसी

१	अध्यात्म पच्चीसी	जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड	१८वीं,
२	उपदेश ,,	रघुपति P/. विद्यानिधान	,,
३	कुगुरु ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१८वीं मुद्रित
४	कौतुक ,,	कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन	१७६१ अभय बीकानेर
५	खरतर ,,	रत्नसोम P/.	१८५६ ,,
६	गौतम ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१८वी मुद्रित
७	छिनाल ,,	लाभवर्द्धनP/. ,,	,,
८	भाव ,,	अमरविजय P/. उदयतिलक	१७६१ जयचन्द्रजी भंडार बीकानेर
९	राजुल ,,	लालचन्द P/. हीरनन्दन	१७वीं हरिलोहवट, ख० जयपुर
१०	सुगुरु ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१८वीं ख० जयपुर मुद्रित
११	सप्तभगी ,,हिन्दी	भीमराज P/. गुलाबचन्द जिनसागरीय	१९२९ जेसलमेर मुद्रित

बत्तीसी

१	अक्षर बत्तीसी	अमरविजय P/. उदयतिलक	१८०० आगरा अभय बीकानेर
२	,, ,,	विद्याविलास P/. कमलहर्ष	१८वीं महिमा बीकानेर
३	उपदेश ,,	अमरविजय P/. उदयतिलक	१८०९ आगरा अभय बीकानेर

४	उपदेश बत्तीसी	रघुपति P/. विद्यानिधान	१८वी	
५	,, ,,	लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति	,,	अभय बीकानेर
६	,, रसाल ,,	रघुपति P/. विद्यानिधान	,,	
७	ऋषि ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	,,	मुद्रित
८	कर्म ,,	जिनराजसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१६६६	मुद्रित
९	चेतन ,, (राजबत्तीसी)	लक्ष्मीवल्लभ P/ लक्ष्मीकीर्त्ति	१७३९	अभय बीकानेर
१०	जीभ ,,	गुणलाभ P/ जिनसिंहसूरि, पिप्पलक	१६५७	अलवर अभय बीकानेर
११	दीपक ,,	कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न, आद्यपक्षोय	१७वी,	विनय कोटा
१२	दूहन ,,	खेमराज P/. सोमध्वज	१६वी	भुवनभक्ति भ० बीकानेर
१३	नवकार ,,	जयचन्द्र P/. सकलहर्ष	१७६५	बीलावास कांतिसागरजी
१४	परिहाँ (अक्षर),,	धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष	१८वी	मुद्रित
१५	पवन ,,	क्षेमराज P/. सोमध्वज	१६वीं	भुवनभक्ति भ० बीकानेर
१६	पूजा ,,	अमरविजय P/. उदयतिलक	१७६९	फलोधी जयचन्दजी भ० बीकानेर
१७	,, ,,	श्रीसार P/. रत्नहर्ष	१७वीं	अभय बीकानेर
१८	पृथ्वी ,,	क्षेमराज P/ सोमध्वज	१६वीं	भुवनभक्ति भ० बीकानेर
१९	भ्रमर ,,	कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय	१९वी	मु० विनय कोटा
२०	राज ,,	राजलाभ P/ राजहर्ष	१७३८	अभय बीकानेर
२१	विचार ,,	जयकुशल P/ ज्ञाननिधान	१७२९	,, ,,
२२	शील ,,	जिनराजसूरि P/ जिनसिंहसूरि	१७वी	मुद्रित
२३	,, ,,	ज्ञानकीर्ति P/ जिनराजसूरि	,,	अभय बीकानेर
२४	सामायिक दोष ,,	गुणरंग P/ प्रमोदमाणिक्य	,,	अभय बीकानेर
२५	सुगण ,,	रघुपति P/. विद्यानिधान	१८वीं	,,
२६	हितशिक्षा ,,	क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म	१९वी	,,

छत्तीसी

१	अक्षर छत्तीसी	ज्ञानसुन्दर P/ कल्याणविनय	१७८६	
२	आगम ,,	श्रीसार P/. रत्नहर्ष	१७वीं	अभय बीकानेर
३	आत्मप्रबोध ,,	ज्ञानसार	१९वीं	मुद्रित
४	आलोयणा ,,	समयसुन्दरोपाध्याय	१६९८	मुद्रित अमदाबाद
५	आहारदोष ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७२७	क्षमा बीकानेर
६	उपदेश ,,	सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन	१७वी	अभय बीकानेर

७ उपदेश छत्तीसी वारहखडी	खुश्यालचन्द P/. जयराम	१८३१ सवाई पार्श्वनाथजैन पुस्तकभवन सूरतगढ़
८ ,, ,, सवैया	जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष	१७१३ मुद्रित
९ कर्म ,,	समयसुन्दरोपाध्याय	१६६८ मुद्रित
१० कुगुरु ,,	ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर	१७वीं
११ गुरु ,,	श्रीसार P/. रत्नहर्ष	,, हरिलोहावट
१२ गुरुशिष्यदृष्टान्त ,,	धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष	१८वीं
१३ चारित्र ,,	ज्ञानसार	१९वी मुद्रित
१४ जिनप्रतिमा ,,	नयरंग P/. गुणशेखर	१७वीं अभय बीकानेर
१५ तप ,,	गंगदास	१६७५ मसूदा ,,
१६ तीर्थभास,,	समयसुन्दरोपाध्याय	१७वीं मु० पालणपुर भंडार
१७ दया ,,	चिदानन्द (कपूरचन्द)	१९०५ भावनगर मु०
१८ ,, ,,	साधुरंग P/. सुमतिसागर	१६८५ अमदावाद अभय बीकानेर
१९ दान ,,	राजलाभ P/. राजहर्ष	१७२३
२० दृष्टान्त ,,	धर्मवर्द्धन P/ विजयहर्ष	१८वीं मुद्रित
२१ दोधक ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	,, ,,
२२ धर्म ,,	श्रीसार P/. रत्नहर्ष	१७वीं आचार्यशाखा भ० बीकानेर
२३ परमात्म ,,	चिदानन्द (कपूरचन्द)	२०वी मुद्रित
२४ पार्श्वनाथ दोधक ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१८वी मुद्रित
२५ पुण्य ,,	समयसुन्दरोपाध्याय	१६६९ सिद्धपुर मुद्रित
२६ प्रस्ताव सवैया ,,	,,	१६९० खंभात ,,
२७ प्रीति ,,	कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय	१७वी विनय कोटा
२८ ,, ,,	सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन	१६८८ सांगानेर
२९ भजन ,,	उदयराज S/. भद्रसार श्रावक, भावहर्षीय	१६६७ मांडावार
३० भाव ,,	ज्ञानसार	१८६५ किसनगढ़ मुद्रित
३१ मतिप्रवोध ,,	,,	१९वीं मुद्रित
३२ मद ,,	पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद	१६८५ मेडता महिमा बीकानेर
३३ मोह छत्तीसी	पुण्यकीर्त्ति P/. हंसप्रमोद	१६८४ नागोर महिमा बीकानेर
३४ विशेष ,,	धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष	१८वी
३५ वैराग्य ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७२७
३६ शिक्षा ,,	महिमसिंह (मानकवि) P/ शिवनिधान	१७वी
३७ शील ,,	राजलाभ P/. राजहर्ष	१७२९ जोधपुर अभय बीकानेर

३८ शील छत्तीसी समयसुन्दरोपाध्याय १६६९ मुद्रित
३९ सत्यासीयादुष्कालवर्णन ,, ,, १७वीं ,,
४० सन्तोष ,, ,, १६८४ ,,
४१ सवासौ सीख ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वी ,,
४२ सुगुरु ,, हर्षकुशल १७वीं अभय वीकानेर
४३ ज्ञान ,, कीर्त्तिसुन्दर P/ धर्मवर्द्धन १७५९ जयतारण जेसलमेर भडार
४४ ,, ,, ज्ञानसमुद्र P/. गुणरत्न, आद्यपक्षीय १७०३
४५ क्षमा ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं नागोर मुद्रित

पंचाशिका

१ चौवीसजिन पंचाशिका क्षमाप्रमोद P/. रत्नसमुद्र १९वीं ख० जयपुर

बावनी

१ बावनी खेता P/. दयावल्लभ १७४३ दहरवास अभय वीकानेर
२ ,, जिनसिंहसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि १७वीं ,,
३ ,, राजलाभ P/. राजहर्ष १८वी भुजनगर ,,
४ ,, समरथ (समयमाणिक्य) P/. मतिरत्न १८वीं आचार्यशाखा भडार वीकानेर
५ अध्यात्म बावनी जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि वेगड १७७० राप्राविप्र जोधपुर
६ ,, प्रबोध ,, जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि १७३१ दान-अभय वीकानेर
७ अन्योक्ति ,, मुनिवस्ता (वस्तुपाल विनयभक्ति) १८२२ अभय वीकानेर
८ अष्टापदतीर्थ ,, जयसागरोपाध्याय P/. जिनराजसूरि १५वीं
९ आलोयणा ,, कमलहर्ष P/. मानविजय १८वी हरि लोहावट
१० कवित्त ,, जयचद P/. सकलहर्ष १७३० सेमणा कातिसागरजी
११ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १८वीं अभय वीकानेर
१२ कवित्त बावनी लक्ष्मीवल्लभ P/ लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अभय खजांची वीकानेर
१३ कुडलिया ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष ,, मुद्रित
१४ ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८०८
१५ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं भुवनभक्ति भंडार वीकानेर
१६ केशव ,, केशवदास (कुशलसागर) P/. लावण्यरत्न १७३६ अभय वीकानेर
१७ गुण ,, उदयराज P/. भद्रसार श्रावक भावहर्षी १६७६ ववेरइ ,,
१८ गूढ (निहाल बावनी) ,, ज्ञानसार P/ रत्नराज १८८१ मुद्रित
१९ छप्पय ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं मुद्रित

२० छप्पय बावनी लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं खजांची बीकानेर

२१ जसराज ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७३८ मु० अभय बीकानेर

२२ जैनसार ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८०२ नापासर ,,

२३ दूहा ,, लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अभय-खजांची बीकानेर

२४ दोहा ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७३० मुद्रित

२५ धर्म ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७वीं मुद्रित

२६ प्रास्ताविक छप्पय ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८२५ तोलियासर

२७ मनोरथमाला ,, जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १७०८

२८ मातृका ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७३८ मुद्रित

२९ योग ,, महिमसिंह (मानकवि) P/ शिवनिधान १७वीं बद्रीदास कलकत्ता विनय कोटा

३० लौद्रवा चिन्तामणि पार्श्वनाथ ,, वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वी मु० आचार्यशाखा भंडार बीकानेर

३१ वैराग्य ,, लालचंद P/. हीरनंदन १६९५ अभय बीकानेर

३२ शाश्वत जिन ,, हर्षप्रिय १७वीं ,, विनय कोटा

३३ सवैया ,, चिदानन्द (कपूरचन्द) २०वीं मु०

३४ ,, ,, जयचन्द P/. सकलहर्ष १७३३ जोधपुर कांतिसागरजी

३५ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अभय खजांची बीकानेर

३६ ,, , विनयलाभ P/. विनयप्रमोद अभय बीकानेर

३७ सार ,, श्रीसार P/. रत्नहर्ष १६८९ पाली अनूप सं० ला० बीकानेर

३८ सीमन्धर ,, ,, ,, १७वीं नाहर कलकत्ता

३९ ज्ञान ,, हंसराज पिप्पलक १७वीं - मु० जयचंद भं० बीकानेर

सत्तरी

१ उपदेशसत्तरी श्रीसार P/. रत्नहर्ष १७वी मु० क्षमा बीकानेर ख० जयपुर

२ व्यसन सत्तरी सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६६८ नागोर अ०

३ समकित सत्तरी जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७३६ पाटण मु०

बहुत्तरी

१ उत्पत्ति बहुत्तरी श्रीसार P/. रत्नहर्ष १७वीं हरि लोहावट

२ नद ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७१४ बीलावास मुद्रित

३ पद ,, चिदानन्द (कपूरचन्द) २०वीं मु०

४ ,, ,, आनंदघन १८वीं मु०

५	पद बहुत्तरी (७४पद)	ज्ञानसार	१६वी	मुद्रित
६	रग ,,	जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि	१८वी	अभय बीकानेर

सईकी

१	सईकी	जयचद्र		मु० कान्तिसागर

बारहमासा

१	बारहमासा	केशवदास (कुशलसागर) P/. लावण्यरत्न	१८वी	पूनमचन्द दूधेड़िया छापर
२	,,	लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति	,,	
३	,,	लाभोदय P/. भुवनकीर्त्ति	१६८६	अभय बीकानेर
४	बारहमास रा दूहा	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१८वीं	मुद्रित
५	जिनसिंहसूरि बारहमासा	जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि	१७वी	मुद्रित
६	नेमिनाथ बारहमासा	खुश्यालचंद P/. नगराज	१७६८	अभय बीकानेर
७	,, ,,	जिनसमुद्रसुरि P/ जिनचन्द्रसूरि वेगड	१८वीं	
८	,, ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१७३२	कांतिसागरजी
९	,, ,,	,, ,,	१८वी	मुद्रित
१०	,, ,,	धर्मकीर्त्ति P/· धर्मनिधान	१७वी	जेसलमेर भडार
११	,, ,,	माल	,,	कातिसागरजी गुटका धर्मकीर्त्ति लि०
११	,, ,,	श्रीसार P/. रत्नहर्ष	,,	अभय बीकानेर
१३	,, ,,	समयसुन्दरोपाध्याय	,,	मुद्रित
१४	,, राजीमती ,,	धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष	१८वी	मुद्रित
१५	,, ,, ,,	,, ,,	,,	,,
१६	,, ,, ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	,,	,,
१७	,, ,, ,,	,, ,,	,,	,,
१८	,, राजुल ,,	विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक जिनसागर	,,	,,
१९	,, ,, ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	,,	,,
२०	पार्श्वनाथ ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	,,	,,
२१	राजुल ,,	केशवदास (कुशलसागर) P/. लावण्यरत्न	१७३४	
२२	,, ,,	जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष	१८वीं	मुद्रित
२३	स्थूलिभद्र ,,	जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष	१८वीं	मुद्रित
२४	,, ,,	,, ,,	,,	,,
२५	,, ,,	,, ,,	,,	,,

२६ स्थूलिभद्र बारहमासा विनयचन्द्र P/ ज्ञानतिलक १८वीं मुद्रित
२७ नेमिराजुल बारहमासा लब्धिकल्लोल P/. विमलरंग १७वीं अभय बीकानेर

अष्टोत्तरी

१ प्रास्ताविक अष्टोत्तरी ज्ञानसार P/. रत्नराज १८८० बीकानेर मुद्रित
२ संबोध अष्टोत्तरी ,, P/. ,, १८८८ ,,

पूजा

१ अष्टप्रकारी पूजा देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द १८वीं मु०
२ अष्टप्रवचनमाता पूजा सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द १९४० बीकानेर मु०
३ अष्टापद ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/ कुशलनिधान २०वीं मु०
४ आबू ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द १९४० बीकानेर मु०
५ इक्कीसप्रकारी ,, चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १८९५ बनारस अ० विनय कोटा हरिलोहावट
६ ,, ,, शिवचन्द्रोपाध्याय P/. समयसुन्दर १८७८ मु०
७ ऋषिमण्डल २४ जिन ,, ,, ,, १८७९ जयपुर मु०
८ एकादश अग ,, चारित्रनन्दी P/ नवनिधि १८९५ अ० नाहर कलकत्ता
९ एकादश गणधर ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द १९५५ बीकानेर मु०
१० गिरनार ,, जिनकृपाचन्द्रसूरि १९७२ बबई मु०
११ ,, ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/ धर्मानन्द २०वीं
१२ गौतमगणधर ,, ,, ,, २०वीं
१३ चौदह पूर्व ,, चारित्रनन्दी P/ नवनिधि १८९५ अ० नाहर कलकत्ता
१४ चौदह राजलोक ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) १९५३ बीकानेर मु०
१५ चौवीस जिन ,, जिनचन्द्रसूरि P/. जिनयशोभद्र पिप्पलक १९वीं अ० केशरिया जोधपुर
१६ जम्बूद्वीप ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) १९५८ बीकानेर मु०
१७ दादाजी अष्टप्रकारी ,, जिनचन्द्रसूरि P/. जिनलाभसूरि १८५३ अ० अभय बीकानेर
१८ दादाजी की पूजा रामलाल (ऋद्धिसार) P/. कुशलनिधान १९५३ बीकानेर मु०
१९ दादाजिनकुशलसूरि अष्टकारी पूजा ज्ञानसार १९वीं अ० अभय बीकानेर, मुद्रित
२० दादाजिनकुशलसूरि पूजा जिनहरिसागरसूरि P/. भगवानसागरजी २०वीं मु०
२१ दादाजिनदत्तसूरि ,, ,, ,, मु०
२२ ध्वजपूजा मु०
२३ नन्दीश्वर द्वीप पूजा जैनचन्द्र १९वीं
२४ ,, ,, शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील मु०

२५ नवपदपूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि २०वीं

२६ ,, ,, ज्ञानसार P/ रत्नराज १८७१ बीकानेर अ० ख० जयपुर मुद्रित

२७ नवपदपूजा उझाला देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं मु०

२८ नवपदलघुपूजा लालचन्द्रोपाध्याय १९वीं मु०

२९ नवाणुंप्रकारीपूजा अमरसिन्धुर P/. जयसार १८८८ बम्बई मु०

३० पञ्चकल्याणकपूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १८८९ कलकत्ता अ० कुशलचन्द्र पुस्तकालय बीकानेर हरिलोहावट

३१ ,, ,, बालचन्द्र (विजयविमल) P/. अमृतसमुद्र १९१३ बीकानेर मु०

३२ पञ्चज्ञानपूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९वी अ० विनय कोटा

३३ पञ्च ज्ञानपूजा सुमतिमंडन (सुगनजी) १९४० बीकानेर मु०

३४ पञ्च परमेष्ठि ,, ,, ,, १९५३ ,, मु०

३५ पार्श्वनाथप्रभु ,, जिनकवीन्द्रसागरसूरि P/ जिनहरिसागरसूरि २०१३ मेडतारोड मु०

३६ पैंतालीस आगम ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/ कुशलनिधान १९३० बीकानेर मु०

३७ बारहव्रत ,, कपूरचन्द (कुशलसार) १९३६ ,, मु०

३८ मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ,, जिनहरिसागरसूरि P/ भगवानसागर ,, मु०

३९ महावीरपट्कल्याणकपूजा विनयसागर P/ जिनमणिसागरसूरि २०१२ महासमुद मु०

४० महावीरस्वामी ६४ प्रकारीपूजा जिनकवीन्द्रसागरसूरि P/. जिनहरिसागरसूरि २०१३ मेडतारोड मु०

४१ युगप्रधानजिनचन्द्रसूरि पूजा जिनहरिसागरसूरि P/ भगवानसागर मु०

४२ रत्नत्रयआराधन पूजा जिनकवीन्द्रसागरसूरि P/. जिनहरिसागरसूरि २०१२ बीकानेर मु०

४३ बीस विहरमान पूजा ऋद्धिसार (रामलाल) P/ कुशलनिधान १९४४ मु०

४४ बीस स्थानक पूजा जिनहर्षसूरि १८७१ बालूचर मु०

४५ ,, ,, शिवचन्द्रोपाध्याय १८७१ अजीमगज

४६ शासनपति पूजा चतुरसागर P/. जिनकृपाचंद्रसूरि मु०

४७ श्रुतज्ञान पूजा राजसोम १९वीं

४८ संघ पूजा सुमतिमण्डन (सुगनजी) १९६१ बीकानेर मु०

४९ सतरहभेदी पूजा नयरंग १६१८ खंभात अ० उदयचन्द जोधपुर

५० ,, ,, चिदानन्द उज्जैन सिन्धिया

५१ ,, ,, वीरविजय P/. तेजसार १६५३ राजधामपुर अ० अभय बीकानेर

५२ ,, ,, साधुकीर्ति P/. अमरमाणिक्य १६१८ पाटण मु०

५३ ,, ,, पद ४८ जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड १७१८ अ० जेसलमेर भंडार

५४ समवसरण पूजा चारित्रनन्दी P/ नवनिधि १९१. खंभात अ० नाहर कलकत्ता

५५ सम्मेतशिखर पूजा बालचन्द्र (विजयविमल) P/ अमृतसुन्दर १९०८ मु० अभय बीकानेर

५६ सहस्रकूट पूजा सुमतिमंडन (सुगनजी) १९४० बीकानेर अ० क्षमा बीकानेर

५७ सिद्धाचल पूजा ,, ,, १९३० ,, मु०

५८ स्नात्र पूजा देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं मु०

देशवर्णन एवं चैत्यपरिपाटियाँ

१ ऊजलगिरिचैत्यपरिपाटी स्तवन शुभवर्द्धन (शिवदास) P/. गजसार १६०५ पूनमचन्द दूधेडिया छापर

२ उदयपुर गजल खेता P/. दयावल्लभ १७५७ अभय बीकानेर विनय ७७०

३ कापरहेडा रास दयारत्न P/. हर्षकुशल आद्यपक्षीय १६६५ केशरिया जोधपुर
४ ,, ,, लक्ष्मीरत्न P/. ,, १६८३ सोजत अभय बीकानेर
५ गिरनार गजल कल्याण P/. १८२८ हीराचन्दसूरि बनारस
६ गिरनार चैत्यपरिपाटी रंगसार P/. भावहर्षसूरि भावहर्षी १७वीं अभय बीकानेर
७ चित्तौड गजल खेता P/. दयावल्लभ १७४८ अभय बीकानेर
८ जेसलमेर चैत्यपरिपाटी स्त० जिनसुखसूरि P/ जिनचन्द्रसूरि १७७१ मु० ,,
९ ,, ,, ,, गुणविनय P/ जयसोम १७वीं ,,
१० ,, ,, ,, सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७९
११ ,, पटवासंघ वर्णन अमरसिंधुर P/. जयसार १८९८ बद्रीदास कलकत्ता
१२ ,, ,, ,, तीर्थमाला स्तवन ,, ,, १८९३ मुद्रित
१३ ,, ,, ,, यात्रावर्णन केशरीचन्द P/. जिनमहेन्द्रसूरि १८९६ कांति छाणी
१४ डीसा गजल देवहर्ष १९वीं अभय बीकानेर
१५ तीर्थचैत्यपरिपाटी स्तवन लब्धिकल्लोल P/ विमलरंग १७वीं ,,
१६ तीर्थमाला स्तवन देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र १८वीं ,,
१६A ,, ,, समयसुन्दर १७वीं मुद्रित
१७ तीर्थराज चैत्यपरिपाटी साधुचन्द्र १५३३ मुद्रित
१८ तीर्थयात्रा स्तवन जयसागरोपाध्याय P/. जिनराजसूरि १५वी मु०
१९ नगरकोट महातीर्थ चैत्यपरिपाटी ,, ,, ,, मु०
२० पत्तनचैत्यपरिपाटी स्तवन शुभवर्द्धन (शिवदास) P/ गजसार १६०५ पूनमचन्द दूधेडिया छापर
२१ पाटण गजल देवहर्ष १८५९ अभय बीकानेर
२२ पूर्वदेश चैत्यपरिपाटी जिनवर्द्धनसूरि P/. जिनराजसूरि पिप्पलक १५वी
२३ पूरवदेश वर्णनछंद ज्ञानसार P/. रत्नराज १९वीं मुद्रित
२४ बीकानेर गजल उदयचन्द्र (मथेन) १७६५ अभय बीकानेर
२५ ,, चैत्यपरिपाटी धर्मवर्द्धन विजयहर्ष १८वीं मुद्रित
२६ मण्डपाचल चैत्यपरिपाटी क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं मुद्रित
२७ मरोट गजल दुर्गादास P/. विनयाणद १७६५
२८ शत्रुंजय चैत्यपरिपाटी गुणविनय P/. जयसोम १६४४ अभय बीकानेर
२९ ,, ,, स्तवन देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र १८वी धर्म० आगरा
३० ,, ,, स्तवन वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १६७१ अभय बीकानेर
३१ ,, तीर्थपरवाड़ी सोमप्रभ P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १४वीं जेसलमेर भंडार अभय बीकानेर
३२ ,, संघयात्रा परिपाटी गुणरंग P/. प्रमोदमाणिक्य १७वीं
३३ सिद्धाचल गजल कल्याण १८६४ हीराचन्द्रसूरि बनारस
३४ सम्मेतशिखर चैत्यपरिपाटी स्त० वीरविजय P/. तेजसार १६६१ मुद्रित केशरिया जोधपुर
३५ तीर्थमाला स्तवन समयसुन्दर मुद्रित
३६ तीर्थमाला (ईडर से आबू यात्रा) सुमतिकल्लोल P/ विमलरंग गा० १७ १६५४ अभय बीकानेर
३७ शत्रुंजय तीर्थचैत्यप्रवाड स्तवन ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर P/ पुण्यप्रधान गा० ४१ १८वीं राप्राविप्र जो० १०३६७

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि
अष्टम शताब्दी
स्मृति-ग्रन्थ
(सं० १२२३—२०२७)
सम्पादक
अगरचन्द नाहटा,
भँवरलाल नाहटा।
मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी समारोह समिति, दिल्ली